प्रकाशक : वाणी परिषद्
आर ७, वाणी-विहार, नयी दिल्ली-११००१८

मुद्रक : हिन्दी प्रिंटिंग प्रेस
ए-४५, नारायणा इण्डस्ट्रियल एरिया,
फेस II नयी दिल्ली-११००२८
दूरभाष ५८३५३४

संस्करण : प्रथम १९७४

मूल्य : साठ रुपये मात्र

JAINĀCHĀRYA RAVIṢEṆA-KRITA PADMA-PURĀṆA AUR TULASĪ-KRITA RĀMACHARITAMĀNASA

(Thesis)

By

SHUKLA, RAMAKANT, Rs 60.00

अनुक्रम

प्रकाशकीय वक्तव्य

वाणी-परिषद् की स्थापना सवत् २०३० की वसत-पचमी के अवसर पर हुई थी। परिषद् की सकल्पना के अनुरूप एक प्रकाशन-योजना भी कार्यान्वित की जा रही है जिसमें श्रेष्ठ साहित्य-ग्रथो का प्रकाशन किया जाएगा। इसी योजना के अन्तर्गत डॉ० रमाकान्त शुक्ल द्वारा पी-एच० डी० उपाधि के लिए लिखित शोध-प्रबन्ध 'जैनाचार्य रविषेण कृत पद्मपुराण और तुलसीकृत रामचरितमानस' 'स्व० आचार्य श्री ब्रह्मानन्द शुक्ल-ग्रन्थमाला' के प्रथम पुष्प के रूप मे, परिषद् के तत्त्वावधान मे, प्रकाशित किया जा रहा है।

मानस-चतुश्शती एव भगवान् महावीर की २५००वी परिनिर्वाण-जयन्ती के पर्व-वर्ष में पद्मपुराण और रामचरितमानस के भाव, भाषा और कला-पक्षो का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत करने वाले ऐसे ग्रथ का प्रकाशन एक पुण्य-प्रयास है। इस ग्रथ मे डॉ० शुक्ल ने दो भिन्नयुगीन कृतियो की तुलनात्मक समीक्षा प्रस्तुत कर अपने गहन अध्ययन, श्रम और विद्वत्ता का परिचय दिया है। जैनाचार्य रवि-षेण की साहित्यिक प्रतिभा का अब तक अपेक्षित रूप मे अध्ययन सामने नही आया था। इस दिशा में सबसे बडी कठिनाई यह थी कि कुछ छुटपुट निबन्धों के अतिरिक्त उनके विषय मे कोई स्वतत्र ग्रथ नही लिखा गया था। इस अभाव की पूर्त्ति डॉ० रमाकान्त शुक्ल ने की है। साहित्य-सवर्द्धन उनका शाश्वत धर्म हो, यही हमारी कामना है।

मुद्रण और बाजार की विवशताओ के कारण इस ग्रथ का प्रकाशन पूर्व निर्धारित समय पर नही हो पाया जिसके लिए हमें खेद है।

हम आशा करते है कि वाणी-परिषद् भविष्य मे भी महत्त्वपूर्ण कृतियो का प्रकाशन कर अपनी सर्जनात्मक भूमिका का परिचय देगी।

२१ मई, १९७४

—रमाशंकर श्रीवास्तव
सचिव, वाणी-परिषद्
७, वाणी-विहार, नई दिल्ली-११००१८

दो शब्द

परिवर्तित युग-बोध और परिवेश के सन्दर्भ में प्राचीन पौराणिक काव्य का पुनर्मूल्यांकन और पुनराख्यान सर्जनात्मक धरातल पर तो अपनी प्रासंगिकता सिद्ध कर [ही चुका है, आलोचनात्मक स्तर पर उसकी अनिवार्यता और भी अधिक गहराई से अनुभव की जाने लगी है। जैनकाव्य के पुनर्मूल्यांकन में अब साम्प्रदायिक दृष्टि अवरोध उपस्थित नही करती। उसके प्रति विद्वानों का दृष्टिकोण, मात्र साम्प्रदायिक न रहकर, गहन अनुसन्धान और जिज्ञासा का बनता जा रहा है। डॉ० रमाकान्त शुक्ल की प्रस्तुत शोध-कृति **'जैनाचार्य रविषेण-कृत पद्मपुराण और तुलसी-कृत रामचरितमानस'** इस दिशा मे एक महत्त्वपूर्ण शोध-उपलब्धि है। लेखक ने निष्ठा एव अन्तर्दृष्टि से रविषेण-कृत पद्मपुराण (पद्म-चरित) की मूल सवेदना और शिल्प के विविध आयामो का उद्घाटन किया है।

रविषेण मे जैन साम्प्रदायिकता का स्वर अत्यन्त प्रखर था और तुलसी मे वैष्णव सिद्धातो के प्रति आग्रह कम नही था, किन्तु शुद्ध साहित्यिकता के स्तर पर उनकी उपलब्धियाँ विवेच्य एव तुलनीय है। जैन-परम्परा के अनुसार रामायण के पात्रो का जो स्वरूप सम्मुख आता है, वह आस्था एव परम्परा मे पोषित विचारको को किञ्चित् भिन्न एव अग्राह्य भी प्रतीत हो सकता है किन्तु समय की भाव-भूमि मे पल्लवित आधुनिक मनीषा को वह कुछ अधिक आकृष्ट करता है। प्रति-पात्रो मे नायकीय महद्गुणो की परिकल्पना तथा उपेक्षित पात्रो के प्रति सहानुभूति, जो आधुनिकता का गुण कहा जा सकता है, जैन रामकाव्य-परम्परा मे इन दोनो तत्त्वो का स्पष्ट आभास मिलता है।

लगभग ३० वर्ष पूर्व साकेत का अध्ययन एव विवेचन करते समय मैंने साकेतवासियो की रणसज्जा के प्रसङ्ग को गुप्तजी की मौलिक उद्भावना के रूप मे रेखाकित किया था। परवर्ती लेखको ने इसी मत की पुष्टि की। किन्तु 'पद्मपुराण' का अध्ययन प्रस्तुत हो जाने के उपरान्त मुझे इस विषय पर नये सिरे से सोचने का अवसर मिला। कुछ समय पूर्व एक गोष्ठी में रमाकान्तजी ने साकेत के उक्त स्थल

पर पद्मपुराण के प्रभाव की सप्रमाण चर्चा की थी। यह समानता आकस्मिक प्रतीत नही होती; गुप्तजी ने उपजीव्य सामग्री के रूप में उसका प्रयोग किया है—ऐसा प्रतीत होता है।

वस्तुत. जीवन-दर्शन की भिन्नता एव नूतनता तथा रामकाव्य के परवर्ती विकास पर पडने वाले प्रभाव के आकलन की दृष्टि से पद्मपुराण का अध्ययन एक महत्त्वपूर्ण अनिवार्यता है। रामचरितमानस के तुलनात्मक परिप्रेक्ष्य मे इस अध्ययन का महत्त्व और भी बढ़ जाता है। विविध भाषाओ मे लिखित विभिन्न सम्प्रदायों का प्रतिनिधित्व करने वाले रामकाव्यो के मूल में कोई अन्त सूत्र अवश्य विद्यमान है—भारतीय चिन्तन की मूलभूत एकता की इस धारणा को भी प्रस्तुत अध्ययन से बल मिलता है।

इस प्रकार यह कृति न केवल विषय का युक्तिसंगत आख्यान तथा मूल्याङ्कन प्रस्तुत करती है, अपितु भविष्य के शोधार्थियो एव जिज्ञासुओं के लिए नये तथ्य एवं सामग्री भी प्रकाश मे लाती है।

मानस-चतुश्शती पर्व, स० २०३१ वि०

—नगेन्द्र

सम्मति

भारतीय वाङ्मय मे रामकथा से अधिक व्यापक दूसरी कोई कथा नही है। रामायण को उपजीव्य बनाकर सस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, हिन्दी तथा अन्य भारतीय भाषाओ मे अनेक काव्य, नाटक आदि लिखे गये हैं। जिन धर्मो मे राम को अवतार नही माना गया और ईश्वर का स्थान नही दिया उनमे भी रामकथा के आधार पर काव्यादि का प्रणयन हुआ है। विशेषत. जैन कवियो ने रामकथा के आधार पर प्राकृत, अपभ्र श और सस्कृत मे सुन्दर काव्य लिखे है। अनेक भाषाओं के विचक्षण विद्वान् आचार्य रविषेण रचित 'पद्मचरित (पद्मपुराण)' सस्कृत का एक उच्च कोटि का महाकाव्य है। पद्म (राम) का चरित्र इस महाकाव्य में जैन-धर्म की मान्यताओ के आधार पर वर्णित हुआ है। आचार्य रविषेण ने यद्यपि जैन-धर्म की विचारसरणि को प्रधानता दी है किन्तु उनके व्यापक अध्ययन की छाप इस काव्य मे सर्वत्र व्याप्त है। वाल्मीकि, कालिदास, भवभूति आदि की रचनाओं के सुन्दर स्थल रविषेण ने सहज ही ग्रहण कर लिये हैं। गीता तथा अन्य पुराणो से भी उपदेशात्मक प्रमाणो का अकन पद्मपुराण मे मिलता है। ऐसे सुन्दर एवं उत्कृष्ट कोटि के महाकाव्य का तुलनात्मक शैली से अभी तक अध्ययन नही हुआ था। डा० रमाकान्त शुक्ल ने पद्मपुराण तथा रामचरितमानस का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत कर इस अभाव की पूर्ति की है। डा० शुक्ल हिन्दी-सस्कृत के विद्वान् हैं। अत इस कार्य के वे अधिकारी भी है। पद्मपुराण के अनुशीलन से एक ऐसे महाकाव्य का स्वरूप हिन्दीभाषियो के लिए उद्घाटित हुआ है जो धर्म की भूमि पर पृथक् होने पर भी सस्कृति, भाषा एव विचार के स्तर पर भी भारतीय मनीषा का ही अग है। डा० शुक्ल ने पद्मपुराण का अध्ययन करते समय अपनी दृष्टि को व्यापक परिप्रेक्ष्य से संयुक्त रखा है। अर्थात् केवल सामान्य तुलना ही नही वरन् पद्मचरित की गरिमामयी शैली और भाव-वस्तु को काव्यशास्त्रीय दृष्टि से परखा है। रामचरितमानस के विविध प्रसगो की सूक्ष्म स्तर पर तुलना को पढ़ कर आचार्य रविषेण और गोस्वामी तुलसीदास की कारयित्री प्रतिभा का पाठक को परिचय प्राप्त होता है। डा० शुक्ल ने अपने अध्ययन से एक ऐसे अल्पज्ञात

संदर्भ को पठनीय बनाया है जिसकी ओर अभी तक विद्वानों का ध्यान नही गया था। इनका यह प्रयास शोध की वैज्ञानिक प्रक्रिया के सर्वथा अनुरूप है। मेरा यह विश्वास है कि रामकथा का यह तुलनात्मक अनुशीलन हिन्दी-जगत् में समादृत होगा और मानस-चतुश्शती-वर्ष के समय इसका प्रकाशन महाकवियो के प्रति श्रद्धांजलि होगा।

२९-४-७२

विजयेन्द्र स्नातक
आचार्य एवं अध्यक्ष
हिन्दी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

विषय-प्रवेश

भारतीय-वाङमय की महत्त्व-कथा के समय जैन-साहित्य की चर्चा अपोहित नही की जा सकती। परन्तु यह दु.ख की बात है कि साम्प्रदायिक दृष्टिकोण के कारण जैन-साहित्य अपेक्षित रूप मे प्रकाश में नही आ सका। एक ओर 'हस्तिना ताड्यमानोऽपि न गच्छेज्जैनमन्दिरम्' जैसी घोषणाओं ने और दूसरी ओर अपने ग्रन्थो को 'असूर्यम्पश्य' रखने की प्रवृत्ति ने ज्ञान की अपार राशि को, सुचिन्तित अध्ययन को और मनीषियो की अनुपम साधना को जिज्ञासुओं से बहुत दिनों तक दूर रखा है। अपने ही देश के चिन्तन से हम वचित रहे—इससे अधिक विडम्बना और क्या हो सकती थी ?

जैन-साहित्य के महार्घ रत्नो से भारती का भण्डार भरा हुआ है परन्तु अनायास प्राप्त उनके आलोक का लाभ भी हम नही उठा पाते, उन्हे एकान्त रूप से प्राप्त करने के प्रयत्न की बात तो दूर रही। आश्चर्य तो तब और भी होता है जब साहित्य के परिचायक इतिहास-ग्रन्थो मे भी इन ग्रन्थ-रत्नों का स्पष्ट उल्लेख नही होता जबकि साहित्यिक दृष्टि से ये ग्रन्थ किसी भी भाषा के कण्ठहार बन सकते हैं।

इन ग्रन्थो का साहित्यिक महत्त्व तो है ही, सास्कृतिक महत्त्व भी कम नही है। 'कथाकोष प्रकरण' की भूमिका मे जैन-कथा-ग्रन्थो की महत्ता बताते हुए मुनि जिन-विजयजी लिखते है —"भारतवर्ष के पिछले ढाई हजार वर्ष के सास्कृतिक इतिहास का सुरेख चित्रपट अकित करने मे जितनी विस्तृत और विश्वस्त उपादान सामग्री इन कथा-ग्रन्थो मे मिल सकती हैं उतनी अन्य किनी प्रकार के साहित्य मे नही मिल सकती। इन ग्रन्थो मे भारत के भिन्न-भिन्न ग्रन्थ, सम्प्रदाय, राष्ट्र, समाज, वर्ण आदि के विविध कोटि के मनुष्यो के नाना प्रकार के आचार, विचार, व्यवहार, सिद्धान्त, आदर्श, शिक्षण, सस्कार, नीति-रीति, जीवन-पद्धति, राजतत्र वाणिज्य-व्यवसाय, अर्थोपार्जन, समाज-सगठन, धर्मानुष्ठान एव आत्म-साधन आदि के निदर्शक बहुविध वर्णन निबद्ध हुए है जिनके आधार से हम प्राचीन

भारत के सास्कृतिक इतिहास का सर्वागीण और सर्वतोमुखी मानचित्र तैयार कर सकते हैं।"[१]

जैनाचार्य श्री रविषेण द्वारा रचित 'पद्मचरित' या 'पद्मपुराण' ऐसे ही महत्त्व का ग्रथ है। इसमे 'पद्म' (राम) का चरित्र वर्णित है। इसकी रचना मे कवि का उद्देश्य है–आर्य रामायणो की अतिमानवीय घटनाओ का बौद्धिक विश्लेषण करके राम को जिनदीक्षा दिलाकर मोक्ष-प्राप्ति का साधन जिनदीक्षा को ही सिद्ध करना। वाल्मीकीय-रामायण की धारा से परिचित व्यक्ति को 'पद्मपुराण' की राम-कथा अटपटी प्रतीत हो सकती है परन्तु जैन-रामकथा की परम्परा से परिचित व्यक्ति को इसमे कोई आश्चर्य नही होगा। इन जैन कवियो ने नामावलीनिबद्ध 'पद्म' (राम)-चरित को इस प्रकार पल्लवित किया जिससे जैन-दर्शन के प्रति लोगो को आवर्जित किया जा सके। स्पष्टत. इस प्रयत्न मे यत्र क्वचित् अनावश्यक खीच-तान भी हुई है परन्तु इन कवियो के कवित्त्व और वैदग्ध्य मे सदेह नही किया जा सकता।

सस्कृत-ग्रथो की परम्परा मे 'पद्मपुराण' या 'पद्मचरित' अभी तक उपेक्षित था। यद्यपि सस्कृत-साहित्य के समस्त उदात्त गुण इसमें विद्यमान हैं तथापि सस्कृत के इतिहास ग्रन्थो मे इसकी चर्चा का लेखको को अवकाश तक नही मिला है। यह उन्होने जानबूझ कर किया अथवा उन्हे इसका परिचय ही नही था—यह वे जाने। वाचस्पति गैरोला ने अवश्य अपने सस्कृत-साहित्य के इतिहास मे इस पर अत्यन्त सक्षिप्त रूप से कुछ लिखा है और जैन-साहित्य के सस्कृत ग्रंथो को सस्कृत-साहित्य के इतिहास मे समाविष्ट करने की ओर विद्वानो का ध्यान आकृष्ट किया है। अस्तु, जैन-रामकथा के इस प्रसिद्ध ग्रथ का गोस्वामी तुलसी दास जी के रामचरितमानस से अध्ययन प्रस्तुत करना इस प्रबन्ध का उद्देश्य है।

पद्मपुराण और रामचरितमानस—दोनो ही रामकाव्यमाला के वरेण्य रत्न है। यदि पहले की जिनसेन, कुवलयमालाकार, स्वयम्भू तथा भट्टारक सोमसेन आदि ने सराहना की है तो दूसरे की भी अनेक देशी-विदेशी विद्वानो ने मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की है। न केवल हिन्दी के अनेक विद्वानो ने अपितु फोर्ट विलियम के मुंशी अदालत खाँ, मैक्फी, ग्रियर्सन, महात्मा गान्धी, गार्सा दे तासी, एफ एस ग्राउज़, एफ. ई. केई, एडविन ग्रीव्ज़, जे ई कार्पेण्टर, डब्ल्यू डगलस पी हिल तथा डॉ. मुहम्मद हाफिज सैयद सदृश अनेक अहिन्दीभाषी विद्वानो ने भी रामचरितमानस की गुण-गाथा गायी है। आचार्य रविषेण ने, रामकथा के बहाने, जैनधर्म के सिद्धान्तों को

१ कथाकोषप्रकरण–प्रास्ताविक वक्तव्य, पृ० १५।

प्रस्तुत किया और तुलसी ने 'नानापुराण-निगमागमसम्मत' तत्त्व को। रविषेण का प्रधान लक्ष्य है, अपने धर्म का प्रचार और तुलसी का स्वान्त सुखाय रामचरित का वर्णन करना। रविषेण का धर्म-प्रचार और तुलसी का भाषा-निबन्ध—दोनो ही ससार के कल्याणार्थ जिन-दीक्षा और राम-राज्य की सकल्पना करते है। दोनो का मार्ग भिन्न है, किन्तु लक्ष्य प्राय समान। दोनो अपने काल और समाज की विडम्बनाओ से आलोडित हुए हैं और युग को एक दिशा देना चाहते है।

तुलसी 'पद्मपुराण' से प्रभावित थे या नही—यह इदमित्थ रूप से नही कहा जा सकता, परन्तु अनेक स्थलो से यह अनुमान किया जा सकता है कि उन्होने इस ग्रन्थ को सभवत देखा हो परन्तु अपने इष्टदेव की प्रतिमा के प्रतिकूल उन्होने जो कुछ भी अनुचित समझा उसमे काट-छाँट करने मे वे कभी नही हिचके। अपना आदर्श वाल्मीकि को मानकर भी यदि उन्होने सीता-परित्याग-जैसी दारुण घटना का परित्याग कर दिया हो तब अपनी भावना के प्रतिकूल लगने वाले किसी सम्पूर्ण ग्रन्थ को ही यदि उन्होंने उपेक्षित कर दिया हो तो कोई आश्चर्य नही है।

जो हो, इन दोनों ग्रन्थो का तुलनात्मक अध्ययन करने के उद्देश्य से इस शोध-प्रबन्ध का प्रणयन किया गया है। मूल-रूप मे प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध ग्यारह अध्यायो मे विभक्त था।

प्रथम अध्याय मे, विषय-प्रवेश और प्रस्तावना थी। इसमें शोध-कार्य की आवश्यकता एव शोध-प्रबन्ध का सक्षिप्त परिचय दिया गया था।

द्वितीय अध्याय मे, पौराणिक-काव्य का सामान्य विवेचन किया गया था। चरित-काव्यो और पौराणिक-काव्यो के अन्तर पर विचार किया गया था। इस प्रसंग मे 'हिन्दी-साहित्य-कोष' के 'पौराणिक-काव्यों के विवेचन' पर अपना वैमत्य प्रकट किया गया था। सस्कृत पौराणिक-काव्यो की परपरा एव उनकी सामान्य विशेषताएँ बताई गयी थी तथा हिन्दी पौराणिक काव्यो पर उनके प्रभाव की विवेचना की गयी थी।

तृतीय अध्याय मे, आचार्य रविषेण के जीवन, काल, कृतित्व एव व्यक्तित्व पर प्रकाश डाला गया था। इस प्रसग मे रविषेण के 'लोकशास्त्रकाव्याद्यवेक्षण' पर विचार किया गया था जिसमे उनके स्फीत अध्ययन का विशद परिचय दिया गया था। रविषेण अपने आस-पास हुए गद्य-सम्राट् बाण और कालिदास से पर्याप्त प्रभावित थे जिसका परिचय उनके ग्रन्थो को देखने से मिल जाता है। इस प्रभाव को पुष्ट करने के लिए एक विशद सूची दी गयी थी जिसमे बाण, कालिदास तथा अन्य कवियो के ग्रन्थो से तुलनात्मक उद्धरण दिये गये थे। 'पद्मपुराण' का एक विवेचनात्मक परिचय प्रस्तुत किया गया था। उसकी प्राप्त प्रतियो, कथासार

एव काव्य-स्वरूप आदि पर विचार किया गया था। प्राकृतकवि विमलसूरि के 'पउमचरिय', अपभ्रंश-कवि स्वयम्भू के 'पउमचरिउ' और सस्कृत-कवि आचार्य रविषेण के 'पद्मचरित' (पद्मपुराण) की तुलनात्मक दृष्टि से सक्षिप्त चर्चा एव 'पद्मचरित' तथा 'पउमचरिय' के पौर्वापर्य पर उहापोह की गयी थी। जैन रामकथा के स्रोतो पर विचार करते समय विमलसूरि और गुणभद्र की परम्पराओ का निर्देश किया गया था। जैन एव जैनेतर शास्त्रो, विशेष रूप से वाल्मीकि रामायण का, 'पद्मपुराण' पर प्रभाव कहाँ तक पड़ा है—यह विस्तार से दिखलाया गया था।

चतुर्थ अध्ययाय मे, रामकाव्य-परम्परा एव तुलसी से पूर्व हिन्दी-राम-काव्य का विस्तृत परिचय दिया गया था। तुलसी के जीवन और कृतित्व का परिचय देते हुए 'रामचरितमानस' मे उनके काव्य-कौशल की एक झाँकी प्रस्तुत की गयी थी।

पचम अध्याय मे, आचार्य रविषेण तथा तुलसी के समय की परिस्थितियो का तुलनात्मक विवेचन किया गया था। दोनो कवियो ने जिन परिस्थितियो मे अपनी रचनाओ का प्रणयन किया वे उनके अनुकूल थी या प्रतिकूल—इस प्रश्न की मीमासा की गयी थी।

षष्ठ अध्याय मे, 'पद्मपुराण' और 'मानस' की कथावस्तु के साम्य और वैषम्य की समीक्षा की गयी थी। तुलसी और रविषेण मे से कथा के मर्मस्पर्शी स्थलो को किसने अधिक पहचाना और किस रूप मे चित्रित किया—यह दिखाते हुए 'पद्मपुराण' और 'रामचरितमानस' के उपाख्यानो पर विचार के साथ यह अध्याय समाप्त किया था।

सप्तम अध्यय मे, 'पद्मपुराण' और 'मानस' के पात्रो और चरित्र-चित्रण पर तुलनात्मक विवेचन प्रस्तुत किया गया था। दोनो ग्रन्थो मे आये हुए पात्रो के चरित्र का तुलनात्मक विश्लेषण तो किया ही गया था, ऐसे पात्रो की भी एक विशद सूची दी गयी थी जो दोनो रचनाओ मे समान न होकर एक (पद्मपुराण) मे ही विशेष रूप से आये है। इस विशद सूची को अकारादिक क्रम से पर्व की सख्या के निर्देश के साथ प्रस्तुत किया गया था।

अष्टम अध्याय मे, 'पद्मपुराण' और 'मानस' के भावपक्ष पर विचार किया गया था। विभाव-अनुभाव-सचारी की योजना मे दोनो कवियो को कहाँ तक सफलता मिली है, कल्पना का दोनो ने किस प्रकार उपयोग किया है, एव विचार-तत्त्व दोनों के ग्रन्थो में कैसा है, इसका सागोपाग सप्रमाण विवेचन किया गया था।

नवम अध्याय मे, दोनो कृतियो के कलापक्ष पर विचार किया गया था। दोनो

की शैलियों पर प्रकाश डाला गया था। दोनो की भाषा, छन्द, अलंकार, गुण, रीति, वृत्ति, दोप, सवाद, प्रकृति-चित्रण एव वर्णन-कौशल पर विचार किया गया था। दोनो कवियो की अभिव्यजना-शैली के युक्तायुक्तत्त्व का निर्णय किया गया था। इस अध्याय मे सबसे विशिष्ट पद्मपुराण के वर्णनो की विशद सूची थी जिसमे लगभग ढाई सौ वर्णनो का वर्गीकरण किया गया था।

दशम अध्याय मे, दोनो कृतियो की सास्कृतिक तथा धार्मिक दृष्टि से तुलना प्रस्तुत की गयी थी। 'पद्मपुराण' तत्कालीन सस्कृति का अत्यन्त व्यापक परिचय देता है। गुप्तकाल एव गुप्तकालोत्तर भारतीय सस्कृति का ऐसा विशद परिचय बाण के बाद सम्भवत रविषेण ही देते है। इस ग्रथ पर सास्कृतिक परिचय के दृष्टिकोण से स्वतन्त्र कार्य किया जा सकता है जो कि आवश्यक भी है। तुलसी के 'मानस' मे यद्यपि आदर्श सस्कृति ही चित्रित है तथापि लोक-सस्कृति के भी पर्याप्त सकेत वहाँ मिल जाते है। दोनो ग्रन्थो का इस दृष्टि से ससदर्भ परिचय दिया गया था।

एकादश अध्याय मे, 'मानस' पर 'पद्मपुराण' के प्रभाव की चर्चा की गयी थी, एव 'पद्मपुराण' और 'मानस' का रामकाव्य परम्परा मे स्थान-निर्धारण किया गया था। 'पद्मपुराण' के 'मानस' पर प्रभाव की चर्चा करते समय यह दिखाया गया था कि 'पद्मपुराण' का 'मानस' पर यथा व्यवस्थित एव साग्रह प्रभाव बिलकुल नही पडा है। हाँ, यदि कही तुलनात्मक उक्तियाँ दोनों ग्रन्थो में आ गयी है तो उनका या तो मूल स्रोत कोई तीसरा ग्रंथ है अथवा तुलली की मधुकरी वृत्ति का परिणाम जिसके कारण उन्होने सुभाषित-चयन किया होगा। ऐसी तुलनात्मक उक्तियो की एक विशद सूची दी गयी थी। हो सकता है कि ये घुणाक्षर-न्याय से ही सिद्ध हो।

इस प्रकार इन दोनो रचनाओ के साहित्यिक मूल्यांकन का यथामति प्रयास किया गया था। इस प्रयास मे इस बात का ध्यान रखा गया था कि इन दोनो कृतियो का साहित्यिक सौन्दर्य पूर्ण रूप से उजागर हो जाय। संस्कृत-उद्धरण देते समय उनके हिन्दी अर्थ को कलेवर-स्फीति के भय से नही दिया गया था, इस आशा से कि सुधी सहृदय मूल उद्धरणो मे ही आनन्द ग्रहण कर लेगे।

प्रस्तुत शोधप्रबन्ध १९६६ मे आगरा विश्वविद्यालय मे प्रस्तुत किया गया था जिस पर १९६७ मे पी-एच. डी. की उपाधि दी गयी थी।

अब, जब कि शोधप्रबन्ध के प्रस्तुतीकरण के लगभग आठ वर्ष बाद इसके मुद्रण की बात बनी तब यह उचित प्रतीत हुआ कि इसमे से उस अश की छँटनी कर दी जाय जो किसी भी रूप मे अनावश्यक या अमौलिक, कहा जा सकता था;

उदाहरणार्थ मूल शोध-प्रबन्ध के चतुर्थ अध्याय के अन्तर्गत आने वाली तुलसी-सम्बद्ध सामग्री तथा अगले अध्यायों में समागत तुलसी के रामचरितमानस से सम्बद्ध सामग्री। इस सामग्री को शोध-प्रक्रिया के 'पुनराख्यान' अग के अन्तर्गत रखना आवश्यक था किन्तु अब केवल तुलनापरक अश को पुनर्व्यवस्थित करके "पद्मपुराण और रामचरितमानस" नामक एक ही अध्याय में समाविष्ट कर दिया गया है। तुलसी के विषय मे तो कितने ही विद्वान् लेखनी चला चुके हैं, किन्तु रविषेण पर इस शोधप्रबन्ध से पहले नही के बराबर ही लिखा गया था; अत रविषेण सम्बन्धी सामग्री को पाठको के सम्मुख लाने की लालसा अधिक बलवती रही अपेक्षाकृत अपनी सञ्चयवृत्ति को प्रदर्शित करने के। अत अब प्रथम अध्याय मे पौराणिक काव्य का सामान्य विवेचन तथा सस्कृत पौराणिक काव्यो की परम्परा एवं सामान्य विशेषताएँ, द्वितीय अध्याय मे आचार्य रविषेण का जीवन-परिचय एव कृतित्व, तृतीय अध्याय मे रविषेण के समय की परिस्थितियो का परिचय, चतुर्थ अध्याय मे 'पद्मपुराण' की विषयवस्तु का परिचय, पञ्चम अध्याय मे 'पद्मपुराण' के पात्रो के चरित्र-चित्रण का विवेचन, षष्ठ अध्याय मे 'पद्मपुराण' के भावपक्ष पर विचार, सप्तम अध्याय मे 'पद्मपुराण' के कला-पक्ष पर विचार, अष्टम अध्याय मे 'पद्मपुराण' मे जैन धर्म-दर्शन पर विचार, नवम अध्याय में पद्मपुराण मे सस्कृति पर विचार, दशम अध्याय मे जैन-रामकाव्य-परम्परा मे 'पद्मपुराण' का स्थान-निर्धारण एवं एकादश अध्याय मे 'पद्मपुराण और रामचरितमानस' का विविध दृष्टियों से तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। एकादश अध्याय मे प्रसक्तानुप्रसक्तया तुलसी से पूर्व रामकाव्य-परम्परा का सर्वेक्षणात्मक परिचय, तुलसी के रामचरितमानस का प्रकृतोपयोगी परिचय, पद्मपुराण और मानस की परिस्थिति, विषयवस्तु, पात्रो के चरित्र-चित्रण, भावपक्ष, कलापक्ष, धर्म एव सस्कृति की दृष्टि से तुलना एव 'रामचरितमानस' पर 'पद्मपुराण' के प्रभाव की चर्चा की गयी है।

परिशिष्ट (१) मे पद्मपुराण की सूक्तियो की सूची दी गयी है जो रविषेण के सुभाषितो पर कार्य करने की इच्छा वाले व्यक्तियो के विशेष प्रयोजन की है। परिशिष्ट (२) मे पद्मपुराण की प्रमुख वशावलियाँ दी गयी है जो जैन-रामकाव्य-परम्परा के अन्य ग्रन्थो मे समागत वशावलियो के साथ रविषेण के ग्रन्थ की वशावलियो की तुलना मे सहायक हो सकती हैं। परिशिष्ट (३) मे सकेतिक ग्रन्थ-सूची दी गयी है। विचार तो परिशिष्ट (४) मे शोध-प्रबन्धान्तर्गत समागत व्यक्ति-वाचक संज्ञाशब्दानुक्रमणी देने का भी था किन्तु ग्रन्थ की कलेवरवृद्धि के भय से ऐसा नही किया जा सका।

प्रस्तुत ग्रन्थ के पाठक, निस्सन्देह, एम. ए. या पी-एच. डी. स्तर के आस-पास के होगे। ऐसे सुधी पाठको के लिए सस्कृत उद्धरणो का हिन्दी अनुवाद देना मैंने अनावश्यक समझा है। इसी प्रकार काव्याङ्गो के उदाहरण देते समय काव्याङ्गो का विवेचनात्मक परिचय नही दिया इसी विश्वास के कारण कि कम-से-कम ये विद्वान् पाठक सम्बद्ध काव्याङ्ग की परिभाषा से तो परिचित होगे ही। जिस उत्खात सामग्री का मैंने प्रस्तुतीकरण किया है, उसमें शायद भावी शोध को भी कुछ दिशाएँ मिल सकें। उदाहरण के लिए--'रविषेण की उपमा' 'रविषेण के रूपक', 'रविषेण की उत्प्रेक्षाएँ' तथा 'रविषेण के वर्णन' आदि स्वतन्त्र शोध के विषय प्रस्तुत ग्रन्थ से अवश्य कुछ-न-कुछ सहायता पा सकते है। रामचरितमानस के 'दसानन', 'सूर्पनखा' आदि शब्दो को विवेचन के समय 'दशानन', 'शूर्पनखा' आदि लिख दिया गया है।

प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध अग्रजकल्प डॉ० ओमप्रकाश जी दीक्षित एम. ए (हिन्दी-सस्कृत पी-एच डी, शास्त्री (रीडर तथा अध्यक्ष हिन्दी-विभाग, जे वी. जैन कालेज, सहारनपुर) के निर्देशन मे सम्पन्न हुआ था। डॉ० दीक्षित ने जैन-साहित्य-सम्बन्धी शोध को एक नवीन दिशा दी है। जैन-रामकाव्य और कृष्णकाव्य का जैनेतर (ब्राह्मण या वैष्णव) रामकाव्य और कृष्णकाव्य के साथ तुलनात्मक अध्ययन करना और कराना डॉ० दीक्षित के शोध-जीवन का बहुमूल्य प्रसग है। स्वयंभू के 'पउमचरिउ' और तुलसी के 'मानस' पर उन्होने स्वत: कार्य किया था और रविषेण के 'पद्मचरित' पर मुझे कार्य करने की प्रेरणा दी। उनके कार्य के बाद तो अनेक विश्वविद्यालयो मे **'पउमचरिय'**, **'पद्मचरित'** और **'पउमचरिउ'** के पात्रों, कथानक तथा अन्य पहलुओ पर शोध-विषय स्वीकृत हुए। जैन-रामकाव्य के महनीय ग्रन्थो के साथ 'रामचरितमानस' के तुलनात्मक अध्ययनो के निर्देशन के अतिरिक्त डॉ० दीक्षित जैन कृष्णकाव्य-परम्परा के महार्घ रत्न 'हरिवश-पुराण' और हिन्दी कृष्णकाव्य परम्परा के महान् ग्रन्थ 'सूरसागर' के तुलनात्मक अध्ययन का, मेरठ विश्वविद्यालय में, निर्देशन कर रहे हैं। यह अध्ययन मेरे अनुज चि० श्री विष्णुकान्त शुक्ल एम. ए (हिन्दी-संस्कृत), साहित्याचार्य, प्राव्यापक, हिन्दी-विभाग, जे. वी. जैन कालेज, सहारनपुर द्वारा किया जा रहा है जो शीघ्र ही विद्वानो के सम्मुख प्रस्तुत होने वाला है। शोध-ग्रन्थ के प्रकाशन के अवसर पर मैं डॉ दीक्षित के सौहार्द एव पाण्डित्य के प्रति आभार प्रकट करता हूँ।

प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध के लिखने मे अपने निर्देशक के अतिरिक्त डॉ० ए. एन. उपाध्ये, एम. ए. डी लिट (कोल्हापुर), डॉ० अगरचन्द नाहटा (बीकानेर), महामहोपाध्याय विनयसागर जी (जोधपुर), डॉ० ज्योतिप्रसाद जैन (लखनऊ),

एवं स्व० प्रोफेसर एमरिटस, डॉ० एस. एस. कुलश्रेष्ठ, एम. ए., पी-एच डी , एल-एल. बी (मोदीनगर) आदि विभूतियो का वैचारिक सौहार्द प्राप्त हुआ है। इनके अतिरिक्त, इसके लेखन और प्रकाशन मे हमारे अग्रजद्वय प्रो० कृष्णकान्त शुक्ल (सस्कृत-विभाग, बरेली कालेज, बरेली) तथा प्रो० उमाकान्त शुक्ल (संस्कृत-विभाग, एस डी. कालेज, मुजफ्फरनगर), सुहृद्वर श्री सुलेखचन्द्र शर्मा (हिन्दी-विभाग, देशबन्धु कालेज (सान्ध्य), दिल्ली), सुख-दु ख के समान साथी, प्रियवर 'राज', जिनके विषय में कुछ भी लिखना थोड़ा है, ऐसी हमारी अन्वर्थनाम्नी अर्द्धाङ्गिनी श्रीमती रमा शुक्ला एव आत्मजद्वय चि० चन्द्रमौलि शुक्ल और चि० अनुपम शुक्ल जिन्हे बचपन मे प्यार से क्रमश. 'कुट्टी' और 'बम्बू' कहा, जाता रहा है—किसी न किसी रूप मे सहायक रहे है। इन सबके प्रति अपनी यथोचित मनोभावनाएँ प्रकाशित करने के लिए अपनी झोली मे शब्द नही पा रहा।

अध्ययन और साधना के प्रतीक एव गुणज्ञता के आगार डा० नगेन्द्र ने 'दो शब्द' लिखकर इस ग्रन्थ को गौरवान्वित करने की जो कृपा की है, वह 'वाचामगोचर' है। ग्रन्थ के विषय मे, डा० विजयेन्द्र स्नातक (प्रोफेसर तथा अध्यक्ष-हिन्दी-विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय) की सम्मति ने भी 'अश्मापि याति देवत्वं महद्भि. सप्रतिष्ठित.' वाली कहावत को चरितार्थ किया है।

वाणी-परिषद्, दिल्ली ने इस ग्रन्थ को **'आचार्य श्री ब्रह्मानन्द शुक्ल-ग्रन्थमाला'** के प्रथम पुष्प के रूप में प्रकाशित करना स्वीकार किया है, एतदर्थ उसके प्रति कृतज्ञ हूँ।

ग्रन्थ मे छापे की इक्का-दुक्का भूल रह गयी हैं। पृष्ठ ५८ पर पुष्पदन्तकृत 'तिसट्ठीमहापुरिसगुणालकारु' प्रमाद से 'अपभ्रंश' के स्थान पर 'प्राकृत' की रचना छप गया है। आशा है, कृपालु पाठक इन भूलों को सुधार लेंगे—"गुणदोष-समाहारे गुणान् गृह्णन्ति साधव ।"

२७-५-१९७४
आर ६, वाणी-विहार
नयी दिल्ली-११००१८

विद्वज्जनकृपाकाक्षी :
—रमाकान्त शुक्ल

प्रथम अध्याय

पौराणिक काव्य : स्वरूप और परम्परा

काव्य के अनेकानेक भेद हुए हैं और होते जा रहे हैं। 'पौराणिक-काव्य' भी उनमे अन्यतम है। पद्यात्मक श्रव्य-काव्य के दो भेद है—प्रबन्ध और मुक्तक। प्रबन्ध के महाकाव्य और खण्ड-काव्य भेद होते है।

'हिन्दी-साहित्य-कोश' के अनुसार पौराणिक-काव्य का परिचय इस प्रकार है :—

"महाकाव्य मुख्यत दो प्रकार के होते है—(१) साहित्यिक परम्परा मे विकसित और (२) लोक-कण्ठ मे रहकर विकसित लोक-महाकाव्य।

अलंकृत महाकाव्य की मुख्यत निम्नलिखित शैलियाँ है (१) शास्त्रीय, (२) रोमासिक, (३) ऐतिहासिक, (४) पौराणिक, (५) रूपक-कथात्मक, (६) नाटकीय, (७) प्रगीतात्मक, (८) मनोवैज्ञानिक या मनोविश्लेषणात्मक। पौराणिक शैली के महाकाव्य का उदाहरण 'रामचरितमानस' आदि है।[1]

जिस प्रकार महाकाव्य 'पौराणिक शैली' के भी होते है, उसी प्रकार चरित-काव्य भी 'पौराणिक-शैली' के पाये जाते है।[2] शैली की दृष्टि से चरितकाव्य का वर्गीकरण इस प्रकार किया गया है—(१) पौराणिक-शैली के चरित-काव्य—'पद्मचरित', 'पार्श्वनाथचरित', 'पउमचरिय', 'पउमचरिउ', 'महापुराण', 'पास-पुराण', 'त्रिषष्टि-शलाकापुरुषचरित' आदि। (२) ऐतिहासिक-शैली के चरित-काव्य—'पृथ्वीराजविजय', 'विक्रमाकदेवचरित', 'राजतरगिणी', 'कुमारपाल-चरित', 'हम्मीरमहाकाव्य', 'गउडवहो' आदि। (३) रोमासिक शैली के चरित-

---

१ हिन्दी-साहित्य-कोश, भाग—१, पृ० ६२८

२ वही, पृ० ३१५-१६

काव्य—'नवसाहसाकचरित' 'चन्द्रप्रभचरित', 'शान्तिनाथचरित', 'मलयसुन्दरी-कहा', 'अजनासुन्दरीचरिय', 'भविसयत्तकहा', 'करकण्डुचरिउ', 'जसहरचरिउ' आदि।

उद्देश्य और विषयवस्तु की दृष्टि से चरित-काव्य छ प्रकार के होते है—(१) धार्मिक-पौराणिक, (२) प्रतीकात्मक, (३) वीरगाथात्मक, (४) प्रेमाख्यानक, (५) प्रशस्तिमूलक, (६) लोकगाथात्मक। इनमे—धार्मिक, पौराणिक, चरित-काव्य के उदाहरण है—'रामचरितमानस' 'कृष्णचन्द्रिका', 'दशावतार' आदि।"[३]

'हिन्दी-साहित्य-कोश' मे प्राप्त पौराणिक-काव्य का विवेचन पर्याप्त उलझा हुआ है। उससे कोई भी स्पष्ट निर्णय हमारे समक्ष नही आता। पृ० ४९६ पर 'पुराण-काव्य' के आगे लिखा हुआ है—'दे० 'चरितकाव्य', 'कथाकाव्य' 'महाकाव्य।' पृष्ठ ६२८ पर 'महाकाव्य' के विवेचन मे अलकृत महाकाव्य की छ शैलियो मे एक पौराणिक भी बताई गई है जिसका उदाहरण 'रामचरितमानस' बताया गया है। पृष्ठ ३१६ पर उद्देश्य या विषयवस्तु की दृष्टि से 'चरितकाव्य' के छ प्रकारो मे धार्मिक प्रकार को अन्यतम बताया गया है जिसका उदाहरण 'धार्मिक-पौराणिक' कहकर 'रामचरितमानस' को बताया गया है। ऐसी अवस्था मे 'रामचरितमानस' को 'चरितकाव्य' माना जाय अथवा 'महाकाव्य'?—यह प्रश्न लटकता ही रह जाता है। यदि 'रामचरितमानस' दोनों ही प्रकारो का प्रतिनिधित्व करता है तो 'महाकाव्य' और 'चरितकाव्य' का स्पष्ट भेद करना चाहिए जोकि नही किया गया है। केवल इतना कह देने से कोई तात्त्विक परितोष नही होता—'चरितकाव्य प्रवन्धकाव्य का ही एक विशेष रूप या प्रकार है।'[४] और भी—प्रबन्धकाव्य के भेदो मे 'चरित-काव्य' भेद स्वीकार ही नही किया गया है। साथ ही एक ओर तो यह कहा गया है कि काव्य-पौराणिक नही होता बल्कि उसकी शैली पौराणिक होती है,[५] और दूसरी ओर उद्देश्य या विषयवस्तु की दृष्टि से छ भागो मे विभक्त कर 'धार्मिक-पौराणिक' चरित-काव्य का उदाहरण 'रामचरितमानस' प्रस्तुत किया गया है।

एक समस्या और है। पृ० ३१५ पर 'पौराणिक शैली' के चरितकाव्य के उदाहरण ये दिये गये है—'पद्मचरित', पार्श्वनाथ-चरित', 'पउमचरिय', 'पउमचरिउ', 'महापुराण', 'त्रिपष्टिशलाकापुरुषचरित' आदि। पृ० ३१६ पर प्रवन्धकाव्य के मुख्यत दो रूपो—शास्त्रीय प्रबन्धकाव्य और चरितकाव्य का उल्लेख करके 'चरित-

---

३ वही, पृ० ३५६

४ वही, पृ० ३१५

५ वही, पृ० ३१५

काव्य' के ये लक्षण बताये गये है—

(१) 'चरितकाव्य' की शैली जीवनचरित की शैली होती है। उसमे प्रारम्भ मे या तो ऐतिहासिक ढग से नायक के पूर्वज, माता-पिता और वश का वर्णन रहता है या पौराणिक ढग से उसके पूर्व भावो (भवो ?) का वृत्तान्त तथा उसके जन्म के कारणो का वर्णन होता है अथवा कथाकाव्य की तरह उसके माता-पिता, देश और नगर का वर्णन रहता है। उसमे चरितनायक के जन्म से लेकर मृत्युपर्यन्त तक की अथवा कई जन्मो (भवान्तरो) की कथा होती है। उसमे शास्त्रीय प्रबन्धकाव्यो की तरह महत्त्वपूर्ण और कलात्मकता उत्पन्न करने वाली मुख्य घटनाओ का चुनाव और वर्णनात्मक अगो की अधिकता नही होती। अतः वह कथात्मक अधिक और वर्णनात्मक कम होता है। चरितकाव्य का कवि कथा को छोड़कर वस्तुवर्णन या प्रकृति-चित्रण मे अधिक देर तक नहीं उलझता। इसी कारण वह कथाकाव्य के अधिक निकट तथा शास्त्रीय प्रबन्ध काव्यो की अपेक्षा अधिक स्वाभाविक, सरल और लोकोन्मुख होता है।

(२) चरितकाव्य मे प्राय प्रेम, वीरता और धर्म या वैराग्यभावना का समन्वय दिखलाई पडता है। सब मे कोई न कोई प्रेमकथा अवश्य होती है और उनका स्थान, गौण नही, महत्त्वपूर्ण होता है। उसमे पौराणिक कथानक मे भी प्रेमाख्यानक रग भरने का प्रयत्न दिखाई पडता है। प्राय सभी चरित्रकाव्यो मे प्रेम का प्रारम्भ समान रूप मे स्वप्न-दर्शन, गुणश्रवण, चित्रदर्शन या प्रथम साक्षात्कार द्वारा होता है। विवाह के पहले या बाद मे नायक-नायिका के मार्ग मे अनेक विघ्न-बाधाएँ आती है, युद्ध करने पडते हैं और अन्त मे उनका मिलन होता है। जैन चरितकाव्यो मे प्राय अन्त मे नायक किसी प्रेरणा या उपदेश से ससार से विरक्त होकर जैन मुनि बन जाता है।

(३) प्राय सभी चरित-काव्यो मे कथारम्भ के लिए वक्ता-श्रोता योजना अवश्य होती है। यह प्रश्नोत्तर-योजना इतने रूपो मे मिलती है—(क) धर्मगुरु और शिष्य, पौराणिक कथाविद् और भक्त-जन, अथवा श्रावक और श्रोता के बीच, (ख) शुक-शुकी, शुक-सारिका, भृ ग-भृ गी अथवा किसी वक्ता पक्षी और मानव श्रोता के बीच, (ग) कवि और कविपत्नी या कवि और उसके शिष्य के बीच।

(४) उनमे अलौकिक, अतिप्राकृत और अतिमानवीय शक्तियो, कार्यो और वस्तुओं का समावेश अवश्य रहता है, जो पौराणिक और रोमासिक शैली के कथा-काव्यो, पौराणिक-कथाओ और लोक-कथाओं की देन है। इस कारण उसमे साहस-पूर्ण, आश्चर्योत्पादक और रोमासिक कार्यो तथा तत्त्वो की अधिकता होती है और उन सभी कथानक-रूढियो की भरमार होती है जो लोककथा और कथा-आख्या-

यिका मे बहुत अधिक मिलती है ।

(५) उनका कथानक शास्त्रीय प्रबन्धकाव्यो जैसा पचसन्धियो से युक्त और कार्यान्विति वाला नही होता, वह कथाकाव्य की तरह स्फीत, विश्रृखल, गुम्फित या जटिल होता है ।

(६) उसकी शैली कथाकाव्यो से अधिक उदात्त होती है, पर शास्त्रीय प्रवन्ध-काव्यो जैसी अतिशय अलकृत, चमत्कारपूर्ण या पाण्डित्य-प्रदर्शन की प्रवृत्ति से युक्त नही होती, जिससे उसमे अधिक सरलता, सादगी और सामान्य जनता के लिए पर्याप्त आकर्षण होता है।

(७) चरितकाव्य प्राय उद्देश्यप्रधान होता है, कथाकाव्यो की तरह केवल मनोरजन करना उसका लक्ष्य नही होता। यह उद्देश्य कभी धार्मिक, कभी प्रशस्तिमूलक और कभी लोककल्याणाभिनिवेशी होता है। परन्तु उसका उद्देश्य अधिक उभरा हुआ और स्पष्ट होता है, शास्त्रीय प्रबन्धकाव्यो जैसा कलात्मक सौन्दर्य के भीतर निहित नही होता। इसी कारण चरितकाव्य उपदेशात्मक, प्रचारात्मक या प्रशस्तिमूलक प्रतीत होते है।"

इन लक्षणो मे कुछ की 'पद्मचरित' या 'पद्मपुराण मे अव्याप्ति है। सख्या (१) लक्षण का अन्तिम भाग 'पद्मपुराण' के विषय में उपयुक्त नही है। उसमे वर्णनो की भरमार है। लगभग २५० वर्णन उसमे हैं जिनका उल्लेख हम 'कलापक्ष' के अन्तर्गत करेंगे। इसी प्रकार सख्या (५) लक्षण भी खण्डित हो जाता है क्योकि 'पद्मपुराण' की कथा को भी पचसन्धि समन्वित किया जा सकता है। सख्या (६) का तो उसमे नितान्त विरोध है, उसकी शैली शास्त्रीय प्रबन्धकाव्यो जैसी अतिशय अलकृत चमत्कारपूर्ण एव पाण्डित्य प्रदर्शन वाली है जिसका पता ग्रन्थ को देखने से ही चल सकता है।

इस प्रकार या तो 'पद्मचरित' को **पौराणिक शैली का चरितकाव्य** नही कहना चाहिए अथवा चरितकाव्य की सामान्य विशेषताओ मे सशोधन करना चाहिए।

इसके अतिरिक्त यदि शास्त्रीय प्रवन्धकाव्य के भेद 'महाकाव्य' के लक्षणो पर 'पद्मपुराण' को कसा जाय तो वह उन सभी पर खरा उतरता है।

चरितकाव्य (जिसका एक भेद पौराणिक भी है) की सामान्य प्रवृत्तियाँ अनेक पुराणो मे भी देखी जा सकती हैं। अतः पुराण और पौराणिक-काव्य की सामान्य प्रवृत्तियो मे कोई स्पष्ट भेद दिखायी नही देता।

इस प्रकार 'हिन्दी-साहित्य-कोश' हमे पौराणिक काव्य का कोई निर्भ्रान्त परिचय नही देता। हमे उसका स्पष्ट विवेचन करना है।

हमारे विचार से ऊपर उदाहरणस्वरूप उपस्थापित पौराणिक शैली के चरितकाव्य 'महाकाव्य' ही है। इसके अतिरिक्त खण्डकाव्य मे भी चरितकाव्य के ये भेद हो सकते है, अत इनका वर्गीकरण इस प्रकार होना चाहिए--
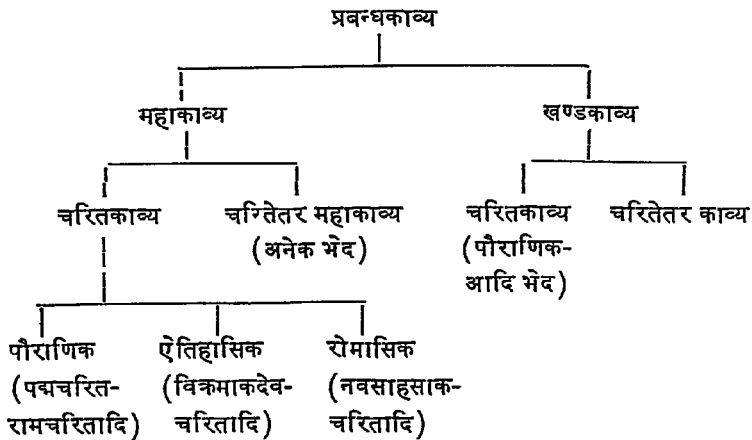
इस प्रकार 'पौराणिक काव्य' प्रवन्धकाव्य के दोनो ही भेद हो सकते है-- 'महाकाव्य' भी और 'खण्डकाव्य' भी। पौराणिक महाकाव्यो मे महाकाव्य के समस्त तत्त्व पौराणिक आवरण मे रहते है और पौराणिक खण्डकाव्यो मे खण्ड-काव्य के समस्त तत्त्व पौराणिक आवरण मे रहते है। महाकाव्योचित गरिमा और वर्णन-प्रचुरता आदि पौराणिक चरितकाव्यो मे यथेच्छ हो सकते है। अन्य सभी चरितकाव्यो की विशेषताएँ इन पौराणिक चरितकाव्यो मे ऊपर के अनुसार ही जानी जा सकती है। हमारे आलोच्य ग्रन्थ—'पद्मपुराण' और 'रामचरितमानस' **'महाकाव्य के पौराणिक चरितकाव्य'** भेद के उदाहरण है।

सस्कृत के पौराणिक काव्यो की परम्परा 'वाल्मीकीय रामायण' से ही मानी जा सकती है। 'श्रीमद्भागवत' भी पौराणिक काव्य ही है। किन्तु जैन साहित्य मे पौराणिक काव्यो की अधिक रचना हुई। क्या प्राकृत, क्या अपभ्रंश और क्या सस्कृत—सभी मे पौराणिक चरितकाव्यो की बाढ़ सी आ गई। इसके अतिरिक्त अन्य अनेक जैनेतर कवियो ने भी पौराणिक काव्यो की रचना की है। इनका परिचय प्रस्तुत है—

'पद्मपुराण' या 'पद्मचरित'—आचार्य रविषेणकृत 'पद्मचरित' या 'पद्मपुराण' पौराणिक काव्य का सुन्दर उदाहरण है। इसकी रचना ६७७-७८ ई० मे हुई है।

इममे पद्म (राम) का चरित निबद्ध है। रामायण की असम्भव प्रतीत होने वाली घटनाओ की बौद्धिक व्याख्या यहाँ प्रस्तुत की गयी है।

इसी ग्रन्थ का अध्ययन हमारा विषय है जिसका पूर्ण परिचय आगामी अनेक अध्यायो मे दिया जायेगा।

'रामचरित'—यह अभिनन्दकृत माना जाता है। अभिनन्द नवी शताब्दी विक्रमी के मध्यकाल मे ठहरते है। इनके पूर्वज मूलत गौड (बगाल) देश के निवासी थे। बाद मे वे काश्मीर आकर बस गये थे। इनके पिता का नाम जयन्त भट्ट था।

रामचरित मे ३३ सर्ग है जिनमे रामायण के किष्किन्धाकाण्ड से युद्धकाण्ड तक का कथानक आ जाता है। यह ग्रन्थ अधूरा ही है। पूर्ति के लिए अन्त मे चार-चार सर्गो के दो परिशिष्ट है। एक अभिनन्दकृत है और दूसरा किसी भीम नामक कवि के द्वारा रचित है। इस काव्य की शैली, शुद्ध वैदर्भी है। ऋतु तथा प्रकृति के वर्णन अत्यन्त सुन्दर है। अभिनन्द का अनुष्टुप्-रचना पर पूर्णाधिकार है।

'दशावतारचरित'—इस पौराणिक चरित काव्य के रचयिता काश्मीरी कवि क्षेमेन्द्र है। ये १०६६ ई० के आसपास विद्यमान थे। ये प्रकाशेन्द्र के पुत्र और साहित्यशास्त्र मे अभिनवगुप्त के शिष्य थे। सस्कृत महाकवियो मे इनकी प्रतिभा अलौकिक थी। तत्कालीन काश्मीरनरेश अनन्त और उनके पुत्र कलश के युग मे निराशा और षड्यन्त्रो का बोलबाला था। क्षेमेन्द्र के पूर्वपुरुष अमात्य होते थे, परन्तु इस कवि ने परिस्थिति को सुधारने के लिए राज्याश्रय को न अपनाकर काव्य का ही सहारा लिया। इन्होने काव्य के नाना अगो की रचना की है। इन्होने 'व्यासजी' को अपना आदर्श बनाया था। इनकी रचनाओ मे 'कलाविलास', 'चतुर्वर्गसग्रह', 'चारुचर्या', 'नीतिकल्पतरु', 'समय-मातृका', 'सेव्यसेवकोपदेश', 'रामायणमजरी' और 'भारतमजरी' आदि उल्लेखनीय है।

दशावतार उनकी अन्तिम रचना है। इसमे विष्णु के दशावतारो का बडा ही रोचक तथा विस्तृत वर्णन किया गया है। इसकी भाषा अत्यन्त मधुर, सरल और सुबोध है। अरण्यवास का यह वर्णन कितना सुन्दर है .

"दयितजनवियोगोद्वेगरोगातुराणा
विभवविरहदैन्यम्लानमानाननानाम्।
शमयति शितशल्य हन्त नैराश्यनश्य-
द्भवपरिभवतान्ति. शान्तिरन्ते वनान्ते ॥"

'आदिपुराण' और 'उत्तरपुराण'—'जिनसेन स्वामी ने समस्त (तिरसठ)

शलाकापुरुषो का चरित्र लिखने की इच्छा से महापुराण का प्रारभ किया था परन्तु बीच मे ही शरीरान्त हो जाने से उनकी वह इच्छा पूरी न हो सकी और महापुराण अधूरा ही रह गया, जिसे पीछे उनके शिष्य गुणभद्राचार्य ने पूरा किया। महापुराण के दो भाग है—'आदिपुराण' और 'उत्तरपुराण'। आदिपुराण मे प्रथम तीर्थकर आदिनाथ या ऋषभदेव का चरित है और 'उत्तरपुराण' मे शेष तेईस तीर्थकरो और अन्य शलाकापुरुषो का। आदिपुराण मे बारह हजार श्लोक और सैंतालीस पर्व या अध्याय है। इनमे से बयालीस पर्व पूरे और तैंतालीसवे पर्व के तीन श्लोक जिनसेन के और शेष चार पर्वो के सोलह सौ बीस श्लोक उनके शिष्य के है। इस तरह आदिपुराण के १०३८० श्लोको के कर्त्ता जिनसेन स्वामी है। इनकी प्रशसा मे कहा गया है

"सकलच्छन्दोऽलकृतिलक्ष्य सूक्ष्मार्थगूढपदरचनम्।
व्यावर्णनोरुसार साक्षात्कृतसर्वशास्त्रसद्भावम्॥
अपहस्तितान्यकाव्य श्रव्य व्युत्पन्नमतिभिरादेयम्।
जिनसेनभगवतोक्त मिथ्याकविदर्पदलनमतिललितम्॥

० ० ०

यथा महार्घ्यरत्नाना प्रसूतिर्मकरालयात्।
तथैव सूक्तिरत्नाना प्रभवोऽस्मात्पुराणत॥
सुदुर्लभ यदन्यत्र चिरादपि सुभाषितम्।
सुलभ स्वैरसग्राह्य तदिहास्ति पदे-पदे॥"

जिनसेन और दशरथ गुरु के शिष्य गुणभद्रस्वामी भी बहुत बडे ग्रन्थकर्त्ता हुए। जैसा कि पहले कहा जा चुका है इन्होने आदिपुराण के अन्त के १६२० श्लोक रचकर उसे पूरा किया और फिर उसके उत्तरपुराण की रचना की जिसका परिमाण आठ हजार श्लोक है। जिस ढग से महापुराण प्रारम्भ किया गया था और जितना विस्तार उसके प्रथम अश आदिपुराण का है, यदि वही ढग आगे भी अपनाया जाता तो यह ग्रन्थ महाभारत जैसा विशाल होता और भगवज्जिनसेन की इच्छा भी शायद यही थी, परन्तु गुणभद्र ने अतिशय विस्तार के भय से और हीनकाल के अनुरोध से इसे थोडे मे ही समाप्त करना उचित समझा और इस तरह केवल आठ हजार श्लोको मे ही शेष तेईस तीर्थकरो और अन्य महापुरुषो का चरित्र लिख डाला और गुरु के प्रति अपने कर्त्तव्य का पालन किया—

"अतिविस्तरभीरुत्वादवशिष्ट सग्रहीतममलधिया।
गुणभद्रसूरिणेद प्रहीणकालानुरोधेन॥"[६]

---

६ उत्तर पुराण, प्र० २०

'उत्तरपुराण' यद्यपि सक्षिप्त है, उसमे कथा भाग की अधिकता है, फिर भी उसमे कवित्व की कमी नही है और वह सब तरह से जिनसेन के शिष्य के अनुरूप है।

उक्त प्रमुख पौराणिक काव्यो के अतिरिक्त सस्कृत मे द्वितीय जिनसेन का 'हरिवशपुराण,' 'पार्श्वनाथ चरित,' 'वर्द्धमानपुराण,' 'त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित,' आदि अनेक पौराणिक काव्य मिलते है जिनका पूर्ण परिचय न देकर हमने सकेत ही कर दिया है क्योकि 'प्रकृतानुसरण' का यही अनुरोध है।

सस्कृत के पौराणिक काव्यो का अनुशीलन करने पर उनकी ये सामान्य विशेषताएँ सामने आती है —

(१) सस्कृत पौराणिक काव्यो मे धार्मिकता और काव्यात्मकता का सामजस्य होता है। एक ओर तो उसमे धर्म के प्रचार की भावना गूढ रहती है और दूसरी ओर ऊँची से ऊँची काव्यप्रतिभा का प्रदर्शन। यही कारण है कि पौराणिक काव्यो मे वर्णन-प्राचुर्य, निपुणता-प्रकाशन एव शास्त्रीय विचारधारा का काव्यात्मक अभिव्यजन रहता है।

(२) सस्कृत पौराणिक काव्यो का प्रारम्भ प्राय. वक्ता और श्रोता के वार्तालाप से होता है। श्रोता अपनी शकाओ को वक्ता के समक्ष रखता है और वक्ता उसका उत्तर देता हुआ काव्य-कथन करता है।

(३) इन काव्यो का प्रधान रस शान्त होता है और अग रूप मे वीर-शृगार सर्वाधिक प्रयुक्त होते है। यही कारण है कि युद्ध एव विलास आदि के बाद पात्रो के वैराग्य का वर्णन होता है। वीर-शृगार के अतिरिक्त अन्य रसो की भी अग रूप से पर्याप्त व्यजना होती है।

(४) इन पौराणिक काव्यो मे आधिकारिक कथा के अतिरिक्त प्रासगिक कथाएँ पर्याप्त रूप मे निबद्ध होती है। आधिकारिक कथा मे किसी अवतार या तीर्थंकर का चरित्र निबद्ध होता है। प्रासगिक कथाओ को उपाख्यान कहा जाता है। इनसे तत्कालीन सामाजिक स्थिति का पर्याप्त ज्ञान होता है।

(५) इन काव्यो मे अलौकिक, अतिप्राकृत तथा अतिमानवीय शक्तियो, कार्यों तथा वस्तुओ का समावेश अवश्य रहता है। यह श्रोताओ की श्रद्धा अर्जन करने का साधन होता हैं।

(६) इन काव्यो मे अपने धर्म की अभिधा और व्यजना से प्रशसा एव परधर्म की गर्हणा होती है। इसीलिए उपदेशात्मक प्रवृत्तियो और सूक्तियो का बाहुल्य रहता है।

(७) प्राय अनुष्टुप् छन्द का प्रधान रूप मे प्रयोग किया जाता है।

(८) कथा-सचालन के लिए 'अथ' और 'तत.' पदो की भरमार रहती है।

(९) कथा-कथन के पूर्व 'अनुक्रमणिका' दी जाती है।

(१०) काव्य के माहात्म्य-कथन तथा अपने धर्मग्रहण के प्रति श्रोता को बद्धपरिकर करने की प्रवृत्ति का इनमे स्पष्ट परिलक्षण होता है।

(११) सृष्टि के विकास, विनाश, वशोत्पत्ति और वंशावलियो का वर्णन रहता है।

(१२) अनेक स्तुतियो की योजना होती है।

सस्कृत के पौराणिक काव्यो के हिन्दी के पौराणिक काव्यो पर प्रभाव की चर्चा करते समय हमारे सामने 'रामचरितमानस' आता है। इसमे सस्कृत पौराणिक काव्य की समस्त प्रवृत्तियाँ दिखाई देती है। इसमे काव्यात्मकता और धार्मिकता का सामजस्य है। जहाँ एक ओर इसमे वैष्णव भक्ति का प्रचार है वहाँ दूसरी ओर काव्यप्रतिभा का प्रदर्शन भी। 'वर्णानामर्थसङ्घाना रसाना छन्दसामपि। मगलानां च कर्त्तारौ वन्दे वाणीविनायकौ' का कथन करने वाले तुलसी की काव्य प्रतिभा अप्रतिम है। इसमे वक्ता और श्रोता की कल्पना है। शिव-पार्वती, याज्ञवल्क्य-भरद्वाज, काक भुशुण्डि तथा गरुड इसके वक्ता श्रोता है। इसका प्रधान रस शान्त या भक्ति हैं, शेष रस अग रूप मे है। इसकी आधिकारिक कथा मे अवतार श्रीराम का चरित निवद्ध है, साथ ही समय-समय पर अनेक उपाख्यान भी सक्षिप्ततया निवद्ध है। अलौकिक अतिप्राकृत और अतिमानवीय शक्तियो, घटनाओ तथा कार्यो (समुद्रलघनादि) का समावेश है। अपने धर्म की प्रशसा एव उत्तरकाण्ड के कलियुग वर्णन मे परमतो की व्यजना से निन्दा है। सूक्तियो का प्राचुर्य है। काव्य का माहात्म्य कथन किया गया है। वशोत्पत्ति, स्तुति आदि की भी योजना है। अन्तर छन्द का है, जो गौण है। हिन्दी मे यह छन्द चलता नही, अत यहाँ चौपाई छन्द हैं। इससे कोई विशेष अन्तर नही पडता।

इन सभी विशेपताओ से युक्त हिन्दी मे 'मानस' के अतिरिक्त सम्भवत कोई अन्य काव्य नही है। अत यही कहा जा सकता हैं कि हिन्दी मे पौराणिक काव्य 'मानस' ही हैं जो समय की माँग थी। समय को देखते हुए आज ऐसे काव्यो की अधिक माँग नही रही—अत. वर्तमान काल मे पौराणिक काव्य लिखना ही बन्द हो गया है।

द्वितीय अध्याय

आचार्य रविषेण और उनका पद्मपुराण : सामान्य विवेचन

आचार्य रविषेण परिचय और कृतित्व

तिथि–निर्णय—संस्कृत-कवियो मे अगुलिगण्य ही ऐसे है जिन्होने अपने विषय मे कोई ऐतिहासिक विवरण दिया हो। उनमे आशिक रूप मे रविषेण भी अन्यतम है। अपने जन्म-स्थान का यद्यपि इन्होने कोई स्पष्ट उल्लेख नही किया है, 'पद्म पुराण' ग्रथ की समाप्ति का इन्होने अवश्य सकेत कर दिया है जिससे तिथि-विषयक कोई समस्या नही उठती।

पद्मपुराण (पद्मचरित) का उपसहार करते हुए रविषेण ने लिखा है ·

"द्विशताभ्यधिके समासहस्रे समतीतेऽर्धचतुर्थवर्षयुक्ते ।
जिनभास्करवर्द्धमानसिद्धे चरित पद्ममुनेरिद निबद्धम् ।।[७]

(अर्थात् जिन सूर्य भगवान् महावीर के निर्वाण होने के १२०३ वर्ष ६ महीने बाद यह पद्ममुनि का चरित निबद्ध किया गया।) यदि वीर निर्वाण से ४७० वर्ष बाद विक्रम सवत् प्रारम्भ माना जाय तो इस ग्रथ की रचना विक्रम सवत् प्रारम्भ ७३३-७३४ अर्थात् ६७७-६७८ ई० मे पूर्ण हुई है। यह रचना कवि के जीवन मे प्रौढता आने पर ही हुई होगी, अत कवि का जीवन-काल ६४०-६८० ई० के मध्य का भाग माना जा सकता है।

आचार्य रविषेण का उल्लेख परवर्ती कवियो ने भी किया है। पुन्नाटसघी

---

७ पद्मपुराण, भारतीय ज्ञानपीठ, १२३/१८२

आचार्य जिनसेन के 'हरिवशपुराण' (वि०स० ८४०) मे भी रविषेण के 'पद्मचरित' या 'पद्मपुराण' का सकेत है —

"कृतपद्मोदयोद्योता प्रत्यह परिवर्तिता ।
मूर्ति काव्यमयी लोके रवेरिव रवे- प्रिया ॥"[८]

इसी प्रकार 'कुवलयमाला' (वि० स० ८३५) मे रविषेण के 'पद्मचरित' की चर्चा है —

"जेहि कए रमणिज्जे वरंग-पउमानचरितवित्थारे ।
कहव ण सलाहणिज्जे ते कइणो जइय रविसेणो ॥"[९]

स्वयंभू ने भी अपने 'पउमचरिउ' मे रविषेण का नामस्मरण किया है ।[१०]

इस प्रकार रविषेण के तिथि-निर्णय की समस्या पूर्ण समाहित है । उसमे किसी ननु-नच का अवकाश नही है ।

जन्मस्थान—आचार्य रविषेण ने अपने जन्मस्थान का कोई उल्लेख नही किया है । इस विषय मे कई विद्वानों से मेरा विचार-विमर्श हुआ है । किन्तु समस्या ज्यो की त्यो पडी रह जाती है । डा० आदिनाथ नेमिनाथ उपाध्ये अपने ६-२-१९६६ के पत्र मे लिखते है ·—We do not know definitely anything about the birth place of Ravisena All that we know about him is only from his own PRASASTI Some later authors also refer to him praising his qualities." इसी प्रकार ३-१२-१९६५ के पत्र मे श्री अगरचन्द नाहटा लिखते है —"रविषेण के जन्म स्थान का कोई पता नही · ।" प० नाथूराम प्रेमी ने इस विषय को यो ही छोड दिया है " रविषेण ने न तो अपने किसी सघ या गण-गच्छ का कोई उल्लेख किया है और न स्थानादि की ही कोई चर्चा की है । "[११]

यह तो निश्चित है कि शब्द प्रमाण रविषेण के जन्म-स्थान के विषय मे (आज तक की खोज के अनुसार) हमे साफ जवाब दे जाता है । अब अनुमान प्रमाण के अतिरिक्त और कोई गति ही नही रह जाती । इस विषय मे डा० ज्योति प्रसाद जैन (ज्योति-निकुज, चारबाग, लखनऊ-४) का ८-२-१९६६ का एक पत्र मुझे मिला है जिसमे उन्होने लिखा है "रविषेण ने अपने ग्रन्थ मे किसी स्थल पर भी अपने जन्म स्थान या निवास स्थान का सकेत नही किया है । वैसे मेरा

---

८ हरिवशपुराण १/३४
९ कुवलयमाला—४१
१० पउमचरिउ, १।२।९ "पुणु रविसेणायरियपसाए ।"
११. जैन साहित्य और इतिहास, पृ० २७३

अनुमान है कि वह दक्षिण भारतीय नही थे, उत्तर मे ही, और बहुत करके मध्य भारत मे किसी स्थान पर उन्होने इस ग्रन्थ का प्रणयन किया है। यो तो वह दिगम्बराचार्य थे, किसी एक स्थान पर रहते नही थे, भ्रमण ही करते रहते थे, तथापि सम्भावना उनके उत्तर भारतीय होने की ही अधिक है। अपने जिन गुरु आदिक का उन्होंने उल्लेख किया है वे भी उत्तर की ओर के ही प्रतीत होते है ।"

गुरुपरम्परा—रविषेण ने अपनी गुरुपरम्परा का सकेत इस प्रकार दिया है .—

"आसीदिन्द्रगुरोर्दिवाकरयतिः शिष्योऽस्य चार्हन्मुनि-
स्तस्माल्लक्ष्मणसेनसन्मुनिरदः शिष्यो रविस्तु स्मृतः ।।"[१२]

(अर्थात् "इन्द्र गुरु के दिवाकरयति, दिवाकरयति के अर्हन्मुनि, अर्हन्मुनि के लक्ष्मणसेन एव लक्ष्मणसेन का मैं रविषेण शिष्य हूँ ।")

यद्यपि रविषेण ने अपने किसी सघ या गण-गच्छ का उल्लेख नही किया है तथापि "सेनान्त नाम से अनुमान होता है कि शायद वे सेनसघ के हों; किन्तु नामो से सघ का निर्णय सदैव ठीक नही होता। इनकी गुरुपरम्परा के पूरे नाम इन्द्रसेन, दिवाकरसेन, अर्हत्सेन और लक्ष्मणसेन होगे, ऐसा जान पडता है ।"[१३]

पारिवारिक जीवन : रविषेण के 'पद्मपुराण' को देखने के अनन्तर उनके पारिवारिक जीवन के विषय मे कुछ अनुमान निकलते हैं। उनके माता-पिता का यद्यपि कोई उल्लेख नही मिलता तथापि यह अवश्य प्रतीत होता है कि रविषेण दीक्षा लेने से पहले अच्छा विलासी जीवन व्यतीत करते होगे, शृगार का खेल उन्होने खूब खेला होगा। पवनजय-सम्भोग तथा शृगार के अन्य यथार्थ वर्णन ऐसा कुछ आभास देते है। प्रतीत होता है कि यौवन मे ही इन्हे स्त्री-विरह सहन करना पड गया था जिसके कारण इन्होने विरक्त होकर दीक्षा धारण की है। निम्न-लिखित उक्तियाँ कवि की उक्त अनुभूति की परिचायक सी लगती है .—

"गृहमेतत्तया शून्य वनं मे प्रतिभासते।
आकाशमेव क्षिप्त वा तस्या वार्ताधिगम्यताम् ।।"[१४]

"रतिं न लभते क्वापि रहित. प्रियया तया।
शुष्यत्यहनि रात्री च पतितोऽम्नाविवोरगः ।।"[१५]

---

१२ पद्म० १२३।१६८

१३. प० नाथूराम प्रेमी "जैन साहित्य और इतिहास" पृ० २७३

१४ पद्म० १८।१३

१५. 'पद्मपुराण' २६।३१

"अरण्यमपि रम्यत्व याति कान्तासमागमे।
कान्तावियोगदग्धस्य सर्व विन्ध्यवनायते ॥"[१६]

धार्मिक विचार यो 'पद्मपुराण' मे कई स्थानो पर 'शिव' सम्बन्धी उपमा अथवा अन्य रूप मे 'शिव' का उल्लेख है यथा 'कृतमीश्वर-मार्गणै', 'त्रिपुरस्य जिगीषुताम्,' 'गौर्यश्च विभवाश्रया' और 'पिनाकिवत्' आदि, किन्तु इस आधार पर दीक्षा लेने से पूर्व उन्हे 'शैव' सिद्ध करना उचित नही है। ये उपमाएँ तो कवित्व के कारण है अथवा जैनधर्म ग्रन्थो की आकर्षकता सिद्ध करने के लिए ही इनका प्रयोग किया गया होगा। वैसे रविषेण कट्टर जैन थे। स्थान-स्थान पर उन्होने वैदिक ऋषियो, वैदिक ग्रन्थो, ब्राह्मणो तथा वैदिक धर्म का खुलकर खण्डन किया है।[१७] उन्होने सैकडो स्थलो पर जैनधर्म का अभिधावृत्ति से प्रचार किया है यथा —

"सिद्धा सिद्ध्यन्ति सेत्स्यन्ति कालेऽन्तपरिवर्जिते।
जिनदृष्टेन धर्मेण नैवान्येन कथचन ॥"[१८]

एकादश-पर्व मे तो वैदिक-धर्म का शास्त्रार्थ की रीति से खुला खण्डन किया किया गया है तथा 'यज्ञदीक्षाख्यपातक' की धज्जियाँ उडायी गयी है। चतुर्दश पर्व मे इस कट्टरपन्थी की पराकाष्ठा ही हो गई है, जहाँ कि ऐसे-ऐसे श्लोक धड़ल्ले से साथ लिखे गये है —

"पशुभूम्यादिक दत्त जिनानुद्दिश्य भावत.।
ददाति परमान् भोगानत्यन्तचिरकालगान् ॥"

इसी प्रकार आगे वे देवताओ की निन्दा करते हुए तथा धर्म को व्यापार की उपमा देते हुए अधिक लाभकारी जैनधर्म का ही स्वीकरण कराने के प्रति अपना अभिनिवेश प्रस्तुत करते है :—

"वीतरागान् समस्तज्ञानतो ध्यात्वा जिनेश्वरान्।
दान यद्दीयते तस्य क. शक्तो भाषितु फलम्?
आयुधग्रहणादन्ये देवा द्वेषसमन्विता.।
रागिण. कामिनीसगाद् भूषणाना च धारणात् ॥
रागद्वेषानुमेयश्च तेषा मोहोऽपि विद्यते।
तयोर्हि कारण मोहो दोषा शेषास्तु तन्मया.॥

---

१६ वही, ४६।९९

१७. इस विषय पर हम 'भावपक्ष' के अन्तर्गत 'विचारतत्त्व' शीर्षक मे विस्तृत विचार करेंगे।

१८ "पद्म०" ३१।१२

मनुष्या एव ये केचिद्देवा भोजनभाजनम् ।
कषायतनव काले देशकामादिसेविनः ।।
एवविधा. कथ देवा दानगोचरता गता. ।
अधमा यदि वा तुल्या फल कुर्युर्मनोहरम् ।।
दृष्टोऽपि तावदेतेषा विपाक शुभकर्मण ।
कुत एव शिवस्थानसम्प्राप्तिर्दुःखितात्मनाम् ।।
तदेतत्सिकतामुष्टिपीडनात्तैलवाञ्छितम् ।
विनाशन च तृष्णाया सेवनादाशुशुक्षण ।।
पगुना नीयते पगुर्यदि देशान्तर तत ।
एतेभ्य क्विनश्यतो जन्तोर्देवेभ्यो जायते फलम् ।।
एषा तावदिय वार्ता देवाना पापकर्मणाम् ।
तद्भक्ताना तु दूरेण सत्पात्रत्व न युज्यते ।।
लोभेन चोदितः पापो जनो यज्ञे प्रवर्तते ।
कुर्वतो हि तथा लोको घन तर्हि प्रयच्छति ।।
तस्मादुद्दिश्य यद्दान दीयते जिनपु गवम् ।
सर्वदोषविनिर्मुक्तं तद्ददाति फल महत् ।।
वाणिज्यसदृशो धर्मस्तत्रान्वेष्याल्पभूरिता ।
बहुना हि पराभूति क्रियतेऽल्पस्य वस्तुनः ।।
यथा विषकण प्राप्त· सरसी नैव दुष्यति ।
जिनधर्मोद्यतस्यैव हिंसालेशो वृथोद्भव ।।
प्रासादादि तत कार्य जिनाना भक्तितत्परैः ।
माल्यधूपप्रदीपादि सर्व च कुशलैर्जनैः ।।
स्वर्गे मनुष्यलोके च भोगानत्यन्तमुत्तमान् ।
जन्तव प्रतिपद्यन्ते जिनानुद्दिश्य दानत ।।
तन्मार्गप्रस्थिताना च दत्त दान यथोचितम् ।
करोति विपुलान् भोगान् गुणानामिति भाजनम् ।।
यथाशक्ति ततो भक्त्या सम्यग्दृष्टिसु यच्छत ।
दान तदेकमात्रास्ति शेष चोरैर्विलुण्ठितम्।।"[१९]

ऐसे कितने ही स्थल है जहाँ यथावस्थित रूप मे जैन धर्म की ग्राह्यता का निर्द्वन्द्व उद्घोषण किया गया है, वहाँ कि 'स्वोत्कर्ष' एव 'परगर्हण' का यथेच्छ

१९ 'पद्मपुराण' १४।७८-९६

उपयोग किया गया है जिनसे रविषेण की 'कट्टरजैनिता' स्पष्ट सिद्ध हो जाती है।

रविषेण का लोकशास्त्रकाव्याद्यवेक्षण बडा विशाल था। वे बहुमुखी प्रतिभा के व्यक्ति थे। उनके काव्य को देखकर ऐसे कथन अक्षरश अन्वर्थ प्रतीत होते हैं—

"न तज्ज्ञान न तच्छिल्प न सा विद्या न सा कला।
जायते यन्न काव्यागमहो भारो महान् कवे ॥"

न जाने कितना समय रविषेण ने लोक, शास्त्र एव काव्य के सूक्ष्म निरीक्षण के लिए दिया होगा।

समाज के व्यापारो, पाखण्डों, उपद्रवो, व्यवसायो तथा लोक-व्यवहारो का सागोपाग ज्ञान रविषेण को प्राप्त था, जिनका आभास 'पद्मपुराण' को देखने से हो जाता है। मन्दिरो की बनावट के वर्णन, गर्भिणी की अवस्था का यथार्थ वर्णन, कलह-झगडो के वर्णन, नगरो के वर्णन तथा वृद्धावस्था आदि के यथार्थ वर्णनो से तो ऐसा प्रतीत होता है कि जैसे कवि ने उन सभी चीजों को पास से देखा हो। वृद्धावस्थाजन्य श्वेतिमा, मुँह की खकार, दन्तस्थानीय लृतुलस वर्णो का लोप आदि का वर्णन उदाहरणार्थ प्रस्तुत है :—

"सखत्कार मुहु कुर्वन् स्फुरयन्नधरौ मुहु ।
हृदय सस्पृशन् कृच्छ्रादुपनीतेन पाणिना ॥
पश्चान्मस्तकभागस्थश्चन्द्राशुस्थितमूर्द्धज ।
मन्दवाताहतश्वेत — चामरोपमकूर्चक. ॥
मक्षिकाच्छदनच्छातत्वक्तिरोहितकैकस ।
धवलभ्रूवलिच्छन्नशोणप्रभ — निरीक्षण ॥
० ० ०
दन्तस्थानभवा वर्णाश्चिर क्वापि गता मम।
ऊष्मवर्णोष्मणा तापमशक्ता इव सेवितुम् ॥"[२०]

नारियो के भावालाप वर्णन करने मे, तरुण को देखकर विह्वल होकर उनके भागने, झपटने एव उत्सवो या विजय-यात्राओ पर राजाओ के स्वागत आदि का वर्णन करने मे तो कवि ने कमाल ही कर दिया है। प्रतीत होता है कि कवि ने अन्त पुरो मे घुस-घुसकर विह्वल नारियो की उक्तियाँ सुनी थी। इस प्रकार रविषेण ने लोक को पर्याप्त मनोयोग से देखा था।

रविषेण का शास्त्रज्ञान भी गहन है। जैन तथा जैनेतर धर्मशास्त्र, कामशास्त्र, राजनीतिशास्त्र, शकुनशास्त्र, युद्ध-शास्त्र, कलाशास्त्र, सगीतशास्त्र, ज्योतिष

---

२०. 'पद्मपुराण', २९।४४-६७

शास्त्र, व्याकरणशास्त्र, अलकारशास्त्र तथा अन्य खड्गतुरगादिशास्त्रो का पुष्कल ज्ञान रविषेण ने अधिगत किया था। चाणक्य के 'अर्थशास्त्र' का भी उन्होंने मनोयोग से अध्ययन किया था। दूतप्रेषण, मन्त्रयुद्ध, व्यूहरचना, राजनीति आदि सम्बन्धी पद्मपुराण के वर्णन इसके प्रमाण है। वेद गीता और मनुस्मृति का रविषेण ने अच्छी तरह अध्ययन किया था, ऐसा अन्तःसाक्ष्य के आधार पर सिद्ध होता है। श्रौत सूत्रो एव वैदिक कर्मकाण्ड का भी उन्हे ज्ञान प्राप्त था। कुछ तुलनात्मक पद्यो से इस तथ्य की पुष्टि होती है .—

१—"सर्व पुरुष एवेद यद्भूत यद्भविष्यति।
ईशानो योऽमृतत्वस्य यदन्नेनातिरोहति॥" (पद्म० ११।६०)

तुल०—"पुरुष एवेदं सर्वं यदभूतं यच्च भाव्यम्"। (पुरुषसूक्त)

२—'प्राणिनो ग्रन्थसगेन रागद्वेषसमुद्भव.।
रागात्सजायते कामो द्वेषाज्जन्तुविनाशनम्॥
कामक्रोधाभिभूतस्य मोहेनाक्रम्यते मन.।
कृत्याकृत्येषु मूढस्य मतिर्न स्याद्विवेकिनी॥" (पद्म० ११।१३६-३७)

तुल०—"ध्यायतो विषयान्पु स सगस्तेषूपजायते।
सगात्सजायते काम. कामात्क्रोधोऽभिजायते।
क्रोधाद्भवति सम्मोह सम्मोहात्स्मृतिविभ्रमः।
स्मृतिभ्र शाद्बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात् प्रणश्यति॥" (गीता)

३—"मुखादिसम्भवश्चापि वह्मणो योऽभिधीयते।
निर्हेतु. स्वगेहेऽसौ शोभते भाषमाणक॥" (पद्म० ११।१६६)

तुल०—"ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीत्" (पुरुषसूक्त)

४—"विद्याविनयसम्पन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि।
शुनि चैव श्वपाके च पण्डिता स समदर्शिन.॥" (पद्म० ११।२०४)

तुल०—"विद्या-विनय सम्पन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि।
शुनि चैव श्वपाके च पण्डिता समदर्शिन॥ (गीता)

५—"चातुर्वर्ण्य यथान्यच्च चाण्डालादिविशेषणम्।
सर्वमाचारभेदेन प्रसिद्धि भुवने गतम्॥" (पद्म० ११।२०५)

तुल०—'चातुर्वर्ण्य मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः।" (गीता ४।१३)

६—"राजानं हन्त्यसौ सोम वीर वा नाकवासिनाम्।
सोमेन यो यजेत्तस्य दक्षिणा द्वादश स्मृतम्॥" (पद्म० ११।२११)

तुला०—'सोमोऽस्माक ब्राह्मणानां राजा' (श्रुति)
गवा शतं द्वादशं वातिक्रामति' (कात्यायन श्रौतसूत्र १०।२।१०)

७—"मानापमानयोस्तुल्यस्तथा यः सुखदु खयो. ।
तृणाकाचनयोश्चैव साधु पात्र प्रशस्यते ॥" (पद्म० १४।५७)
तुल०—"सम शत्रौ च मित्रे च तथा मानापमानयो ।
शीतोष्णसुखदु खेषु सम सगविवर्जित ॥" (गीता १२।१८)
८—"यद्यप्यूर्ध्वं तप शक्त्या व्रजेयु परलिंगिन ।
तथापि किंकरा भूत्वा ते देवान् समुपासते ॥
देवदुर्गतिदु खानि प्राप्य कर्मवशात्तत ।
स्वर्गच्युता पुनस्तिर्यग्योनिमायान्ति दु खिन ॥" (पद्म० ४।४३-४५)
तुल०—"ते त भुक्त्वा स्वर्गलोक विशाल
क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोक विशन्ति ॥ (गीता ९।२१)
९—"जातस्य नियतो मृत्युस्ततो गर्भस्थिति पुन ॥" (पद्म० ३०।११५)
तुल०—"जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुव जन्म मृतस्य च ।" (गीता २।२७)
१०—"आचाराणा विघातेन कुदृष्टीना च सम्पदा ।
धर्म ग्लानिपरिप्राप्तमुच्छ्रयन्ते जिनोत्तमा. ॥" (पद्म० ५।२०६)
तल०—"यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत ।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मान सृजाम्यहम् ॥" (गीता ४।७)
११—"मया जन्मानि भूरीणि परिप्राप्तानि यानि तु ।
वेद्म्येकमपि नो तेषा तत्सर्व विदित त्वया ॥
तान्यह ज्ञातुमिच्छामि भगवन्नुच्यतामिति ।
भवत्प्रसादतो मोह निराकर्तुमह भजे ॥" (पद्म० ३१।५-६)
तुल०—"बहूनि मे व्यतीतानि जन्मानि तव चार्जुन ।" (गीता ४।५)
"वक्तुमर्हस्यशेषेण दिव्या ह्यात्मविभूतय ।" (गीता १०।१६)
"नष्टो मोह स्मृतिर्लब्धा त्वत्प्रसादान्मयाच्युत ।" (गीता १८।७३)
१२—"नरास्ते दयिते शलाघ्या ये गता रणमस्तकम् ।
त्यजन्त्यभिमुखा जीव शत्रूणा लब्धकीर्तय ॥" (पद्म० ५७।२१)
तुल०—"यदृच्छया चोपपन्न स्वर्गद्वारपमावृतम् ।
सुखिन क्षत्रिया पार्थ लभन्ते युद्धमीदृशम् ।" (गीता २।३२)
१३—"एकाग्रध्यानसम्पन्नो नासाग्रस्थितलोचन ।" (पद्म० ६९।१०)
तुल०—"तत्रैकाग्र मन कृत्वा यतचित्तेन्द्रियक्रिय ।
सम्प्रेक्ष्य नासिकाग्र स्व दिशश्चानवलोकयन् ॥" (गीता ६।१२-१३)

उपर्युक्त उद्धरणो से स्पष्ट है कि रविषेणको जैन एव जैनेतर शास्त्रो तथा ग्रन्थो का भी पर्याप्त ज्ञान था। इसी प्रकार 'पवनजय-अजना' के सम्भोग तथा

अन्य अनेक वर्णनो से उनकी कामशास्त्रज्ञता का स्पष्ट प्रतिभान होता है। राजाओं की दिनचर्या तथा पात्रो के विविध राजनीतिक व्यापारो से उनकी राजनीति-शास्त्र-निपुणता, विविध अवसरो पर शकुनो के सकेत से शकुनशास्त्र-पारगतता, युद्धप्रक्रियाओ से युद्धलाघवपरिचिति, केकया की कलाओ के वर्णन से विशाल कला-ज्ञान-धारिता, गन्धर्व के ज्योतिष-विषयक वार्तालाप से ज्योतिषशास्त्र-पारावारीणता, अतिवीर्य की सभा मे नर्तकीवेशधारी राम के वर्णन से नृत्यकलाविशारदता, आलकारिक वर्णनो से अलकारशास्त्रवशीकारकता तथा अन्यान्य वर्णनो से उनके अन्य अनेक प्रकार के ज्ञानो का परिचय होता है। न जाने कितनी विद्याओ शास्त्रो तथा कलादिक का ज्ञान उन्हे प्राप्त था। सगीत की बारीकियो के ज्ञान का दिड्मात्र उदाहरण प्रस्तुत है :—

"तयोर्घन कृत वाद्य सुषिर च कृत ततम्।
परिवर्गेण गम्भीरकरतालक्रमोचितम् ॥
पाणिघैरेकतानेन मन्द्रध्वनिसमन्वितम्।
तथा वैणविकैर्वाढ प्रवीणैर्भ्रूविलासिभि ॥
प्रवीणाभ प्रवालाभा वीणा चारूपमानिकाम्।
कोणेनाताडयद्यक्षो गन्धर्व: काकलीवुध ॥
मध्यमर्षभगान्धारषड्जपचमधैवतान्।
निषादसप्तमाश्चक्रे स स्वरान्क्रममत्यजन् ॥
भेजे वृत्तीर्यथास्थान द्रुतमध्यविलम्बिता।
एकविंशतिसख्याश्च मूर्च्छना नर्तितेक्षणा ॥
हाहाहूहूसमान स गान चक्रेऽथवाधिकम्।
प्रायो गन्धर्वदेवाना प्रसिद्धिमिदमागतम् ॥"[२१]

उनकी शास्त्रज्ञता का असली पता तो हमे तब लगता है जब हम २४ वे पर्व के २८ श्लोको मे कैकेया की कलाओ का विस्तृत वर्णन पढते है।

रविषेण ने अपने पूर्ववर्ती कवियो के ग्रन्थो का गहन अध्ययन किया था—ऐसा उनके 'पद्मपुराण' को देखकर प्रतीत होता है। आदि कवि वाल्मीकि की 'रामायण' का तो 'पद्मपुराण' पर पर्याप्त प्रभाव है ही, साथ ही 'महाभारत,' 'पञ्चतन्त्र' तथा अनेक कवियो की रचनाओ का भी उस पर प्रचुर प्रभाव पडा है। कविकुलगुरु कालिदास और कथाकाव्य-पञ्चानन बाण की लेखन-सरणि का तो उन्होने अनेक स्थलो पर अनुसरण किया है। कालिदास की सी उपमाएँ

२१. "पद्म०," १७।२७४-२७९

रविषेण की वशवद सी है। वाण के से नगर-वन-नदी-प्रासाद-नारी-भावालापादि के वर्णन उनसे मोह सा किये हुए है, भारवि आदि अन्य अनेक कवियो की चमत्कार-वादिता कट्टर जैनी रविषेण को अनेक स्थलो पर अभिभूत कर चुकी है। अधिक विस्तृत उदाहरण न देकर कुछ तुलनात्मक सकेत ही प्रस्तुत किये जाते हैं—

कालिदास

१—"भास्वता भासितानर्थान् सुखेनालोकते जन ।
सूचीमुखविनिर्भिन्न मणि विशति सूत्रकम् ।।" (पद्म० १।२०)

तुल०—"अथवा कृतवाग्द्वारे वशेऽस्मिन् पूर्वसूरिभि ।
मणौ वज्रसमुत्कीर्णे सूत्रस्येवास्ति मे गति ।।" (रघुवश १।४)

२—"विपुल शिखरे चैक धरण्या दशसगुणम् ।
राजते तिर्यगाकाश मातु दण्ड इवोच्छ्रित ।। (पद्म० ३।३६)

तुल०—"अस्त्युत्तरस्या दिशि देवतात्मा हिमालयो नाम नगाधिराज· ।
पूर्वापरौ तोयनिधीवगाह्य स्थित पृथिव्या इव मानदण्ड ।।"
(कुमार सम्भव १।१)

३—"क्षतत्राणे नियुक्ता ये तेन नाथेन मानवा ।
क्षत्रिया इति ते लोके प्रसिद्धि गुणतो गता ।।" (पद्म० ३।२५६)

तुला०—"क्षतात्किल त्रायत इत्युदग्र क्षत्रस्य शब्दो भुवनेषु रूढ ।"
(रघु० २।५३)

४—"नराश्चन्द्रमुखा शूरा सिंहोरस्का महाभुजा ।" (पद्म० ३।३३६)

तुल०—"व्यूढोरस्को वृषस्कन्ध. शालप्राशुर्महाभुज ।" (रघु० १।१३)

५—"प्राणा धर्मस्य हेतव ।" (पद्म पुराण, ४।६७)

"भगवन्नपि ते देहे कुशल कुशलाशय ।
मूलमेष हि सर्वेषा साधनाना सुचेष्टित ।।" (पद्म० १७।२६)

तुल०—"शरीरमाद्य खलु धर्मसाधनम् ।" (कुमार० ५।३३)

६—"अथ स्वयवरागाना प्रवृत्ता व्योमचारिणाम् ।
मदनाश्लिष्टचित्तानामिति सुन्दरविभ्रमा ।।
निष्कम्पमपि मूर्द्धस्थ मुकुट कश्चिदुन्नतम् ।
अकरोत् किल निष्कम्प रत्नाशुच्छन्नपाणिना ।।
कश्चित् कूर्परमादाय कटिपार्श्वे सजृम्भण ।
चक्रे देहस्य वलन स्फुटत्सन्धिकृतस्वनम् ।।

प्रदेशेऽपि स्थिता कश्चिदुज्ज्वलामसिपुत्रिकाम् ।
असारयत् कराग्रेण कटाक्षकृतवीक्षणाम् ।।
पार्श्वगे पुरुषे कश्चिच्चलयत्येव चामरम् ।
सलीलमशुकान्तेन चक्रे वीजनमानने ।।

० ० ०

पादागुष्ठेन कश्चिच्च नेत्रान्तेक्षितकन्यक ।
कृत्वा पाणितले गण्ड लिलेख चरणासनम् ।।
गाढमप्यपरो बद्धमुन्मुच्य कटिसूत्रकम् ।
बबन्ध शनकैर्भूय शेषाणमिव चक्रकम् ।।

० ० ०

पार्श्वस्थस्यापरो हस्त सख्युरास्फाल्य सस्मितम् ।
कथा चक्रे विना हेतो· कन्याक्षिप्तचलेक्षण ।।
अपरोऽभ्रमयत् पद्म बद्धभ्रमरमण्डलम् ।
सव्येतरेण हस्तेन विसर्पन् कर्णिकारज: ।।"[२२]

(पद्म० ६।३६४-३७८)

तुल०—"ता प्रत्यभिव्यक्तमनोरथाना महीपतीना प्रणयाग्रदूत्य· ।
प्रवालशोभा इव पादपाना शृगारचेष्टा विविधा बभूवु ।।
कश्चित्कराभ्यामुपगूढनालमालोलपत्राभिहतद्विरेफम् ।
रजोभिरन्त परिवेषबन्धि लीलारविन्द भ्रमयाचकार ।।
विस्रस्तमसादपरो विलासी रत्नानुविद्धागदकोटिलग्नम् ।
प्रालम्बमुत्कृष्य यथावकाश निनाय साचीकृतचारुवक्त्र ।।
आकुचिताग्रागुलिना ततोऽन्य किंचित्समावर्जितनेत्रशोभ ।
तिर्यग्विसर्पिनखप्रभेण पादेन हैम विलिलेख पीठम् ।।
निवेश्य वाम भुजमासनार्धे तत्सनिवेशादधिकोन्नतास ।
कश्चिद्विवृत्तत्रिकभिन्नहार सुहृत्समाभाषणतत्परोऽभूत् ।।
विलासिनीविभ्रमदन्तपत्रमापाण्डुर केतकबर्हमन्य· ।
प्रियानितम्बोचितसनिवेशैर्विपाटयामास युवा नखाग्रै ।।
कुशेशयाताम्रतलेन कश्चित्करेण रेखाध्वजलाछनेन ।
रत्नाङ्गुलीयप्रभयानुविद्धानुदीरयामास सलीलमक्षाम् ।।

---

२२. स्वयम्वर मे स्थित राजाओ की चेष्टाओ, सखी द्वारा उनके परिचय, स्वयम्वरोत्तर वर-वधू की सहृदयो के द्वारा प्रशसा तथा सफल राजा के साथ अन्य राजाओ के युद्ध की तुलना के लिये देखिये—(पद्म०, ६।३५९-४२३) तथा रघु० (६।१२-८६)

कश्चिद्यथाभागमवस्थितेऽपि स्वसनिवेशाद्व्यतिलघिनीव ।
वज्राशुगर्भाङ्गुलिरन्ध्रमेक व्यापारयामास कर किरीटे ।।
(रघु०, ६।१२-१६)

७—"सत्यमन्येऽपि विद्यन्ते नाममात्रेण खेचरा ।
तेषा खद्योततुल्यानामय भास्करता गत ।।
(पद्म० ६।३६८)

तुल०—"काम नृपा सन्तु सहस्रशोऽन्ये राजन्वतीमाहुरनेन भूमिम् ।"
(रघु०, ६।२२)

८—"ततोऽसौ चन्द्रलेखेव व्यतीता यान्नभश्चरान् ।
पर्वता इव ते प्राप्ता श्यामता लोकवाहिन ।।" (पद्म० ६।४२३)

तुल०—"सचारिणी दीपशिखेव रात्रौ य य व्यतीयाय पतिवरा सा ।
नरेन्द्रमार्गाट्ट इव प्रपेदे विवर्णभावं स स भूमिपालः ।।"
(रघु० ६।६७)

९—"व्रजन्ती व्रज्यया युक्ते तिष्ठन्ती स्थितिमागते ।
छायेव साऽभवत् पत्यावनुवर्तनकारिणी ।।" (पद्म० ७।१७०)

तुल०—"स्थित स्थितामुच्चलित प्रयाता निषेदुषीमासनवन्धधीर ।
जलाभिलाषी जलमाददाना छायेव ता भूपतिरन्वगच्छत् ।।"
(रघु० २।६)

१०—अनगविषया सृष्टिमपूर्वामिव कर्मणा ।
आहृत्य जगतोऽशेष लावण्यमिव निर्मिताम् ।।" (पद्म० ८।६८)

तुल०—"चित्रे निवेश्य परिकल्पितसत्वयोगा रूपोच्चयेन मनसा विधिना कृता नु ।
स्त्रीरत्नसृष्टिरपरा प्रतिभाति सा मे धातुर्विभुत्वमनुचिन्त्य वपुश्च तस्या ।।
(अभिज्ञान० २।९)

११—"कन्या नाम प्रभो देया परस्मायेव निश्चयात् ।" . (पद्म० ९।३२)

तुल०—"अर्थो हि कन्या परकीय एव ।" (अभिज्ञान० ४।२२)

१२—"अथमेव महाव्रघु सर्वेषा प्राणिनामभूत् ।" (पद्म० ११।३५४)

तुल०—"त्वयि तु परिसमाप्त वन्धुकृत्य जनानाम् ।।" (अभिज्ञान० ५।८)

१३—"कीर्त्तयन्त्या गुणानेव तस्य सख्या सुमानसा ।
लिलेख लज्जयागुल्या कन्याध्रिनखमानता ।।" (पद्म०, १५।१५२)

तुल०—"एव वादिनि देवर्षौ पार्श्वे पितुरधोमुखी ।
लीलाकमलपत्राणि गणयामास पार्वती ।।" (कुमार०, ६।८६)

१४—"नेत्रे निमील्य सोढव्यं कर्म पाकमुपागतम् ।"

तुल०—"शेषान्मासान् गमय चतुरो लोचने मीलयित्वा।" (उत्तरमेघ, ५३)

१५—"अवस्थित जगद्व्याप्य नुदेदर्क कथ तम ।
सव्येष्टा चेद्भवेदस्य न मूर्तिररुणात्मिका ।।" (पद्म० २४।१२८)

तुल०—"किं वाऽ भविष्यदरुणस्तमसा विभेत्ता
त चेत्सहस्रकिरणो धुरि नाऽकरिष्यत् ।।" (अभिज्ञान०, ७।४)

१६—"अधत्त य पुरा शक्ति रिपुदारणकारिणीम् ।
करेण यष्टिमालम्ब्य तेन भ्राम्यामि साम्प्रतम् ।। ' (पद्म०, २६।५६)

तुल०—आचार इत्यधिकृतेन मया गृहीता या वेत्रयष्टिरवरोधपुरेषु राज्ञ ।
काले गते बहुतिथे मम सैव जाता प्रस्थानविक्लवगतेरलम्बनार्था ।।"
(अभिज्ञान०, ५।३)

१७—"भद्र किं किमय स्वप्न स्याज्जाग्रप्रत्योऽथवा।" (पद्म० ३०।१५०)

तुल०—"स्वप्नो नु माया नु मतिभ्रमो नु ?" (अभिज्ञान० ६।१०)

१८—"धन्या पुण्यवती सुस्त्री यया तेऽगानि शैशवे ।
क्रीडता धूसराण्यके निहितानि सुचुम्बितम् ।।" (पद्म० ३०।१६१)

तुल०—"आलक्ष्यदन्तमुकुलाननिमित्तहासै-
रव्यक्तवर्णरमणीयवच प्रवृत्तीन् ।
अकाश्रयप्रणयिनस्तनयान् वहन्तो
धन्यास्तदगरजसा मलिनीभवन्ति ।।" (अभिज्ञान० ७।१७)

१९—"केशभार मयूरीषु तस्या. पश्यामि सुन्दरम् ।
अपर्याप्तशशाके च लक्ष्मीमलिकसम्भवाम् ।।
त्रिवर्णाम्भोजखण्डेषु श्रिय लोचनगोचराम् ।
शोणपल्लवमध्यस्थसितपुष्पे स्मितत्विषम् ।।
स्तबकेषु सुजातेषु कान्तिमत्सु स्तनश्रियम् ।
जिनस्नपनवेदीना शोभा मध्येषु मध्यमाम् ।।
तासामेवोर्ध्वभागेषु नितम्बभरताकृतिम् ।
ऊरुशोभा सुजातासु कदलीस्तम्भिकासु ताम् ।।
पद्मेषु चरणाभिख्या स्थलसम्प्राप्तजन्मसु ।
शोभा तु समुदायस्य तस्या पश्यामि न क्वचित् ।।" (पद्म०४८।१४-१८)

तुल०—"श्यामास्वग चकितहरिणीप्रेक्षणे दृष्टिपात
वक्त्रच्छाया शशिनि शिखिना बर्हभारेषु केशान् ।
उत्पश्यामि प्रतनुषु नदीवीचिषु भ्रूविलासान्
हन्तैकस्मिन्क्वचिदपि न ते चण्डि सादृश्यमस्ति ।।" (उत्तर मेघ, ४६)

२०—"घटस्तनविमुक्तेन पुत्रस्नेहान्निरन्तरम् ।
पयसा पोषिता स्त्रीभिर्वृक्षका व्वंसमाहृता. ।।" (पद्म० ५३।२२६)
तुल०—"यो हेमकुम्भस्तननि.सृताना स्कन्दस्य मातु. पयसा रसज्ञ ।।"
(रघु० २।३६)
"अतन्द्रिता सा स्वयमेव वृक्षकान् घटस्तनप्रस्रवणैर्व्यवर्धयत् ।
गुहोऽपि येषा प्रथमाप्तजन्मना न पुत्रवात्सल्यमपाकरिष्यति ।।"
(कुमार० ५।१४)
२१—"शयनीयगतै पुष्पैर्या स्वकेशच्युतैरपि ।
अग्रहीत् खेदमेवासौ स्थण्डिलेऽशेत केवले ।।" (पद्म० ६४।८०)
तुल०—"महार्हशय्यापरिवर्त्तनच्युतै. स्वकेशपुष्पैरपि या स्म दूयते ।
अशेत सा बाहुलतोपधायिनी निषेदुषी स्थण्डिल एव केवले ।।"
(कुमार० ५।१२)
२२—"भास्करेण विना का द्यौ. का निशा शशिना विना ?" (पद्म० ९९।९५)
तुल०—"शशिना सह याति कौमुदी सह मेघेन तडित्प्रलीयते ।" (कुमार० ४।३३)
२३—"गम्भीर भुवनाख्यातमुदार लवण गता ।
मन्दाकिनी यदेत हि नापूर्णं कृतमेतया ।।
० ० ०
इति तत्र विनिश्चेरु सज्जनाना गिर परा ।।" (पद्म० ११०।२२-२५)
तुल०—"शशिनमुपगतेयं कौमुदी मेघमुक्त
जलनिधिमनुरूप जह्नुकन्यावतीर्णा ।
इति समगुणयोगप्रीतयस्तत्र पौरा.
श्रवणकटु नृपाणामेकवाक्य विवव्रु ।।"
(रघु०, ६।६८)
२४—"दुस्त्यजानि दुरापानि कामसौख्यान्यवारितम् ।" (पद्म० १११।५)
तुल०—"न च खलु परिभोक्तु नैव शक्नोमि हातुम् ।" (अभिज्ञान० ५।१२)

इसके अतिरिक्त विमान से अयोध्या लौटने के समय राम का सीता को विविध प्रदेशो का अवलोकन कराना तथा हनूमान् का मेरुपर्वत की ओर जाते हुए अपनी स्त्रियो को विविध दृश्य दिखाना आदि भी रघुवश के त्रयोदश सर्ग से पर्याप्त प्रभावित हैं जिसका वास्तविक अनुभव मूलग्रन्थ पढकर ही हो सकता हैं।

बाण : जहाँ एक ओर संस्कृत-कविता-कामिनी के विलास कविकुलगुरु कालिदास का रविषेण पर प्रभूत प्रभाव है वहाँ सस्कृत-गद्य के सम्राट् बाण की

भी रविषेण पर गहरी मुद्रा है। विन्ध्याटवी तथा नारियों के भावालापों पर तो 'हर्षचरित' तथा 'कादम्बरी' की ही गहरी छाप दिखाई देती है। नगरादि के वर्णन मे भी रविषेण बाण से पर्याप्त प्रभावित हैं। कतिपय उदाहरण प्रस्तुत हैं—

१—"अथ जम्बूमति द्वीपे क्षेत्रे भरतनामनि।
मगधाभिख्यया ख्यातो विषयोऽस्ति समुज्ज्वल ॥
निवास. पूर्णपुण्यानां वासवावाससन्निभ:।
व्यवहारैरसकीर्णे. कृतलोकव्यवस्थिति ॥
क्षेत्राणि दधते यस्मिन्नुत्खातान् लागलाननै.।
स्यनाब्जमूलसघातान् महीसारगुणानिव ॥
क्षीरसेकादिवोद्भूतैर्मन्दानिलचलद्दलै: ।
पुण्ड्रेक्षुवाटसन्तानैर्व्याप्तानन्तरभूतल: ॥
अपूर्वपर्वताकारैर्विभक्त खलधाममि·।
सस्यकूटै: सुविन्यस्तै. सीमान्ता यस्य सकटा ॥
उद्घाटकघटीसिक्तैर्यत्र जीरकजूटकै:।
नितान्तहरितैरुर्वी जटालेव विराजते ॥
उर्वरायां वरीयोभि. य. शालेयैरलकृत.।
मुद्गकोशीपुटैर्यस्मिन्नुद्देशा: कपिलत्विष ॥
तापस्फुटितकोशीकै राजमाषैर्निरन्तरा।
उद्देशा यत्र किर्मीरा निक्षेत्रियतृणोद्गमा ॥
अविष्ठित· स्थलीपृष्ठै. श्रेष्ठगोधूमधामभि.।
प्रशस्यैरन्यशस्यैश्च युक्त: प्रत्यूहवर्जितै: ॥
महामहिषपृष्ठस्थगायद्गोपालपालितै· ।
कीटातिलम्पटोद्ग्रीवबलाकानुगतव्वभि· ॥
विवर्णसूत्रसवन्धघण्टारटितहारिभि. ।
क्षरद्भिरजरत्रासात् पीतक्षीरोदवत्पय. ॥
सुस्वादुरससम्पन्नैर्वाप्पच्छेदैरनन्तरै: ।
तृणैस्तृप्ति परिप्राप्तैर्गोधनै: सितकक्षपू.॥
मारीकृतसमुद्देश: कृष्णसारैर्विसारिभि।
सहस्रसंख्यैर्गीर्वाणस्वामिनो लोचनैरिव ॥
केतकीधूलिधवला: यस्य देशा. समुन्नता:।
गंगापुलिनसंकाशा विभान्ति जनसेविता: ॥

शाककन्दलवाटेन श्यामल. श्रीधर· क्वचित् ।
वनपालकृतास्वादैर्नालिकेरैर्विराजित ॥
कोटिभि शुकचंचूनां तथा शाखामृगाननै ।
सदिग्धकुसुमैर्युक्त पृथुभिर्दाडिमीवनै ॥
वत्सपालीकराघृष्टमातुलिंगीफलाम्भसा ।
लिप्ता. कुकुमपुष्पाणा प्रकरैरुपशोभिता ॥
फलस्वादपय पानसुखसुप्तमार्गगा ।
वनदेवीप्रपाकारा द्राक्षाणा यत्र मडपा ॥
विलुप्यमानै पथिकै. पिण्डखर्जूरपादपै ।
कपिभिश्च कृताच्छोटैर्मोचाना निचित फलै ॥
तुगार्जुनवनाकीर्णतटदेशैर्महोदरैः ।
गोकुलाकलितोदारस्वरवत्कूलधारिभि ॥
विस्फुरच्छफरीनालैर्विकसल्लोचनैरिव ।
हसद्भिरिव शुक्लाना पंकजाना कदम्बकै ॥
तुगैस्तरगसघातैर्नर्तनप्रसृतैरिव ।
गायद्भिरिव ससक्तहसाना मधुरस्वनै. ॥
सामोदजनसघातसमासितसरित्तटै ।
सरोमिसारसाकीर्णैर्वनरन्ध्रेषु भूषित ॥
सक्रीडनैर्वपुष्मद्भिराविकोष्ट्रकतार्णकै ।
कृतसवाधसर्वाशो हितपालकपालितै ॥
दिवाकररथाश्वाना लोभनार्थमिवोचितै ।
पृष्ठै कुकुमपकेन चलत्प्रोथपुटैर्मुखै ॥
उदरस्थकिशोराणा जवायैव प्रभजनम् ।
स्वच्छन्दमापिवन्तीना वडवाना गणैश्चित ॥
चरद्भिर् हससघातैर्घनैर्जनगुणैरिव ।
रवेणाकृष्टचेतोभिरत्यन्तधवल क्वचित् ॥
सगीतस्वनसयुक्तैर्मयूररवमिश्रितै ।
यस्मिन्मुरजनिर्घोषैर्मुखर गगन सदा ॥
शरन्निशाकरश्वेतवृत्तैर्मुक्ताफलोपमै ।
आनन्ददानचतुरैर्गुणवद्भिः प्रसाधित ॥
तर्पिताध्वगसघातै. फलैर्वरतरूपमै. ।
महाकुटुविभिर्नित्य प्राप्तोऽभिगमनीयताम् ॥

सारगमृगसद्गन्धमृगरोमभिरावृतै ।
हिमवत्पाददेशीयै कृतस्थैर्यो महत्तरै ॥
हता कुदृष्टयो यस्मिन् जिनप्रवचनाजनै ।
पापकक्ष च निर्दग्ध महामुनितपोऽग्निभि ॥"[२३]

यह मगधवर्णन बाण के 'हर्षचरित' के 'श्रीकण्ठ' जनपद-वर्णन से हूबहू मिलता है। अन्तर केवल इतना है कि बाण ने गद्य मे वर्णन किया है जब कि रविषेण ने पद्य मे कह दिया है। दूसरे, जहाँ बाण की उत्प्रेक्षाएँ ब्राह्मणसंस्कृतिपोषिणी है वहाँ रविषेण ने उन्हे या तो जैनी बाना देकर प्रस्तुत किया है या फिर छोड दिया है, यथा—"यत्र त्रेताग्निधूमाश्रुजलप्रक्षालिता इव अक्षीयन्त कुदृष्टय'। पच्यमानचयनेष्टकादहनदग्धानीव नादृश्यन्त दुरितानि। भिद्यमानयूपदारुपरशुपाटित इव व्यशीर्यत इवाधर्म" आदि। शेष समस्त वर्णन बाण के वर्णन का ही पुनराख्यान है; यथा—

"अस्ति पुण्यकृतामधिवासो वासवावास इव वसुधामवतीर्ण:, सततम् असकीर्णवर्णव्यवहारस्थिति कृतयुगव्यवस्थ, स्थलकमलवनबहुलतया पोत्रोन्मूल्यमानमृणालवलयै उन्मीलन्मेदिनीसारगुणैरिव कृतमधुकरकुलकोलाहलै हलैरुल्लिख्यमानक्षेत्र, क्षीरोदपय पायिपयोदसिक्ताभिरिव पुण्ड्रेक्षुवाटसन्ततिभिर्निरन्तर', प्रतिदिशम् अपूर्वपर्वतकैरिव खलधानधामभि विभज्यमानै सस्यकूटै सकटसीमान्त, समन्तादुद्घाटितघटीयन्त्रसिच्यमानै जीरकजूटकै जटिलितभूमि, उर्वरावरीयोभि शालेयैरलकृत, पाकविशरारुराजमापनिकरकर्बुरै स्फुटितमुद्गकोशीकपिशितै परिणतगोधूमधामभि स्थलीपृष्ठैरधिष्ठित, महिषपृष्ठप्रतिष्ठितगायद्गोपालपालितै कीटलम्पटवलाकानुसृतै अवटुघटितघण्टाघटीरणितरमणीयै अटद्भिरटवी हरवृषभपीतम् आमयाशकया बहुधा विभक्तम् क्षीरोदमिव क्षीर क्षरद्भि वाष्पच्छेद्यतृणतृप्तै गोधनै धवलितविपिन, विविधमखहोमधूमान्धशतमन्युयुक्तै' लोचनैरिव सहस्रसख्यै कृष्णसारै शारीकृतोद्देश, धवलधूलिमुचा च केतकीवनाना रजोभि पाण्डरीकृतै प्रमथोद्दलनभस्मधूसरै शिवपुरस्येव प्रदेशैरुपशोभित, श्यामाककन्दलश्यामलितग्रामोपकण्ठकाश्यपीपृष्ठ, पदे-पदे करभपालकै पीलुपल्लवप्रस्फोटितै करपुटपीडितकोमलमातुलुगीदलरसोपलिप्तै स्वेच्छाविरचितकुकुमकेसरकृतपुष्पप्रकरै प्रत्यग्रफलरसपानसुखप्रसुप्तपथिकै वनदेवतादीयमानामृतरसप्रपागृहैरिव द्राक्षालतामण्डपै स्फुटत्फलाना च बीजलग्नशुकचचुरागाणमिव समारूढकपिकुलकपोलसन्दिह्यमानकुसुमाना दाडिमीना वनै विलोभनीयोपनिर्गम, उपवनपालपीयमाननालिकेररसासवैश्च पथिकलोकलुप्यमानपिण्डखर्जूरै गोलागूललि-

---

२३. पद्मपुराण. २/१–३२

ह्यमानमधुरमोचापिण्डीरसै चकोरचञ्चुजर्जरितैलावनै. उपवनैरभिराम, तुगार्जुन-पाटलीपालीपरिवृतैश्च गोकुलावतारकलुषितकूलकीलालै अध्वगशतशरण्यै अरण्य-जलधारबन्धैरवरुध्यवनरन्ध्र, कलहायमानकरभीपकुमारककाल्यमानै औष्ट्रकै. औरभ्रकैश्च कृतसम्बाध दिशि-दिशि रविरथतुरगविलोभनायेव विलुठनमृदितकुकु-मस्थलीरससमालब्धानाम् उत्प्रोथपुटै मुखैरुदरगायिकिशोरकजवजननाय प्रभंजन-मापिबन्तीना वातहरिणीनामिव स्वच्छन्दचारिणीना वडवाना वृन्दै विहरद्भि आचित अनवरतक्रतुधूमान्धकारत्रस्तै. हसयूथै गुणैरिव धवलितभूतल, सगीता-हतमुरजरवमत्तै मयूरैरिव विभवमुखरितजीवलोक, शशिकरावदातवृत्तैः मुक्ता-फलैरिव गुणिभि प्रसाधित, पथिकशतविलुप्यमानस्फीतफलै महातरुभिरिव सर्व-थातिथिभिर्गमनीय, मृगमदपरिमलवाहिभि मृगरोमावच्छादितै हिमवत्पार्श्वैरिव महत्तरै. स्थिरीकृतः, प्रोद्दण्डशतपत्रोपविष्टद्विजोत्तमै नारायणनाभिमण्डलैरिव तोयाशयैर्मण्डित, मथितपय प्रवाहप्रक्षालितक्षितिभि मन्थनारम्भैरिव महाघोषै पूरिताश श्रीकण्ठो नाम जनपद ।"[२४]

२—इसी प्रकार 'राजगृह' नगर का वर्णन भी 'हर्षचरित' के 'स्थाण्वीश्वर' के वर्णन का ही पद्यात्मक रूपान्तर है, यथा—

"तत्रास्ति सर्वत कान्त नाम्ना राजगृह पुरम् ।
कुसुमामोदसुभग भुवनस्येव यौवनम् ॥
महिषीणा सहस्रैर्यत्कुकुमाचितविग्रहै ।
धर्मान्ति पुरनिर्भास धत्ते मानसकर्षणम् ॥
मरुदुद्धूतचमरैर्वालव्यजनशोभितै ।
प्रान्तैरमरराजस्य च्छाया यदवलम्बते ॥
सन्तापमपरिप्राप्तै. कृतमीश्वरमार्गणै ।
मनुजैर्यत्करोतीव त्रिपुरस्य जिगीषुताम् ॥
सुधारससमासगपाण्डुरागारपक्तिभि. ।
टककल्पितशीताशुशीलाभिरिव कल्पितम् ॥
मदिरामत्तवनिताभूषणस्वनसभृतम् ।
कुबेरनगरस्येव द्वितीय सन्निवेशनम् ॥
तपोवन मुनिश्रेष्ठैर्वेश्याभि. काममन्दिरम् ।
लासकैर्नृत्तभवन शत्रुभिर्यमपत्तनम् ॥

---

२४ हर्षचरित (केरल वि० वि० अनन्तशयन-ग्रथमाला-ग्रथाक १८७ सस्करण शकाब्द १८८०) पृ० ३।१३७—१४१

शस्त्रिभिर्वीरनिलयोऽभिलापमणिरर्थिभिः ।
विद्यार्थिभिर्गुरोः सद्म वन्दिभिर्धूर्तपत्तनम् ॥
गन्धर्वनगरं गीतशास्त्रकौशलकोविदैः ।
विज्ञानग्रहणोद्युक्तैर्मन्दिरं विश्वकर्मणः ॥
साधूनां सगमः सद्भिर्भूमिर्लाभस्य वाणिजैः ।
पंजरं शरणप्राप्तैर्वज्रदारुविनिर्मितम् ॥
वार्तिकैरम्बुरच्छिद्रं विदग्धैर्विटमण्डली ।
परिणामो मनोज्ञस्य कर्मणो मार्गवर्तिभिः ॥
चारणैरत्सवावासः कामुकैरप्सरःपुरम् ।
सिद्धलोकश्च विदितं यत्सदा सुखिभिर्जनैः ॥
यत्र मातंगगामिन्यः शीलवत्यश्च योषितः ।
श्यामाश्च पद्मरागिण्यो गौर्यश्च विभवाश्रयाः ॥
चन्द्रकान्तशरीराश्च शिरीषसुकुमारिकाः ।
भुजगानामगम्याश्च कंचुकावृतविग्रहाः ॥
महालावण्ययुक्ताश्च मधुराभापतत्परा ।
प्रसन्नोज्ज्वलवक्त्राश्च प्रमादरहितेहिताः ॥
कलत्रस्य पृथोर्लक्ष्मीं दधतेऽथ च दुर्विधाः ।
मनोज्ञा नितरां मध्ये सुवृत्ताश्चार्यतिं गताः ॥
लोकान्तपर्वताकारं यत्र प्रकारमण्डलम् ।
समुद्रोदरनिर्भासपरिखाकृतवेष्टनम् ॥"[२५]

"हर्षचरित' का "स्थाण्वीश्वर-वर्णन" इस प्रकार है :—

"तत्र चैवंविधे नानारामाभिरामकुसुमगन्धपरिमलसुभगो यौवनारम्भ इव भुवनस्य, कुंकुमकुड्मलमिलनपिंजरितवहुमहिषीसहस्रशोभितोऽन्तःपुरनिवेश इव धर्मस्य, मरुदुद्धूयमानचमरीवालव्यजनशतशवलितप्रान्तः एक देश इव सुरराज्यस्य, ज्वलन्मखशिखिसहस्रदीप्यमानदशदिगन्तः शिविरसन्निवेश इव कृतयुगस्य, पद्मासनावस्थित ब्रह्मर्षिध्यानाधीयमानसकलाकुशलप्रशमोऽवतार इव ब्रह्मलोकस्य कलकलमुखरमहावाहिनीशतसङ्कुलो विक्षेप इव उत्तरकुरूणाम्, ईश्वरमार्गण-सन्तापानभिज्ञसकलजनो विजगीषुरिव त्रिपुरस्य, सुधारससिक्तधवलगृहपंक्ति-पाण्डरः प्रतिनिधिरिव चन्द्रलोकस्य, मधुमदमत्तकाशिनीभूषणरवभरितभुवनो नामापहार इव कुबेरनगरस्य स्थाण्वीश्वराख्यो जनसन्निवेशः।

---

२५. पद्मपुराण २।३३-४१

· यश्च यौवनमिति युवतिभि , तपोवनमिति मुनिभि , कामायतनमिति वेश्याभिः सगीतशालमिति लासकै , यमनगरमिति शत्रुभि , चिन्तामणिभूमिरित्यर्थिभि , वीरक्षेत्रमिति शस्त्रोपजीविभि , गुरुकुलमिति विद्यार्थिभि , गन्धर्वनगरमिति गायनै:, विश्वकर्ममन्दिरमिति विज्ञानिभि., लाभभूमिरिति वैदेहकै , धूर्तस्थानमिति वन्दिभि , साधुसमागम इति सद्भि , वज्रपजरमिति शरणागतै·, विटगोष्ठीति विदग्धै , सुकृतपरिणाम इति पथिकै असुरविवरमिति वादिकै , शाक्याश्रम इति शमिभि , अप्सर पुरमिति कामिभि , महोत्सवसमाज इति चारणै , वसुधारेति च विप्रैरगृह्यत ।

यत्र च मातंगगामिन्य· शीलवत्यश्च, गौर्यो विभवरताञ्च, श्यामा पद्मरागिण्यश्च, धवलशुचिवदना मदिरामोदश्वसनाञ्च, चन्द्रकान्तवपुष शिरीषकोमलाग्यश्च, अभुजगगम्या कचुकिन्यश्च, पृथुकलत्रश्रियो दरिद्रमध्यकलिताश्च, लावण्यवत्यो मधुरभाषिण्यश्च, अप्रमत्ता प्रसन्नोज्ज्वलरागाश्च, अकौतुका· प्रौढाश्च प्रमदा ।"[२६]

३—इस प्रकार 'हर्षचरित' के 'राजा पुष्पभूति एव हर्ष के वर्णन' को 'पद्मपुराण' के 'राजा श्रेणिक के वर्णन' से मिलाया जा सकता है—

श्रेणिकवर्णन :

"आसीत्तत्र पुरे राजा श्रेणिको नाम विश्रुत ।
देवेन्द्र इव बिभ्राण सर्ववर्णधर धनु ॥
कल्याणप्रकृतित्वेन यश्च पर्वतराजवत् ।
समुद्र इव मर्यादालघनत्रस्तचेतसा ॥
कलाना ग्रहणे चन्द्रो लोकधृत्या धरामय ।
दिवाकर· प्रतापेन कुवेरो धनसम्पदा ॥

० ० ०

वृषाघातीनि नो यस्य चरितानि हरेरिव ।
नैश्वर्यचेष्टितं दक्षवर्गतापि पिनाकिवत् ॥
गोत्रनाशकरी चेष्टा नामराधिपतेरिव ।
नातिदण्डग्रहप्रीतिर्दक्षिणाशाविभोरिव ॥
वरुणस्येव न द्रव्य निस्त्रिंशग्राहरक्षितम् ।
नि फला सन्निधिप्राप्तिर्नोत्तराशापतेरिव ॥
बुद्धस्येव न निर्मुक्तमर्थवादेन दर्शनम् ।
न श्रीर्बहुलदोषोपघातिनी शीतगोरिव ॥

२६ हर्षचरित, ३।१४२–१४५

त्यागस्य नार्थिनो यस्य पर्याप्ति समुपागता ।
प्रज्ञायाश्च न शास्त्राणि कवित्वस्य न भारती ।।
साहसानि महिम्नो न नोत्साहस्य च चेष्टितम् ।
दिगाननानि नो कीर्तेर्न सख्या गुणसम्पद ।।
चित्तानि नानुरागस्य जनस्याखिलभूतले ।
कला न कुशलत्वस्य न प्रतापस्य शत्रव ।।"[२७]

पुष्पभूतिवर्णन . "तत्र च साक्षात्सहस्राक्ष इव सर्ववर्णधर धनुर्दधान, मेरुमय इव कल्याणप्रकृतित्वे, मन्दरमय इव लक्ष्मीसमाकर्षणे, जलनिधिमय इव मर्यादायाम्, आकाशमय इव शब्दप्रादुर्भावे, शशिमय इव कलासग्रहे, वेदमय इवाकृत्रिमालापे, धरणिमय इव लोकधृतिकरणे, पवनमय इव सकलपार्थिवरजोविकारापहरणे, गुरुर्वचसि, पृथुरुरसि, विशालो मनसि, जनकस्तपसि, सुमित्रस्तेजसि, सुमन्त्रो रहसि, वुध सदसि, अर्जुनो यशसि, भीष्मो धनुषि, निषधो वपुषि, शत्रुघ्न समरे, शूर. शूरसेनाक्रमणे, दक्ष प्रजाकर्मणि, सर्वादिराजतेज पुजनिर्मित इव राजा पुष्पभूतिरिति नाम्ना वभूव ।"[२८]

हर्षवर्णन "नास्य (हर्षदेवस्य) हरेरिव वृषविरोधीनि वालचरितानि, पशुपतेरिव दक्षजनोद्वेगकारीणि ऐश्वर्यविलसितानि, न शतक्रतोरिव गोत्रविनाशपिशुना प्रवादा , न यमस्येवातिवल्लभानि दण्डग्रहणानि, च वरुणस्येव निस्त्रिशग्राससहस्ररक्षिता रत्नालया ' न धनदस्येवातिनिष्फला सन्निधिलाभा , न जिनस्येवार्थशून्यानि विज्ञानदर्शनानि, न चन्द्रमस इव वहुदोपापहृता श्रिय ।"[२९]

"अपि च, अस्य (हर्षदेवस्य) त्यागस्यार्थिन , प्रज्ञाया शास्त्राणि, कवित्वस्य वाच , सत्वस्य साहसस्थानानि, उत्साहस्य व्यापारा , कीर्तेर्दिङ्मुखानि, अनुरागस्य लोकहृदयानि, गुणगणस्य सख्या, गुणगणस्य कला न पर्याप्तो विषय ।"[३०]

४—'अजना-पवनजय-सभोग' की ये पक्तियाँ भी 'वाण के हर्षचरित' की ही कृपा है —

"यथा ब्रवीति वैदग्ध्य यथाज्ञापयति स्मर ।
अनुरागो यथा शिक्षा प्रयच्छति महोदय. ।।
तथा तयो रति प्राप्ता दम्पत्योर्वृद्धिमुत्तमाम् ।"[३१]

---

२७ पद्मपुराण २।५०-६७
२८ हर्षचरित, तृतीय उच्छ्वास, पृ० १४६-१४७
२९. वही, द्वितीय उच्छ्वास, पृ० ११२-११३
३० हर्षचरित, द्वितीय उच्छ्वास,पृ० ११२
३१. पद्मपुराण, १६।१९२-१९३

"आगत्य च हसगद्गदया गिरा कृतसम्भाषणो यथा मन्मथ आज्ञापयति, यथा यौवनमुपदिशति यथा विदग्धताध्यापयति, यथा चानुराग शिक्षयति, तथाभिरामा रामामरमयत् ।"[३२]

५—इसी प्रकार दु खी किष्किन्ध के प्रति सुकेश आदि का प्रवोधन हर्षचरित के 'राज्यश्री को आचार्योपदेश' का ही प्रतिविम्ब है :—

"शोको हि पण्डितैर्दृष्ट पिशाचो भिन्ननामक. ।।

० ० ०

शोक. प्रत्युत देहस्य शोषीकरणमुत्तमम् ।
पापानामयमुद्रेको महामोहप्रवेशन. ।।"[३३]

"आयुष्मति । शोको हि नाम पर्याय पिशाचस्य, रूपान्तरमाक्षेपस्य, तारुण्य तमस, विशेषो विषस्य, अनन्तक प्रेतनगरनायक. । सर्वभक्षिणी निमील्य सोढव्य मर्त्यधर्मणा । पुण्यवति, पुरातन्य प्रवृत्तय. एता केन शक्यन्तेऽन्यथाकर्तुम् ?"[३४]

ऐसे स्थलो को देखकर स्पष्ट अवभासित हो जाता है कि रविषेण का काव्याद्यवेक्षण भी पर्याप्त विस्तृत था । वे जैन-साहित्य मे ब्राह्मणो द्वारा प्रणीत साहित्य की टक्कर की चीज देना चाहते थे । इसलिए उन्हे जहाँ से भी अच्छी चीज मिली उन्होने ग्रहण की । ऐसे अवसरो पर जहाँ तक कि वे बच सके है ब्राह्मणो के पौराणिक प्रसगो तथा उपमा-उत्प्रेक्षाओ से बचे है, किन्तु कविता के रस के आवेग मे जब वे आये है तो सारा जैनित्व विस्मृत कर बैठे है और 'त्रिपुर' आदि की चर्चा करने लगे है । ऐसा लगता है कि वे एक भी चमत्कारी अक्षर को छोडना नही चाहते । उन्हे इस बात का ध्यान नही रह जाता कि आगे उन्हे कोई 'सर्वप्रबन्धहर्ता साहसकर्ता' समझकर नमस्कार भी कर सकता है ।[३५]

रचना हो सकता है कि रविषेण का 'पद्मपुराण' अथवा 'पद्मचरित' के अतिरिक्त और कोई ग्रथ भी रहा हो किन्तु अभी तक उसका कोई प्रमाण उपलब्ध नही है। केवल 'पद्मपुराण' ही उनकी एकमात्र रचना है जो जैन रामकाव्य परम्परा

३२. हर्षचरित, प्रथम उच्छ्वास, पृ० ५५

३३ पद्मपुराण, ६।४८०-४८६

३४ हर्षचरित, सप्तम उच्छ्वास, पृष्ठ ४०२-४०७

३५ बाण के प्रभाव के लिए और भी देखिए—'पद्मपुराण' ६।२००, ६।३३९-३५२, ८।५२३-५२७, ९।११२-११३, १७।८२, ३०।१५२, ३३।२२-३४, ३३।२६४-२६५, ७२।११-१७, ९५।१६ आदि ।

का सर्वप्रथम सस्कृत-महाकाव्य है।[३६] इसका पूर्ण परिचय आगे दिया जा रहा है।

पद्मपुराण एक विवेचन

जैनाचार्य रविषेण कृत 'पद्मपुराण' राम-कथा-साहित्य मे पर्याप्त महत्त्वपूर्ण है। यह सस्कृत-साहित्य-सागर का उज्ज्वल रत्न है, जैन-धर्म-ग्रथमाला का सुमेरु है, हिन्दी खडी वोली के विकास मे सहायक है। यह काव्य के समस्त लक्षणो से परिपूर्ण है और जैन धर्म-शास्त्रो का निष्यन्द है। यही कारण है कि स० १८१८ मे प० दौलतराम जी द्वारा उसका भाषानुवाद किया गया जो प्रत्येक दिगम्वर जैन का कण्ठहार वन गया और जिसकी एक न एक प्रति दिगम्वर-जैन-मन्दिरो मे अवश्य पाई जाती है। जो स्थान वैष्णवो मे तुलसीदास के 'रामचरित मानस' को प्राप्त है वही जैन-समाज मे इस 'पद्मपुराण' को प्राप्त है। यह जैन-साहित्य मे सस्कृत का सर्वप्रथम रामकथा-सम्वन्वी महाकाव्य है।

'पद्मपुराण' के दो नाम प्रसिद्ध हैं—'पद्मपुराण' और 'पद्मचरित'। अन्त साक्ष्य के आधार पर इसका नाम 'पद्मचरित' ही सिद्ध होता है; क्योकि कवि ने कहा है —'पद्मस्य चरितं वक्ष्ये पद्मालिंगितवक्षस ।'[३७] तथा—'चरित पद्ममुनेरिदं निवद्धम् ।'[३८]

---

३६ माणिकचन्द्र-दिगम्वर-जैन-ग्रन्थमाला, वम्वई से १९८५ वि० स० मे प्रकाशित पद्म-पुराण (पद्मचरितम्) के प्राक्कथन मे श्री नाथूराम प्रेमी ने रविषेण की एक और रचना के रूप मे 'वरागचरित' को यह लिखते हुए स्वीकार किया है—"आचार्य रविषेण का यद्यपि इस समय केवल यही (पद्मपुराण) ग्रथ उपलव्ध है, परन्तु ऐसा जान पडता है कि इसके सिवाय उनके कुछ और भी ग्रथ होगे जिनमे से 'वरागचरित' का उल्लेख 'हरिवशपुराण' के प्रारम्भ मे इस प्रकार किया गया है—

वरागनेव सर्वांगैर्वरागचरितार्थवाक् ।
कस्य नोत्पादयेद्गाढमनुराग स्वगोचरम् ॥३५

श्वेताम्वर-सम्प्रदाय के आचार्य उद्योतन सूरि ने अपने 'कुवलयमाला' नामक प्राकृत ग्रन्थ मे भी, जो शकसवत् ७०० (वि० स० ८३५) की रचना है, रविषेण के 'पद्मचरित' और 'वरागचरित' का उल्लेख किया है—

'जेहि कए रमणिज्जे वरग-पउमाण-चरितवित्थारे।
कहव ण सलाहणिज्जे ते कइणो जइय रविसेणो ॥'

अर्थात्—जिसने रमणीय वरागचरित और पद्मचरित का विस्तार किया उस कवि रविषेण की कौन सराहना नही करेगा ?" किन्तु उनका यह कथन उनके ही वचन-विरोध से अपास्त हो जाता है जव कि वे 'जैन-साहित्य और इतिहास' नामक अपने ग्रन्थ के पृ० २७३ पर 'वराग-चरित' को 'जटिलमुनि' की रचना स्वीकार करते हैं।

३७. पद्मपुराण, १।१६

३८ पद्मपुराण, १२३।१८२, और भी १।१०२,१०३ (सेवध्य चरितम्, नि शेष चरितम्)

इसका नाम 'पद्मपुराण' ही अधिक प्रसिद्ध है।[३९] ग्रन्थ के ऊपर यही नाम प्राय पडा मिलता है। इसका कारण क्या है?—इस प्रश्न के उत्तर मे यह अनुमान होता है कि जैन-साहित्य की वह प्रवृत्ति ही इसकी जननी है जिसके अनुसार ब्राह्मण-साहित्य मे उपलब्ध ग्रन्थो के नाम जैन-साहित्य के ग्रन्थो पर अंकित किये जाते थे जिससे प्रचार मे अधिक सुगमता हो तथा जैनेतर जनता मे जैन-भावना को पहुँचाया जा सके। प्राय देखा गया है कि जैन-वाड्मय के अनेक ग्रन्थो के नाम ब्राह्मण-साहित्य के ग्रन्थो के सदृश है। इसका लाभ यह था कि यदि कभी कोई शीर्षक देखकर ही ग्रन्थ पढ लेता तो वह जैन-भावना से परिचित हो सकता था। यही कारण प्रतीत होता है कि ब्राह्मण धर्म के सुप्रसिद्ध पुराण 'पद्मपुराण' के आधार पर इसका नाम 'पद्मपुराण' पड गया हो या डाल दिया गया हो। अनपढ जनता इसे ही प्राचीन 'पद्मपुराण' समझकर सुन सकती थी और उसे जैनी बनाया जा सकता था। हमने भी इस प्रसिद्धि को ध्यान मे रखते हुए 'पद्मपुराण' का ही व्यपदेश दिया है।

'पद्मपुराण' मे पद्म (राम) का चरित्र जैन विचारधारानुसार वर्णित है। जैन-धर्म मे पद्म (राम), लक्ष्मण तथा रावण त्रिषष्टिशलाकापुरुषो मे परिगणित हुए है। जैन मान्यता के अनुसार प्रत्येक कल्प के त्रिषष्टि (६३) महापुरुष ये होते है—२४ तीर्थंकर, १२ चक्रवर्ती, ९ बलदेव, ९ वासुदेव तथा ९ प्रतिवासुदेव। बलदेव, वासुदेव तथा प्रतिवासुदेव समकालीन होते है। राम, लक्ष्मण और रावण क्रमश. अष्टम, बलदेव, वासुदेव तथा प्रतिवासुदेव है। बलदेव (बलभद्र) वासुदेव (नारायण) किसी राजा की भिन्न-भिन्न रानियो के पुत्र होते है। वासुदेव अपने बडे भाई बलदेव के साथ प्रति वासुदेव (प्रतिनारायण) से युद्ध करते हैं और अन्त मे प्रतिवासुदेव का वध करते है। इसके बाद वे दिग्विजय करके भारत के तीन खडो पर अधिकार प्राप्त करते है और इस प्रकार अर्ध-चक्रवर्ती बन जाते हैं। मरने पर वासुदेव को प्रतिवासुदेव के वध के कारण नरक जाना पडता है। नौ वासुदेवो मे लक्ष्मण और कृष्ण विशेषत उल्लेखनीय है। बलदेव अपने भाई की मृत्यु के कारण शोकाकुल होकर जैन-दीक्षा लेकर मोक्ष प्राप्त करते हैं (जैसे राम और

---

३९ यद्यपि 'युक्ता सन्त पुराणेऽस्मिन्नधिकारा इमे स्मृता (१।४४)' तथा 'पुराणममल (१२३।१६९)' मे पुराण नाम भी आया है किन्तु यह स्पष्ट नहीं है। पुष्पिका मे पहले और दूसरे खड मे प्राय 'इति श्री रविषेणाचार्य-प्रोक्ते श्रीपद्मचरिते' लिखा है यद्यपि उसमें भी बाद मे 'पद्मपुराणे' प्रयुक्त हुआ है। इससे यही सिद्ध होता है कि पहले तो रविषेण ने इसे 'पद्मचरित' ही कहा है (दे० पुष्पिका पर्व १-४४ तथा ४५-६५ कहीं-कहीं) किन्तु बाद मे इसे 'पद्मपुराण' कहा है।

बलराम)। प्रतिवासुदेव सदैव वासुदेव का विरोध करते है। (जैसे रावण और जरासध) इसी मान्यता के अनुसार 'पद्मपुराण' मे अष्टम बलदेव, वासुदेव तथा प्रति वासुदेव का चरित्र निवद्ध किया गया है।

'पद्मपुराण' के आधार की चर्चा करते हुए रविषेण ने वताया है कि यह राम-कथा पहले वर्द्धमान जिनेन्द्र के द्वारा कही गयी थी, जो कि 'इन्द्रभूति' नामक गणधर 'सुधर्माचार्य' तथा 'कीर्त्तिधर' को प्राप्त होती हुई उन्हे मिली है —

"वर्द्धमानजिनेन्द्रोक्त सोऽयमर्थो गणेश्वरम्।
इन्द्रभूतिं परिप्राप्त सुधर्मं धारणीभवम्॥
प्रभव क्रमत कीर्ति ततोऽनुत्तरवाग्मिनम्।
लिखित तस्य सम्प्राप्य रवेर्यत्नोऽयमुद्गत॥"[४०]

'पद्मपुराण' का प्रारम्भ विविध-वन्दनाओ सहित कवि की विनीतता के प्रदर्शन के साथ हुआ है जिसमें सत्कथा-सम्वन्धी इन्द्रियो की सार्थकता सिद्ध की गयी है। 'पद्मपुराण' के अन्त मे इसका माहात्म्य-कथन हुआ है तथा इसके काव्य-सौष्टव का सकेत किया गया है —

"बलदेवस्य सुचरित दिव्य यो भावितेन मनसा नित्यम्।
विस्मयहर्षाविष्टस्वान्त प्रतिदिनमपेतशकितकरण॥
वाचयति शृणोति जनस्तस्यायुर्वृद्धिमीयते पुण्य च।
आकृष्टखड्गहस्तो रिपुरपि न करोति वैरमुपशममेति॥
किंवान्यद्धर्मार्थी लभते धर्मं यश पर यशसोऽर्थी।
राज्यभ्रष्टो राज्य प्राप्नोति न सशयोऽत्र कश्चित्कृत्य॥
इष्टसमायोगार्थी लभते त क्षिप्रतो धन धनार्थी।
जायार्थी वरपत्नी पुत्रार्थी गोत्रनन्दन प्रवरपुत्रम्॥
अक्लिष्टकर्मविधिना लाभार्थी लाभमुत्तम सुखजननम्।
कुशली विदेशगमने स्वदेशगमनेऽथवापि सिद्धसमीह॥
व्याधिरुपैति प्रशम ग्रामनगरवासिन. सुरास्तुष्यन्ति।
नक्षत्रै सह कुटिला अपि भान्वाद्या ग्रहा भवन्ति प्रीता.॥
दुश्चिन्तितानि दुर्भवितानि दुष्कृतशतानि यान्ति प्रलयम्।
यत्किंचिदपरमशिव तत्सर्व क्षयमुपैति पद्मकथाभि॥

० ० ०

व्यजनान्त स्वरान्त वा किंचिन्नामेह कीर्तितम्।
अर्थस्य वाचक शब्द शब्दो वाक्यमिति स्थितम्॥

४०. पद्मपुराण १।४१-४२

लक्षणालङ्कृती वाच्य प्रमाण छन्द आगम ।
सर्व चामलत्तेन ज्ञेयमत्र मुखागतम् ।।
इदमष्टादश प्रोक्त सहस्राणि प्रमाणतः ।
शास्त्रमानुष्टुपश्लोकैस्त्रयोविंशतिसगतम् ।।" ४१

'पद्मपुराण' की रचना का उद्देश्य है--आर्य रामायणो की अतिमानवीय घटनाओ का बौद्धिक विश्लेषण करके राम को जिनदीक्षा दिलाकर मोक्ष प्राप्ति का साधन जिनदीक्षा को ही सिद्ध करना। इसीलिए राजा श्रेणिक ने प्रचलित रामायण की घटनाओ के विषय मे अपने सन्देह को गौतम गणधर के सम्मुख पूर्वपक्ष के रूप मे रखा जिसका उत्तरपक्ष गौतम के द्वारा सम्पन्न हुआ तथा राक्षसो, वानरो आदि की समस्याओ का बुद्धिसगत समाधान सामने आया। भाव यह है कि 'पदमपुराण' मे राम कथा को तर्कसम्मत बनाने का प्रयत्न किया गया है।

'पद्मपुराण' की रचना सन् ६७७-७८ ई० मे हुई थी जैसा कि पहले उल्लेख किया जा चुका है। इसका पहला प्रेस सस्करण वि० स० १९८५ मे माणिकचन्द्र-ग्रथमाला, बम्बई से प्रकाशित हुआ है। हिन्दी-अनुवाद सहित इसका प्रकाशन भारतीय ज्ञानपीठ काशी ने जुलाई, १९५८ मे किया है। इससे पूर्व यह ग्रथ हस्त लिखित था।

'पद्मपुराण' की प्राचीन प्रतियाँ . भारतीय ज्ञानपीठ से जुलाई १९५८ मे प्रकाशित पद्मपुराण की भूमिका मे उसकी इन पाँच प्रतियो का उल्लेख किया गया है—

(१) **दिगम्बर-जैन-सरस्वती-भडार धर्मपुरा, देहली वाली प्रति-१** —इसमे १२ × ६ इच के साइज के २४६ पत्र हैं। प्रारम्भ मे प्रतिपत्र मे १५-१६ पक्तियो और प्रतिपक्ति मे ४० तक अक्षर है पर बाद मे प्रति पत्र मे २४ पक्तियाँ और प्रतिपक्ति मे ५७-५८ तक अक्षर है। अधिकाश श्लोको के अक लाल स्याही मे दिये गये है किन्तु पीछे के हिस्से मे केवल काली स्याही का प्रयोग किया गया है। इस पुस्तक की तिथि पौष बदी ७, बुधवार सवत् १७७५ को भुसावर निवासी श्री मानसिंह के पुत्र सुखानन्द ने पूर्ण की है। पुस्तक के लिपिकर्ता सस्कृत के ज्ञाता नही प्रतीत होते हैं इसलिए भाषागत अनेक अशुद्धियाँ लिपि मे रह गयी हैं। पुस्तक के अन्त मे यह लेख पाया जाता है —

"इति श्रीपद्मपुराणसपूर्ण भवत । लिख्यत सुखानन्द मानसिंहसुत वासी सुयान

४१. पद्मपुराण १२३।१५६-१८६

भुसावर के मोत्र वैनाडा लिपि लिखी सुग्राने मधि सवत् सत्रैसै पचहत्तर मिति पौष-वदी सप्तमी बुधवार शुभ कल्याण ददातु। जाइसी पुस्तक दृष्ट्वा ताइसी लिखत मया। जादि शुद्धमशुद्ध वा मम दोषो न दीयते ॥१॥ सज्जनस्य गुण ग्राह्यं दोष-तिक्त गुणार्णवम्। अय शुद्ध कृत तस्य मौक्षसौख्यप्रदायकम् ॥२॥ जो कोई पढे सुने त्याहनै म्हारी श्रीजिनाय नम । सज्जन ऐही वीनती साधर्मी सो प्यार। देव धर्म गुरु परख के सेवो मन बच सार॥ देव धरम गुरु जो लखे तें नर उत्तम जान॥ सरधा रुचि परतीति सौ सो जिय सम्यक् वान॥ देव धरम सू परखिये सो है सम्य-क्वान। दर्शन गुण ग्रह आदि ही ज्ञान अग रुचि मान॥ चारित अधिकारी कहो मोक्ष रूप त्रय मान। सज्जन सो सज्जन कहै एहू सार तव जान॥ निश्चै अरु व्यव-हार नय रत्नत्रय मन खान। अप्पा दसन नानमय चारितगुन अप्पान। अप्पा-अप्पा जोइये ज्यो पावै नियनि शुभमस्तु।"

(२) **दिगम्बर-जैन-सरस्वती-भवन पंचायती मन्दिर, मसजिद खजूर, देहली वाली प्रति**—इसमे ११ × ५ इच के साइज के ५१० पत्र हैं। प्रतिपत्र में १४ पक्तियाँ और प्रति पक्ति मे ४०-४१ तक अक्षर है। पुस्तक के अन्त मे प्रतिलिपि-सवत् तथा लिपिकर्ता का कोई उल्लेख नही है। इस प्रति के बीच-बीच मे कितने ही पत्र जीर्ण हो जाने के कारण अन्य लेखक के द्वारा फिर से लिखाकर मिलाये गये है। प्राचीन लिपि प्राय शुद्ध है किन्तु नये मिलाये गये पत्रो मे अनेक अशुद्धियाँ रह गयी है। इस प्रति के प्रारम्भ मे १-२ श्लोको की सस्कृत टीका भी दी गयी है।

उपर्युक्त दोनो प्रतियो का प्रस्तुतीरकण प० परमानन्द जी शास्त्री ने किया है।

(३) **अतिशय क्षेत्र महावीर जी वाली प्रति**—इसमे १२ × ५ इच साइज के ५५४ पत्र है। प्रति के कागज से यह पता चलता है कि यह बहुत प्राचीन है किन्तु अन्त मे लिपि का सवत् और लिपिकार का कोई सकेत नही है। ऐसा प्रतीत होता है कि इस प्रति के अन्त का एक पत्र गुम हो गया है अन्यथा उसके लिपि सवत् आदि का कुछ उल्लेख अवश्य मिल जाता। पुस्तक की जीर्णता के कारण प्रारम्भ मे ४४ पत्र नये लिखकर लगाये गये हैं। इन ४४ पत्रो में प्रति पत्र १३ पक्तियाँ तथा प्रति पक्ति ४०-४५ तक अक्षर है। प्राचीन पत्रो मे १२ पक्तियाँ और प्रति पक्ति ३५-३८ तक अक्षर है। अधिकाश लिपि शुद्ध की गयी है। इस प्रति मे भी सख्या २ के समान प्रारम्भ के १-२ श्लोको की टीका है।

(४) **धन्नालाल ऋषभचन्द्र रामचन्द्र बम्बई वाली प्रति—२**—इस पुस्तक मे १३ × ६ इच साइज के २६५ पत्र है। प्रति पत्र मे १९ पक्तियाँ और प्रति पक्ति मे ५५ से ६० तक अक्षर हैं। लिपि के सवत् और लिपिकार का कोई उल्लेख नही है। परन्तु प्रतीत होता है कि लिपिकर्ता सस्कृत का ज्ञाता था अतएव लिपिगत

अशुद्धियाँ नगण्य हैं। प्राय सब पाठ शुद्ध अंकित किये गये हैं। बीच-बीच मे कठिन स्थलो पर टिप्पणियाँ भी दे दी गयी हैं।

(५) **दिगम्बर-जैन-सरस्वती-भण्डार धर्मपुरा, देहली वाली प्रति–२.**—

इसकी भी उपलब्धि पं० परमानन्द शास्त्री के सौजन्य से ही हुई है। इसमे १०×५ इच साइज के ५८ पत्र है। बहुत ही सक्षेप मे पद्मपुराण के कठिन स्थलो पर टिप्पणियाँ दी गई है। इसकी लिपि पौष वदी ५ रविवार सवत् १८९४ को पूर्ण हुई। यह लश्कर मे लिखी गयी है। इसके लिपिकर्ता का पता नही चलता। टिप्पणी के रचयिता का निम्नलिखित उल्लेख प्रति के अन्त मे मिलता है —

"लाट वागड श्री प्रवचन सेन पण्डितान् पद्मचरित समाकर्ण्य वलात्कारगण श्री नन्द्याचार्य सत्शिष्येण श्रीचन्द्रमुनिना श्रीमद्विक्रमादित्य-सम्वत्सरे सप्ताशी-त्यधिक सहस्र (परिमित) श्रीमद्धाराया श्रीमतो राज्ये भोजदेवस्य पद्मचरिते।" इसकी लिपि मे पर्याप्त अशुद्धियाँ है।

६ **माणिकचन्द्र-ग्रन्थमाला बम्बई की छपी हुई प्रति** साहित्यरत्न प० दरबारी लाल जी न्यायतीर्थ के द्वारा सम्पादित होकर श्रीनाथूराम प्रेमी के 'प्राक्कथन' के साथ वि० स० १९५८ मे प्रकाशित हुई है।

इन सभी प्रतियो का मिलान करके 'भारतीय ज्ञानपीठ', काशी से जुलाई, १९५८ मे प० पन्ना लाल जैन ने सानुवाद 'पद्मपुराण' तीन भागो मे सम्पादित किया है जिसमे कही-कही प्रूफ और कही अनुवाद की भी अशुद्धियाँ रह गई है। हमने अध्ययन के लिये इसे ही आधार बनाया है।

कथासार[४२]. कथा का प्रारम्भ राजा श्रेणिक की प्रार्थना पर गौतम गणधर द्वारा किया गया है। पहले ऋषभदेव की उत्पत्ति और नीलाजना के नृत्य के समय उसकी मत्यु की घटना से ऋषभ के वैराग्य की कथा दी गयी है। तदनन्तर भरत-बाहुबलि की कथा, राजा सगर का वृत्तान्त एवम् महारक्ष और उसके वशजो का वर्णन है। इसी वशपरम्परा के अन्तिम राजा कीर्तिधवल तथा उसके साले श्रीकण्ठ के द्वारा वानर वश की उत्पत्ति हुई। श्रीकण्ठ ९ वी पीढी के राजा अमर-प्रभ ने वानर-चिह्न स्वीकार किया और इस प्रकार राक्षस-वश और वानर-वश प्रख्यात हुए जिनका पर्याप्त विस्तार हुआ तथा जिनके विषय मे अनेक कथाएँ हैं। विजयार्द्ध की दक्षिण श्रेणी मे रथनूपुर नाम के नगर मे इन्द्र नामक प्रतापी विद्याधर रहता था। उसने लका को जीतकर अपने राज्य मे मिला लिया। पाताल-लका के रत्नश्रवा का विवाह कौतुकमगलनगरी के व्योमबिन्दु की छोटी पुत्री केकसी

४२. रविषेण ने 'सूत्रविधान' नामक प्रथम पर्व मे अनुक्रमणिका के रूप मे यह सार दिया है। रामकथा का सार १०२ पर्व मे भी दिया गया है।

से हुआ था। रावण इन्ही का पुत्र था। इसने वाल्यावस्था मे वहुरूपिणी आदि अनेक विद्याएँ सिद्ध की थी। भानुकर्ण, विभीपण तथा चन्द्रनखा इसके सहोदर थे। रावण और भानुकर्ण ने लकाधिपति इन्द्र और वैश्रवण से अपने पूर्वजो द्वारा अध्युष्ट लकानगरी को छीन लिया तथा अपना राज्य स्थापित किया। खरदूषण ने रावण की वहिन चन्द्रनखा का हरण कर लिया। वाद मे रावण ने उन दोनो का विवाह कर दिया तथा पाताललका का राज्य खरदूषण को दे दिया।

वानरवश के प्रभावशाली शासक वालि ने ससार से विरक्त होकर अपने छोटे भाई सुग्रीव को राज्य दे दिया और स्वय दिगम्वर दीक्षा धारण कर ली। यह कैलास पर्वत पर तपस्या करने लगा। रावण को अपने वल का वडा अभिमान था। फलस्वरूप वह वालि पर क्रुद्ध होकर कैलास को उठाने लगा। पर्वत पर बने हुए जिनालयो की रक्षा के लिए वालि ने कैलास पर्वत को अपने पैर के अगूठे से वलपूर्वक दबा लिया, इससे रावण को अत्यन्त कष्ट उठाना पडा। वाद में वालि ने रावण को छोड दिया और तस्पया कर निर्वाण प्राप्त किया।

अयोध्या मे भगवान् ऋपभदेव के वश से समयानुसार अनेक राजा हुए। प्राय सभी ने दिगम्वर दीक्षा ली और तपस्या द्वारा मोक्ष प्राप्त किया। इसी वश मे राजा रघु का अनरण्य नामक पुत्र हुआ। इसकी रानी पृथ्वीमती से अनन्तरथ तथा दशरथ दो पुत्र हुए जिनमे अनन्तरथ अपने अपने पिता के साथ ससार से विरक्त होकर तपस्या करने चले गये तथा अयोध्या का शासन दशरथ ने सँभाला। एक दिन दशरथ की सभा मे नारद ने आकर वताया कि 'रावण ने किसी निमित्त-ज्ञानी से यह जान लिया है कि दशरथपुत्र और जनकपुत्री उसकी मृत्यु का कारण होगे—

"नैमित्तेन समादिष्ट तेन सागरवुद्धिना।
भविता दशवक्त्रस्य मृत्युर्दाशरथि. किल॥
दुहिता जनकस्यापि हेतुत्वमुपयास्यति।"[४३]

अत. उसने विभीषण को आप दोनो को मार देने के लिये नियुक्त कर दिया है। आप सावधान रहे और हो सके तो कही छिप जायँ।' राजा दशरथ अपनी रक्षा के लिये देश देशान्तर मे गये तथा मार्ग मे कौतुकमगलनगर के राजा की पुत्री कैकया से विवाह किया। कुछ समय पश्चात् विभीषण का खटका समाप्त होने पर दशरथ के अयोध्या आने पर उनकी चार रानियो से पद्म (राम), लक्ष्मण, भरत तथा शत्रुघ्न ये चार पुत्र उत्पन्न हुए। समयानुसार दशरथ ने

---

४३ पद्म०, २३।२५-२६

राम का राज्याभिषेक करना चाहा किन्तु कैकया ने अपने पूर्वार्जित वर को ध्यान दिलाकर दशरथ से भरत के लिए राज्य माँग लिया। राम ने इसे स्वीकार किया तथा वनगमन का निश्चय कर लिया। दशरथ ने भी बात मान ली और दीक्षा ले ली। राम के साथ लक्ष्मण-सीता भी वन गये। वन मे रावण के द्वारा सीता का हरण किये जाने पर राम ने वानरवशी विद्याधर पवनजय और अजना के पुत्र हनूमान् एवं सुग्रीव से मित्रता की तथा सुग्रीव के शत्रु साहसगति विद्याधर का वध कर सुग्रीव को अपना वशवद बना लिया जिसकी सहायता से रावण-वध कर सीता को प्राप्त किया। रावण जैन-धर्मानुयायी था। प्रतिदिन जिन-पूजा करता था किन्तु 'भवितव्यता वलीयसी' के अनुसार वह मोहग्रस्त होकर अनीति के मार्ग पर चला जिसके कारण उसके कुल का सहार हुआ।

अयोध्या लौट आने पर लोकापवाद के भय से राम ने सीता को निर्वासित कर दिया। जिस स्थान पर जगल मे सीता को छोडा गया था वहाँ सौभाग्य से वज्रजघ नामक राजा आ गया। उसने सीता की रक्षा की तथा उसके नगर मे जाने पर सीता ने दो पुत्र लवणाकुश उत्पन्न किये जिन्होने अपने पराक्रम से अनेक राज्यो को जीतकर वज्रजंघ के राज्य की वृद्धि की। दिग्विजय के समय इनका राम-लक्ष्मण से युद्ध हुआ जिसमे पिता-पुत्र परिचित हुए। सीता को राम ने वुलाया। सीता ने आकर अग्नि-परीक्षा दी तथा उत्तीर्णता प्राप्त की। वह विरक्त होकर तपस्या करने चली गयी। अन्त मे उसने स्त्री-लिंग छेदकर स्वर्ग प्राप्त किया। लक्ष्मण की मृत्यु हो जाने पर राम अत्यन्त शोकाभिभूत हो गये। कुछ समय वोध प्राप्त कर लेने पर वे दिगम्बर मुनि हो गये। उन्होने कठोर तप किया और वे केवली होकर निर्वाण के अधिकारी हुए।

सप्त अधिकार 'पद्मपुराण' का प्रमाण १८०२३ श्लोक है। रविषेण के द्वारा कही हुई कथा सात अधिकारो मे विभक्त है—(१) लोकस्थिति, (२) वशो की उत्पत्ति, (३) वन के लिए प्रस्थान, (४) युद्ध, (५) लवणाकुश की उत्पत्ति, (६) भवान्तर निरूपण तथा (७) रामचन्द्र जी का निर्वाण। ये सातो अधिकार अनेक प्रकार के सुन्दर पर्वो से सुशोभित है—

"स्थितिर्वंश-समुत्पत्ति प्रस्थान सयुग तत ।
लवणाकुशसम्भूतिर्भवोक्ति परनिर्वृ ति ॥
भवान्तरभवैर्भूरिप्रकारैश्चारुपर्वभि ।
युक्ता सप्त पुराणेऽस्मिन्नधिकारा इमे स्मृता ॥"

पर्वो की सख्या १२३ है।[४४] प्रत्येक पर्व के अन्तिम श्लोक मे 'रवि' शब्द आया है। इसलिए इसे 'रव्यक' भी कहा जाता है।[४५] (सस्कृत मे ऐसी परम्परा बहुत रही है। भारवि और माघ ने भी 'श्री' या 'लक्ष्मी'—शब्द अपने ग्रन्थो के अन्तिम श्लोको मे रखा है।)

उपर्युक्त सात अधिकारो मे से 'स्थित्यधिकार' का तो चतुर्थ पर्व के अन्त स्पप्ट उल्लेख है—

स्थित्यधिकारोऽय ते श्रेणिक गदित समासतस्त्वेनम्।
वशाधिकारमधुना पुरुषरवे! विद्धि सादर वच्मि॥ (पद्म० ४।१३२)

किन्तु अन्य अधिकारो का स्पप्ट उल्लेख नही है। यदि इन अधिकारो के पूर्वापर प्रभाव को ध्यान मे रखते हुए पर्वो का इनमे विभाजन किया जाय तो वह कथचित् इस प्रकार है (१) स्थिति (१-४), (२) वशसमुत्पत्ति (५-२५), (३) प्रस्थान (२६-४४), (४) सयुग (४५-८०), (५) लवणाकुशसभूति (८१-१०५), (६) भवोक्ति (१०६-११९) तथा (७) परनिर्वृति (१२०-१२३)।

किन्तु यदि 'पद्मपुराण' के पर्वो का इन छ भागो मे विभाजन किया जाय तो स्पष्टता तथा सुगमता अधिक रहती है (१) रावण चरित (१-२०), (२) राम और सीता का जन्म तथा विवाह (२१-३२), (३) वनभ्रमण (३३-४२), (४) सीताहरण और खोज (४३-५३), (५) युद्ध (५४-८८), (६) उत्तर-चरित (८९-१२३)। इन्ही छ भागो के आधार पर हम 'पद्मपुराण' के कथा-रोहण पर विचार करेगे।

(१) रावणचरित (पर्व १-२०) . मगलाचरण, ग्रन्थकर्तृ प्रतिज्ञा, सत्कथा-

---

४४. इन पर्वो को काण्डो मे विभक्त करने का अधूरा उपक्रम भी किया गया है। १९वें पर्व के बाद लिखा मिलता है—'इति विद्याधरकाण्ड समाप्तम्।' इसी प्रकार मस्जिद खजूर वाली तथा बम्बई वाली प्रति मे २३वें पर्व के अन्त मे 'इति श्रीजनक-दशरथ कालनिवर्तनम्' लिखा मिलता है। किन्तु 'विद्याधरकाण्ड' के अतिरिक्त और किसी काण्ड का उल्लेख नही है। हो सकता है कि रविषेण के बाद किसी लेखक ने 'पद्मपुराण' को काण्डो मे विभाजित करना चाहा हो जैसा बाद मे स्वयम्भू के 'पउमचरिउ' का काण्डो मे विभाजन है किन्तु बाद उसका ध्यान इस ओर न रहा हो अथवा उसने जानबूझकर छोड दिया हो।

४५. यथा—'सन्मार्गे प्रकटीकृते हि रविणा कश्चारुदृप्टि स्खलेत्?' (१।१०३)
'रविरिव शरदभ्रोदारवृन्दादभासीत्।' (२।२५६)
'भित्वा ध्वान्त खे रवेस्तुल्यचेष्टा।' (३।३३९)
'पुरुपरवे विद्धि सादर वच्मि।' (४।१३२) आदि।

प्रशसा, सज्जन-प्रशसा तथा दुर्जननिन्दा के साथ ग्रन्थ का अवतरण होता है तथा ग्रन्थ मे निरूप्यमाण विपयो का 'सूत्र-विधान' किया गया है (पर्व १)। मगध-देश मे स्थित राजगृह नगर के राजा श्रेणिक का महावीर के समवसरण मे गमन होता है तथा लौटकर रात्रि मे उसे रामकथा-सम्बन्धी सन्देह होता है। मुख्य सन्देह वानर और राक्षसो के विषय मे है (पर्व २)। अगले दिन वह समवसरण मे जाकर रावण के वास्तविक स्वरूप और चरित के विषय मे प्रश्न करता है जिसके उत्तर मे गौतम गणधर उसे रावण का वास्तविक चरित्र सुनाने का उपक्रम करते है तथा इसके लिए वे एक प्रस्तावना तैयार करते है, क्योकि 'न विना पीठवन्धेन विधातु सद्म शक्यते।' इसी प्रस्तावना के रूप मे क्षेत्र, काल तथा चौदह कुलकरो का वर्णन, चौदहवे कुलकर नाभिराय और उनकी स्त्री मरुदेवी का वर्णन, भगवान् ऋषभदेव के गर्भारोहण, जन्म कल्याणक तथा दीक्षा-कल्याणक का वर्णन एव भगवान् आदिनाथ के ध्यानारूढ रहने के समय नमि-विनमि के आगमन के और धरणेन्द्र के द्वारा उन्हे उत्तर-दक्षिण श्रेणियो के राज्यदान का वर्णन है, (पर्व ३)। प्रसगानुसार भगवान् ऋषभदेव का राजा सोमप्रभ और श्रेयास के आहार होना, केवल ज्ञान की उत्पत्ति, समवसरण की रचना, दिव्य-ध्वनि का खिरना, भरत-वाहुवली का युद्ध तथा वाहुवली का दीक्षा लेना, भरत के द्वारा ब्राह्मण वर्ण की सृष्टि आदि वर्णित है (पर्व ४)। तदनन्तर चार महा-वशो–(इक्ष्वाकुवश, ऋषि अथवा चन्द्रवश, विद्याधरवश तथा हरिवश) का सक्षिप्त वर्णन, विद्याधर वश के अन्तर्गत विद्युद्दृढ और सजयन्त मुनि का वर्णन अजित-नाथ भगवान् का वर्णन, सगर चक्रवर्ती का वर्णन, पूर्णघन-सुलोचन-सहस्रनयन-मेघवाहन आदि का वर्णन, मेघवाहन और सहस्रनयन के पूर्व जन्म-सम्बन्धी वैर का वर्णन, राक्षसो के इन्द्र भीम और सुभीम के द्वारा मेघवाहन के लिए राक्षस-द्वीप की प्राप्ति तथा राक्षस-वश के विस्तार का वर्णन एव वानरवश का विस्तृत वर्णन है (पर्व ५-६)। इसके वाद रथनूपुर नगर मे राजा सहस्रार के यहाँ इन्द्र विद्याधर का जन्म तथा उसके प्रभाव-प्रताप आदि का वर्णन, लका के राजा माली का इन्द्र के विरुद्ध अभियान तथा युद्ध और युद्ध मे माली की मृत्यु का वर्णन, लोकपालो की उत्पत्ति तथा वैश्रवण के लका निवास का वर्णन, इन्द्र से हार कर सुमाली के अलकारपुर मे निवास, रत्नश्रवा-नामक पुत्र के लाभ, रत्नश्रवा की केकसी रानी से दशानन, भानुकर्ण, चन्द्रनखा तथा विभीषण की उत्पत्ति का वर्णन, वैश्रवण की गगनयात्रा देखकर दशानन आदि की अनावृत यक्ष के उपद्रव के वावजूद भी विद्यासिद्धि का वर्णन और राक्षसवश मे दशानन के प्रभाव का वर्णन किया गया है (पर्व ७)। तत्पश्चात् असुर सगीतनगर के राजा मय की

पुत्री मन्दोदरी का दशानन के साथ विवाह, दशानन की मेघरव पर्वत पर बनी वापिका मे छह हजार कन्याओ के साथ जलक्रीडा तथा उनके साथ विवाह, भानुकर्ण और विभीषण के विवाह, दशानन द्वारा वैश्रवण की पराजय, पुष्पक पर आरूढ होकर उसकी दक्षिण-यात्रा, सुमाली द्वारा हरिषेण चक्रवर्ती का माहात्म्य-कथन, दशानन द्वारा त्रिलोक-मण्डन हाथी का वश करना तथा यमलोकपाल-विजय एव लका नगरी प्रवेश निवद्ध है (पर्व ८)। आगे वालि-सुग्रीव-नल-नीलादि की उत्पत्ति, खरदूषण के द्वारा रावण की वहिन चन्द्रनखा का हरण, विराधित का जन्म, वालि का दशानन के साथ सघर्ष, वालि का दीक्षा-ग्रहण, सुग्रीव द्वारा अपनी वहिन का दशानन के साथ विवाह, वालि के प्रभाव से दशानन का विमान रुकना, रावण द्वारा कैलास को उठाना, वालि द्वारा उसकी रक्षा, रावण द्वारा जिनेन्द्र स्तुति एव नागराज के द्वारा 'अमोघविजया' शक्ति का दान वर्णित है (९)। फिर सुग्रीव का सुतारा के साथ विवाह, उससे अंग और अगद नामक पुत्रो का जन्म, सुतारा को प्राप्त करने की इच्छा से साहसगति विद्याधर का हिमवत् पर्वत की दुर्गम गुहा मे विद्या सिद्ध करना, रावण का दिग्विजय के लिए निकलना, सहस्ररश्मि आदि राजाओ को वश मे करना, नारद का मरुत्वान् के यज्ञ मे ब्राह्मणो से शास्त्रार्थ तथा ब्राह्मणो द्वारा पीटे जाने पर रावण द्वारा उसकी रक्षा, नलकूबर की स्त्री का रावण के प्रति अनुराग और रावण का उसे समझाना, नलकूबर-विजय, सहस्रार के पुत्र इन्द्र की रावण द्वारा पराजय एव सहस्रार के कथन पर उसकी मुक्ति इन्द्र की दीक्षा तथा रावण का अनन्तवल केवली के समक्ष यह व्रतग्रहण—'जो स्त्री मुझे नही चाहेगी मै उसे नही चाहूँगा'—वर्णित है (पर्व १०-१४)। तदनन्तर पवनजय-अजना वृत्तात, पवनजय का रावण की ओर से वरुण से युद्ध करने के लिए जाना, चक्रवाक-रहित-चक्रवाकी के दर्शन से प्रेरित पवनजय का छिपकर अजना से सम्भोग करना, गर्भचिह्न प्रकट हो जाने पर अज्ञानवश केतुमती द्वारा निर्वासित अजना का हनूमान्-पुत्र को वन मे उत्पन्न करना, अजना-पवनजय-मिलाप, रावण का वरुण-दमनार्थ सभी राजाओ का आह्वान, हनूमान् का वरुण को परास्त करना, रावण द्वारा उसकी प्रशसा, कुम्भकर्ण को वरुण के नगर की स्त्रियो के पकडने पर रावण की फटकार, रावण का हनूमान् के लिए चन्द्रनखा की पुत्री देना, रावण के साम्राज्य एव चौवीस तीर्थंकरो आदि शलाका पुरुषो का वर्णन निवद्ध है (पर्व १५-२०)।

२. राम और सीता का जन्म तथा विवाह (पर्व २१–३१) : रामादि के जन्म के लिए पहले उनके वशो का परिचय दिया गया है। फिर मुनि सुव्रतनाथ तथा उनके वश का वर्णन, इक्ष्वाकुवंश मे सौदास आदि के वाद अनरण्य के यहाँ

दशरथ का जन्म, नारद द्वारा रावण के दुर्विचार सुनकर उनका एव जनक का राज्य छोडकर जाना, कलानिपुणा केकया का दशरथ से विवाह एव वर की प्राप्ति तथा दशरथ की रानियो से राम-लक्ष्मण-भरत-शत्रुघ्न की उत्पत्ति, जनक की विदेहा रानी से सीता और भामण्डल की उत्पत्ति, भामण्डल का अपहरण, म्लेच्छों के विरुद्ध राजा दशरथ से सहायता पाकर जनक का राम के लिए अपनी पुत्री (सीता) देने का निश्चय, नारद की करतूत से भामण्डल का सीता के प्रति अनुराग, राम एव अन्य भाइयो का सीता आदि से विवाह, वृद्ध कंचुकी को देख दशरथ का वैराग्य, भामण्डल को अपने पूर्व भव का ज्ञान तथा जनक का भामण्डल से मिलना, सर्वभूतहित मुनिराज के द्वारा दशरथ के पूर्वभवो का वर्णन एव उनकी दीक्षा लेने की विचारधारा वर्णित है (पर्व २१-३१)। तदनन्तर राम को दशरथ का राज्य देने का विचार, केकया द्वारा वर के बदले भरत के लिए राज्य माँगना, दशरथ का असमजस, राम की सान्त्वना, लक्ष्मण का रोष, भरत का दीक्षा लेने का आग्रह, किन्तु सबके समझाने पर राम के पुनरावर्तन तक राज्य स्वीकार कर लेना, राम-लक्ष्मण-सीता का सबसे विदा लेना एव दशरथ की दीक्षा वर्णित है (पर्व ३१)।

३ **वनभ्रमण (पर्व ३२-४२)** इस खड मे राम-लक्ष्मण-सीता जैसे-तैसे नगरवासियो से विदा होकर वन के लिए चले ही गये भरत ने द्युतिभट्टारक से धर्म का यथार्थ उपदेश लिया (पर्व ३२)। आगे राम का चित्रकूट पारकर अवन्ति देश मे गमन, वज्रकर्ण-सिंहोदर-वृत्तान्त, कल्याणमाला-वृत्तान्त, कपिल-ब्राह्मण का वृत्तान्त एव लक्ष्मण पर आसक्त वनमाला का वृत्तान्त आता है। (पर्व ३३-३६)। तत्पश्चात् नर्तकी वेशधारी राम-लक्ष्मण का भरत-विरोधी राजा अतिवीर्य को धर्षित करना, अतिवीर्य की दीक्षा, लक्ष्मण का 'जितपद्मा' से विवाह, राम-लक्ष्मण द्वारा देशभूषण, कुलभूषण, मुनियो का उपसर्ग—दूरीकरण, वंशस्थलपुर के राजा सुरप्रभ द्वारा चरमशरीरी राम का अभिवादन, राम का दण्डक-वन-प्रस्थान, रामगिरि-वर्णन (पर्व ३७-४०) राम-लक्ष्मण तथा सीता का कर्णरवा नदी को प्राप्त कर उसमे अवगाहन, सुगुप्ति और गुप्ति नामक दो मुनियो को आहार दान देने से उन्हे पचाश्चर्य की प्राप्ति, मुनिराज के दर्शन से गृध्र पक्षी का पूर्वभव-ज्ञान उत्पन्न होना तथा मुनिवन्दना के कारण दिव्य शरीर की प्राप्ति, मुनि द्वारा गृध्र के पूर्वभव का कथन करना, राम द्वारा उसका 'जटायु' नामकरण तथा राम-लक्ष्मण-सीता का दण्डक-वन मे भ्रमण, उपनिवद्ध है (पर्व ४०-४२)।

४ **सीताहरण और खोज (पर्व ४३-५३) :** इस खण्ड मे सूर्यहास-साधक चन्द्रनखासुत शम्बूक का लक्ष्मण द्वारा अचानक वध, चन्द्रनखा का विलाप, राम-

लक्ष्मण को देखकर उसका मुग्ध होना किन्तु राम-लक्ष्मण का अविचलित रहना (बाद मे लक्ष्मण का चचल होना) (पर्व ४३) कामेच्छा पूर्ण न होने पर चन्द्रनखा का पुत्र-शोकाभिभूत होना, खरदूषण को पुत्रवध से परिचित कराना, खरदूषण का लक्ष्मण के साथ युद्ध होना, रावण का सहायतार्थ आना, सीता को देखकर उसका मोहित होना, सिंहनाद द्वारा राम को लक्ष्मण के पास भेज देना और सीता को हर लेना, जटायु का सीता को बचाने का व्यर्थ प्रयत्न करना। सीता के बिना राम का करुण-विलाप करना, विराधित का राम-लक्ष्मण की सहायता करना, राम का विराधित से अनुरोध, उनका पाताललका मे जाना तथा सीता-विरह मे झुलसना, सीता का देवारण्य उद्यान मे ठहराया जाना, रावण की प्रेम-याचना का सीता का ठुकराया जाना, रावण की विप्रलम्भजन्य दुर्दशा पर दयालु होकर मन्दोदरी का सीता को समझाना किन्तु सीता द्वारा कडी लताड मारना (पर्व ४४-४६), कृत्रिम सुग्रीव साहसगति को मारकर राम का सुग्रीव की सहायता करना, सुग्रीव द्वारा १३ कन्याओ का राम को समर्पण, लक्ष्मण का विलम्ब करते सुग्रीव पर कोप, रत्नजटी द्वारा सीता की रावण के यहाँ स्थिति बताना, सभी के होश ठण्डे पडना, लक्ष्मण का कोटि शिला उठाकर सभी को विश्वस्त करना, हनूमान् का राम के पास आगमन, लकागमन, मार्ग मे महेन्द्रनगर मे अपनी माता और महेन्द्र से मिलना, दधिमुख द्वीप मे स्थित मुनियो के उपसर्ग का हनूमान् द्वारा दूरीकरण, राम को गन्धर्व कन्याओ की प्राप्ति, हनूमान् का लकासुन्दरी-लाभ, विभीषण-हनूमान्-मिलन, सीता को हनूमान् द्वारा राम का सन्देश देना, उद्यान को क्षतिग्रस्त करना और बन्धन तोडकर लौट आना वर्णित है (पर्व ४७-५३)।

५ युद्ध (पर्व ५४-८०) इसमे हनूमान् द्वारा सीता का समाचार देने पर विद्याधरो सहित राम का लका की ओर प्रस्थान (५४), लका मे इन्द्रजित विभीषण का वाक्सघर्ष, रावण से तिरस्कृत विभीषण का लका त्यागकर राम से आ मिलना (पर्व ५५) रावण की अक्षौहिणी आदि का वर्णन (पर्व ५६), लकानिवासिनी सेना की तैयारी तथा लका से बाहर आने का वर्णन (पर्व ५७), नल और नील के द्वारा हस्त और प्रहस्त का मारा जाना (पर्व ५८), हस्त-प्रहस्त और नल-नील के पूर्व-भवो का वर्णन (पर्व ५९), अनेक राक्षसो का मारा जाना तथा राम और लक्ष्मण को दिव्यास्त्र एव सिंहवाहिनी और गरुडवाहिनी विद्याओ की प्राप्ति (पर्व ६०), सुग्रीव और भामण्डल का नागपाश से बाँधा जाना तथा राम-लक्ष्मण के प्रभाव से उनका वन्धनमुक्त होना (पर्व ६१), वानर और राक्षस-वशी राजाओ का युद्ध, विभीषण-रावण-सवाद, योद्धाओ की रणोन्मादिनी चेष्टाएँ रावण द्वारा शक्ति चलाये जाने पर लक्ष्मण का मूर्च्छित होना एव राम का विलाप

(पर्व ६२-६३), इन्द्रजित, मेघवाहन तथा भानुकर्ण के मरने की आशका से रावण का दु खी होना, लक्ष्मण-शक्ति के समाचार से सीता का दु खी होना, हनू-मान्-भामण्डल-अंगद का अयोध्यागमन, अयोध्या का क्षोभ, विशल्या का लक्ष्मण के पास आना एव लक्ष्मण-विशल्या-विवाह (पर्व ६५), रावण द्वारा राम के पास दूत-प्रेषण, भामण्डल का क्रोध, रावण का बहुरूपिणी सिद्ध करने के लिए जिनालयो की सज्जा का आदेश तथा जिन पूजा (पर्व ६६-६९), राम-सेना मे इस समाचार से खलबली मचना, अगदादि द्वारा लका मे उपद्रव, रावण का विद्या सिद्ध कर लेना, सीता के ऊपर रावण की दया एव मन मे पश्चात्ताप किन्तु फिर युद्ध का दृढ निश्चय (पर्व ७०-७२), भयकर-युद्ध और रावण का लक्ष्मण द्वारा चक्ररत्न से वध (पर्व ७३-७६), रावण के परिजनों का विलाप, राम के द्वारा रावण का सस्कार, इन्द्र-जितादि की मुक्ति तथा उनके द्वारा दीक्षा-ग्रहण (पर्व ७७-७८), राम-सीता-मिलन, विभीषण द्वारा रामादि का सत्कार एव छ वर्ष तक राम का लका-निवास और मय मुनिराज का माहात्म्य (पर्व ८०) वर्णित है।

६—उत्तरचरित (पर्व ८१-१२३) इसमे नारद द्वारा माताओ की अवस्था सुनकर राम का अयोध्यापुरी आगमन, विभीषण द्वारा कारीगरो से अयोध्या का नवीनीकरण, रामादि का भरतादि के द्वारा अपार स्वागत (पर्व ८१-८२), रामलक्ष्मण की विभूति का वर्णन, भरत का वैराग्य, त्रिलोकमण्डन हाथी का बिगडना, देशभूषण-कुलभूषण का आगमन एव धर्मोपदेश (पर्व ८३-८५), मुनिराज से भवान्तर सुनकर भरत का दीक्षा-ग्रहण, कैकया का ३०० स्त्रियो के साथ आर्यिका होना (पर्व ८६), त्रिलोकमण्डन का समाधि धारण कर ब्रह्मोत्तर स्वर्ग मे देव होना एव भरत मुनि का अष्ट कर्मो का क्षय कर निर्वाण प्राप्त करना (पर्व ८७), राम और लक्ष्मण का राज्याभिषेक तथा उनके द्वारा अन्य राजाओ को राज्य देना (पर्व ८८), मधु-शत्रुघ्न युद्ध, चमरेन्द्र का कुपित होकर मथुरा मे महामारी फैलाना, शत्रुघ्न का अयोध्या जाना (पर्व ८९-९०), शत्रुघ्न के पूर्व-भवो का वर्णन (पर्व ९१), अर्हद्दत्त का वृत्तान्त (पर्व ९२), राम के लिए श्रीदामा और लक्ष्मण के लिए मनोरमा कन्या की प्राप्ति (पर्व ९३), राम और लक्ष्मण का अनेक विद्याधर राजाओ को वश करना (पर्व ९४), सीता के भले और बुरे स्वप्न का राम के द्वारा फल-कथन, सीता के लोकापवाद को सुनकर राम का खेद (पर्व ९५-९६), लक्ष्मण-कृतान्तवक्त्र सेनापति द्वारा सीता का दोहद-पूर्ति के बहाने से वन मे छुडवाना, सीता का विलाप (पर्व ९७), वज्रजङ्घ का सीता को लाना तथा पुण्डरीकपुर में सीता के अनगलवण और मदनाकुश—दो पुत्रो का जन्म (पर्व ९८-१००), लवणाकुश के विवाह, उनकी दिग्विजय तथा

राम लक्ष्मण से युद्ध, हनूमान् का लवणांकुश की ओर से लांगूलास्त्र से लड़ना, पिता-पुत्र-परिचय (पर्व १०१-१०३), सीता की अग्नि-परीक्षा और दीक्षा (पर्व १०४-१०५), राम-लक्ष्मण-सीता के भवान्तरों का वर्णन (पर्व १०६), कृतान्त-वक्त्र का दीक्षाग्रहण (पर्व १०७), लवणांकुश-चरित (पर्व १०८), सीता का प्रतीन्द्र होना (पर्व १०९), लक्ष्मण के पुत्रों का दीक्षा-ग्रहण (पर्व ११०) वज्रपात से भामण्डल की मृत्यु (पर्व १११), राम-लक्ष्मण का विलास, हनूमान का दीक्षा-ग्रहण (पर्व ११२-११३), लक्ष्मणमरण, राम का मोह, विभीषणादि के समझाने पर भी राम का लक्ष्मण के शव को न छोड़ना, छः मास बाद दाह-संस्कार करना (पर्व ११४-११८) राम का दीक्षा ग्रहण करके अविचल तपस्या से केवली होना तथा निर्वाण-लाभ, ग्रन्थ-माहात्म्य (पर्व ११९-१२३) निबद्ध है।

इस विधि से रविषेण ने राम-कथा को क्रमबद्ध करके प्रस्तुत किया है। कथा कहीं विच्छिन्न नहीं है। हाँ, शास्त्रार्थ-वर्णन, धर्मोपदेश तथा नामावली-वर्णन में कहीं-कहीं जी नहीं रम पाता।

पौराणिक-चरित-महाकाव्य . 'पद्मपुराण' एक स्वस्थ्य 'पौराणिक-चरित-महाकाव्य' है। द्वितीय अध्यायोक्त पौराणिक काव्य एवं चरितकाव्य के लक्षण इसमें पूर्णतया घटते हैं।

वस्तुतः ये 'पौराणिक चरितकाव्य' आदि भेद तो बहुत बाद में कल्पित किये गये हैं। रविषेण का समय सप्तम शताब्दी ई० का उत्तरार्द्ध है, तब तक ये भेद प्रचलित नहीं हुए थे। तब तक संस्कृत के पद्यात्मक श्रव्य काव्य के प्रधानत. दो ही भेद थे—प्रबन्ध और मुक्तक। प्रबन्ध के महाकाव्य और खण्डकाव्य-दो भेद थे। भामह (५वीं श० ई०) और दण्डी (६ठी श० ई०) ने महाकाव्य की कसौटी रविषेण के समय तक निर्धारित कर दी थी किन्तु उन्होंने पौराणिक या रोमांसिक आदि भेद नहीं किया था। अतः उस काल में रविषेण का यह काव्य शुद्ध महा-काव्य का अधिकारी था और उस दृष्टिकोण से आज भी है। जहाँ तक आज के आलोचकों द्वारा निर्णीत १—महदुद्देश्य, महत्प्रेरणा और महती काव्य-प्रतिभा, २—गुरुत्व, गाम्भीर्य और महत्त्व, ३—महत्कार्य और युग-जीवन का समग्र-चित्रण, ४—सुसंघटित जीवन्त कथानक, ५—महत्त्वपूर्ण नायक तथा अन्य पात्र, ६—गरिमामयी उदात्त शैली, ७—तीव्र प्रभावान्विति और गम्भीर रसव्यंजना एवं, ८—अनवरुद्ध जीवनी-शक्ति और सशक्त प्राणवत्ता—महाकाव्य के इन तत्वों के आधार पर 'पद्मपुराण' की परीक्षा की जाती है, तो ये भी उसमें स्पष्ट परिलक्षित होते हैं[४६] जिनका उल्लेख हम पूरी तरह से अग्रिम अध्यायों में

४६ हिन्दी-साहित्य-कोश, भाग १, पृ० ६२७

करेंगे। यहाँ सक्षिप्त सकेतमात्र करते हैं।

'महाकाव्य' के लक्षण मे यद्यपि दण्डी और विश्वनाथ प्राय समान मत ही प्रस्तुत करते है तथापि हम यहाँ कालक्रम को दृष्टि मे रखते हुए दण्डी का ही 'महाकाव्य-लक्षण' उद्धृत करके उस पर 'पद्मपुराण' को कसेगे। 'दण्डी' ने महाकाव्य का स्वरूप इस प्रकार बताया है :—

"सर्गबन्धो महाकाव्यमुच्यते तस्य लक्षणम्।
आशीर्नमस्क्रिया वस्तुनिर्देशो वापि तन्मुखम्॥
इतिहासकथोद्भूतमितरद् वा सदाश्रयम्।
चतुर्वर्गफलायत्त चतुरोदात्तनायकम्॥
नगरार्णवशैलर्तुचन्द्रार्कोदयवर्णनै: ।
उद्यानसलिलक्रीडामधुपानरतोत्सवै ॥
विप्रलम्भैर्विवाहैश्च कुमारोदयवर्णनै· ।
मन्त्रदूतप्रयाणाजिनायकाभ्युदयैरपि ॥
अलकृतमसक्षिप्त रसभावनिरन्तरम्।
सर्गैरनतिविस्तीर्णै श्रव्यवृत्तै सुसन्धिभि ॥
सर्वत्र भिन्नवृत्तान्तैरुपेत लोकरजकम्।
काव्य कल्पान्तरस्थायि जायते सदलकृति॥"४७

'पद्मपुराण' मे इन सभी लक्षणो का पालन हुआ है। वह सर्गों और अवान्तर-प्रकरणो (पर्वनामक) मे विभक्त है। उसके प्रारम्भ मे मगलाचरण है। इतिहास-प्रसिद्ध रामकथा का उसमे नवीन दृष्टिकोण से प्रतिपादन है। चतुर्वर्ग की प्राप्ति का वह साधन है जैसा कि उसके माहात्म्य से सिद्ध होता है। इसके नायक उदात्त (त्रिपष्टिशलाकापुरुषो मे अन्यतम) है। नगरादि के प्रचुर हृदयगम वर्णन है (जिनका हम कलापक्ष के अन्तर्गत विस्तृत उल्लेख करेंगे)। अलकारो का उसमे मजुल समाहार है, कथानक उसका लम्बा है, रसव्यजना उसमे वैभवशालिनी है। कुछ सर्गो (पर्वो) को छोडकर उनका विस्तार समुचित है। सर्गान्त मे छन्द बदले हुए है। कोई सर्ग नानावृत्तमय भी है। इन सभी के उदाहरण प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध के 'भावपक्ष-कलापक्ष'-शीर्षको मे द्रष्टव्य है।

जहाँ तक आधुनिक आलोचको द्वारा मान्य पूर्वोक्त आठ तत्वो का प्रश्न है—वे सभी इसमे है। इसका उद्देश्य जनता की मिथ्या मान्यताओ का खण्डन एव उसमे अपने दृष्टिकोण से सद्धर्म का प्रचार करना है जिसके लिए व्यजनान्त-स्व-

---

४७ काव्यादर्श, १।१४-१९

रान्त-वात्त्विक-लक्षक व्यजक-शब्द-अलकार आदि समस्त काव्य तत्त्वो का प्रयोग हुआ है। धार्मिक दृष्टि से इसका अपना महत्व है। अनीति का लोप एव शान्ति-लाभ इसका महत्कार्य है, समाज की प्रवृत्तियो का इसमे चित्रण है जिसको विविध उपाख्यानो मे देखा जा सकता है। सुव्यवस्थित कथानक है जिसका पीछे उल्लेख किया जा चुका है। इसके नायक तथा अन्य प्रधान पात्र महत्वपूर्ण हैं, राम-लक्ष्मण-रावण त्रिपष्टिशलाका-पुरुपो मे परिगणित है। पात्रो के चरित्रो पर आगे चरित्र-चित्रण वाले अध्याय मे पूरा विचार किया जायेगा। इसकी शैली गरिमामयी है जिसमे भाषा छन्द अलकार आदि सभी उत्कृष्ट रूप मे अवस्थित है जिनका वर्णन आगे किया जायेगा। तीव्रप्रभान्विति और रसव्यजना का तो यह हाल है कि शान्त-शृगार वीर-रसो मे तो पाठक पद-पद पर मस्ती भरी डुबकियाँ लेता ही है, अन्य रसो के उदाहरणो मे भी वह पर्याप्त रमता है। इनके उदाहरण हम भाव-पक्ष के अन्तर्गत देगे। इसी प्रकार उसकी अनवरुद्ध प्राणवत्ता मे भी सन्देह नही है।

भाव यह है कि 'पद्मपुराण' को यदि 'पौराणिक-चरितकाव्य' की दृष्टि से देखा जाय तो यह पौराणिक चरितकाव्य है, यदि महाकाव्य के प्राचीन एव अर्वाचीन दृष्टिकोणो से देखा जाय तो यह सफल महाकाव्य है और यदि 'पुरातन पुराण स्यात्तन्महन्महदाश्रयात्' वाली जैन मान्यता के अनुसार देखा जाय तो यह 'पुराण' है।

धार्मिक आवरण 'पद्मपुराण' का जैन-धर्म के तत्त्वो के निरूपण एव जैनधर्म के प्रचार के दृष्टिकोण से भी महत्त्व है। दिगम्बर-जैन-धर्म का यह 'धर्मग्रन्थ' है।

भगवत्कुन्दकुन्द—उमास्वाति आदि के जितने भी ग्रथ है उन सभी का निचोड 'पद्मपुराण' मे है जो विविध मुनियो के उपदेशो के रूप मे प्रकट हुआ है। नारद शास्त्रार्थ मे जैन धर्म का पोषण एव परधर्म का धर्षण किया गया है। साराश यह है कि तत्कालीन धार्मिक दशा का यह पूर्ण प्रतिनिधित्व सा करता दिखाई देता है।

बौद्धिकता:—'पद्मपुराण' मे 'रामायण' आदि की तर्क के दृष्टिकोण के अति मानवीय या असम्भव लगने वाली घटनाओ को तर्क सम्मत बनाया गया है। इस-लिए इसमे इन्द्र, यम आदि देवता न होकर मनुष्य हैं। लागूल नामक हनूमान् का शस्त्र-विशेष है, पूँछ नही। इसी प्रकार राक्षस और वानर भी वश-विशेष है, राक्षस और बन्दर नही। इसी प्रकार अनेक स्थलो पर बौद्धिक व्याख्याएँ है जिनका उल्लेख हम 'पद्मपुराण' के कथानक का विवेचन करते समय करेंगे।

'पद्मपुराण' और 'पउमचरिय'.

जैन-रामकथा-साहित्य मे प्राकृत मे विमलसूरि का 'पउमचरिय', सस्कृत मे रविषेण का 'पद्मचरित' या 'पद्मपुराण' और अपभ्रंश मे स्वयभू का 'पउमचरिउ' सबसे प्राचीन रचना है। ग्रथ मे निर्दिष्ट समय के अनुसार विमलसूरि का 'पउम-चरिय' सर्वप्राचीन सिद्ध होता है। विमलसूरि के अनुसार यह वि० स० ६० की रचना है।

उपर्युक्त तीनो ग्रथो की कथावस्तु और अनेक स्थलो पर शैली भी एक सी है।[४८] इनमे स्वयभू का 'पउमचरिउ' सबसे बाद की रचना सिद्ध हो चुका है। अन्त:-साक्ष्य और बहि साक्ष्य—दोनो ही इसके पोषक है। स्वयम्भू ने रविषेण का नाम स्मरण किया है और रविषेणोक्त रामकथा-परम्परा का ही कथन किया है।

वद्ढमाण-मुह-कुहर-विणिग्गय। रामकहाणइ एह कमागय॥

o o o

एह राम कह-सरि सोहती। गणहर देवहिं दिट्ठ वहती॥
पच्छइ इंदभूइ आयरिए। पुणु धम्मेण गुणालकरिए॥
पुणु एवहिं संसाराराए। कित्तिहरेण अणुत्तर वाए॥
पुणु रविसेणायरिय-पसाए। वुद्धिए अवगाहिय कइराएं॥[४९]

रविषेण ने भी यही आधार अपने ग्रथ का बताया है.—

वर्द्धमानजिनेन्द्रोक्त. सोऽयमर्थो गणेश्वरम्।
इन्द्रभूति परिप्राप्त सुधर्मं धारणीभवम्॥
प्रभव क्रमत. कीर्त्ति ततोऽनुत्तरवाग्मिनम्।
लिखित तस्य सम्प्राप्य रवेर्यत्नोऽयमुद्गत॥

तथा

निर्दिष्ट सकलैर्नतेन भुवनै श्रीवर्द्धमानेन यत्,
तत्त्व वासवभूतिना निगदित जम्बो. प्रशिष्यस्य च।
शिष्येणोत्तरवाग्मिना प्रकटित पद्मस्य वृत्त मुने
श्रेय· साधु समाधिवृद्धिकरण सर्वोत्तम मगलम्॥[५०]

इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि स्वयभू का आदर्श रविषेण कृत 'पद्म-चरित' या 'पद्मपुराण' था।

---

४८ देखिये-हरिवल्लभ चूनीलाल भायाणी द्वारा सम्पादित 'पउमचरिउ,' सिंघी-जैन-ग्रथमाला, ग्रथाक ३४, सिन्धी-जैन-शास्त्र-शिक्षापीठ, भारतीय-विद्या-भवन, बम्बई, वि०स २००९, परिशिष्ट भाग।

४९ पउमचरिउ १।२।१

५०. पद्मपुराण १।४१-४२ तथा वही १२३।१६७

किन्तु रविषेण का आधार क्या था ? पं० नाथूराम प्रेमी ने सिद्ध किया है कि रविषेण ने विमलसूरि के ग्रथ का सस्कृत-छायानुवाद किया है।[५१] उनके अनुसार—
" यह स्पष्ट है कि 'पउमचरिय' 'पद्मपुराण' से पुराना है और दोनो ग्रथो का अच्छी तरह मिलान करने से मालूम होता है कि 'पद्मपुराण' के कर्ता के सामने 'पउमचरिय' अवश्य मौजूद था। 'पद्मपुराण' एक तरह से प्राकृत 'पउमचरिय' का ही पल्लवित किया हुआ सस्कृत छायानुवाद है। 'पउमचरिय' अनुष्टुप् श्लोको के प्रमाण से दस हजार है और 'पद्मचरित' अठारह हजार। अर्थात् प्राकृत से लगभग पौने दो गुना है। प्राकृत ग्रन्थ की रचना आर्या छन्द मे की गयी है और सस्कृत की अनुष्टुप् छन्द मे। इसलिए 'पद्मपुराण' मे पद्य तो शायद दुगने से भी अधिक होगे। छायानुवाद कहने के कुछ कारण—

१— दोनो का कथानक विल्कुल एक है और नाम भी एक है।

२— पर्वो या उद्देश्यो तक के नाम दोनो के प्राय एक से है।

३— हर एक पर्व या उद्देश्य के अन्त मे दोनो ने छन्द वदल दिये है।

४— 'पउमचरिय' के उद्देश्य के अन्तिम पद्य मे 'विमल' और 'पद्मचरित' के अन्तिम पद्य मे 'रवि' शव्द अवश्य आता है। अर्थात् एक विमलाक है और दूसरा रव्यक।

५— 'पद्मचरित' मे जगह-जगह प्राकृत आर्याओ का शव्दश. अनुवाद दिखाई देता है।

पल्लवित कहने का कारण यह है कि मूल में जहाँ स्त्री-रूप-वर्णन, नगर-उद्यान-वर्णन आदि प्रसग दो चार पद्यो मे ही कह दिये गये हैं वहाँ अनुवाद मे ड्योढे-दूने पद्य लिखे गये है।

'पउमचरिय' के कर्त्ता ने चौथे उद्देश्य मे ब्राह्मणो की उत्पत्ति वतलाते हुए कहा है कि जब भरत चक्रवर्ती को मालूम हुआ कि वीर भगवान् के अवसान के बाद ये लोग कुतीर्थी पाषण्डी हो जाएँगे और झूठे शास्त्र बनाकर यज्ञो मे पशुओ की हिंसा करेंगे, तब उन्होने उन्हे शीघ्र ही नगर से निकाल देने की आज्ञा दे दी, और इस कारण जब लोग उन्हे मारने लगे, तब ऋषभदेव भगवान् ने भरत को यह कहकर रोका कि हे पुत्र, इन्हे 'मा हण मा हण-मत मारो, मत मारो', तब से उन्हे 'माहण' कहा जाने लगा।'

सस्कृत 'ब्राह्मण' शब्द प्राकृत मे माहण (ब्राह्मण) हो जाता है। इसलिए प्राकृत मे तो उसकी ठीक उपपत्ति उक्त रूप से वतलाई जा सकती है। परन्तु

---

५१. 'जैन-साहित्य और इतिहास,' पृ० २७४-२७६

सस्कृत मे ठीक नही बैठती। क्योकि सस्कृत 'ब्राह्मण' शब्द मे से 'मत मारो' जैसी कोई बात खीच-तान कर भी नही निकाली जा सकती। सस्कृत 'पद्मपुराण' के कर्त्ता के सामने यह कठिनाई अवश्य आई होगी, परन्तु वे लाचार थे। क्योकि मूल कथा तो बदली नही जा सकती और सस्कृत के अनुसार उपपत्ति बिठाने की स्वतन्त्रता कैसे ली जाय? इसलिए अनुवाद करके ही उनको सन्तुष्ट होना पडा—

यस्मान्मा हनन पुत्र कार्षीरिति निवारित।
ऋषभेण ततो याता 'माहणा' इति ते श्रुतिम्।।[५२]

(पद्म० ४।१२२)

इस प्रसग से यही जान पडता है कि प्राकृत ग्रन्थ से ही सस्कृत के ग्रन्थ की रचना हुई है।

परन्तु इसके विरुद्ध कुछ लोगो ने तो यह कहने तक का साहस किया है कि सस्कृत से प्राकृत मे अनुवाद किया गया है। परन्तु मेरी समझ मे वह कोरा साहस ही है। प्राकृत से सस्कृत मे बीसो ग्रन्थो के अनुवाद हुए है।[५३] बल्कि सारा का सारा प्राचीन जैन साहित्य ही प्राकृत मे लिखा गया था। भगवान् महावीर की दिव्य ध्वनि भी अर्धमागधी प्राकृत मे ही हुई थी। सस्कृत मे ग्रन्थ रचने की ओर तो जैनाचार्यो का ध्यान बहुत पीछे गया है और सस्कृत से प्राकृत मे अनुवाद किये जाने का तो शायद एक भी उदाहरण नही है।

इसके सिवाय प्राकृत पउमचरिय की रचना जितनी सुन्दर, स्वाभाविक और आडम्बररहित है उतनी पद्मचरित की नही है। जहाँ-जहाँ वह शुद्ध अनुवाद है वहाँ तो खैर ठीक है, परन्तु जहाँ पल्लवित किया गया है वहाँ अनावश्यक रूप से बोझिल हो गया है। उदाहरण के लिए अजना और पवनजय के समागम को ले लीजिये। प्राकृत मे केवल चार-पॉच आर्या छन्दो मे ही इस प्रसग को सुन्दर ढग से कह दिया गया है, परन्तु सस्कृत मे बाईस पद्य लिखे गये है और बडे विस्तार से आलिगन-पीडन-चुम्बन, दशनच्छद, नीवी-विमोचन, सीत्कार आदि काम कलाएँ चित्रित की गयी है जो अश्लीलता की सीमा तक पहुँच गयी है।

प्रेमी जी इसे विक्रम सवत् ६० की रचना ही स्वीकार करते है।

---

५२ मा हण सु पुत्त एए ज उसभजिणेण वारिओ भरहो।
तेण इमे सयल च्चिय वुच्चन्ति य 'माहणा' लोए।। (पउमचरिय ४।८४)

५३ उदाहरणार्थ—भगवती-आराधना और पच-सग्रह के अमितगतिसूरिकृत सस्कृत अनुवाद, देवसेन के भावसग्रह का वामदेवकृत सस्कृत अनुवाद, अमरकीर्ति के 'छक्कम्मोवएस' का सस्कृत 'षट्कर्मोपदेश-माला'—नामक अनुवाद, सर्वनन्दि के लोकविभाग का सिंहसूरिकृत सस्कृत अनुवाद आदि।

प्रेमी जी के समान ही डा० कामिल बुल्के भी लिखते हैं—"रविषेण ने मौलिकता का किंचित् भी प्रदर्शन नही किया है। उनकी समस्त रचना 'पउमचरिय' का पल्लवित छायानुवाद मात्र प्रतीत होती है।[५४]

किन्तु यहाँ यह प्रश्न उठता है कि यदि रविषेण ने विमलसूरि के 'पउमचरिय' का अनुवाद किया है तो उनका नाम क्यो नही दिया ? एक जैनाचार्य को अपने उपजीव्य ग्रन्थ के प्रणेता जैनाचार्य का कृतज्ञतावश उल्लेख अवश्य करना चाहिए था। किन्तु न तो रविषेण ने और न स्वयभू ने ही 'विमलसूरि' को स्मरण किया है। उन्होने वर्द्धमान-गणधर-इन्द्रभूति-सुधर्म-कीर्तिधर का उल्लेख किया है। ऐसी दशा मे यह विचारणीय हो जाता है कि क्या वस्तुत विमलसूरि रविषेण से पूर्व हुए थे और क्या उनका ग्रन्थ ही 'पद्मपुराण' का उपजीव्य है ? क्या रविषेण ने अपने ग्रन्थ मे कुछ भी मौलिकता नही दिखाई ? क्या एक अनुवाद मात्र होने से उनकी रचना का कोई विशिष्ट महत्व नही ? इन सभी प्रश्नो का समाधान ढूँढने का प्रयत्न हम करेगे।

विमलसूरि का रविषेण ने नाम नही लिया—यह कोई अधिक आश्चर्य की बात नही है। दोनो के आधार भिन्न-भिन्न हो सकते हैं। दूसरे, रविषेण के सामने यदि कोई प्राकृत 'पउमचरिय' रहा हो तो वह उस समय विमलसूरि के नाम से प्रसिद्ध न रहा हो। हो सकता है कि 'कीर्तिधर' नामक जिन पूर्ववर्ती ग्रन्थकार का उन्होने उल्लेख किया है वह विमलसूरि का ही अपर नाम हो अथवा कीर्तिधर के ग्रन्थ को विमलसूरि नामक किसी विद्वान् ने कुछ नवीन रूप देकर अपने नाम से कालान्तर मे प्रसिद्ध कर दिया हो। उपजीव्य राम-कथाकारो का निरूपण करते हुए रविषेण और स्वयभू ने 'कीर्ति'[५५] या 'कित्तिहर'[५६] का भी उल्लेख किया है किन्तु विमलसूरि ने 'आखडलभूइ'[५७] (आखण्डल = इन्द्र-भूति)' का ही किया है। विमलसूरि की प्रशस्ति मे 'कीर्तिधर' नाम न आकर 'विमल' आया है। शेष आधार समान है। अत यह सम्भावना असम्भव जान नही पडती कि 'कीर्तिधर' विमलसूरि' का ही नाम हो।

अस्तु, यह मान लेने पर भी कि रविषेण का ग्रन्थ विमलसूरि के आधार पर लिखा गया है तो भी रविषेण के 'पद्मपुराण' का अपना महत्त्व अक्षुण्ण रहता है। प्राय कथानक की एकता तो अनेक काव्यो मे होती है किन्तु इसी आधार पर कवि

---

५४ रामकथा, पृ० ६८

५५ पद्म० १।४१-४२

५६ पउमचरिउ १।२।१

५७. पउमचरिय १२३।१६७

की रचना को 'अमौलिक' कहना अधिक युक्तिसगत नही है। 'पद्मपुराण' (पद्मचरित), 'पउमचरिय' और 'पउमचरिउ' का कथानक तो समान ही है किन्तु यह नही कहा जा सकता कि ये तीनो मौलिक नही हैं। कथानक मात्र के आधार पर मौलिकता का निर्धारण नहीं होता, वह उसकी प्रतिपादन-शैली से भी होता है। माना कि इन तीनो का कथानक समान है, किन्तु रविषेण की रचना की कलापक्ष-गत मौलिकता अक्षुण्ण है। साथ ही उसके वर्णनो, जिन पर प्रेमी जी ने अनावश्यक रूप से बोझिलता का आरोप लगाया है, से एक सास्कृतिक अध्ययन का द्वार खुलता है जिसका परिचय हम उसका 'सास्कृतिक अध्ययन' करते हुए देगे। 'पद्मपुराण' के सम्वाद, लोक-शास्त्र काव्याद्यवेक्षण का प्रतिफलन, भाषा-अधिकार एव यथास्थान कथानक मे छोटे-छोटे मनोरम परिवर्तन उसको अपने ढग का अनुपम ग्रन्थ सिद्ध करते है।

'पद्मपुराण' का महत्त्व कई दृष्टियो से है। वह जैन-धर्म का सर्वप्रसिद्ध ग्रथ है। वह जैन-धर्म का सर्वप्रथम रामकथा-विषयक सस्कृत-महाकाव्य है। उसमे पाण्डित्य का चमत्कार है, वह काव्यात्मकता के उत्कर्षण का मजुल निदर्शन है, वह वर्णनो का भण्डार है, वह उपाख्यानो का आकर है, वह तत्कालीन भारतीय सस्कृति का अध्ययन करने का प्रमुख साधन है। हिन्दी खड़ी बोली के इतिहास मे इस 'पद्मचरित' का महत्वपूर्ण स्थान है क्योकि स० १८१८ मे दौलतराम ने इसका भाषा मे अनुवाद किया था।[५८]

जैन रामकथा के स्रोत

क्योकि 'पद्मपुराण' जैन-रामकथा का महनीय ग्रथ है इसलिए जैन रामकथा के स्रोत और जैन राम-काव्य-परम्परा की सक्षिप्त चर्चा प्रसक्तानुप्रसक्त्या की जा रही है।

रामकथा भारतवर्ष की सबसे अधिक लोकप्रिय कथा है और इस पर विपुल साहित्य-निर्माण किया गया है। हिन्दू, बौद्ध और जैन—इन तीनो ही प्राचीन सम्प्रदायो मे यह कथा अपने अपने ढग से लिखी गयी है और तीनो ही सम्प्रदाय वाले राम को अपना-अपना महापुरुष मानते है।

अभी तक अधिकाश विद्वानो का मत यह है कि इस कथा को सबसे पहले वाल्मीकि मुनि ने लिखा और सस्कृत का सबसे पहला महाकाव्य (आदिकाव्य) 'वाल्मीकिरामायण' है।[५९] इस प्रकार जैन-रामकथा का भी मूल स्रोत तो

५८ रामकथा पृ० ६८

५९ जैन-साहित्य और इतिहास पृ० २७७

वाल्मीकि-रामायण ही ठहरता है किन्तु जैन रामकथा का दृष्टिकोण उससे पृथक् है। हमे यहाँ यह देखना है कि आर्य-रामकथा से पृथक् दृष्टिकोण वाली जैन राम कथा का कहाँ से और कैसे यथावस्थित रूप मे प्रचलन हुआ ?

जैन-रामकथा-साहित्य पर दृक्पात करने पर यह निष्कर्ष निकलता है कि 'जैन-रामकथा के दो भिन्न रूप प्रचलित हैं। श्वेताम्बर सम्प्रदाय मे तो केवल विमलसूरि की रामकथा का प्रचार है लेकिन दिगम्बर सम्प्रदाय मे इसके दो रूप मिलते हैं अर्थात् विमलसूरि और गुणभद्र दोनो की रामकथा प्रचलित है यद्यपि विमलसूरि की परम्परा को अधिक महत्त्व मिला है'[६०] इन्ही दो परम्पराओ की भूमिका पर जैन रामकथा सम्बन्धी विशाल वाङ्मय-भवन खडा हुआ है।

विमलसूरि की परम्परा . विमलसूरि ने 'पउमचरिय' (प्राकृत जैन महाराष्ट्री) के प्रणयन से सर्वप्रथम लोकप्रिय रामकथा को जैनधर्म के साँचे मे ढालने का प्रयत्न किया है। कवि ने इसके मूल स्रोत का उल्लेख करते हुए कहा है कि यह 'पद्मचरित' आचार्यो की परम्परा से चला आ रहा था और नामावली निवद्ध था —

"नामावलिय निवद्ध आयरियपरम्परागय सव्व।
वोच्छामि पउमचरियं अहाणुपुव्वि समासेण॥"[६१]

इसका अर्थ यह हो सकता है कि 'रामचन्द्र का चरित्र उस समय तक केवल नामावली के रूप मे था अर्थात् उसमे कथा के प्रधान पात्रो के, उनके माता-पिताओ, स्थानो और भवान्तरो आदि के नाम ही होंगे। वह पल्लवित कथा के रूप मे न होगा और उसी को विमलसूरि ने विस्तृत चरित के रूप मे रचना की होगी।[६२] 'नामावली' शब्द से सम्भवत ६३ महापुरुषो की किसी प्राचीन नामावली की ओर सकेत है।[६३]

विमलसूरि का काल विवादास्पद है। विभिन्न विद्वानों ने प्रथम श० ई० से ६ ठी श० ई० तक उनका काल माना है।[६४]

---

६० 'रामकथा' (कामिलबुल्के) पृ० ६७

६१ 'पउमचरिय' (प्राकृत टैक्स्ट सोसाइटी, वाराणसी, सरक० १९६२) १।८

६२ नाथूराम प्रेमी—'जैन साहित्य और इतिहास,' पृष्ठ २८०

६३ जैन मान्यता के अनुसार प्रत्येक कल्प मे त्रिषष्टि (६३) महापुरुष होते हैं—२४ तीर्थंकर (जैन धर्मोपदेशक), १२ चक्रवर्ती (भारत के सम्राट्), ९ वलदेव, ९ वासुदेव तथा ९ प्रतिवासुदेव। वलदेव, वासुदेव तथा प्रतिवासुदेव सदैव समकालीन होते हैं। राम, लक्ष्मण और रावण क्रमश अष्टम वलदेव, वासुदेव तथा प्रतिवासुदेव हैं।

६४ डा० विण्टरनिट्ज्, प० नाथूराम प्रेमी आदि कुछ विद्वान् तो 'पउमचरिय' मे निर्दिष्ट समय को ठीक मानते हुए विमलसूरि को प्रथम श० ई० का ही स्वीकार करते हैं किन्तु डा० हर्मन

विमलसूरि की परम्परा का दूसरा महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है—रविषेण का 'पद्मपुराण' जो ६७७-७८ ई० मे रचा गया है एव जिसका सक्षिप्त परिचय हम इसी अध्याय मे पहले दे चुके है। वही इसका सक्षिप्त कथानक तथा रविषेण की मौलिकताओ का उल्लेख किया जा चुका है। विस्तृत कथानक का विवेचन हम आगे करेगे।

"आगे चलकर जैन कवियो ने रविषेण का अनुकरण किया है, उनकी रचनाओ मे प्राय कथानक का कोई भी महत्त्वपूर्ण परिवर्तन दृष्टिगोचर नही है।[६५]"

विमलसूरि तथा रविषेण की रामकथा-परम्परा आगे चलकर प्राकृत-सस्कृत अपभ्रंश आदि मे फलती-फूलती रही जिसकी सूची इस प्रकार दी जा सकती है—

(१) प्राकृत .

१— विमलसूरि कृत 'पउमचरिय' (पहली श० ई० से पाँचवी श० ई०)

२— शीलाचार्यकृत 'चउपन्नमहापुरिसचरिय' के अन्तर्गत 'रामलक्खणचरिय' (नवी श० ई०) (यह रामकथा विमलसूरि की परम्परा के अनुसार होने पर भी वाल्मीकीय कथा से प्रभावित है।)

३— भद्रेश्वर कृत कहावली (११ वी श० ई०) के अन्तर्गत 'रामायणम्'

४— भुवनतुग सूरिकृत 'सीयाचरिय' तथा 'रामलक्खणचरिय'

(२) संस्कृत

१— आचार्य रविषेण कृत 'पद्मपुराण' या 'पद्मचरित' (६७७-७८ ई०)

२— हेमचन्द्रकृत 'त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित' (१२ वी श० ई०) के अन्तर्गत 'जैन रामायण' (कलकत्ता स० १६३०)

३— हेमचन्द्रकृत योगशास्त्र की टीका के अन्तर्गत 'सीतारावणकथानकम्'

४— जिनदासकृत 'रामायण' अथवा 'रामदेवपुराण' (१५ वी श० ई०) (देखिये—एम० विण्टरनिट्ज—हिस्ट्री आफ इण्डियन लिट्रेचर, भाग २, पृ० ४६६)

५— पद्मदेवविजयगणिकृत 'रामचरित' (१६ वी श० ई०), (देखिये—राजेन्द्रलाल मित्र, नोटिसस सस्कृत मैन्युस्क्रिप्ट्स, भाग १०, पृ० १३४ और भण्डारकर-रिपोर्ट १८८२-८३, पृ० ८२)

याकोबी, 'पउमचरिय' की रचना शैली, भाषा आदि से इसे तीसरी-चौथी श० ई० की रचना मानते हैं। कुछ विद्वान् डा० कीथ आदि इसमे 'दीनार' और ज्योतिष शास्त्र सम्बन्धी कुछ ग्रीक भाषा के शब्दो के पाये जाने के कारण इसे ३०० ई० या उसके भी बाद की रचना बताते है। श्री दीवान बहादुर केशवलाल ध्रुव तो इसे बहुत बाद की रचना बताते है।

६५ 'रामकथा', कामिलबुल्के—पृ० ६८

६—सोमसेनकृत 'रामचरित' (१६वीं श० ई०), (इसकी हस्तलिपि जैन-सिद्धात-भवन, आरा में सुरक्षित है।)

७—आचार्य सोमप्रभकृत 'लघुत्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित'

८—मेघविजयगणिवरकृत 'लघुत्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित' (१७वीश० ई०)

इन रचनाओ के अतिरिक्त 'जिनरत्नकोष' मे धर्मकीर्ति, चन्द्रकीर्ति, चन्द्रसागर, श्रीचन्द्र, पद्मनाभ आदि द्वारा रचित विभिन्न 'पद्मपुराण' अथवा 'रामचरित्र' नामक ग्रन्थो का उल्लेख है। 'सीताचरित्र' के तीन रचयिताओ के नामो का उल्लेख है--ब्रह्मनेमिदत्त, शान्तिसूरि तथा अमरदास। उपर्युक्त सामग्री मे अधिकाश सामग्री अप्रकाशित है।

दसवी शताब्दी के हरिषेणकृत 'कथाकोष' मे 'रामायण कथानकम्' (न० ८४) तथा 'सीताकथानकम्' (न० ८९) पाया जाता है। इस अन्तिम रचना मे विमलसूरि के अनुसार सीता की अग्नि-परीक्षा वर्णित है किन्तु 'रामायण कथानकम्' (५७ श्लोक) प्राय: वाल्मीकीय कथा पर निर्भर है। रामचन्द्र मुमुक्षुकृत 'पुण्याश्रवकथाकोष' (१३३१ ई०), हिन्दी अनुवाद, निर्णय सागर प्रेस, मुबई, १९०७ ई० मे जो लव-कुश की कथा मिलती है, वह भी विमलसूरि की परम्परा पर निर्भर है। हरिभद्रकृत 'धूर्त्तायानम्' (८वी श० ई०) तथा अमितगतिकृत 'धर्मपरीक्षा' (११ वी श० ई०) मे वाल्मीकिरामायण मे वर्णित हनूमान् के समुद्रलघनादि को असम्भव तथा उपहास्यास्पद वताया गया है। 'शत्रुंजयमाहात्म्य' के नवे सर्ग मे रामकथा विमलसूरि और रविषेण के अनुसार है किन्तु कैकेयी राम और लक्ष्मण दोनो के वनवास का वर माँग लेती है (१२ वी० श० ई०)।

(३) अपभ्रंश :

१—स्वयभू देवकृत 'पउमचरिउ' अथवा 'रामायणपुराण' (८ वी श० ई०)

(भारतीय विद्याभवन, बम्बई स० २००९)

२—रइधूकृत 'पद्मपुराण' अथवा 'वलभद्रपुराण' (१५ वी० श० ई०)।

(दे० हरिवश कोछड, 'अपभ्रश-साहित्य')

(४) कन्नड :

१—नागचन्द्र (अभिनव पम्प)-कृत 'पम्परामायण' अथवा 'रामचन्द्रचरितपुराण' (११ वी० श० ई०)। यह रचना कन्नड़ भाषा के कई रामचरित सम्बन्धी ग्रन्थो का आधार है।

(दे० इण्डियन हिस्टारिकल क्वार्टरली, भाग २५, पृ० ५७४-९४)

२—कुमुदेन्दुकृत 'रामायण' (१६ वी श० ई०)
३—देवप्पकृत 'रामविजयचरित' (१६ वी श० ई०)
४—देवचन्द्रकृत 'रामकथावतार' (१८ वी० श० ई०)
५—चन्द्रसागरवर्णीकृत 'जिनरामायण' (१९ वी श० ई०)

विमलसूरि तथा रविषेण की रामकथा और वाल्मीकि की रामकथा की तुलना करने पर यह सहज ही प्रतिभासित हो जाता है कि 'वाल्मीकि-रामायण' ही इस परम्परा का मूल स्रोत है। उसी के विभिन्न तत्त्वो मे जैनधर्म के अनुसार नये मोड देकर इस जैन-रामकथा का विकास किया गया है।

गुणभद्र की परम्परा :

जैन राम-कथा का दूसरा रूप हमे पहले-पहल गुणभद्रकृत 'उत्तरपुराण' मे मिलता है। गुणभद्र जिनसेन के शिष्य तथा कर्नाटक प्रान्त के निवासी थे। इन्होने अपने गुरु के 'आदिपुराण' के अन्तिम १६२० श्लोक रचकर उसे समाप्त कर दिया और उस के बाद 'उत्तरपुराण' अर्थात् 'त्रिषष्टिलक्षणमहापुरुष' का द्वितीय भाग भी लिखा है। इस 'उत्तरपुराण' के अन्तर्गत आठवे बलदेव, नारायण तथा प्रतिनारायण (अर्थात् राम-लक्ष्मण-रावण) का चरित्र ६७ वें तथा ६८ वे पर्व मे ११९७ श्लोको मे वर्णित हैं (दे० स्याद्वादग्रंथमाला, नं० ८, इन्दौर स० १९७५)। यह रामकथा विमलसूरि तथा वाल्मीकि के कथानक से बहुत भिन्न है। इसकी मुख्य विशेषता यह है कि इसमे सीता को रावण तथा मन्दोदरी की औरस पुत्री माना गया है। सीता-जन्म का यह रूप पहले पहल सघदास के 'वसु-देवहिंडी' मे प्रस्तुत किया गया है।

गुणभद्र का आधार बहुत कुछ अज्ञात है। किन्तु वे विमलसूरि तथा सघ-दास की रचनाओ अथवा उनकी परम्परा से अवश्य परिचित थे। जिनसेन अपने 'आदिपुराण' मे कवि परमेश्वर की 'गद्य-कथा' का उल्लेख करते है और उसे अपनी रचना का आधार मानते हैं। गुणभद्र जिनसेन की रचना पूरी करते हैं। अत बहुत सम्भव है कि ये भी कवि परमेश्वर की कथा पर निर्भर रहे हो। कवि परमेश्वर की रचना अप्राप्य है लेकिन तिब्बती रामायण तथा अन्य ग्रन्थो मे भी सीता मन्दोदरी की पुत्री मानी जाती है। अत रामकथा का यह रूप सम्भ-वत जनसाधारण मे प्रचलित हुआ होगा और कवि परमेश्वर या गुणभद्र ने उसे जैनधर्म के अनुरूप करके अपनी रचना मे स्थान दिया होगा। श्री नाथूराम प्रेमी[६६]

---

६६ दे० जैन-साहित्य और इतिहास, पृ० २८२

गुणभद्र की रामकथा के आधार के विषय मे इस प्रकार लिखते हैं—'हमारा अनुमान है कि गुणभद्र से बहुत पहले विमलसूरि ही के समान किसी अन्य आचार्य ने भी जैन धर्म के अनुकूल सोपपत्तिक और विश्वसनीय स्वतन्त्र रूप से रामकथा लिखी होगी और वह गुणभद्राचार्य को गुरु-परम्परा द्वारा मिली होगी। गुणभद्र की गुरु-परम्परा के दो और नाम कन्नड भाषा के कवि चामुण्डराय की रचना मे मिलते है। चामुण्डराय 'त्रिषष्टिलक्षणमहापुरुष' के लेखको की निम्नलिखित सूची देते है—कूचि, भट्टारक, नन्दिमुनीश्वर, कविपरमेश्वर, जिनसेन तथा गुणभद्र। गुणभद्र की रामकथा अन्य जैन रचनाओ मे भी ज्यो की त्यो मिलती है।

संस्कृत—१—गुणभद्रकृत 'उत्तरपुराण' (नवी श० ई०)
२—कृष्णदासकविकृत 'पुण्यचन्द्रोदयपुराण' (१६वीं० श० ई०)

प्राकृत—पुष्पदन्तकृत 'तिसट्ठी-महापुरिस-गुणालकार' (१०वीं० श० ई०)

कन्नड़—१—चामुण्डरायकृत 'त्रिषष्टिशलाकापुरुषपुराण' (११वी श० ई०)
२—बन्धुवर्माकृत 'जीवनसम्बोधन' (१२०० ई०)
३—नागराजकृत पुण्याश्रवकथासार' (१३३१ ई०)

पुण्यचन्द्रोदय पुराण' को छोड़कर उपर्युक्त रचनाओ मे रामकथा के अतिरिक्त अन्य ६३ महापुरुषो के चरित भी मिलते हैं।'

इस प्रकार 'पउमचरिय' तथा 'उत्तरपुराण' की रामकथा की दो धाराएँ अलग-अलग स्वतन्त्ररूप से निर्मित होकर आगे बढी है।

यहाँ एक प्रश्न हो सकता है कि विमलसूरि और रविषेण से भी बाद मे उत्पन्न होने वाले गुणभद्र ने उनके कथानक का अनुसरण क्यो नही किया? इसका उत्तर देते हुए पं० नाथूराम प्रेमी लिखते है—'इन दो धाराओ मे गुरुपरम्परा भेद भी हो सकता है। एक परम्परा ने एक धारा को अपनाया और दूसरी ने दूसरी को। ऐसी दशा मे गुणभद्र स्वामी ने 'पउमचरिय' की धारा से परिचित होने पर भी इस खयाल से उसका अनुसरण न किया होगा कि यह हमारी गुरुपरम्परा की नही है। यह भी सभव हो सकता है कि उन्हे 'पउमचरिय' के कथानक की अपेक्षा यह कथानक ज्यादा अच्छा मालूम हुआ हो।[६७]

'उत्तरपुराण' का सक्षिप्त कथानक इस प्रकार है—'दशरथ (वाराणसी के

---

६७ जैन साहित्य और इतिहास, पृ० २८२

राजा) के चार पुत्र उत्पन्न होते हैं—राम सुवाला के गर्भ से, लक्ष्मण कैकेयी के गर्भ से और वाद मे जव दशरथ अपनी राजधानी को साकेतपुर स्थापित कर चुके है तव भरत और शत्रुघ्न किसी अन्य रानी के गर्भ से, जिसका नाम नही दिया जाता है। दशानन विनमि विद्याधर वश के पुलस्त्य का पुत्र है। किसी दिन वह अमितवेग की पुत्री मणिमती को तपस्या करते देखता है और उसपर आसक्त होकर उसकी साधना मे विघ्न डालने का प्रयत्न करता है। मणिमती निदान करती है — 'मै उसकी पुत्री होकर उसे मारूँगी।' मृत्यु के बाद वह रावण की रानी मन्दोदरी के गर्भ मे आती है। उसके जन्म के वाद ज्योतिषी रावण से कहते है कि वह आपका नाश करेगी। अत रावण ने भयभीत होकर मारीचि को आज्ञा दी कि वह उसे कही छोड दे। कन्या को एक मजूषा मे रखकर मारीचि उसे मिथिला देश मे गाड आता है। हल की नोक से उलझ जाने के कारण वह मजूषा दिखलाई पडती है और लोगो के द्वारा जनक के पास ले जाई जाती है। जनक मजूषा को खोलकर एक कन्या को देखते है और उसका नाम सीता रखकर उसे पुत्री की तरह पालते हैं। वहुत समय के वाद जनक अपने यज्ञ की रक्षा के लिए राम और लक्ष्मण को वुलाते हैं। इस यज्ञ के समाप्त होने पर राम और सीता का विवाह होता है। इसके वाद राम सात अन्य कुमारियो से विवाह करते है और लक्ष्मण पृथ्वीदेवी आदि १६ राज-कन्याओ से। दोनो दशरथ से आज्ञा लेकर वाराणसी मे रहने लगते है।

नारद से सीता के सौंदर्य का वर्णन सुनकर रावण उसे हर लाने का सकल्प करता है। सीता का मन जाँचने के लिए शूर्पनखा भेजी जाती है लेकिन सीता का सतीत्व देखकर वह रावण से यह कहकर लौटती है कि सीता का मन चलायमान करना असभव है। जव राम और सीता वाराणसी के निकट चित्रकूट वाटिका मे विहार करते है तव मारीचि स्वर्णमृग का रूप धारण करके राम को दूर ले जाता है। इतने मे रावण राम का रूप धारण कर सीता से कहता है कि मैंने मृग को महल भेजा है और उनको पालकी पर चढने की आज्ञा देता है। यह पालकी वास्तव मे पुष्पक विमान है जो सीता को लका ले जाता है। रावण सीता का स्पर्श नही करता है क्यो पतिव्रता के स्पर्श से उसकी आकाश-गामिनी विद्या नष्ट हो जाएगी।

दशरथ को स्वप्न द्वारा मालूम हुआ कि रावण ने सीता का हरण किया है और वे राम के पास यह समाचार भेजते है। इतने मे सुग्रीव और हनूमान् वालि के विरुद्ध सहायता माँगने के लिए पहुँचते हैं। हनूमान् लका जाते है और सीता को सान्त्वना देकर लौटते हैं। इसके वाद लक्ष्मण द्वारा वालि का वध होता है और सुग्रीव अपने राज्य पर अधिकार प्राप्त करता है। सेतुवन्ध का प्रसग छोड दिया गया है, वानरो और राम की सेना विमान से लका पहुँचाई जाती है। युद्ध के अपे-

क्षाकृत विस्तृत वर्णन के अन्त मे लक्ष्मण चक्र से रावण का सिर काटते हैं। राम परीक्षा लिये बिना सीता को स्वीकार करते है। इसके बाद लक्ष्मण राम के साथ बयालीस वर्ष तक दिग्विजय यात्रा करते है और अर्धचक्रवर्ती बनकर अयोध्या लौटते हैं। अनन्तर दोनो का सम्मिलित अभिषेक सम्पन्न हो जाता है। लक्ष्मण की १६ हजार और राम की आठ हजार रानियाँ बताई जाती है। कुछ वर्ष बाद राम तथा लक्ष्मण भरत तथा शत्रुघ्न को राज्य देकर वाराणसी चले आये। सीता के विजयराम आदि आठ पुत्र उत्पन्न होते है (सीता-त्याग का उल्लेख नही मिलता)। लक्ष्मण एक असाध्य रोग से मरकर रावण-वध के कारण नरक जाते हैं। राम लक्ष्मण के पुत्र पृथ्वीचन्द्र को राज्यपद और सीता के कनिष्ठ पुत्र अजितजय को युवराज-पद पर अभिषिक्त करके सुग्रीव, अणुमान् तथा विभीषण आदि पाँच सौ राजाओ और १८० पुत्रो के साथ साधना करने जाते हैं। ३९५ वर्ष बीत जाने पर राम को केवल ज्ञान उत्पन्न हुआ। सीता भी अनेक रानियो के साथ दीक्षा लेती है। अन्त मे राम तथा अणुमान् की मोक्षप्राप्ति का उल्लेख किया गया है, सीता स्वर्ग मे पहुँचती है तथा लक्ष्मण के सम्बन्ध मे कहा जाता है कि नरक से निकलकर वे भी सयम धारण करेंगे तथा मोक्ष प्राप्त कर सकेंगे।'

'पद्मपुराण' पर 'वाल्मीकि-रामायण' का प्रभाव

वस्तुत 'वाल्मीकिकृतरामायण' ही समस्त प्रचलित राम-कथा-साहित्य का मूलस्रोत प्रमाणित होता है। अत्यन्त विस्तृत रामकथा-साहित्य मे जो वैभिन्य आ गया है वह वाल्मीकिकृत रामायण के विकास तथा उसके कथानक पर विभिन्न प्रभावो का परिणाम माना जा सकता है।"[६८]

रविषेण ने 'पद्मपुराण' की रचना 'रामायण' की दोषपूर्णता सिद्ध करते हुए की है। उन्होने श्रेणिक और गौतम के मुख से प्रचलित 'रामायण' ग्रथ की उपपत्ति-विरुद्धता उद्घोषित की है तथा वास्तविक 'पद्म (राम) चरित' का प्रकाशन कराया है। राजा श्रेणिक के मन मे प्रचलित रामायण के विषय मे सन्देह उत्पन्न होता है —

"अथास्य चरिते पद्मसम्बन्धिनि गत मन।
सन्देह इव चेत्यासीद्रक्षसु प्लवगेषु च॥
कथ जितेन्द्रधर्मेण जाता सन्तो नरोत्तमा.।
महाकुलीना विद्वासो विद्याद्योतितमानसा.॥

६८ 'रामकथा' पृ० ७२७-७३०

श्रूयन्ते लौकिके ग्रथे राक्षसा रावणादय ।
वसाशोणितमासादिपानभक्षणकारिण ॥
रावणस्य किल भ्राता कुम्भकर्णो महाबल ।
घोरनिद्रापरीत षण्मासान् शेते निरन्तरम् ॥
मत्तैरपि गजैस्तस्य क्रियते मर्दन यदि ।
तप्ततैलकटाहैश्च पूर्येते श्रवणौ यदि ॥
भेरी-शख-निनादोऽपि सुमहानपि जन्यते ।
तथापि किल नायाति कालेऽपूर्णे विबुद्धताम् ॥
क्षुत्तृष्णाव्याकुलश्चासौ विबुद्ध सन्महोदर ।
भक्षयत्यग्रतो दृष्ट्वा हस्त्यादीनपि दुर्द्धर ॥
तिर्यग्भिर्मानुपैर्देवै कृत्वा तृप्ति तत पुन ।
स्वपित्येव विमुक्तान्यनि शेषपुरुषस्थिति ॥
अहो कुकविभिर्मूर्खैर्विद्याधरकुमारक. ।
अभ्याख्यानमिद नीतो दु कृतग्रथकरथकै ॥
एवविध किल ग्रथ रामायणमुदाहृतम् ।
शृण्वता सकल पाप क्षयमायाति तत्क्षणात् ॥
ताप-त्यजनचित्तस्य सोऽयमग्निसमागम ।
शीतापनोदकामस्य तुषारानिलसगम. ॥
हैयंगवीनकाक्षस्य तदिद जलमन्थनम् ।
सिकतापीडन तैलमवाप्तुमभिवाञ्छतः ॥
महापुरुषचारित्रकूटदोषविभाविषु ।
पापैरधर्मशास्त्रेषु धर्मशास्त्रमति कृता ॥
अमराणा किलाधीशो रावणेन पराजित ।
आकर्णाकृष्टनिर्मुक्तैर्बाणैर्मर्मविदारिभि ॥
देवानामधिप क्वासौ वराक क्वैष मानुष ?
तस्य चिन्तितमात्रेण यायाद् यो भस्मराशिताम् ॥
ऐरावतो गजो यस्य, यस्य वज्र महायुधम् ।
समेरुवारिधि क्षोणी योऽनायासात् समुद्धरेत् ॥
सोऽय मानुषमात्रेण विद्याभाजाऽल्पशक्तिना ।
आनीयते कथ भग प्रभुः स्वर्गनिवासिनाम् ॥
वन्दीगृहगृहीतोऽसौ प्रभुणा रक्षसा किल ।
लकाया निवसन् कारागृहे नित्य सुसयत. ॥

मृगै सिंहवध सोऽय शिलाना पेषणं तिलै ।
वधो गण्डूपदेनाहेर्गजेन्द्रग्रसन शुना ।।
व्रतप्राप्तेन रामेण सौवर्णो रुरुराहत ।
सुग्रीवस्याग्रज स्त्र्यर्थ जनकेन समस्तथा ।।
अश्रद्धेयमिद सर्व वियुक्तमुपपत्तिभि ।
भगवन्त गणाधीश श्वोऽह पृष्टास्मि गौतमम् ।।"[६९]

इस सन्देह की निवृत्ति के लिए वह गौतम गणधर से तात्त्विक रामचरित सुनने की इच्छा करता-हुआ कहता है —

"भगवन् ! पद्मचरित श्रोतुमिच्छामि तत्त्वत. ।
उत्पादितान्यथैवास्मिन् प्रसिद्धि कुमतानुगै ।।
राक्षसो हि स लकेशो विद्यावान् मानवोऽपि वा ।
तिर्यग्भि परिभूतोऽसौ कथ क्षुद्रकवानरै ।।
अत्ति चात्यन्तदुर्गन्ध कथ मानुषविग्रहम् ।
कथ वा रामदेवेन वालिश्छिद्रेण नाशित ।।
गत्वा वा देवनिलय भङ्क्त्वोपवनमुत्तमम् ।
वन्दीगृह कथ नीतो रावणेनामराधिप ।।
सर्वशास्त्रार्थकुशलो रोगवर्जितविग्रह ।
शेते च स कथ मासान् षडेतस्य वरोऽनुज ।।
कथ चात्यन्तगुरुभि पर्वतैरलमुन्नत ।
सेतु शाखामृगैर्बद्धो य सुरैरपि दुर्घट ।।
प्रसीद भगवन्नेतत्सर्व कथयितु मम ।
उत्तारयन् वहून् भव्यान् सशयोदारकर्दमात् ।।"[७०]

और फिर गौतम गणधर 'तत्त्वशसनतत्पर' 'जिनेन्द्रोक्त' वाक्य से उसे समझाते हुए कहते है —

"रावणो राक्षसो नैव न चापि मनुजाशन ।
अलीकमेव तत्सर्व यद्वदन्ति कुवादिन ।।"[७१]

उपर्युक्त समस्त प्रकरण से यही सिद्ध होता है कि रविषेण के सम्मुख ऐसी रामायण अवश्य रही होगी जिसमे रावणादि को राक्षस और मासभक्षी बताया गया हो। कुम्भकर्ण को छ महीने सोने वाला भयकर राक्षस कहा गया हो, राम के

---

६९ पद्मपुराण, २।२२९-२४९

७० पद्मपुराण, ३।१७-२४

७१ वही ३।२७

द्वारा छिपकर बालिवध आदि का व्याख्यान हो। इसकी अलीक, उपपत्तिविरुद्ध एव अविश्वसनीय बातो को सत्य, नोपपत्तिक और विश्वसनीय बनाने का प्रयत्न रविषेण ने किया है। भाव यह है कि रविषेण के दृष्टिकोण से रामायण की त्रुटियो का परिमार्जन 'पद्मपुराण' मे किया गया है।

यह 'रामायण-ग्रन्थ' किसका बनाया हुआ था—इसका रविषेण ने कोई स्पष्ट सकेत नही किया तथापि यह अनुमान सहजतया लगाया जा सकता है कि 'वाल्मीकिकृत रामायण' पर ही उनका कटाक्षाक्षेप है क्योकि उसमे सभी बातें पाई जाती हैं, यथा—

१—'श्रूयन्ते लौकिके ग्रन्थे राक्षसा रावणादय.।'' (पद्म० २।२३५)

तुल०—''शृणु रामायण विप्र वाल्मीकिमुनिना कृतम्।
येन रामावतारेण राक्षसा रावणादयः।
हतास्तु देवकार्यं हि चरित तस्य तच्छृणु॥''
(रामा० १।२।४०-४१)

२—एवविधं किल ग्रन्थ रामायणमुदाहृतम्।
शृण्वता सकल पापं क्षयमायाति तत्क्षणात्॥' (पद्म०, २।२३८)

तुल०—'यन्नामस्मरणादेव महापातककोटिमि।
विमुक्त. सर्वपापेभ्यो नरो याति परा गतिम्॥
रामायणेति यन्नाम सकृदप्युच्यते यदा।
तदैव पापनिर्मुक्तो विष्णुलोक स गच्छति॥' (रामा० ३।७१-७३)
'इदमाख्यानमायुष्यं सौभाग्य पापनाशनम्। (उत्त०, १११।४)
'सर्वपापैः प्रमुच्येत पादमप्यस्य य पठेत्।' (उत्त० १११।५)
'पापान्यपि हि य कुर्यादहन्यहनि मानव।
पठत्येकमपि श्लोक पापात्स परिमुच्यते॥' (उत्त० १११।६)
'सम्यक्श्रद्धासमायुक्त शृणुते राघवी कथाम्।
सर्वपापात् प्रमुच्येत विष्णुलोक स गच्छति॥ (उत्त० १११।१५)
'य पठेच्छृणुयान्नित्यं चरित राघवस्य ह।
भक्त्या निष्कल्मषो भूत्वा दीर्घमायुरवाप्नुयात्॥' (उत्त० १११।१९)
आदि।

इस प्रकार यह सिद्ध हो जाने पर कि रविषेण ने वाल्मीकिकृत रामायण को पढकर उसके दोषो का अपने 'पद्मपुराण' मे परिमार्जन किया यह कथन बहुत सुगम हो जाता है कि 'पद्मपुराण' पर 'वाल्मीकि रामायण' का प्रचुर प्रभाव पड़ा है। किसी ग्रन्थ को आद्यन्त पढकर उसके कुछ अशो मे परिवर्तन प्रस्तुत करके

उसी की कथा प्रकारान्तर से यदि कोई कवि अपने ग्रन्थ मे कहता है तो उस पर पूर्ववर्ती कवि की रचना का प्रभाव पडना अवश्यभावी है। यह प्रभाव अनुकूल भी पड सकता है और प्रतिकूल भी। यहाँ 'वाल्मीकीय-रामायण' के 'पद्मपुराण' पर इस अनुकूल तथा प्रतिकूल प्रभाव का विवेचन करना ही अपना लक्ष्य है।

यही एक बात और कह देनी महत्वपूर्ण है कि वाल्मीकिकृत रामायण के गौडीय, दाक्षिणात्य, उदीच्य तथा पश्चिमोत्तरीय आदि अनेक पाठो का पर्यालोचन करने पर मूल वाल्मीकीय रामायण मे अनेको अश प्रक्षिप्त सिद्ध होते है जिनका पूर्ण विवेचन श्री कामिलवुल्के ने 'रामकथा' मे किया है। ये प्रक्षेप कव हुए—यह पूर्ण रूप से कहना कठिन है किन्तु यह निश्चित है कि ये रविषेण से पहले रामायण मे मिल चुके थे। अत 'पद्मपुराण' पर 'वाल्मीकीय-रामायण' का प्रभाव दिखाते समय इन प्रक्षेपो को भी ध्यान मे रखा जायेगा। रामायण के कथानक और शैली-दोनो ने ही 'पद्मपुराण' को पर्याप्त प्रभावित किया है।

कथानक पर प्रभाव :

'पद्मचरित' की कथा का अधिकाश 'वाल्मीकि-रामायण' के ढग का है।[७२]" कही तो वाल्मीकि-रामायण का कथानक ज्यो का त्यो साधारण से हेर-फेर के साथ ग्रहण कर लिया गया है और कही उपपत्ति-विरोध को देखकर उसे अन्यथा कल्पित कर लिया गया है। इस 'अन्यथा प्रकल्पन' का पूर्णतया उल्लेख हम चतुर्थ अध्याय मे विषयवस्तु के विवेचन के समय करेगे। यहाँ कथानक के अनुकूल प्रभाव का अध्ययन हमे करना है।

वाल्मीकि-रामायण का कथानक (प्रक्षेपो सहित) सात काण्डो मे विभक्त जिसका क्रमश प्रभाव 'पद्मपुराण' पर हमे देखना है।

बालकाण्ड की कथावस्तु—को पाँच मुख्य विभागो में विभक्त किया जा सकता है—

(१) भूमिका (सर्ग १-४) —नारद का वाल्मीकि से अयोध्या काण्ड से लेकर युद्धकाण्ड तक की राम कथा का कथन (सर्ग १), श्लोकोत्पत्ति, नारद से सुनी हुई रामकथा को श्लोकवद्ध करने की वाल्मीकि को ब्रह्मा की आज्ञा (सर्ग २), अनुक्रमणिका (सर्ग ३), वाल्मीकि का कुश-लव को अपना काव्य सिखाना और उनका राम के सम्मुख उसे सुनाना (सर्ग ४)।

(२) **दशरथ-यज्ञ** (सर्ग ५-१७) —अयोध्या का वर्णन, राजा-नागरिक-

---

७२ जैन साहित्य और इतिहास, पृ० २८८

मन्त्री-पुरोहितो का वर्णन (सर्ग ५-७), अश्वमेधयज्ञ का सकल्प सर्ग (८), ऋष्य-शृग की कथा (सर्ग ९-११), ऋष्यशृग द्वारा अश्वमेध (सर्ग १२-१४), ऋष्यशृग द्वारा पुत्रेष्टियज्ञ, देवताओ की विष्णु से अवतार लेने की प्रार्थना, पायस प्राप्तकर दशरथ का उसे अपनी पत्नियो मे बाँटना (सर्ग १५-१६), देवताओ का अप्सराओ और गन्धर्वियो से वानरो की उत्पत्ति करना (सर्ग १७)।

(३) राम का जन्म तथा प्राकृतिक कृत्य (सर्ग १८-३१) —राम-भरत-लक्ष्मण-शत्रुघ्न-जन्म, विश्वामित्र का आगमन (सर्ग १८) और अपने यज्ञ की रक्षा के लिए दशरथ से राम लक्ष्मण को माँगना (सर्ग १९-२१), राम-लक्ष्मण का विश्वामित्र के साथ गमन, सरयू-तट पर विश्वामित्र से कला और अतिकला की प्राप्ति (सर्ग २२), गगा-सरयू के सगम पर विश्वामित्र द्वारा काम-दहन की कथा (सर्ग २३), मलद और करुष की कथा (सर्ग २४), ताटका की कथा (सर्ग २५), राम द्वारा उसका वध (सर्ग २६), राम को दिये गये आयुधो की सूची (सर्ग २७-२८), सिद्धाश्रम पर वामनावतार की कथा (सर्ग २९), मारीच का समुद्र मे निक्षेप और सुबाहु का वध (सर्ग ३०), मिथिला के लिए प्रस्थान (सर्ग ३१)।

(४) पौराणिक कथाएँ (सर्ग ३२-६५) —विश्वामित्र के वश की कथा (सर्ग ३२-३४), हिमवान् की पुत्रियाँ, गगा का स्वर्गारोहण, उमा का शिव से विवाह, कार्तिकेयजन्म (सर्ग ३५-३७), सगर-पुत्रो का पाताल मे भस्म होना, भगीरथ द्वारा गगावतरण, जह्नु द्वारा गगा का पिया जाना और भगीरथ द्वारा अनुसरण करते हुए पाताल मे सगरपुत्रो का उद्धार करना (सर्ग ३२-४४)। समुद्र-मन्थन की कथा (सर्ग ४५-४७), गौतम द्वारा इन्द्र और अहल्या को दिये गये शापो की कथा, अहल्योद्धार (सर्ग ४८-४९), जनक द्वारा विश्वामित्र, राम और लक्ष्मण का स्वागत (सर्ग ५०), विश्वामित्र की कथा शतानन्द द्वारा विश्वामित्र के ब्राह्मण बनने की कथा, राजा विश्वामित्र का वसिष्ठ को परास्त न कर सकने के कारण ब्राह्मण बननेका निश्चय (सर्ग ५१-५६), उनका राजर्षि बनना, त्रिशकु की कथा (सर्ग ५७-६०), अम्बरीप के यज्ञ मे शुन शेप का बलिदान, विश्वामित्र का ऋषि बनना, मेनका की सफलता एव रम्भा की असफलता और अन्त मे विश्वामित्र का ब्रह्मर्षि बनना (सर्ग ६१-६५)।

(५) राम-विवाह (सर्ग ६६-७७)—धनुर्भग जनक द्वारा धनुष तथा सीता के अलौकिक जन्म की कथा, उनकी सीता-विवाह-विषयक प्रतिज्ञा, राजाओ की असफलता और उनका आक्रमण (सर्ग ६६), राम द्वारा धनुर्भग, दशरथ का बुलावा और मिथिला मे उनका आगमन (सर्ग ६७-६९), विवाह वसिष्ठ द्वारा

दशरथ के वंश का परिचय, जनक का अपना वंश-वर्णन, चारो भाइयों का विवाह (सर्ग ७०-७३), परशुराम · उत्तरीय पर्वतों पर विश्वामित्र का गमन, दशरथ के मार्ग मे अपशकुन और परशुराम का आगमन, वैष्णव धनुष चढाकर राम द्वारा परशुराम की पराजय (सर्ग ७४-७६), अयोध्यागमन, भरत और शत्रुघ्न का प्रस्थान, राम की लोकप्रियता (सर्ग ७७)।

बालकाण्ड की कथावस्तु के भूमिका भाग का 'पद्मपुराण' पर अधिक प्रभाव नही पडा है। केवल 'अनुक्रमणिका' के सदृश उसमें सूत्र-विधान किया गया है (पर्व १), शेष चारों भागो का समष्टिगत प्रभाव 'पद्मपुराण' पर है, केवल यज्ञ-सस्कृति-मूलक प्रभाव नही पडा है। दशरथ अपनी पत्नियो को गन्धोदक बँटवाते है जो यज्ञोत्थ-पायस-वितरण का ही जैनी रूप है। दशरथ की विभिन्न रानियो से राम आदि चार पुत्रो का जन्म, बचपन मे ही राम-लक्ष्मण का दशरथ से अलग चले जाना, सगरपुत्रो का भस्म होना, धनुष चढाना, आदि 'पद्मपुराण' मे भी थोडे हेर-फेर से वर्णित है। ऐसे वर्णनो मे रविषेण का दृष्टिकोण यही रहा है कि इन घटनाओ की बौद्धिक और तर्कसम्मत व्याख्या की जाय एव उनको जैनी आवरण प्रदान किया जाय। यही कारण है कि वाल्मीकि-रामायण से प्रभावित होते हुए भी 'पद्मपुराण' मे कुछ नवीनता आ गयी है, उदाहरणार्थ—दशरथ की वंशावली मे नघुष, सौदास, मान्धाता, ककुत्स्थ, रघु, अनरण्य तथा दशरथ नाम तो वाल्मीकि रामायण के अनुसार है किन्तु इस वशावली का विस्तार काफी है यथा—विजय, सुरेन्द्रमन्यु, पुरन्दर, कीर्तिधर, सुकोसल, हिरण्यगर्भ, नघुष, सौदास, सिंहरथ, ब्रह्मरथ, चतुर्मुख, हेमरथ, शतरथ, मान्धाता, वीरसेन, पीतमन्यु, कमलबन्धु, रविमन्यु, वसन्ततिलक, कुबेरदत्त, कीर्तिमान्, कुन्थुभक्ति, शरभरथ, द्विरदरथ, सिंहदमन, हिरण्यकशिपु पुजस्थल, ककुत्थ, रघु, अनरण्य, दशरथ। अनरण्य के दो पुत्र हुए थे—अनन्तरथ और दशरथ। अनन्तरथ ने दीक्षा ले ली (पर्व २१-२२)। इसी प्रकार यद्यपि दशरथ की अनेक रानियाँ तथा चार संतान वाल्मीकि-रामायण के समान ही है तथापि कुछ अन्तर है। 'वाल्मीकि-रामायण' मे दशरथ की कौशल्या रानी से राम, सुमित्रा से लक्ष्मण तथा शत्रुघ्न एव कैकेयी से भरत हुए है जबकि 'पद्मपुराण' मे अपराजिता से राम, सुमित्रा (कैकेयी) से लक्ष्मण, केकया से भरत तथा सुप्रभा से शत्रुघ्न हुए। ये अनेक राजाओ की पुत्रियाँ थी (पर्व २२-२५)। इनके अतिरिक्त जिस प्रकार 'वाल्मीकि रामायण' मे दशरथ की ३५० स्त्रियो का उल्लेख है—'त्रय शत- शतार्धा हि ददर्शावेक्ष्य मातर.' (२।३९।३६) इसी प्रकार 'पद्मपुराण' मे भी उनकी ५०० उत्तम स्त्रियो का उल्लेख है।

वाल्मीकि-रामायण के इन्द्र-अहल्या-वृत्तान्त का भी 'पद्मपुराण' पर प्रभाव पडा है किन्तु है वह हेर-फेर के साथ ही। वाल्मीकि-रामायण के उत्तरकाड मे गौतम-अहल्या के विवाह का वृत्तान्त इस प्रकार मिलता है—ब्रह्मा ने दूसरे प्राणियो के सर्वश्रेष्ठ अग लेकर एक हल (कुरूपता)-रहित स्त्री का निर्माण किया और उसका नाम अहल्या रखा। इन्द्र अहल्या की अभिलाषा करता था किन्तु ब्रह्मा ने उसे धरोहर के रूप मे गौतम ऋषि के यहाँ रखा। अनेक वर्षो के बाद गौतम ने जब उसे ब्रह्मा को लौटाया तो उन्होने ऋषि की सिद्धि देखकर अहल्या को उनकी पत्नी बना दिया। 'पद्मपुराण' (पर्व १३) मे भी अहल्या पर इन्द्र की आसक्ति का सकेत है। वह अरिंजयपुर नगर मे वह्निवेग विद्याधर की वेगवती रानी से उत्पन्न पुत्री थी जिसने इन्द्र विद्याधर को न ग्रहण करके स्वयवर मे आनन्दमाल राजा को वरा था।

परशुराम के क्षत्रियद्वेष का सकेत वाल्मीकि ने (बाल० ७४।१७, २२, ७५।६) किया है उसी का विकसित अथवा विकृतरूप 'पद्मपुराण' मे (पर्व २०) उपलब्ध होता है जहाँ कहा गया है कि परशुराम (जामदग्न्य) ने पृथ्वी को सात बार नि क्षत्रिय किया था किन्तु सुभूम चक्रवर्ती ने २१ बार पृथ्वी को ब्राह्मण-रहित कर दिया।

'रामायण' मे राम-लक्ष्मण की अभिन्न प्रीति का उल्लेख किया गया है—'न च तेन विना निद्रा लभते पुरुषोत्तम (बाल० १८।३०)। 'पद्मपुराण' मे भी 'अनेक-जन्मसवृद्धस्नेहान्योन्यवशानुगौ' (पर्व २५।३०) कहकर इसकी स्वीकृति दी गयी है।

'रामायण' मे राम-लक्ष्मण बचपन मे ही अपनी वीरता से ताटकादि दुष्टो का वध करते है 'पद्मपुराण' मे वे म्लेच्छो को पराजित करते है। यह उनकी प्रारम्भिक वीरता का प्रकारान्तर से स्वीकरण है।

'वाल्मीकि-रामायण' मे शिव-धनुर्भंग करके राम सीता की प्राप्ति करते है (बाल० ३१। ६६, ७३), 'पद्मपुराण' मे राम 'वज्रावर्त' धनुष चढाकर उसकी प्राप्ति करते है। यहाँ भी धनुष-सम्बन्धी प्रभाव है।

'रामायण' मे राम के अतिरिक्त अन्य तीन भाइयो का भी सीता की बहिनो से विवाह वर्णित है (बाल० ७३), 'पद्मपुराण' मे राम के अतिरिक्त उनके भाई भरत का और लक्ष्मण का विवाह वर्णित है। अन्तर इतना है कि भरत की उदासी का मनोवैज्ञानिक-सा हेतु दिया गया है।

'रामायण' मे राम का एक-पत्नीत्व प्रधानत वर्णित है किन्तु यत्र-क्वचित् उनके बहुपत्नीत्व के सकेत भी है यथा—'हृष्टा. खलु भविष्यन्ति रामस्य परमा. स्त्रिय' (२।८।१२) तथा 'भुजै. परमनारीणामभिमृष्टमनेकधा' (६।२१।३)।

यौवराज्याभिषेक की तैयारी (सर्ग १।३५–सर्ग ६)। मन्थरा-कैकेयी सवाद—दो वर माँगने के विषय मे मन्थरा की सफलता (सर्ग ७-६), दशरथ-कैकेयी-सवाद,—दशरथ द्वारा दो वरो की स्वीकृति (सर्ग १०-१४), दशरथ के पास राम का आगमन, दशरथ के सम्मुख कैकेयी का समाचार-कथन (सर्ग १५-१६), राम-कौशल्या-सवाद, लक्ष्मण और कौशल्या द्वारा निर्वासन का विरोध, राम का उनको समझाना, कौशल्या द्वारा विदा और मगलाकाक्षा (सर्ग २०-२५)। राम-सीता-सवाद, वन की भयकरता से राम का सीता को भयभीत करना, अन्त मे साथ चलने की स्वीकृति देना (सर्ग २६-३०), लक्ष्मण का आग्रह और राम द्वारा साथ ले चलने की स्वीकृति (सर्ग ३१), प्रस्थान-दान-वितरण, राम का राजा के पास जाना। (सर्ग ३२-३४), सुमन्त्र के द्वारा कैकेयी की भर्त्सना (सर्ग ३५), दशरथ का राम के साथ सेना भेजने का प्रस्ताव, कैकेयी की आपत्ति (सर्ग ३६), कैकेयी द्वारा दिये गये वल्कल का धारण करना, (सर्ग ३७), दशरथ द्वारा कैकेयी की भर्त्सना (सर्ग ३८), सुमन्त्र का रथ लाना, कौशल्या द्वारा सीता को शिक्षा एव विदा (सर्ग ३६-४०), विलाप-कलाप, दशरथ मूर्च्छा, कौशल्या का विलाप तथा सुमित्रा का सान्त्वना देना (सर्ग ४१-४४)।

(२) चित्रकूट की यात्रा (सर्ग-४५-५६) :—अयोध्या-निवासी : उनका रथ के साथ जाना, तमसा के पास रात्रि-निवास, उनके सोते समय तीनो का सुमन्त्र के साथ प्रस्थान (सर्ग ४५-४६), लोगो का विलाप और अयोध्या लौटना (सर्ग ४७-४८)। गुह · वेदश्रुति और गोमती पार गुह का मिलन (सर्ग ४६-५०) लक्ष्मण और गुह का राम का गुण-कथन करते हुए रात्रि व्यतीत करना (सर्ग ५१), सुमन्त्र को विदा करके गुह की नौका पर गगा पार करना (सर्ग ५२)। भरद्वाज· राम का विलाप और लक्ष्मण की सान्त्वना, यमुना और गगा के सगम पर भरद्वाजाश्रम मे आना, भरद्वाज की चित्रकूट-निवास की मन्त्रणा (सर्ग ५३-५४), यमुना को पार करना, चित्रकूट पहुँचना, वाल्मीकि से मिलन और लक्ष्मण द्वारा एक पर्णशाला का निर्माण (सर्ग ५५-५६)।

(३) दशरथ-मरण (सर्ग-५७-६८) — सुमन्त्र का लौटना सुमन्त्र से राम का सन्देश सुनकर दशरथ की मूर्च्छा और विलाप सुमन्त्र द्वारा कौशल्या को सान्त्वना (सर्ग ५७-६०), दशरथ-मरण कौशल्या की भर्त्सना से दशरथ का मूर्च्छित होना (सर्ग ६१-६२), दशरथ द्वारा अन्धमुनि-पुत्र-वध की कथा, दशरथ-मरण, विलाप (सर्ग६२-६६), भरत का राज्य अस्वीकृत करना भरत का बुलया जाना और अयोध्या-आगमन, कैकेयी द्वारा राज्य-ग्रहण का अनुरोध, भरत की भर्त्सना और मन्त्रियो के सम्मुख राज्य को अस्वीकृत करना तथा उनका कौशल्या

से अपने निरपराधी होने का आश्वासन पाना (सर्ग ६७-७५)। दशरथ की अन्त्येष्टि भरत द्वारा अन्त्येष्टि-क्रिया और दान-वितरण, भरत और शत्रुघ्न का विलाप, शत्रुघ्न द्वारा मन्थरा की ताडना (सर्ग ७६-७८)।

(४) भरत की चित्रकूट-यात्रा (७९-११५) :—प्रस्थान : भरत का पुन राज्य को अस्वीकार करना और यात्रा की आज्ञा देना, सभा मे वसिष्ठ का भरत को समझाना परन्तु उनका न मानना, प्रस्थान और शृगवेरपुर-आगमन (सर्ग ७९-८३)। गुह और भरद्वाज भरत द्वारा गुह का सन्देह निवारण, गुह का लक्ष्मण की वार्ता का उल्लेख करना तथा राम का शयनस्थल दिखलाना (सर्ग ८४-८८), गगा पार करना, भरद्वाज का तप शक्ति से आतिथ्य-सत्कार (सर्ग ८९-९२)। चित्रकूट-आगमन चित्रकूट को देखकर भरत का सेना रोकना (सर्ग ९३), राम द्वारा चित्रकूट और मन्दाकिनी की शोभा का वर्णन, सेना को निकट आते देख लक्ष्मण का आक्रोश और राम का उनको शान्त करना (सर्ग ९४-९७), भरत और शत्रुघ्न का राम के निकट जाना, राम का कुशल-प्रश्न (सर्ग ९८-१००)। राम द्वारा प्रत्यागमन की अस्वीकृति भरत का दशरथ-मरण का समाचार देना और राम से राज्यग्रहण का अनुरोध, राम का अस्वीकार करना (सर्ग १०१-१०२), राम का विलाप और दशरथ के लिए जलक्रिया करना (सर्ग १०३), माताओ का आना (सर्ग १०४), सभा मे भरत का अनुरोध और राम की अस्वीकृति (सर्ग १०५-१०७), जाबालि-वृत्तान्त (सर्ग १०८-१०९), वसिष्ठ का आग्रह भरत द्वारा प्रायोपवेशन की धमकी, लौटने पर राज्यग्रहण का राम द्वारा आश्वासन (सर्ग ११०-१११), ऋषियो की आकाशवाणी सुनकर भरत का पादुकाएँ लेकर वापस जाना (सर्ग ११२)। भरत का प्रत्यागमन भरद्वाज से मिलकर भरत का जन-शून्य अयोध्या मे लौटना, राज्य-सिंहासन पर पादुकाएँ स्थापित कर भरत का नन्दिग्राम मे निवास (सर्ग ११३-११५)।

(५) राम का चित्रकूट से प्रस्थान (सर्ग-११६-११९)—राक्षसो के उपद्रव से तपस्वियो का चित्रकूट-त्याग और राम से भी आग्रह, राम का अस्वीकार करना (सर्ग ११६), बाद मे चित्रकूट त्याग कर राम का अत्रि के आश्रम मे जाना। सीता-अनसूया-सवाद, अनसूया का माला-वस्त्राभूषण-अंगराग प्रदान करना, सीता का अपना जीवनवृत्तान्त कहना (सर्ग ११७ ११८) प्रस्थान (सर्ग ११९)।

'अयोध्याकाण्ड के कथानक का 'पद्मपुराण' पर पर्याप्त प्रभाव है। इसकी प्रधान कथावस्तु राम का निर्वासन है जो 'पद्मपुराण' मे भी मिलता है। केकया की वर-याचना, दशरथ द्वारा स्वीकृति, लक्ष्मण का रोष, राम का दशरथ को

समझाना, माताओ से विदा (पर्व ३१), सीता-लक्ष्मण सहित राम का वनगमन (पर्व ३२), अयोध्यानिवासियो को सोते हुए छोड़कर जाना, अयोध्यावासियों का दु ख, चित्रकूट-गमन (पर्व ३२-३३), नदी पार करना, दशरथ का निर्वेद, भरत का राज्य अस्वीकृत करना (पर्व ३२), भरत और केकया का राम को लौटाने का प्रयत्न, राम द्वारा अस्वीकृति, कथचित् भरत का राज्य-संचालन स्वीकार करना (पर्व ३२) आदि थोडे-बहुत हेर-फेर के साथ 'पद्मपुराण' मे भी वर्णित हैं इसीलिए कवि के दृष्टिकोण के अनुसार उपर्युक्त तथा अन्य प्रसंगो मे कुछ नवीनता आ गयी है। उदाहरणार्थ—

'पद्मपुराण' मे वन-भ्रमण का अधिक विस्तृत वर्णन मिलता है (पर्व ३३-४२), केकया के एक वर का उल्लेख है जिसे उसने अपने स्वयवर के उपरान्त दशरथ का रथ हाँक कर प्राप्त किया था और जिसे उसने धरोहर के रूप मे उनके पास रख छोड़ा था—

"नाथ न्यासोऽयमास्ता मे त्वयि वाछितयाचनम्।
प्रार्थयिष्ये यदा तस्मिन् काले दास्यसि निर्वच ॥"[७४]

इसलिए राम का निर्वासन पिता की आज्ञा से नही अपितु स्वेच्छा से है। राम असमंजस-ग्रस्त पिता को समझाते हैं—

"तात रक्षात्मनः सत्यं त्यजास्मत्परिचिन्तनम्।
शक्रस्यापि श्रिया किं मे त्वय्यकीर्तिमुपागते॥"[७५]

वे भरत को स्वतः ही अपने वनमार्ग-ग्रहण का विचार बताते हैं (पद्म० ३१। १६०) और सबसे विदा लेकर चल पडते हैं (३१।१५४-२१८)। राम को लौटाने का प्रयत्न भी कुछ अन्तर रखता है। केकया ने भरत का वैराग्य दूर करने के उद्देश्य से उनके लिए राज्य माँगा था, उसने राम के वनवास के विषय मे कुछ नही कहा था। सीता और लक्ष्मण के साथ जब राम स्वेच्छा से चले जाते है तब केकया अपनी सपत्नियो को शोकातुर देखकर नगर के पास टिके हुए राम-लक्ष्मण-सीता के पास भरत को उन्हे लौटा लाने के लिए भेजती है

"तस्मादानय तौ क्षिप्र सम ताभ्या महासुख.।
सुचिर पालय क्षोणीमेव सर्वं विराजते॥"[७६]

---

७४ पद्म०, २४।१३०
७५ वही, ३१।१२५
७६ वही, ३२।१०९

भरत के प्रस्थान के बाद वह स्वयं भी जाती है—

> इतीत्येवमसौ यावत्कैकेय्या तावदागता।
> वेगिनं रथमारुह्य सामन्तशतमध्यगा॥[७७]

और राम के पास जाकर क्षमा माँगती है—

> "पुत्रोत्तिष्ठ पुरीं यामः कुरु राज्यं महागुणः।
> ननु त्वया विहीनं मे सकलं विनिपात्यते॥
> भरतः शिक्षणीयोऽयं तवात्यन्तसमीपिनः।
> स्त्रैणेन नष्टबुद्धेर्मे क्षन्तव्यं कुत्सितम्॥[७८]

वाल्मीकि-रामायण में कैकेयी चित्रकूट में मौन ही रहती है। ऐसे ही छोटे-मोटे अन्तर और भी हो सकते हैं। इस प्रकार रामायण का अयोध्याकाण्ड भी अपनी मुख्यघटनाओं से 'पद्मपुराण' को प्रभावित करता है।

'रामायण' के अरण्य-काण्ड की कथा-वस्तु को चार मुख्य-भागों में विभक्त किया जा सकता है—

(१) दण्डकारण्य-प्रवेश (सर्ग १-१६)—विराध : दण्डकारण्य-निवासी ऋषियों का स्वागत (सर्ग १), विराध द्वारा सीता-अपहरण तथा राम लक्ष्मण का उसे परास्त करना (सर्ग २-४)। शरभंग : राम को देख इन्द्र का आश्रम से प्रस्थान, शरभंग का राम को सुतीक्ष्ण के आश्रम में भेजना, राम द्वारा राक्षसों के विरुद्ध सहायता देने की प्रतिज्ञा (सर्ग ५-६)। सुतीक्ष्ण : सुतीक्ष्ण के आश्रम में रात्रि व्यतीत कर प्रस्थान (सर्ग ७-८), सीता द्वारा अहिंसा का आग्रह, राम द्वारा राक्षसों के विरुद्ध सहायता करने की प्रतिज्ञा का उल्लेख (सर्ग ९-१०)। अगस्त्य : पंचाप्सर-तड़ाग पर आगमन। राम का तड़ाग के चारों ओर के आश्रमों में दस वर्ष तक निवास, सुतीक्ष्ण से अगस्त्य-आश्रम का मार्ग पूछना। अगस्त्य द्वारा इल्वल और वातापि के वध की कथा का राम द्वारा उल्लेख, अगस्त्य का स्वागत और दिव्य-धनुष देना, फिर गोदावरी-तट पर स्थित पंचवटी का पथ-प्रदर्शन (सर्ग ११-१३)। जटायु : दशरथ के मित्र और सम्पाति के भाई जटायु से मिलना (सर्ग १४), पंचवटी में लक्ष्मण द्वारा पर्णकुटी-निर्माण, लक्ष्मण का कैकेयी को दोष देना, राम का उन्हें रोककर भरत-गुण-कथन के लिए आग्रह (सर्ग १५-१६)।

(२) शूर्पणखा (सर्ग १७-३४)—शूर्पणखा का विरूपीकरण : राम और लक्ष्मण से प्रवंचित होकर शूर्पणखा का सीता की ओर झपटना। लक्ष्मण का उसके नाक-कान काटना (सर्ग १७-१८), खर के भेजे हुए १४ राक्षसों का

---

७७. वही, ३३।१२१

७८. वही, ३३।१२२-१२३

राम द्वारा वध (सर्ग १९-२०) खर-वध . खर के १४००० सेना लेकर पहुँचने पर सीता और लक्ष्मण का गुफा मे जाना (सर्ग २१-२४), राम द्वारा राक्षसो तथा दूषण, त्रिशिरा और खर का वध (सर्ग २५-३०), अकम्पन का रावण को समाचार देना और सीताहरण के लिए प्रोत्साहित करना, मारीच से मन्त्रणा (सर्ग ३१), शूर्पणखा-रावण-सवाद शूर्पणखा का लका जाकर रावण की भर्त्सना करना और सीता के सौन्दर्य का वर्णन करना, रावण का सीताहरण का निश्चय (सर्ग ३२-३४)।

(३) सीताहरण (सर्ग ३५-५६)—रावण का मारीच के सम्मुख सीताहरण का प्रस्ताव रखना, मारीच का समझाना, बाद मे चेतावनी देकर स्वीकार करना (सर्ग ३५-४१)। कनकमृग मारीच के कनक-मृग-रूप को देखकर सीता का उसके लिए प्रार्थना करना। सीता को लक्ष्मण की रक्षा मे छोड़कर राम का मृग के लिए जाना। दूर जाने पर राम का मारीच को मारना। मरते समय उसका राक्षस-रूप मे 'सीता-लक्ष्मण' शब्द करना, सीता की लाछना से लक्ष्मण का प्रस्थान (सर्ग ४२-४५)। सीताहरण . परिव्राजक के रूप मे रावण का सीता से जीवन वृत्तान्त सुनना। प्रकट होकर रावण का बल पूर्वक सीता को अपने रथ पर ले चलना। सीता द्वारा पुकारे जाने पर जटायु का युद्ध करना और आहत होना (सर्ग ४६-५१), सीता के आभूषण फेकना, लका मे सीता का अशोकवन मे राक्षसियो के नियत्रण मे रहना (सर्ग ५२-५६), (एक प्रक्षिप्त सर्ग . इन्द्र का सीता के लिए हवि ले आना)।

(४) सीता की खोज (सर्ग ५७-७५)—शून्य पर्णशाला . लौटते समय राम का लक्ष्मण से मिलना और शकाकुल होकर लक्ष्मण को दोष देना (सर्ग ५७-५९), शून्य कुटी देखकर राम का विलाप और लक्ष्मण की सान्त्वना, गोदावरी-तट पर खोज, पुष्प तथा आभूषणो का मिलना, जटायु-युद्ध के चिह्न दिखाई देना (सर्ग ६०-६४), लक्ष्मण की सान्त्वना (सर्ग ६५-६६)। जटायु : मरण के पूर्व जटायु का रावण द्वारा सीताहरण तथा दक्षिण की ओर प्रस्थान का उल्लेख (सर्ग ६७-६८)। कवन्ध लक्ष्मण का अयोमुखी विरूपको करना। कवध का बाहुविच्छेद, उसके विषय मे स्थूलशिर तथा इन्द्र के शाप का उल्लेख, चिता के प्रज्वलित होने पर कवन्ध का दिव्य रूप मे सुग्रीव के पास जाने की मन्त्रणा देना (सर्ग ६९-७२)। शबरी . पम्पासर-स्थित आश्रम मे शबरी का स्वागत और उसका स्वर्गारोहण, पम्पावर्णन और राम का विलाप (सर्ग ७४-७५)।

'पद्मपुराण' पर 'अरण्यकाण्ड' की कथा का भी पर्याप्त प्रभाव है। अरण्यकाण्ड-की मुख्य कथावस्तु सीताहरण है—जो पद्मपुराण मे भी निबद्ध है। दण्डकारण्य

प्रवेश (पर्व ४२), चन्द्रनखा (शूर्पणखा) के कारण खर का लक्ष्मण से १४००० सैनिकों के साथ युद्ध (चतुर्दश सहस्राणि सुहृदा निर्ययु पुरात् ।। ४४।३७), धोखे से राम-लक्ष्मण का पृथक्करण एव सीता का रावण के द्वारा हरण, जटायु द्वारा सीता को बचाने का भरसक प्रयत्न तथा आहत होना, पुष्पक पर चढाकर रावण का सीता को ले जाना, जटायु की सद्गति, सीताहरण पर राम-विलाप तथा सीता पर लका मे नियत्रण—ये सभी विषय 'पद्मपुराण' मे यत्किंचित् हेर-फेर के साथ उपनिवद्ध हैं। जो प्रधान अन्तर है वह यह है—

विराधित (विराध) राम-लक्ष्मण का विरोधी नही है। वह एक विद्याधर है जो खरदूषण की सेना को हराने मे लक्ष्मण की सहायता करता है तथा उसके सेवक सीता की खोज करते है और लका के युद्ध मे उसकी सेना राम का साथ देती है। वह चन्द्रोदर तथा अनुराधा का पुत्र है।

लक्ष्मण वन मे सयमी होकर नही रहते, वे अनेक कुमारियो से विवाह करते है।

चन्द्रनखा-विषयक अन्तर भी है। सूर्यहास-साधक अपने पुत्र शम्बूक का वध देखकर चन्द्रनखा दु खी हुई किन्तु राम-लक्ष्मण के रूप को देखकर मुग्ध हो गयी। उनके द्वारा प्रोत्साहित न होकर खरदूषण के पास शिकायत करने गया। यहाँ चन्द्रनखा का विरूपीकरण नाक-कान काटकर नही किया गया है। उसने स्वय ही अपना रूप विरूपित किया है—

"ता विनष्टधृति दृट्ष्वा धरणीधूलिधूसराम्।
प्रकीर्णकेश-सम्भारा शिथिलीभूतमेखलाम् ।।
नखविक्षतकक्षोरुकुचक्षोणी सशोणिताम्।
कर्णाभरणनिर्मुक्ता हारलावण्यवर्जिताम् ।।
विच्छिन्नकचुका भ्रष्टस्वभावतनुतेजसम्।
आलोडिता गजेनेव नलिनी मदवाहिना ।।"[७९]

साथ ही लक्ष्मण की आसक्ति भी चन्द्रनखा के प्रति वर्णित है—

'पुनरालोकनाकाक्षो विरहादाकुलोऽभवत्।

० ० ०

अटवी पादपद्माभ्या बभ्रामान्वेषणातुर ।।" (४३।११४-११५)

'पद्मपुराण' मे जटायु एक पक्षी ही है जो पूर्व जन्म मे दण्डक था। वह अपने

---

७९. वही, ४४।४-६

अपवित्र शरीर का परित्याग करके पुण्योदय के कारण देवता बन जाता है (पद्म० ४४।१११) इसके पूर्वभव का वृत्तान्त यह है · 'दण्डक राजा एक श्रमण का धैर्य देखकर अपनी राजधानी मे श्रमणो को बुलाकर उन्हे विशेष आदर देने लगा था। उसकी पत्नी बडी दुष्टा तथा परिव्राजको की भक्त थी। एक पापी परिव्राजक ने निर्ग्रन्थ मुनि का वेष धारण कर दण्डक के अन्त.पुर मे प्रवेश किया (निर्ग्रन्थरूप-भृद्देव्या सम्पर्कमभजत्पुन) जिससे राजा ने क्रोध मे आकर सब श्रमणो को यन्त्रो मे पेलने का आदेश दिया। एक ही मुनि उस राजधानी मे नहीं थे, लौटकर उन्होने अपनी क्रोधाग्नि से समस्त नगर को जला दिया—वही स्थान अब 'दण्डकारण्य' है। दण्डक चिरकाल तक पृथ्वी पर भटकता रहा, फिर एक गीध के रूप मे प्रकट हुआ। एक मुनि ने उसे सदुपदेश दिया जिससे वह श्रावक धर्म मे सम्मिलित हुआ तथा मुनि ने सीता से निवेदन किया कि वह उसकी रक्षा करे। राम ने उसके सिर की जटाएँ देखकर उसका नाम जटायु ही रखा (पर्व ४१)।

'पद्मपुराण' मे सीताहरण का कारण शम्बूक-वध है, शूर्पणखा का नाक-कान काटना नही। इसी प्रकार लक्ष्मण से खरदूषण का युद्ध होता है, राम से नही, रावण सिंहनाद करता है, कनक-मृग मारीच नही।

'रामायण' के 'किष्किन्धा-काण्ड' की कथावस्तु को चार भागो मे विभक्त किया जा सकता है—

(१) **सुग्रीव से मैत्री** (सर्ग १-१२)—हनूमान् : पम्पासर देखकर राम की विरह-व्यथा, सुग्रीव का हनूमान् को भेजना, हनूमान् का उनको सुग्रीव के पास ले जाना (सर्ग १-४)। सुग्रीव : सुग्रीव का स्वागत तथा अपनी कथा बताना, राम द्वारा वालिवध की प्रतिज्ञा, सुग्रीव का राम को सहायता का वचन देना तथा सीता के आभूषण दिखाना (सर्ग ५-६), सुग्रीव का पुन सहायता के लिए वचन देना तथा अपनी कथा सुनाना (सर्ग ७-१०)। राम की परीक्षा सुग्रीव द्वारा वालि की शक्ति का वर्णन, राम द्वारा दुदुभि के अस्थि ककाल का फेंका जाना, अनन्तर राम से सात ताल-वृक्षो के एक बाण द्वारा भेदे जाने पर सुग्रीव का विश्वस्त होना, किष्किन्धा जाकर सुग्रीव का वालि से प्रथम द्वन्द्वयुद्ध, राम का सुग्रीव को न पहचानना, ऋष्यमूक मे लौटना (सर्ग ११-१२)।

(२) **वालिवध** (सर्ग १३-२८)—वालि का आहत होना। द्वितीय बार सुग्रीव का वालि को द्वन्द्वयुद्ध के लिए ललकारना (सर्ग १३-१४), तारा द्वारा रोके जाने पर भी वालि का युद्ध के लिए जाना तथा राम के बाण से आहत होना (सर्ग १५-१६), वालि की भर्त्सना . इन्द्रमाला के कारण वालि का जीवित रहना तथा राम को भर्त्सना देना, राम का प्रत्युत्तर (सर्ग १७-१८)।

तारा-विलाप . समाचार पाकर तारा का आना और विलाप करना (सर्ग १९-२०), हनूमान् का तारा को सान्त्वना देना (सर्ग २१)। वालि-मरण : बालि का सुग्रीव के हाथ मे अगद को सौपना, सुग्रीव के इन्द्रमाला उतार लेने पर उसका मरण, वानरो और तारा का विलाप (सर्ग २२-२३), सुग्रीव का पश्चाताप और राम का सान्त्वना देना (सर्ग २४-२५)। वर्षा-ऋतु राम का प्रस्रवण पर्वत की एक गुफा मे वर्षा-निवास, सुग्रीव का अभिषेक तथा अगद का युवराज होना, राम द्वारा वर्षा-वर्णन तथा उनका विलाप (सर्ग २६-२८)।

(३) **वानरों का प्रेषण** (सर्ग २९-४४)—शरद्-ऋतु . सुग्रीव का वानर-सेना बुलाना, राम का शरद्-ऋतु-वर्णन तथा सुग्रीव की कृतघ्नता का उल्लेख करना, क्रुद्ध होकर लक्ष्मण का सुग्रीव के पास जाना (सर्ग २९-३२)। लक्ष्मण-सुग्रीव-भेट तारा का लक्ष्मण को शान्त करना, लक्ष्मण का सुग्रीव को भर्त्सना करना, तारा तथा सुग्रीव की क्षमा-प्रार्थना, सुग्रीव की आज्ञा से सेना का आगमन (सर्ग ३३-३७)। दिग्वर्णन . सुग्रीव का सेना के साथ राम के पास पहुँचना (सर्ग ३८-३९), दिशाओ का वर्णन करते हुए सुग्रीव का वानरसेना को चतुर्दिक् भेजना (सर्ग ४०-४३), विश्वासपात्र हनूमान् का दक्षिण दिशा मे भेजा जाना तथा राम का उन्हे अभिज्ञान रूप मे अगूठी देना (सर्ग ४४)।

(४) **वानरो की खोज** (सर्ग ४५-६७)—असफलता वानरो का प्रस्थान तथा पूर्व, पश्चिम और उत्तर से वानरो का निराश लौटना (सर्ग ४५-४७), हनूमान् और उनके साथियो की विन्ध्य पर्वत मे व्यर्थ खोज (सर्ग ४८-४९)। स्वयम्प्रभा उनका कन्दरा मे प्रवेश, स्वयम्प्रभा द्वारा सत्कार तथा आँखे बन्द करवाकर उन्हे गुफा से वाहर ले जाना (सर्ग ५०-५२)। अगद की निराशा . कन्दरा से निकलकर विन्ध्य-तल के सागर तट पर उनका पहुँचना, अगद का प्रायोपवेशन के लिए प्रस्ताव, अगद का सुग्रीव से भयभीत होना, सभी का दु खी और निराश होना (सर्ग ५३-५५)। सपाति सपाति के सम्मुख अगद द्वारा जटायु-मृत्यु का उल्लेख, सपाति का वृत्तान्त पूछना और लका की स्थिति बताना (सर्ग ५६-५८), उसका अपने पुत्र सुपार्श्व द्वारा रावण को सीता ले जाते देखने का उल्लेख करना, ऋषि निशाकर के कथनानुसार सपाति के पखो का फिर से उग आना (सर्ग ५९-६३)। सागर का तट . सागर के तट पर पहुँचकर अगद की निराशा, जाम्बवान् द्वारा हनूमान् की कथा तथा सामर्थ्य-वर्णन, हनूमान् का महेन्द्र पर्वत पर चढकर कूदने के लिए तत्पर होना (सर्ग ६४-६७)।

'किष्किन्धाकाण्ड' की आधिकारिक कथावस्तु—सुग्रीव मैत्री तथा सीता-खोज—पद्मपुराण' मे भी है। सुग्रीव की राम द्वारा सहायता, उसके प्रतिद्वन्दी से

उसकी मुक्ति, वर्षा-वर्णन, शरद्वर्णन, सुग्रीव पर लक्ष्मण का कोप, सुग्रीव का वानर सेना को चतुर्दिक् भेजना, विश्वासपात्र हनूमान के हाथ राम का अँगूठी भिजवाना, सीता-खोज मे असफलता, फिर किसी से सीता का लका-निवास-ज्ञान होना, हनूमान् का लकागमन तथा मार्ग मे महेन्द्र पर्वत का मिलना थोडे से परिवर्तन के साथ 'पद्मपुराण' मे भी निवद्ध हैं। हेर-फेर के कारण जो नवीनता आ गयी है वह सक्षेपत इस प्रकार है —

वालि-सुग्रीव की उत्पत्ति सूर्यरजा और इन्दुमालिनी से हुई है (पर्व ९)। यहाँ वालि-सुग्रीव का युद्ध न होकर साहसगति विद्याधर का युद्ध होता है तथा वालि के पूर्वजन्मो का भी उल्लेख है।

'रामायण' के 'सुन्दरकाण्ड की कथावस्तु को पाँच मुख्य भागो मे विभक्त किया जा सकता है —

(१) **लंका में हनूमान् का प्रवेश (सर्ग १-१७)** —समुद्रलघन लघन करते हुए हनूमान् से मैनाक का आग्रह, सुरसा से भेट, सिंहिका-वध (सर्ग १)। लका वर्णन . विडाल जितने आकार मे हनूमान् का लका मे प्रवेश, लकादेवी को परास्त करना, नगर-महल-पुष्पक-शयनागारादि-वर्णन, सीता का पता न मिलना (सर्ग २-१२) अशोक-वन हताश होकर हनूमान् का अशोक वन मे प्रवेश और वहाँ राक्षसो से घिरी हुई सीता को देखना (सर्ग १३-१७)।

(२) **रावण-सीता-संवाद (सर्ग १८-२८)** .—रावण की प्रताड़ना कामातुर रावण का सीता से अनुरोध तथा सीता की अस्वीकृति (सर्ग १८-२१), रावण का भय दिखलाना और दो महीने की अवधि देना, सीता की भर्त्सना, सीता को समझाने के लिए रावण द्वारा राक्षसियो का प्रयास और सीता की अस्वीकृति तथा विलाप (सर्ग २३-२६)। त्रिजटा का स्वप्न त्रिजटा का राक्षस-पराजय-सूचक-स्वप्न-वर्णन (सर्ग २७), सीता-विलाप (सर्ग २८)।

(३) **हनूमान्-सीता-संवाद (सर्ग २९-४०)** —सीता को शकुन होना (सर्ग २९) हनूमान् का राम-कथा-वर्णन (सर्ग ३०-३१), सीताका भयभीत होना (सर्ग ३२), हनूमान् का प्रकट होना, सीता का सन्देह, हनूमान् द्वारा राम का वर्णन, सीता का विश्वास करना (सर्ग ३३-३५), हनूमान् का राम मुद्रिका देना और शीघ्र छुटकारे का आश्वासन, हनूमान् की पीठ पर जाने की सीता द्वारा अस्वीकृति, अभिज्ञान-स्वरूप सीता का काकवृत्तान्त सुनाना तथा चूडामणि देना, विदा (सर्ग ३६-४०)।

(४) **लंका-दहन (सर्ग ४१-५५)** —अशोक वन-ध्वस . हनूमान् द्वारा अशोक वन और चैत्य का विध्वस तथा प्रहस्तपुत्र जम्वुमाली और रावणकुमार अक्ष का

वध (सर्ग ४१-४७)। हनूमान् बन्धन ब्रह्मास्त्र से इन्द्रजीत् द्वारा बन्धन, राम दूत के रूप मे हनूमान् का रावण से सीता मुक्ति का आग्रह, विभीषण द्वारा हनूमान् की रक्षा (सर्ग ४८-५२)। लका-दहन · दण्डरूप हनूमान् की पूँछ जलाई जाने की रावण द्वारा आज्ञा, हनूमान् द्वारा लका-दहन, चारणो की वातचीत से हनूमान् को सीता की रक्षा का आश्वासन (सर्ग ५३-५५)।

(५) हनूमान् का प्रत्यावर्तन (र्ग५६-६८)—समुद्र-लंघन . हनूमान् का आकाश-मार्ग से अपने साथियो के पास प्रत्यागमन और अपनी सफलता का वर्णन, (सर्ग ५६-५९), अगद द्वारा सीता मुक्ति का प्रस्ताव, जाम्ववान् का विरोध (सर्ग ६०), मधुवन मे पहुँचकर हनूमान् आदि का उत्पात, दधिमुख का सुग्रीव को समाचार देना (सर्ग ६१-६४), हनूमान् का रावण से सीता के जीवित होने का समाचार कहना और अभिज्ञान देना (सर्ग ६५), राम का विलाप (सर्ग ६६), हनूमान् का काक-वृत्तान्त कहना और सीता सवाद का उल्लेख करना (सर्ग ६७-६८)।

'सुन्दरकाण्ड' की कथावस्तु का भी 'पद्मपुराण' की कथावस्तु पर प्रचुर प्रभाव है। मार्ग मे हनूमान् की गति का कुछ अवरोध तथा उसका निराकरण, लका-दर्शन, उद्यान-प्रवेश, कामातुर रावण का सीता से अनुरोध एवं सीता की अस्वीकृति, रावण का भयदर्शन, सीता को राक्षसियो द्वारा फुसलाने का प्रयत्न, सीता-विलाप, हनूमान् द्वारा अगूठी देना, हनूमान् का रामकथा कहना, सीता का सन्देह, सीता का चूडामणि-दान, उपान-उपद्रव, वन्धनग्रस्त हनूमान् का रावण के सम्मुख आना, विभीषण-हनूमान्-मिलन, लका-ध्वश, हनूमान् का प्रत्यावर्तन तथा अपनी सफलता का वर्णन, राम को सीता का साभिज्ञान सन्देश दान-आदि सभी प्रमुख विषय यत्किचित् परिवर्तन के साथ 'पद्मपुराण' मे निवद्ध है। जो थोड़ी नवीनता है वह 'रामायण' की कथा का विकास ही है यथा—

हनूमान् का वज्रायुध को मारना, उसकी पुत्री लका सुन्दरी से युद्ध एव उससे विवाह (पर्व ५२), विभीषण द्वारा हनूमान् का स्वागत (पर्व ५३), मन्दोदरी का सीता को फुसलाना, हनूमान् का मन्दोदरी की उपस्थिति मे सीता से मिलना (पर्व ५३), लका-दहन के स्थान पर लकाध्वस (पर्व ५३)। लकाध्वस का वृतान्त इस प्रकार है —इन्द्रजित्, हनूमान् को बाँधकर रावण के सम्मुख प्रस्तुत करता है। रावण उसे नगर के चारो ओर घुमाकर प्रजा को दिखाने का आदेश देता है।[८०] किन्तु हनूमान् अपने वन्धनो को उसी प्रकार तोड़ लेता है—'मोहपाश यथा यति' (५३।२६२) और लका ध्वस करता है—

---

८० देखिये-पद्मपुराण, ५३।२५७-२६१

"पादविन्यासमात्रेण भङ्क्त्वा गोपुरमुन्नतम् ।
द्वाराणि च तथाऽन्यानि खमुत्पत्य ययौ मुदा ।।
शक्रप्रासादसकाशं भवन रक्षसा विभो ।
हनूमत्पादघातेन विस्तीर्णं स्तम्भसकुलम् ।।
पतता वेश्मना तेन यन्त्रिताऽपि महानगै ।
धरणी कम्पमानीता पादवेगानुघातत ।।"[८१]

'रामायण' के युद्ध-काण्ड की कथावस्तु को तीन मुख्य भागो मे विभक्त किया जा सकता है—

(१) लका का अभियान (सर्ग १-४१)—समुद्र की ओर प्रस्थान समुद्र की वाधा के विचार से राम की निराशा तथा सुग्रीव द्वारा सेतुबन्ध का प्रस्ताव (सर्ग १-२), हनूमान् द्वारा लका का वर्णन (सर्ग ३), समुद्र तक पहुँचना तथा राम का विरह-वर्णन (सर्ग ४-५) । रावणसभा . सभासदो द्वारा रावण को विजय का अश्वासन तथा सीता लौटा को देने की विभीषण की मन्त्रणा (सर्ग ६-९), दूसरे दिन विभीपण द्वारा चेतावनी, कुम्भकर्ण का जगकर रावण को दोप देना किन्तु सहायता की प्रतिज्ञा करना (सर्ग १०-१२), पुजिकस्थला के कारण पितामह के शाप का रावण द्वारा उल्लेख (सर्ग १३), इन्द्रजित् तथा रावण द्वारा निन्दित होकर विभीपण का रावण को छोडकरजाना (सर्ग १४-१६)। विभीषण की शरणागति . सुग्रीवादि के विरोध करने पर भी हनूमान् के आग्रह के कारण विभीपण को शरण मिलना, राम द्वारा विभीषण का अभिषेक, प्रायोपवेशन द्वारा समुद्र को विवश करने की विभीषण की मन्त्रणा (सर्ग १७-१९) शार्दूल द्वारा रावण को राम-सेना की सूचना मिलना सुग्रीव को अपनी ओर मिलाने के लिए रावण द्वारा शुक का भेजा जाना, शुक का वधन और राम द्वारा मुक्ति (सर्ग २०) । सेतुवन्ध . तीन दिन के प्रायोपवेशन के वाद राम का समुद्र पर ब्रह्मास्त्र प्रयोग के लिए तत्पर होना। समुद्र की विनय तथा द्रुमकुल्य का ब्रह्मास्त्र द्वारा विध्वस, सागर के कथन से नल द्वारा सेतु-बन्ध और सेना का सन्तरण (सर्ग २१-२२), लका मे अपशकुन तथा शुक का रावण को समाचार देना (सर्ग २३-२४) । शुक-सारण-शार्दूल . रावण-गुप्तचर शुक और सारण का विभीपण द्वारा बन्धन और राम द्वारा मुक्ति, उनका रावण को समाचार देना, शार्दूल का रावण द्वारा भेजा जाना, उसका बन्धन, मुक्ति और समाचार देना (सर्ग २५-३०) । राम का मायामय शीर्ष विद्युज्जिह्व द्वारा निर्मित राम के मायामय शीर्ष का सीता को दिखलाया जाना, सीता का विलाप तथा सरमा द्वारा

---

८१ पद्म० ५३।२६३-२६५

रहस्योद्घाटन (सर्ग ३१-३३), सरमा द्वारा सीता को रावण-सभा का समाचार मिलना (सर्ग ३४), माल्यवान् का रावण को समझाना, अपशकुन होने पर भी रावण का दृढनिश्चय होकर नगर के प्रवेशद्वारो की रक्षा की आज्ञा देना (सर्ग ३५-३६)। लका का अवरोध . सुवेल पर्वत से राम का लका-दर्शन (सर्ग ३७-३९), सुग्रीव-रावण-द्वन्द्व (सर्ग ४०), लका विरोव तथा अगद का दूतकार्य (सर्ग ४१)।

(२) **युद्ध प्रकरण** (सर्ग ४२-११२) शरपाश रात्रि तक दोनो सेनाओ का युद्ध, अगद द्वारा इन्द्रजित् की पराजय, अदृश्य इन्द्रजित् द्वारा राम लक्ष्मण का शरपाश मे बन्धन (सर्ग ४२-४५), रावण का सीता को पुष्पक से भेजकर आहत राम-लक्ष्मण को दिखलाना। सीता-विलाप, त्रिजटा की सान्त्वना (सर्ग ४६-४८), जगकर राम का लक्ष्मण के लिए विलाप, हनूमान् द्वारा विशल्या औषधि को लाने के लिए सुषेण का प्रस्ताव, गरुड का राम-लक्ष्मण को स्वस्थ करना (सर्ग ४९-५०) द्वन्द्व युद्ध : धूमाक्ष, वज्रदष्ट्र, अकपन तथा प्रहस्त का वध। रावण-लक्ष्मण, द्वन्द्व-युद्ध, लक्ष्मण का आहत होना, मुष्टिप्रहार से हनूमान् का रावण को मूर्च्छित करना, राम-रावण-युद्ध, रावण की पराजय और लज्जित होकर लौटना (सर्ग ५१-५९)। कुम्भकर्ण-वध . कुम्भकर्ण का जागरण (सर्ग ६०), विभीषण द्वारा राम से कुम्भकर्ण की निद्रा की कथा का उल्लेख (सर्ग ६१), कुम्भकर्ण द्वारा रावण की भर्त्सना, कुम्भकर्ण-सुग्रीव-द्वन्द्व, राम द्वारा कुम्भकर्ण-वध, रावण-विलाप (सर्ग ६२-६८)। द्वन्द्व-युद्ध . रावण के चार पुत्रो (नरान्तक-देवान्तक-त्रिशिर-अतिकाय) का तथा दो भाइयो (महोदर-महापार्श्व) का वध, रावण-विलाप, इन्द्रजित् का अदृश्य होकर युद्ध करना तथा राम और लक्ष्मण को व्यथित करना (सर्ग ६९-७३)। लकादहन हनूमान् का औषधि-पर्वत लाकर आहतो तथा राम-लक्ष्मण को स्वस्थ करना (सर्ग ७४), रात्रि मे वानरो द्वारा लंकादहन (सर्ग ७५), कम्पन, कुम्भ, निकुम्भ तथा मकराक्ष का वध (सर्ग ७६-७९)। इन्द्रजित्-वध . यज्ञ करके इन्द्रजित् का युद्धारम्भ (सर्ग ८०) मायामय सीता का वानर-सेना के सम्मुख वध राम-विलाप तथा लक्ष्मण द्वारा सान्त्वना (सर्ग ८१-८३), विभीषण द्वारा मायामय सीता का रहस्योद्घाटन तथा निकुम्भिला मे इन्द्रजित्-यज्ञ-ध्वस का परामर्श, सेना सहित लक्ष्मण द्वारा यज्ञ-ध्वस तथा इन्द्रजित्-वध (सर्ग ८४-९०), सुषेण द्वारा लक्ष्मण की चिकित्सा (सर्ग ९१), रावण-विलाप, सुपार्श्व का रावण को सीता वध से रोकना (सर्ग ९२)। विभिन्न युद्ध : विरूपाक्ष, महोदर तथा महापार्श्व का वध (सर्ग ९३-९८), राक्षसियो का विलाप सर्ग (९४)। रावण-वध रावण द्वारा लक्ष्मण को शक्ति लगना तथा हनूमान् द्वारा महोदय पर्वत से औषधि लाना (सर्ग ९९-१०१), इन्द्ररथ का मातलि सहित भेजा जाना, राम-रावण युद्ध का आरम्भ

(सर्ग १०२-१०४), अगस्त्य का राम को आदित्य-हृदय नामक स्तोत्र सिखाना (सर्ग १०५), सात दिन के युद्ध के बाद ब्रह्मास्त्र से रावण-वध (सर्ग १०६-१०८) विभीषणादि का विलाप, रावण की अन्त्येष्टि (सर्ग १०९-१११) विभीषण का अभिषेक और राम का सीता को बुला भेजना (सर्ग ११२)।

(३) प्रत्यावर्तन (सर्ग ११३-१२८)—अग्नि-परीक्षा राम का सीता को अस्वीकार करना (सर्ग ११३-११५), लक्ष्मण द्वारा निर्मित चिता मे सीता का प्रवेश (सर्ग ११६), देवताओ द्वारा राम की विष्णु रूप मे पूजा (सर्ग ११७), अग्नि द्वारा राम को सीता का समर्पण (सर्ग ११८), शिव द्वारा प्रशसा, दशरथ की शिक्षा, मृत वानरो का इन्द्र द्वारा जीवित किया जाना, विभीषण का यात्रा के लिए पुष्पक तैयार करना, वानरो को दान दिया जाना (सर्ग ११९-१२२)। वापसी-यात्रा आकाश मार्ग से विभिन्न स्थानो का वर्णन करना, किष्किन्धा मे वानर-पत्नियो का साथ लेना, भरद्वाज से भेट (सर्ग १२३-१२४), हनूमान् का गुह और भरत को आगमन का समाचार देना (सर्ग १२५-१२६)। अयोध्या प्रवेश · अयोध्यावासियो सहित भरत और शत्रुघ्न का राम से मिलन, नन्दिग्राम मे भरत का राम को शासन सौपना, पुष्पक का कुबेर के पास लौटाया जाना (सर्ग १२७), रामाभिषेक, राम-राज्य-वर्णन तथा फलश्रुति (सर्ग १२८)।

'लकाकाण्ड' की आधिकारिक कथावस्तु-राम-रावण-युद्ध, रावण-वध एव सीतासहित राम-लक्ष्मण का प्रत्यावर्तन-'पद्मपुराण' मे भी निबद्ध है। समुद्र की समस्या का हल, लका-वर्णन, रावण-सभा, विभीषण का उद्बोधन, विभीषण का राम-सेना मे जाना, राम का उसे लकेश स्वीकार करना, रावण की कूटनीति, शुक-सारण का उल्लेख, अपशकुन, अगद का लकागमन, दोनो सेनाओ का युद्ध, इन्द्रजित्-लक्ष्मण-युद्ध, लक्ष्मण शक्ति पर राम का विलाप, विशल्या के द्वारा लक्ष्मण का आरोग्य, भानुकर्ण का युद्ध, भ्रातृ-निग्रह के कारण रावण की चिन्ता, रावण की सिद्धि, रावण का युद्ध एव चिरकाल बाद वीरता-पूर्वक मरण, राम-सीता-मिलन, सीता की अग्नि-परीक्षा, विभीषण द्वारा रामादि का सत्कार, विविध स्थानो का वर्णन करते हुए पुष्पक से राम-सीता-लक्ष्मण का प्रत्यावर्त्तन, अयोध्या मे भरतादि के द्वारा स्वागत एव राम का राज्याभिषेक आदि विषय रूपान्तर से 'पद्मपुराण' मे भी वर्णित है। अन्तर इस प्रकार है—

'पद्मपुराण' मे सीता का भाई भामण्डल अपनी सेना के साथ आकर राम की सहायता करता है। (पर्व ५५), विभीषण ३० अक्षौहिणी सेना के साथ राम से आ मिलता है (साग्राभिश्चारुशस्त्राभि त्रिशद्भि परिवारित । अक्षौहिणी-भिरुद्युक्तो गन्तु पद्मस्य सश्रयम् ॥ ५५।३९)। समुद्र नामक राजा की नल द्वारा

पराजय है, समुद्रबन्धन नही (५४।६५-६६) विशल्या ओषधि नही अपितु द्रोण-मेघ की कन्या है जो लक्ष्मण को स्वस्थ करती है (पर्व ६५) भानुकर्ण (कुम्भकर्ण) और इन्द्रजित् का वध नही हुआ है, वे वन्दी वनाये गये हैं और वाद मे मुक्त होने पर वे दीक्षा ले लेते हैं। रावण का वध राम नही लक्ष्मण चक्ररत्न से करते हैं क्योंकि 'नारायण' ही 'प्रतिनारायण' को मारते हैं। इन्द्रजित् यज्ञ नही करता अपितु रावण वहुरूपिणी विद्या सिद्ध करता है। रावण शक्तिनिहत लक्ष्मण को देखने की राम को अनुमति देता है। अग्नि-परीक्षा लंका मे नही हुई है अपितु लवणां-कुशोत्पत्ति के वाद हुई है (पर्व १०५)। रावण-वध के वाद राम-लक्ष्मण-सीता ने छ वर्ष लका मे विताये हैं (पर्व ८०)। युद्ध के पूर्व राक्षस-राक्षसियों तथा रावण-मन्दोदरी की शृगार चेष्टाओ का वर्णन किया गया है (पर्व ७१-७३)।

'रामायण' के उत्तरकाण्ड की कथावस्तु को तीन मुख्य भागो में विभक्त किया जा सकता है—

(१) रावण-चरित (सर्ग १-३६)—(यह भाग अगस्त्य द्वारा कहा गया है) वैश्रवण . विश्रवा-देववर्णिनी के पुत्र वैश्रवण का चतुर्थ लोकपाल द्वारा धनेश वनना और पुष्पक प्राप्त कर उनका लका-निवास (सर्ग १-३)। राक्षस-वश . प्रहेति तथा हृति के वश मे उत्पन्न राक्षसो का लंका-निवास तथा विष्णु द्वारा पराजित होने पर उनका पाताल-प्रवेश (सर्ग ४-८)। रावण का जन्म · विश्रवा-कैकसी से दशग्रीव, कुम्भकर्ण, शूर्पणखा तथा विभीषण का जन्म, वैश्रवण से ईर्प्या होने के कारण तीनो भाइयो की तपस्या तथा ब्रह्मा से वर प्राप्ति (सर्ग ९-१०), रावण की आशका से वैश्रवण का लका त्याग तथा कैलास पर निवास, राक्षसो का लका मे प्रवेश, मयसुता मन्दोदरी से रावण का विवाह (सर्ग ११-१२)। रावण की प्रथम विजययात्रा वैश्रवण को पराजित कर रावण का पुष्पक को प्राप्त करना (सर्ग १३-१५), रावण को नान्द-शाप, रावण का कैलास को उठाना तथा शिव से 'रावण' नाम तथा 'चन्द्रहास' खड्ग को प्राप्त करना (सर्ग १६), वेदवती का रावण को शाप देना (सर्ग १७), रावण द्वारा अनेक राजाओ की पराजय तथा राजा अनरण्य का उसे शाप देना (सर्ग १८-१९), नारद की प्रेरणा से रावण का यम पर आक्रमण तथा ब्रह्मा द्वारा यम से रावण की रक्षा (सर्ग २०-२२), शूर्पणखा के पति विद्युज्जिह्व का रावण द्वारा वध और वरुण पुत्रो की पराजय (सर्ग २३) (पाँच प्रक्षिप्त सर्ग · वलि से रावण की भेंट, सूर्य तथा चन्द्रलोक की यात्रा, कपिल से भेंट)। रावण के अन्य युद्ध रावण द्वारा अनेक कन्याओं और पत्नियो का हरण और शूर्पणखा को खर तथा दूषण के साथ दण्डकारण्य भेज देना। कुंभ-नसी के द्वारा मधु की रक्षा, नलकूवर का शाप (सर्ग २४-२६), मेघनाद द्वारा

इन्द्रबन्धन तथा देवताओ की प्रार्थना से मुक्ति, देवताओ से मेघनाद की वरप्राप्ति कि किसी भी युद्ध के पूर्व यज्ञ कर लेने पर वह अजेय होगा (सर्ग २७-३०) अर्जुन, कार्तवीर्य तथा वालि द्वारा रावण की पराजय (सर्ग ३१-३४) अर्जुन-हनूमत्कथा हनूमान् की जन्म-कथा और चरित्र (सर्ग ३५-३६)।

(२) सीतात्याग (सर्ग ३७-८२)—अतिथियो का प्रस्थान अभिषेक के दूसरे दिन राम का ऋषियो, राजाओ, वानरो तथा राक्षसो द्वारा अभिवादन (सर्ग ३७), (पाँच प्रक्षिप्त सर्ग—वालि और सुग्रीव की जन्मकथा, रावण का मुक्ति-प्राप्त करने के उद्देश्य से सीताहरण का निश्चय, श्वेतद्वीप मे स्त्रियो द्वारा रावण की पराजय) जनक, युधाजित् तथा प्रतार्दन का प्रस्थान, दो मास पश्चात् सुग्रीव, अगद, हनूमान्, विभीषण तथा वानरो राक्षसो और ऋषियो के प्रस्थान (सर्ग ३८-४०), पुष्पक का प्रत्यागमन और राम द्वारा विदा (सर्ग ४१)। सीता-त्याग आश्रमो को देखने जाने का सीता का दोहद, लोकापवाद के कारण वाल्मीकि आश्रम मे सीता को छोडने की राम की आज्ञा (सर्ग ४२-४५), गगा के उस पार लक्ष्मण का सीता को त्याग का समाचार देना, सीता का विलाप (सर्ग ४६-४८), वाल्मीकि का सीता को आश्रय देना (सर्ग ४९) सुमन्त्र का लक्ष्मण को सीता-त्याग का कारण वतलाना (सर्ग ५०-५२)। नृग, निमि और ययाति की कथाएँ राम द्वारा लक्ष्मण को नृग, निमि और ययाति की कथाओ का सुनाया जाना (सर्ग ५३-५९)। (तीन प्रक्षिप्त सर्ग राम से न्याय माँगने की श्वान की कथा, गृध्र तथा उलूक की कथा)। शत्रुघ्न-चरित भार्गव च्यवन के आग्रह से राम का लवण का वध करने के लिए शत्रुघ्न को भेजना (सर्ग ६०-६४), शत्रुघ्न का वाल्मीकि-आश्रम मे रात्रि व्यतीत करना तथा उसी रात्रि मे कुश-लव का जन्म (सर्ग ६५-६६), शत्रुघ्न द्वारा लवण-वध और मधुपुरी का वसाया जाना, १२ वर्ष वाद राम के पास लौटते समय वाल्मीकि के आश्रम मे शत्रुघ्न का रामायण-गान सुनना। राम से मिलकर उनका अपने राज्य मे वापिस जाना (सर्ग ६७-७२)। शम्बूक-वध ब्राह्मण पुत्र की मृत्यु पर नारद का शूद्र की तपस्या को उसका कारण वताना, राम का दक्षिण जाकर शम्बूक-वध करना, अनन्तर अगस्त्य से दण्डकारण्य की कथा सुनना (सर्ग ७३-८२)।

(३) अश्वमेध (सर्ग ८३-१११) अश्वमेध-माहात्म्य—राजसूय यज्ञ का भरत द्वारा विरोध, लक्ष्मण का अश्वमेध का प्रस्ताव तथा उसके माहात्म्य मे इन्द्र की ब्रह्महत्या से अश्वमेध द्वारा शुद्धि की कथा सुनाना (सर्ग ८३-८६), राम द्वारा इला के अश्वमेध से पुरुषत्व प्राप्त करने की कथा (सर्ग ८७-९०)। अश्वमेध मे सीता का पृथ्वी-प्रवेश नैमिषवन मे अश्वमेध के अवसर पर कुश-लव का

संभा के सामने रामायण-गान करना (सर्ग ९१-९४), कुश-लव को सीता पुत्र जानकर राम का वाल्मीकि के पास सन्देश भेजना और सभा के सम्मुख अपनी शुद्धि का साक्ष्य देने के लिए सीता से अनुरोध करना (सर्ग ९५), सीता की शपथ, पृथ्वी का सीता को अपने साथ ले जाना, राम द्वारा सीता को लौटा देने का व्यर्थ अनुरोध (सर्ग ९६-९८), कुश-लव द्वारा उत्तरकाण्ड का गान, सभा-विसर्जन, माताओ की मृत्यु (सर्ग ९९)। विजय-यात्राएँ भरत के पुत्रो (तक्ष-पुष्कल) का तक्षशिला तथा पुष्कलवती मे राज्य-स्थापन (सर्ग १००-१०१)। लक्ष्मण के पुत्रो (अगद-चन्द्रकेतु) का अगदीप और चन्द्रकान्त मे राज्य-स्थापन। लक्ष्मण मृत्यु · काल का राम को अपना विष्णु-रूप प्राप्त करने का स्मरण दिलाना, दुर्वासा के आग्रह से लक्ष्मण का राम तथा काल के पास जाना और इसके कारण लक्ष्मण का सरयू-प्रवेश (सर्ग १०२-१०६)। स्वर्गगमन राम का कुश को कुशावती मे और लव को श्रावस्ती मे राज्य देना, अपने पुत्रो (सुबाहु और शत्रुघातिन्) को राज्य देकर शत्रुघ्न का अयोध्या आना, सुग्रीव और वानरो का आना, विभीषण और हनूमान् को अमरत्व का वरदान (सर्ग १०७-१०८), राम का अपने भाइयो के साथ विष्णु-रूप मे तथा वानरो का अशानुसार देवताओ मे प्रवेश, नागरिको की स्वर्ग प्राप्ति तथा फलश्रुति (सर्ग १०९-१११)।

'उत्तरकाण्ड' के कथानक का 'पद्मपुराण' के 'रावण-चरित' (पर्व १-२०) और 'उत्तरचरित' (पर्व ८१-१२३) शीर्षको मे पर्याप्त प्रभाव देखा जा सकता है। वैश्रवण का लोकपाल बनना, पुष्पक प्राप्ति, राक्षसो का लका निवास, केकसी से रावणादि का जन्म, तीनो भाइयो की तपस्या तथा सिद्धि, रावण की लका-प्राप्ति, मयसुता मन्दोदरी से रावण का विवाह, रावण का कैलास को उठाना, 'रावण' नाम प्राप्त करना, रावण के अनेक विवाह, यम-इन्द्र-वरुण आदि पर उसकी विजय, माहिष्मती-नरेश और बालि से रावण का सघर्ष, सीता की दोहदोत्पत्ति, राम का लोकापवाद के कारण उसे वन मे छुडवाना, सीता का विलाप, सीता का दो पुत्रो को उत्पन्न करना, उनका प्रताप, राम-लक्ष्मण की सेना से उनका युद्ध. युद्ध मे पिता-पुत्र का परिचय, सीता का राम-दरबार मे जाकर अपने सतीत्व का परिचय देना, राम-लक्ष्मण-शत्रुघ्न-भरत की सन्तानो का राज्य करना तथा राम का स्वर्ग गमन—'पद्मपुराण' मे भी हेर-फेर के साथ स्वीकृत है। मुख्य अन्तर सक्षेपत इस प्रकार है —

शम्बूक शूद्र नही, चन्द्रनखा का पुत्र है जो सूर्यहास खड्ग की सिद्धि करता है, वह लक्ष्मण के द्वारा अनजाने मे मारा जाता है, राम द्वारा जान-बूझकर नही। रावण की वशावली रामायण से भिन्न है, सुकेश के तीन पुत्र है—माली, सुमाली

और माल्यवान्। सुमाली का पुत्र रत्नश्रवा अपवी पत्नी केकसी (व्योमविन्दु की पुत्री) से क्रमश दशानन, भानुकर्ण, चन्द्रनखा तथा विभीषण को उत्पन्न करता है। रावणादि विद्यासिद्धि करते हैं, तपस्या करके वर प्राप्ति नही। रावण का सुग्रीव की बहन श्रीप्रभा के साथ विवाह उल्लिखित है, साथ ही ६००० विद्याधर पत्नियो का उल्लेख है। रावण द्वारा सहस्ररश्मि, नलकूवर, इन्द्र, वरुण आदि की पराजय वर्णित है किन्तु ये इन्द्रादि देवता न होकर साधारण राजा माने गये है। रावण कैलास का क्षोभ करता है तथा वालि उसे दवा देता है। यहाँ शिवजी का उल्लेख नही है क्योकि जैनियो के अनुमार वे देवता नही है। वालि से ही रावण 'अमोघविजया' शक्ति की प्राप्ति करता है। नल कूबर की पत्नी उपरम्भा के प्रेम प्रस्ताव को ठुकराकर रावण उदात्तता का परिचय देता है तथा विरक्त परनारी के साथ रमण न करने की प्रतिज्ञा करता है। रावण द्वारा सहस्ररश्मि की पराजय जिनपूजा भग करने के कारण होती है तथा वह दीक्षा ले लेता है। वालि का वृत्तान्त विभिन्न है—दशानन ने किसी दिन दूत भेजकर वालि को आदेश दिया कि वह आकर उसे प्रणाम करे। वालि ने उत्तर दिया कि मेरा मस्तक जिनेन्द्रो को छोडकर और किसी के सामने नही झुकता। इस पर दशानन आक्रमण की तैयारी करने लगा। बालि ने सोचा कि न तो मै राक्षस राजा के सामने झुक सकता हूँ और न जीवो का नाश करने वाला युद्ध ही कर सकता हूँ, अत उसने सुग्रीव को राजा बना कर दीक्षा ले ली। बाद मे दशानन का विमान किसी अवसर पर तपोधन वालि के प्रभाव से अष्टापद पर्वत (कैलास) के ऊपर रुक गया। रावण उतरा तथा पर्वत को उठा कर उसे ले जाने लगा। वालि ने यह देखकर कि जीवो को कष्ट हो रहा है—पैर के अगूठे से शिखर को दवाया जिससे दशानन पर्वत के नीचे दबकर भयकर 'राव' करने लगा, तभी से इसका नाम 'रावण' पडा। अन्त मे वालि ने अपना अगूठा खीचकर रावण को छुडाया तथा रावण ने बालि की स्तुति की। हनूमान् रावण और सुग्रीव दोनो के रिश्तेदार है—उनके तीन पूर्वजन्मो का उल्लेख है—वे पहले दमयन्त, सिहचन्द्र तथा राजकुमार सिहवाहन थे। उनकी अनेक पत्नियो का उल्लेख है। वे अजना-पवनजय के पुत्र है। वे रावण की ओर से वरुण से युद्ध करते है, वे वानर नही वानरवशी है। सीतात्याग का परोक्ष कारण यह बताया गया है कि उसने पूर्वभव मे मुनि की निन्दा की थी। वज्रजघ सीता की रक्षा करता है वाल्मीकि नही, सीता को सेनापति कृतान्तवक्त्र छोड़कर आता है लक्ष्मण नही। सीता के पुत्रो का नाम मदनाकुश और अनगलवण है—लव और कुश नही। हनूमान् लवणाकुश का पक्ष लेते है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट हो जाता है कि 'रामकथा' तो वाल्मीकि की ही

है किन्तु उसका सयोजन अपने दृष्टिकोण के अनुसार रविषेण ने कर लिया है। 'साज' वही है, 'लय' बदली हुई है। कपडा वही है, कटिंग दूसरी तरह का है।

कथानक के अतिरिक्त 'पद्मपुराण' मे मुख्य तथा गौण पात्रो के नाम भी वाल्मीकि-रामायण से बहुत कुछ लिये गये है।

शैलीगत प्रभाव

'पद्मपुराण' की शैली भी 'वाल्मीकि-रामायण' से पर्याप्त प्रभावित है। अनुष्टुप् छन्द का प्रयोग 'वाल्मीकि-रामायण' का ही प्रभाव है।

'वाल्मीकि-रामायण' मे सर्वाधिक रूप मे प्रयुक्त अलकार है—उपमा, उत्प्रेक्षा तथा रूपक। ये तीनो ही 'पद्मपुराण' मे सर्वाधिकरूप मे प्रयुक्त है। इनके विशेष उदाहरणो का सकेत हम अन्यत्र करेगे।

'वाल्मीकि-रामायण' के नगरी-वर्णन, युद्ध-वर्णन, विलाप-वर्णन, तथा वैभवादि के वर्णनो से 'पद्मपुराण' के वर्णन पर्याप्त प्रभावित है, जिनके उदाहरण यहाँ देना पुष्कल स्थान-सापेक्ष है।

'वाल्मीकि-रामायण' मे रामकथा की कई बार पुनरुक्ति है यथा—हनूमान् द्वारा सीता के सम्मुख रामकथा-कथन, बालकाण्ड के प्रथम सर्ग मे नारद द्वारा रामकथा-कथन, लवकुश के द्वारा रामकथा-गायन। इसी प्रकार पद्मपुराण' मे भी अनेक बार रामकथा कही गयी है, यथा—हनूमान् द्वारा सीता के सम्मुख (पर्व ५३) तथा नारद के द्वारा लवणाकुश के समक्ष (पर्व १०२) रामकथा का प्रकाशन।

'वाल्मीकि-रामायण' के शिल्प-विधान का 'पद्मपुराण' पर पर्याप्त प्रभाव पडा है। जैसे वहाँ बालकाण्ड के तीसरे सर्ग मे पहले समस्त ग्रन्थ की सज्ञा शब्दो से अनुक्रमणी दी गयी है उसी प्रकार 'पद्मपुराण' के प्रथम पर्व में सूत्र विधान किया गया है।[८२]

'वाल्मीकि-रामायण' मे नामो की व्युत्पत्ति स्थान-स्थान पर दी गयी है। इसी प्रकार 'पद्मपुराण' मे भी बहुत से ऐसे स्थल है। कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं—

वाल्मीकि-रामायण

हनुमान्—'तदा शैलाग्रशिखरे वामो हनुरभज्यत।
ततोऽभिनामधेय ते हनुमानिति कीर्तितम्॥ (४।६६।२४)

रावण—'प्रीतोऽस्मि तव वीरस्य शौटीर्याच्च दशानन।
शैलाक्रान्तेन यो मुक्तस्त्वया राव. सुदारुण.॥

८२, दे० रामायण, बाल० ३।१०-३९ तथा पद्म०, १।४६-११०।

यस्माल्लोकत्रय चैतद् रावित भयमागतम् ।
तस्मात्त्व रावणो नाम नाम्ना राजन् भविष्यसि ।।
(७।१६।३६-३७)

राक्षस और यक्ष—रक्षाम इति यैरुक्त राक्षसास्ते भवन्तु व ।
यक्षाम इति यैरुक्त यक्षा एव भवन्तु ते ।।'
(७।४।१३)

इसी प्रकार 'मेघनाद और इन्द्रजित्' 'कुश-लव', 'वालि-सुग्रीव', 'कल्माष-पाद', 'दण्ड', 'सरमा', 'अहल्या', 'क्षुप', 'निमि', 'मिथि', 'विश्रवा', 'वेदवती', 'सगर', 'सुर', और 'असुर' आदि नामो का कारण निर्देश किया गया है।[८३]

पद्मपुराण

१. हिरण्यगर्भ—"तस्मिन् गर्भस्थिते यस्माज्जाता वृष्टिर्हिरण्मयी ।
हिरण्यगर्भनाम्नासौ स्तुतस्तस्मात्सुरेश्वरै ।।"
(३।१५६)

१. क्षत्रिय—"क्षतत्राणे नियुक्ता ये तेन नाथेन मानवा ।
क्षत्रिया इति ते लोके प्रसिद्धि गुणतो गता ।।"
(३।२५६)

३. प्रजाग या प्रयाग—"प्रजाग इति देशोऽसौ प्रजाभ्योऽस्मिन् गतो यत ।
प्रकृष्टो वा कृतस्त्याग प्रयागस्तेन कीर्तित ।।"
(३।२८१)

इसी प्रकार 'तीर्थङ्करो', 'कुलकरो', 'वैश्य', 'शूद्र,' 'भरत क्षेत्र', 'माहण', 'त्राता' 'रावण,' 'इन्द्रजित्' 'चन्द्रनखा', 'भानुकर्ण', 'विभीषण', 'दशानन' आदि अन्य अनेक नामो की व्युत्पत्ति दी गयी है।[८४]

'वाल्मीकि-रामायण' मे जिस प्रकार माहात्म्य-कथन किया गया है उसी प्रकार फलश्रुति और माहात्म्यकथन पद्मपुराण मे भी किया गया है (पर्व १२३)।

उपर्युक्त तथ्यो का साक्षात्कार करने पर सिद्ध हो जाता है कि 'वाल्मीकि रामायण' से 'पद्मपुराण' पर्याप्त प्रभावित है, कथानक मे भी और शैली मे भी। ●

---

८३ दे० रामायण-७।३०।२२, ७।७६।४२, ७।५७।१४, ६।५७।१९, ७।२।३१ ७।१७।९, १।७०।३७, १।४५।३६-३७ आदि।

विशेष देखे-पद्म० १।३-१७, ३।२५६-२५९, ३।३८१, ४।५९, १२२, १२३, ५।४, १३, ६४, २१२-२१६, ३७८, ३८६, ६।३, ८४, २०८-२१४, ३८५, ३९०, ३९८, ४०१, ४०२, ४०६, ४०७, ७।२, १८, २२१-२२५, ३०१, ३०२, ८।१०३-१०५, १४४-४५, १५२, ४३२, ३९४, ९।४४, १५३, ११।३०९, ३१०; १२।५४, ९७, १५।१३-१४, ८०, २०६, १६। १५५, १५६, १८।२, २८, १२२, १२४, २०।१५, १८, २०, २७, १७२, २१०, २१।७, २४, ५३, ७७, ८२, १४०, २२।१०२, ११३, १३१, १४७, १५५, १६०, १६९, १७५, २४।३, ११३, २५।२२, २६ आदि।

तृतीय अध्याय

आचार्य रविषेरा के समय की परिस्थितियाँ

साहित्य समाज का दर्पण है। देशकाल का साहित्य पर पर्याप्त प्रभाव पड़ता है। कवि समाज का द्रष्टा होने के नाते जहाँ एक ओर परिस्थिति विशेष मे उत्पन्न होता, बढ़ता, सस्कार ग्रहण करता, प्रेरणा प्राप्त करता, बनता और उस परिस्थिति को अपनी रचनाओ मे प्रतिबिम्बित करता है वहाँ दूसरी ओर स्रष्टा होने के नाते वह अपनी सामसामयिक परिस्थितियो की प्रतिक्रिया के स्वरूप उन्हें बहुत कुछ परिष्कृत करने और बनाने का भी कार्य करता है। अतएव किसी कवि की रचना का युक्तियुक्त मूल्याकन करने के लिए तत्कालीन परिस्थितियो का परिचय प्राप्त करना भी आवश्यक हो जाता है। इस अध्याय मे हम बहि साक्ष्य के आधार पर अपने आलोच्य ग्रन्थ के रचयिता के समय की परिस्थितियो का अध्ययन करके यह देखने का प्रयास करेगे कि वह उनसे कहाँ तक प्रभावित हुआ है। अपने अध्ययन के सौकर्य की दृष्टि से इन परिस्थितियो को हम चार भागो मे विभक्त कर सकते है—(१) राजनीतिक परिस्थितियाँ, (२) सामाजिक परिस्थितियाँ, (३) धार्मिक परिस्थितियाँ एव (४) साहित्यिक परिस्थितियाँ। रविषेण के 'पद्मपुराण' की रचना ६७८ ई० मे हुई है। इस प्रकार हर्षकालीन एव हर्षोत्तरकालीन परिस्थितियाँ रविषेण-कालीन परिस्थितियाँ है। इन परिस्थितियो का अध्ययन करने के लिए हमने भारतीय एव वैदेशिक विद्वानो के द्वारा प्रणीत ऐतिहासिक ग्रन्थो तथा साहित्य-ग्रन्थो को चुना है। इन्ही के आधार पर जो कुछ सामग्री हमे तत्कालीन परिस्थितियो का परिचय देती है उसे ही हम बहि-साक्ष्य कहते हैं। बहि साक्ष्य के आधार पर किये गये परिस्थितियो के अध्ययन के द्वारा हम कवि पर इनके प्रभाव को देखने का प्रयत्न करेगे।

रविषेणकालीन राजनीतिक परिस्थितियाँ

छठी शताब्दी भारतीय इतिहास का सबसे अधिक अन्धकारमय काल है। उस समय एक केन्द्रीय शक्ति का अभाव था। छोटे-छोटे अनेक राज्य थे। फलत. विदेशी हूणो को आक्रमण करने का सुअवसर मिला। उन्होने बडी निर्ममता एवं पाशविकता के साथ देश को रौंद डाला एव गुप्त सभ्यता के चिह्नो को नष्ट कर डाला।[८५] ऐसे ही समय भारतीय इतिहास के रगमच पर सम्राट् हर्षवर्द्धन का आविर्भाव होता है।

जिस समय हर्ष ने सत्ता सभाली, उस समय बडी विकट स्थिति थी। एक ओर पिता की मृत्यु हो चुकी थी, दूसरी ओर कुछ ही समय के उपरान्त उसके बहनोई कन्नौज के ग्रहवर्मन् का मालवा के राजा देवगुप्त ने वध कर दिया था। उसकी बहिन राज्यश्री को कन्नौज के कारागार मे डाल दिया था। हर्ष का अग्रज राज्य-वर्धन कन्नौज को इन आपत्तियो से मुक्त कराने मे तो सफल हुआ, किन्तु गौड़ के राजा शशाक ने धोखे से उसे मार डाला। ऐसी अवस्था मे हर्ष को न केवल थानेश्वर वरन् कन्नौज की शासन-व्यवस्था अपने हाथ मे लेनी पडी। थानेश्वर का वह उत्तराधिकार स्वरूप राजा बना, किन्तु कन्नौज मे वह काफी समय तक अभि-भावक बना रहा। कालान्तर मे कन्नौज मे ही उसकी शक्ति प्रतिष्ठित हो गई और उसी को उसने अपनी राजधानी बना ली। दो राज्यो के सयुक्त हो जाने से तत्कालीन अस्थिर स्थिति मे हर्ष को अपनी शक्ति प्रतिष्ठित करने मे पर्याप्त सहायता मिली।[८६]

हर्ष ने एक दृढ एव विस्तृत साम्राज्य की स्थापना की, किन्तु उसके सैनिक-अभियानो के सम्बन्ध मे निश्चित, प्रामाणिक एव विस्तृत सामग्री का अभाव है। बाण अपने 'हर्षचरित' मे शशाक के प्रति सैनिक अभियान की प्रारम्भिक चर्चा के बाद ही चुप हो जाता है। युवान्-च्वाग के वृत्तान्त मे आने वाले प्रसग मात्र प्रशसात्मक एव अस्पष्ट और सामान्य है। अत हर्ष की विजयो का विस्तृत या तिथि-क्रमानुसार विवरण दे सकना सभव नही है। हम केवल इतना कर सकते है कि उन शक्तियो का नामोल्लेख कर दे जिनके साथ उसने युद्ध किया तथा उप-लब्ध अत्यल्प सामग्री के आधार पर परिणामो का यथा सम्भव निर्देश कर दे।[८७]

८५ घोष एन० एन०, भारत का प्राचीन इतिहास, ।(इण्डियन प्रेस लि० प्रयाग, सस्क० १९५१ ई०) पृ० ३८७।

८६ त्रिपाठी रमाशकर, प्रा० भा० इतिहास, (मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, सस्क० १९६२ ई०) पृ० २२१-२२।
-दि क्लैसिकल एज, पृ० ९९-१०२।

८७ दी क्लैसिकल एज, पृ० १०३।

मुख्य रूप से हर्ष के सैनिक-अभियानो के चार दौर रहे हैं जिनमे उसे (१) वलभी और गुर्जर के शासको, (२) चालुक्य राजा पुलिकेशिन् द्वितीय, (३) सिन्धु और (४) पूर्व के मगध, गौड, ओड्र तथा कोगोदा (जिला गजाम) के शासकों के साथ युद्ध करना पडा।[८८]

वलभी के पाँच शासक शीलादित्य प्रथम धर्मादित्य, खरगृह, धरसेन तृतीय, ध्रुवसेन द्वितीय बालादित्य तथा धरसेन चतुर्थ हर्ष के समकालीन थे। त्रिपाठी के अनुसार "यह निर्विवाद सिद्ध है कि वलभी के ध्रुव भट्ट अथवा ध्रुवसेन द्वितीय को उस (हर्ष) के आक्रमण का शिकार होना पड़ा था। हर्ष प्रारम्भ मे विजयी भी हुआ और ध्रुव भट्ट को भडोच के दद्दा द्वितीय की शरण लेनी पडी। दद्दा की सहायता से इस राजा ने अपना पैतृक राज्य पुन प्राप्त कर लिया।[८९] किन्तु आर० सी० मजूमदार ने इस सम्बन्ध मे शका उठाई है। उनकी शका का आधार अत्यन्त पुष्ट है। प्रामाणिक स्रोतो के आधार पर इतना ही कहा जा सकता है कि वलभी के साथ हर्ष का सघर्ष हुआ था जिसमे उसे सफलता नही मिली।[९०]

सम्भवत उपर्युक्त सघर्ष ही "सम्पूर्ण दक्षिणापथ के स्वामी" पुलकेशिन् द्वितीय के साथ हर्ष के युद्ध का कारण बना। ऐहोल-मेगुटी-अभिलेख मे इसका पुलकेशिन् के पक्ष की ओर से दृप्त वर्णन है। इससे स्पष्ट है कि हर्ष को पुलकेशिन् के विरुद्ध सफलता नही मिली और वह दक्षिण मे अपने राज्य का विस्तार न कर सका।[९१]

हर्षचरित मे आये उल्लेख--'सिन्धुराज को मथकर उसकी सम्पत्ति स्वायत्त कर ली'[९२] के आधार पर अनुमान लगाया जाता है कि उसने सिन्धु पर विजय प्राप्त की किन्तु युवान्-च्वाग के कथन से स्पष्ट है कि सिन्धु एक सशक्त एव स्वतन्त्र राज्य था और यदि हर्ष ने आक्रमण किया भी होगा तो असफल रहा होगा।[९३]

वस्तुत हर्ष को पूर्व मे शानदार विजय प्राप्त हुई। 'युवान्-च्वाग के जीवन' से स्पष्ट है कि ६४३ ई० तक हर्ष ने कोगोदा, उडीसा और मगध इत्यादि पर अपना अधिकार कर लिया था। कामरूप के शासक भास्करवर्मन् के साथ प्रारम्भ से मैत्री सम्बन्ध स्थापित हो चुका था। बाद मे भास्करवर्मन् प्राय अधीनस्थ राजा हो गया

---

८८ वही, पृ० १०३।

८९ त्रिपाठी, प्रा० भा० इति० पृ० २२३।

९० दी क्लॅसिकल एज, पृ० १०३-१०५।

९१ दी क्लॅसिक्ल एज, पृ०१०५-६, त्रिपाठी, प्रा० भा० इति पृ० २३३

९२ अत्र पुरुषोत्तमेन सिन्धुराज प्रमथ्य लक्ष्मी आत्मीकृता। हर्षचरित।

९३ दी क्लॅसिक्ल एज, पृ० १०६।

था।[९४] शशांक को पराजित करके बंगाल पर भी हर्ष ने अधिकार कर लिया था।[९५]

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि हर्ष ने अपने साम्राज्य के लिए अनेक युद्ध किये, नये राज्यों को जीतकर अपने साम्राज्य की सीमा का विस्तार किया। उसने उत्तरापथ में एक विस्तृत एवं दृढ़ साम्राज्य की स्थापना की। उसने अधिकांश युद्ध प्रारम्भ में ही किये, किन्तु "६४३ ई० के कोंगोदा (गंजाम जिला) युद्ध से प्रमाणित है कि अपने घटना-बहुल शासन के अन्त तक उसे युद्ध करते रहना पड़ा।"[९६] इस प्रकार यह निश्चित है कि कुछ समय के लिए हर्ष ने उत्तरी भारत की अस्थिर राजनीतिक दशा को स्थायित्व प्रदान किया और विदेशी आक्रमणों का दौर एक केन्द्रीय शक्ति स्थापित हो जाने के कारण कुछ समय के लिए रुक गया।

हर्ष ने चीन के साथ कूटनीतिक सम्बन्ध स्थापित किये थे। इस सम्बन्ध के परिणाम-स्वरूप कई बार दूतों का पारस्परिक आदान-प्रदान हुआ।[९७]

प्रायः ४० वर्षों के घटनापूर्ण शासन के पश्चात् ६४७ अथवा ६४८ ई० में हर्ष की मृत्यु हो गयी। हर्ष के पश्चात् उसका अपना कोई उत्तराधिकारी न था जिससे साम्राज्य में अराजकता फैल गयी। उसके मन्त्री अरुणाश्व या अर्जुन ने उसकी गद्दी पर अपना अधिकार कर लिया। इस नये शासक ने एक चीनी-मिशन का विरोध किया। हर्ष के जीवन के अन्तिम दिनों में भेजे गये इस चीनी मिशन के थोड़े-से रक्षकों का वध करा दिया गया तथा उसका माल लूट लिया गया। मिशन का नेता-वांग-हुयेन-त्सो सौभाग्य से भाग निकला। उसने नैपाल के तिब्बती नरेश से सैनिक सहायता ली। यह तिब्बती नरेश चीन की एक राजकुमारी ब्याह लाया था। वांग ने तिरहुत पर अधिकार कर लिया तथा अनेक युद्धों के बाद अर्जुन को पराजित कर एवं बन्दी बनाकर चीन ले गया। अर्जुन साम्राज्य को जोड़े रखने वाली अन्तिम कड़ी था। इसके टूटते ही साम्राज्य बिखरने लगा।[९८]

"पश्चात् साम्राज्य के पंजर के लिए राजाओं में होड़ लग गयी। आसाम के भास्करवर्मन् ने हर्ष के प्रान्त कर्ण-सुवर्ण तथा समीपस्थ भूमि पर अधिकार कर लिया और वहाँ से एक ब्राह्मण को भूमिदान कर लेख-पत्र निकाला। मगध में हर्ष के सामन्त माधव गुप्त के पुत्र आदित्यसेन ने अपनी स्वतन्त्रता घोषित कर दी और सम्राटों के विरुद धारण कर अश्वमेध का अनुष्ठान किया। पश्चिम और उत्तर-

---

९४ वही, पृ० १०६-१०८।

९५ घोष, भा० प्रा०इति०, पृ० ३९४।

९६ त्रिपाठी, प्रा० भा० इति० पृ० २२५।

९७ घोष, भा० प्रा० इति० पृ० ३८९।

९८ त्रिपाठी, प्रा० भा० इति०, पृ० २३५, घोष, भा० प्रा० इति०, पृ० ४०२।

पश्चिम मे जिन शक्तियो पर हर्ष का आतक छाया रहता था वे अब स्वतन्त्र हो गयी।''[९९]

हर्ष ने उत्तरी भारत की राजनीति में जो स्थिरता लायी, वह उसकी मृत्यु के पश्चात् ही छिन्न-भिन्न हो गयी। विदेशी आक्रमण पुन प्रारम्भ हो गये। उत्तर मे चीन और तिब्बत की ओर से आक्रमण हुए। उधर अरबो ने सिन्धु पर आक्रमण किया। इन आक्रमणो का, विशेष रूप से मुस्लिम आक्रमणो का, क्रम बराबर जारी रहा। इन आक्रमणो के अतिरिक्त हर्ष के पश्चात् घटने वाली सबसे महत्वपूर्ण घटना युद्धप्रिय राजपूत जाति का उदय एव उत्तर भारत मे कई राजपूत राज्यो की स्थापना है। कन्नौज मे गुर्जर-प्रतिहार तथा गहडवारी, बुन्देलखण्ड मे चन्देल, मालवा मे परमार, अजमेर और दिल्ली मे चौहान, बिहार और बगाल मे पाल इत्यादि राजपूतवश उल्लेखनीय है। इन्होने झूठे आत्मगौरव, पारस्परिक द्वेष तथा आपसी युद्धो के कारण भारत को शक्ति-सम्पन्न करने के बजाय कमजोर ही अधिक बनाया।

इन परिस्थितियो का रविषेण के हृदय और मस्तिष्क पर पर्याप्त प्रभाव पडा। साम्राज्य की सुव्यवस्था और अराजकता दोनो के ही चित्र 'पद्मपुराण' मे मिलते हैं। यह कहना असम्भव नही प्रतीत होता कि हूणो की सेनाओ के वर्णन तथा उनका घर्षण आदि तत्कालीन राजनीतिक परिस्थितियो का ही परिणाम है।

रविषेणकालीन सामाजिक परिस्थिति

रविषेणकालीन सामाजिक परिस्थिति का ज्ञान हमे ह्यूआन-चुआग एव इत्सिग के यात्रा वृत्तान्तो से पर्याप्त मात्रा मे हो जाता है।

ह्यूआन-चुआग हमे बताता है कि जाति-प्रथा ने हिन्दू-समाज को जकड़ रखा था। ब्राह्मण धर्म-कर्म करते थे। क्षत्रिय शासक-वर्ग थे। राजा प्राय क्षत्रिय होते थे। वैश्य व्यापारी तथा वणिक् थे। शूद्र खेती तथा परिचर्या का कार्य करते थे। ह्यूआन-चुआग के शब्दो मे—'क्षत्रिय और ब्राह्मण अपनी पोशाक आदि की दृष्टि से साफ है और वे घरेलू और ऐश्वर्यपूर्ण जीवन व्यतीत करते हैं। धनी व्यापारी हैं जो सोने की वस्तुओ का व्यापार करते है। वे प्रायः नगे पाँव जाते है, बहुत कम लोग पादुकाएँ पहिनते है। वे अपने दाँतो पर लाल या काले निशान लगाते हैं, वे अपने बाल ऊपर बाँधते है और कानो मे छिद्र करते हैं। शरीरिक सफाई का वे बहुत ध्यान रखते है। खाने से बची हुई चीज को वे कभी भी नही खाते। प्रयोग करने के

---

९९ त्रिपाठी प्रा० भा० इति०, पृ० २३६।

वाद लकडी तथा मिट्टी के वर्तन नष्ट कर दिये जाते है, धातु के वर्तनो को रगड कर माँजा जाता है। खाने के बाद वे अपने मुँह को वेत की शाखा से साफ करते है और हाथ तथा मुँह धो लेते हे।[१००]

इत्सिग (जिसने ६७२ और ६८८ के वीच भारत-यात्रा की थी) वताता है कि भारत मे पुरोहित लोग खाना खाने से पहले हाथ पैर धो लिया करते थे। वे अलग-ललग छोटी-छोटी कुर्सियो पर बैठते थे जो वेतो की वनी होती थी। सच्चे तथा भूठे भोजन मे भेद रखना भारत का रिवाज था। यदि एक कौर भी खा लिया जाए तो वह भूठा हो जाता था और उन वर्तनो का प्रयोग नही किया जाता था जिसमे वह भोजन परोसा जाता था। यह प्रथा धनी लोगो मे ही नही, निर्धनो मे भी थी। खाना खाने के बाद प्रत्येक भारतीय को मुँह साफ करना पड़ता था। इत्सिग वताता है कि जव एक वार उत्तर के मगोलिया के लोगो ने एक दूत मण्डल भारत भेजा तो उसके सदस्यो का उपवास और अपमान किया गया क्योकि वे अपने शरीर तथा मुँह साफ नही करते थे।[१०१]

ह्यु आन-चुआग् और इत्सिग दोनो के अनुसार ही भारत की भोजन-व्यवस्था वडी शुद्धिपरक थी।[१०२] प्याज और लहसन वहुत कम प्रयुक्त होते थे। उन्हे खाने वालो को समाज से निष्कासित कर दिया जाता था।

'भारत की समृद्धि से ह्यु आन-चुआंग अत्यधिक प्रभावित हुआ। वह हमे बताता है कि लोगो का जीवन-स्तर वहुत ऊँचा था। सोने और चाँदी दोनो के सिक्के प्रचलित थे। कौडियो और मोती भी मुद्रा के रूप मे प्रचलित थे। भूमि उर्वर थी और उत्पादन वहुत ज्यादा था। विभिन्न प्रकार की सब्जियो तथा फलो की उपज की जाती थी। लोगो का मुख्य आहार था—गेहू की चपातियाँ, भुने हुए दाने, चीनी, घी और दूध के पदार्थ। कुछ अवसरो पर मछली, मृग और भेड का मास भी खाया जाता था। गाय तथा कुछ जगली जानवरो का मास पूर्णतः वर्जित था। जो व्यक्ति नियमो का उल्लघन करता था उसे निष्कासित किया जा सकता था।[१०३]

ह्यु आन-चुआग् ने लिखा है कि अन्तर्जातीय विवाह नही होते थे। एक ही जाति के विभिन्न वर्गो मे भी विवाह सीमित थे। भोजन तथा विवाह की दृष्टि से विभिन्न जातियो मे कुछ नियन्त्रण थे किन्तु उनमे सामाजिक आचार-व्यवहार के

---

१०० वी० डी० महाजन प्रा० भारत का इति०, (एस० चन्द एण्ड क० दिल्ली, १९६२ ई०) पृ० ४८०-४८१।

१०१ वही, पृ० ५०२-५०३।

१०२ वही, पृ० ४८१, ५०४।

१०३ वही, पृ० ४७९-४८०।

मार्ग मे ये नियन्त्रण बाधक नहीं थे। विधवा-पुनर्विवाह की प्रथा नही थी। उच्च वर्गों मे तो पर्दे की प्रथा रही प्रतीत नही होती। हमे बताया गया है कि ह्यु आन-चुआग् के उपदेश सुनते समय राज्यश्री पर्दा नही करती थी। सती-प्रथा प्रचलित थी। रानी यशोमती अपने पति प्रभाकरवर्धन के साथ ही जल गयी। राज्यश्री भी जलने वाली ही थी और उसकी जीवनरक्षा बडी कठिनाई से की गयी।[१०४] 'हर्ष-चरित' मे बाण ने शूद्रा माता और ब्राह्मण पिता से उत्पन्न अपने भाई का उल्लेख किया है जिससे ब्राह्मणो का नीच वर्णों की कन्या लेने का अधिकार घोषित होता है।

ह्यु आन-चुआग हमे बताता है कि रेशम, ऊन और सूत के कपडे बनाने की कला अत्यन्त परिष्कृत थी।[१०५]

ह्यु आन-चुआग् लिखता है—"राजा तथा उच्च व्यक्तियो के आभूषण असाधारण थे। कीमती पत्थरो का 'तारा' और हार उनके सिर के आभूषण है और उनके शरीर अगूठियो, कगनो तथा मालाओ से सुसज्जित है। धनवान् व्यापारी लोग केवल कगन पहनते हैं। यद्यपि लोग सादे कपडे पहिनते थे परन्तु वे आभूषणो के शौकीन रहे प्रतीत होते है"।[१०६] इत्सिग बताता है कि सारे भारत मे लोग दो कपडे पहिनते थे। वे चौडी लिनन के थे और आठ फुट लम्बें थे। उनकी कटाई या सिलाई नही की जाती थी। उन्हे केवल कमर के चारो ओर बाँध लिया जाता था जिससे शरीर का निचला भाग ढक जाए। उत्तर-पश्चिम के लोग कपडे प्रयुक्त ही नही करते थे। वे ऊन और चमड़े के वस्त्र पहिनते थे। वे कमीजें और पायजामे पहिनते थे। इत्सिग एक अन्य प्रकार के वस्त्र का भी उल्लेख करता है जो बाएँ कन्धे के ऊपर पहिना जाता था। घाघरा शरीर के निचले भाग के चारो ओर बाँध लिया जाता था। इसके लिए मुलायम सफेद कपडा प्रयोग किया जाता था।[१०७]

हर्ष के बाद चालुक्यो के काल मे ब्राह्मणो की दशा अत्यन्त पुष्ट हो गयी थी। वे सभी जातियो मे सर्वाधिक सम्मानित थे। उन्हे ऐसे अधिकार और सुविधाएँ प्राप्त थी जो अन्य लोगो को प्राप्त नही थी, उदाहरणतया प्राणदण्ड ब्राह्मणो को नही दिया जाता था।[१०८] इस समय स्त्रियो का सम्मान होता था।[१०९]

---

१०४ वही, पृ० ४८१।
१०५ वही, पृ० ४८०।
१०६ वही, पृ० ४८०।
१०७ वही, पृ० ५०३।
१०८ वही, पृ० ५१३।
१०९ वही, पृ० ५१४।

भाव यह है कि रविषेण ने दो युग देखे थे एक हर्षकालीन और दूसरा हर्षोत्तर-कालीन। इन दोनो ही युगो मे समाज चार वर्णो मे विभक्त था। हर्ष के बाद ब्राह्मणो का अधिक बोलबाला हो गया था। वह इतिहास के स्वर्णकाल का अव्य-वहितोत्तर समय था जिसमे समाज-व्यवस्था के विद्रूप होने का प्रश्न ही नही उठता। अपने काल की सामाजिक परिस्थिति से वे पर्याप्त प्रभावित हुए है जिस का सकेत उनके ग्रथ मे अनेक स्थलो पर है।

रविषेणकालीन धार्मिक परिस्थिति

आचार्य रविषेण के समय की धार्मिक परिस्थिति पर विचार करने के लिए हमे हर्षकालीन और हर्षोत्तरकालीन धार्मिक परिस्थिति को ही लेना होगा। हर्षकालीन धार्मिक परिस्थिति का पर्याप्त ज्ञान हमे ह्यु आन-चुआग् के यात्रा-विवरण से हो जाता है। यद्यपि ह्यु आन-चुआग् ने भारत की हर चीज़ को 'बौद्धधर्म के चश्मे' से देखकर[११०] बौद्धधर्म की ही अधिक प्रशस्यता प्रतिपादित की है तथापि अन्य धर्मो की स्थिति भी व्यजित हो जाती है।

हर्ष ने अपनी सारी निष्ठा तीन देवताओ-बुद्ध, सूर्य और शिव मे बाँट दी थी और उन तीनो की सेवा के निमित्त अमूल्य देवस्थान स्थापित किये थे। उसके समय मे बौद्धधर्म, जैन धर्म तथा ब्राह्मण हिन्दूधर्म साथ-साथ फलते फूलते रहे और विविध धर्मो के अनुयायी परस्पर शान्ति-व्यवहार स्थापित रखकर जीवन-यापन करते थे।[१११] कन्नौज की सभा और प्रयाग के पचवर्षीय वितरण से हर्ष की धार्मिक उदारता प्रकट होती है तथापि जीवन के उत्तरकाल मे प्राय वह कट्टर बौद्ध हो गया था। इस प्रकार हर्ष की सरक्षकता मे बौद्धधर्म कन्नौज मे फूल-फल चला था यद्यपि अन्य प्रदेशो मे उसका काफी ह्रास हो गया था।[११२]

'ह्यु आन्-चुआग् के वृत्तान्त और हर्षचरित से स्पष्ट है कि हर्ष के साम्राज्य मे बौद्ध, ब्राह्मण तथा जैन धर्मो का विशेष प्रचार था। इनमे से अन्तिम का वैशाली पौण्ड्रवर्धन और समतट को छोड देश के अन्य भागो मे प्राय अभाव हो चला था। इन स्थानो मे अवश्य दिगम्बरो की बहुलता थी। इस धर्म की दूसरी शाखा श्वेताम्बरो की थी। ह्यु आन्-च्वाग् को बौद्ध धर्म का प्रसार अत्यन्त विस्तृत जान पडा, पर वस्तुत कौशाम्बी, श्रावस्ती और वैशाली आदि स्थानो मे उसका अत्यन्त ह्रास हो चला था। बौद्धधर्म और उसकी सक्रियता के केन्द्र मठ और विहार थे

---

११० दी क्लैसिकल एज, पृ० ११७।

१११ घोष, भा० का प्रा० इति० पृ० ३९९।

११२ त्रिपाठी, प्रा० भा० का इति० पृ० २३३।

जिनका अस्तित्व गृही लोगो के दान पर अवलम्बित था। बौद्धधर्म के मुख्य सम्प्रदाय महायान और हीनयान थे जिनमे से प्रथम का विशेष प्रचार हुआ था।[११३] यात्री ने उसकी १८ शाखाओ का भी वर्णन किया है जो अपने क्रियानुष्ठानो मे एक दूसरे से भिन्न थे और जिनमे से प्रत्येक अपनी बौद्धिक महत्ता की घोषणा करता था।[११४] इस प्रकार के सघर्ष बौद्ध धर्म के ह्रास के कारण हुए और उनके विरुद्ध प्रतिक्रिया से ब्राह्मण धर्म को बल मिला जो गुप्तकाल से ही पुनरुज्जीवित हो चला था। ब्राह्मण धर्म के मुख्य केन्द्र हर्ष के साम्राज्य मे प्रयाग और वाराणसी थे। जैन और बौद्ध धर्मो की भाँति ही ब्राह्मण धर्म भी स्पष्टत मूर्तिपूजक था। महायान मे तो बुद्ध और बोधिसत्वो की पूजा सर्वमान्य थी ही। लोकप्रिय ब्राह्मण देवता आदित्य, शिव तथा विष्णु थे और उनकी मूर्तियाँ मन्दिरो मे प्रतिष्ठापित की जाती थी जहाँ उनकी सविस्तर पूजा होती थी।[११५] ब्राह्मण यज्ञाग्नि को प्रज्ज्वलित करते, गाय का आदर करते तथा सौभाग्य और समृद्धि के अर्थ अनेक क्रियाओ के अनुष्ठान करते थे।[११६] ब्राह्मण धर्म की विशेषता उसकी दार्शनिक शाखाओ तथा साधुवर्गो की अनेकता मे थी। बाण ने कपिल और कणाद के अनुयायियो, वेदान्तियो, आस्तिको (ऐश्वरकरणिको), लोकायतिको (निरीश्वरवादियो) का उल्लेख किया है।[११७] इसी प्रकार साधुओ के अनेक वर्गो का भी उसने उल्लेख किया है। इनमे से मुख्य निम्नलिखित थे—केशलुचक (सिर के बाल उखाडने वाले), पाशुपत, पचरात्रिक,,भागवत आदि।[११८] 'जीवन वृत्तान्त' मे भी भूतो, कापालिको, जुतिको, साख्यो, वैशेपिको आदि का वर्णन है।[११९] इन विविध वर्गो के परिधान, विश्वास तथा क्रियानुष्ठान भिन्न-भिन्न थे। ये भिक्षाटन करते थे और व्यक्तिगत आवश्यकताओ की परवाह किये बिना अपने दृष्टिकोण से सत्य की खोज मे लगे रहते थे।[१२०]

हर्ष के उपरान्त बौद्धधर्म का प्रचार क्षीण होने लगा। अराजकता के कारण विभिन्न राजकुल विभिन्न धर्मो को आश्रय देने लगे। चालुक्य-शासक कट्टर

---

११३ त्रिपाठी, प्रा० भा० का इति, पृ० २३३।

११४ वाटर्स १, पृ० १६२।

११५ हर्षचरित, कावेल टामस अनूदित, पृ० ४४।

११६ वही, पृ० ४४-४५ और देखिये पृ० ७१, ९० १३०।

११७ वही, पृ० २३६।

११८ वही, पृ० ३३, ४९, २३६।

११९ लाइफ, पृ० १६१-६२।

१२० वाटर्स १, पृ० १६०-१६१।

हिन्दू थे। पुलकेशिन् द्वितीय के पुत्र विक्रमादित्य प्रथम के शासन काल (३५४-६८० ई०) मे ब्राह्मण धर्म को प्रश्रय मिला। वादामि के चालुक्य-शासक कट्टर हिन्दू थे परन्तु जैनो और बौद्धो के प्रति भी वे सहिष्णु थे। उनके समय मे कई लोग पूर्ण स्वतन्त्रता से जैन-सिद्धान्तो को मानते थे। एहोल का प्रशस्तिकार कविकीर्ति जैन था और स्वय पुलेकिशन् द्वितीय की सरक्षता मे था। बौद्धधर्म गिरती हालत मे था परन्तु ह्यु आन-च्वाग् के यात्राकाल मे चालुक्य राज्य मे कई मठ और स्तूप विद्यमान थे जिससे चालुक्यो की धार्मिक सहिष्णुता का पता चलता है। जैन और हिन्दूधर्म बौद्धधर्म को क्रमश दवाते चले जा रहे थे। याज्ञिक क्रियाओ की ओर लोगो का ध्यान आकर्षित हो रहा था और इस विषय पर कई ग्रथ भी इस काल मे लिखे गये। अकेले पुलकेशिन् प्रथम ने कई वड़े यज्ञ किये यथा—अश्वमेध, वाजपेय इत्यादि। हिन्दूधर्म के पौराणिक रूप की भी लोकप्रियता वढती गयी।[१२१]

भाव यह है कि रविषेण के काल मे बौद्ध धर्म धीरे-धीरे भारत से अपसृत होता जा रहा था और ब्राह्मण तथा जैन-धर्म बल पकड रहे थे। यह स्वाभाविक ही था कि ऐसे समय मे ये दोनो धर्म परस्पर अपनी उदात्तता प्रकट करने के लिए एक दूसरे का खण्डन करते। इसी कारण ब्राह्मण निर्ग्रन्थ लोगो का तिरस्कार और जैनधर्म का खण्डन करते होगे तथा जैनी ब्राह्मणो और यज्ञ क्रियाओ का। इसका रविषेण पर भी पर्याप्त प्रभाव पडा और उन्होने जैनधर्म-ग्रन्थ की रचना करके ब्राह्मणो के प्रति अपने दृष्टिकोण को प्रस्तुत कर दिया है।

रविषेणकालीन साहित्यिक परिस्थिति .

सप्तम शताब्दी ई० तक सस्कृत साहित्य पर्याप्त प्रौढि धारण कर चुका था। कविकुल गुरु कालिदास, कवि अश्वघोष, प० विष्णु शर्मा एव चाणक्य आदि की रचनाओ से देववाणी का आँचल भरा जा चुका था। रससिद्ध कवियो के साथ ही चमत्कारी कवियो की भी रचनाएँ पूर्ण प्रकर्ष के साथ आने लगी थी। रविषेण के सामने एक प्रशस्त साहित्यिक परम्परा प्रेरणा स्रोत के रूप मे विद्यमान की।

सप्तम शती ई० के प्रारम्भ मे भारवि ने 'किरातार्जुनीय' नामक प्रसिद्ध सस्कृत महाकाव्य की रचना की। चालुक्यवशी राजा पुलकेशी के एहौल के ६३४ ई० के शिला लेख मे भारवि का नाम लिया गया है।[१२२] यद्यपि इसमे कलापक्ष

१२१ घोष, भारत का प्रा० इति०, पृ० ४३०

१२२ 'येनायोजि नवेऽश्म स्थिरमर्थविधौ विवेकिना जिनवेश्म।
स विजयता रविकीर्ति कविताश्रितकालिदासभारविकीर्ति.॥ —ऐहौल शिलालेख।

की प्रधानता है फिर भी भारवि का यह महाकाव्य अपना अलग स्थान रखता है। इस महाग्रन्थ में काव्यशास्त्रोक्त नियमो का पूर्णतया निर्वाह हुआ है। व्याकरण-नियमो के साथ-साथ काव्य-नियमों का ऐसा सुन्दर निर्वाह कम काव्यो मे दिखाई देता है। कालिदास और अश्वघोष की अपेक्षा भारवि का व्यक्तित्व दर्शन सर्वथा स्वतन्त्र प्रतीत होता है। इसका बड़ा भारी कारण यह है कि भारवि ने वीर रस का बड़ा ही हृदयग्राही चित्रण और अलंकृत काव्य शैली का सफल वर्णन किया है। 'अर्थ-गौरव' भारवि की सबसे बड़ी विशेषता है।[१२३]

'भट्टिकाव्य' या 'रावणवध' महाकाव्य भी इसी काल की देन है। महाकवि भट्टि ने इसकी रचना सौराष्ट्र की वैभवशाली नगरी वलभी के नरेश श्री धरसेन के राज्यकाल मे की थी।[१२४] 'उपलब्ध शिलालेखो मे श्रीधरसेन के नाम से वलभी मे चार राजाओ का होना पाया जाता है जिनमें एक शिलालेख ३२६ वि० सं० का लिखा हुआ मिलता है।[१२५] इससे अवगत होता है कि वलभी-राज्यकाल का आरम्भ इसी समय हुआ। द्वितीय श्रीधरसेन के नाम से उपलब्ध एक शिलालेख मे भट्टिनामक किसी विद्वान् को भूमिदान करने का वर्णन है। निश्चय ही यही श्रीधरसेन भट्टि के आश्रयदाता एव प्रशंसक थे जिनका समय छठी शताब्दी का उत्तरार्द्ध या सातवी शताब्दी का आरम्भ था और जिसको कि भट्टिकवि का स्थितिकाल भी माना जाना चाहिए।[१२६] कुछ इतिहासकारो का अभिमत है कि भट्टिकवि वलभीनरेश श्रीधरसेन द्वितीय के राजकुमारो के गुरु थे और इन्ही राजपुत्रों की शिक्षा के लिए भट्टि कवि ने काव्यमयी भाषा मे अपने इस व्याकरण-परक महाकाव्य की रचना की थी।[१२७] कवि ने इसके विषय मे कहा है—

"दीपतुल्य· प्रबन्धोऽयं शब्दलक्षणचक्षुषाम्।
हस्तादर्श इवान्धाना भवेद् व्याकरणादृते॥"

भट्टि के अनुवर्ती महाकवि कुमारदास ने अपने २५ सर्गो वाले 'जानकीहरण' नामक महाकाव्य की रचना भी इसी काल में की थी जिसके अब १५ सर्ग ही उपलब्ध होते हैं। इसमे राम कथा का बडा ही हृदयग्राही वर्णन है। इनका सम्भावित स्थितिकाल सातवीं-आठवी शताब्दी माना जा सकता है।[१२८]

१२३. वाचस्पति गैरोला, सस्कृत साहित्य का इतिहास पृ० ८५३।
१२४. काव्यमिद विहित मया वलभ्या श्रीधरसेननरेन्द्रपालितायाम्।
कीर्तिरतो भवतान्नृपस्य तस्य क्षेमकर क्षिपतो यत प्रजानाम्॥ रावणवध २२।३५
१२५ दी कलेक्टेड वर्क्स आफ् भण्डारकर, वाल्यूम ३, पृ० २२८।
१२६ सेठ कन्हैयालाल पोद्दार, सस्कृत साहित्य का इतिहास, भाग १, पृ० १०६
१२७ डा० भोलाशकर व्यास, सस्कृत-कवि-दर्शन, पृ० १४२।
१२८ वाचस्पति गैरोला सस्कृत साहित्य का इतिहास, पृ० ८५५।

कुमारदास के अनन्तर महाकाव्यो की परम्परा को समृद्धिशाली रूप देने वालो मे महाकवि माघ का नाम आता है ।[१२९] महाकवि माघ का स्थितिकाल ६५०-७०० ई० के बीच का था ।[१३०] महाकवि माघ की कवित्वकीर्ति का अमर स्मारक उनका—'शिशुपालवध' या' माघकाव्य' है। माघ शब्दार्थवादो कवि थे ।[१३१] उनकी इस महाकाव्य कृति के अध्ययन से पूर्णतया विदित होता है कि माघ व्याकरण, राजनीति, साख्य, योग, बौद्धन्याय, वेद, पुराण अलकारशास्त्र, कामशास्त्र और सगीत आदि अनेक विषयो मे पारगत थे ।[१३२] माघ के कवित्व मे कालिदास के भाव, भारवि का अर्थगौरव, दण्डी की कला और भट्टि की व्याकरणपरक पाण्डित्य शैली सभी का एक साथ सामजस्य है।

महाकाव्यो के अतिरिक्त स्फुटकाव्यो या खण्डकाव्यो के लिखने की प्रवृत्ति भी इस काल मे थी। इस प्रकार के स्फुट काव्यो की परम्परा मे चक्र कवि ने ७ वी श०ई० मे आठ सर्गो की 'जानकीपरिणय' नामक एक काव्य कृति लिखी। यह कवि मदुरा के तिरुमल नायक के आश्रित था ।[१३३] जैन महाकवि धनजय (७वी श०) का 'विषापहारस्तोत्र' ३६ इन्द्रवज्रा वृत्तो का एक लघुकाव्य है जिस पर अनेक टीकाएँ लिखी गयी ।[१३४]

शृगार-काव्यो एव, नीतिकाव्यो की रचना भी इस काल मे हो रही थी। 'अमरुकशतक', भर्तृहरिकृत 'शृगारशतक' 'नीतिशतक,' 'वैराग्यशतक' इसके प्रमाण है।

स्तोत्रकाव्यो की परम्परा भी इस काल मे पर्याप्त वृहित रूप प्राप्त कर रही थी। राजा हर्ष (७०० ई०) ने बौद्धधर्म से सम्वद्ध 'सुप्रभातस्तोत्र और 'अष्टमहाश्रीचैत्यस्तोत्र' लिखे। इसी परम्परा मे बाण ने शिवपत्नी भगवती चण्डी की स्तुति मे 'चण्डीशतक', मानतुग ने 'भक्तामरस्तोत्र' और हर्ष के आश्रित कवि बाण के श्वसुर मयूर कवि ने 'सूर्यशतक' लिखा। सातवी शताब्दी मे वर्तमान केरल के राजा कुलशेखर ने एक बहुत ही रुचिकर शैली मे 'छन्दमाला' गीतिकाव्य लिखा ।[१३५]

पद्यकाव्य के साथ ही गद्यकाव्य का प्रणयन भी इस काल मे जोरो से चल रहा

---

१२९ वही, पृ० ८५६।

१३० पाण्डेय, सस्कृत साहित्य की रूपरेखा।

१३१ दे० 'शिशुपालवध' २।८६।

१३२ डा० व्यास, सस्कृत-कवि-दर्शन, पृ० १७५।

१३३ गैरोला, सस्कृत साहित्य का इतिहास, पृ० ८१४।

१३४ नाथूराम प्रेमी जैन साहित्य और इतिहास, पृ० ११०।

१३५ गैरोला, स०साहित्य का इतिहास, पृ० ९०८।

था। सस्कृत-साहित्य के मूर्धन्य गद्यकार इसी काल की देन है। महाकवि दण्डी, गद्यसम्राट् बाण और प्रत्यक्षरश्लेषमयप्रपंचविन्यासवैदग्ध्यनिधि प्रबन्ध के रचयिता सुबन्धु ने इसी काल मे 'दशकुमारचरित', 'अवन्तिसुन्दरी' 'हर्षचरित' 'कादम्बरी' और 'वासवदत्ता' का प्रणयन करके गद्य को कवियो का निकष सिद्ध किया। इनके बाद ऐसे गद्य-लेखक संस्कृत साहित्य मे नही हुए।

काव्यशास्त्र पर भी लेखनी चल ही रही थी। भामह का 'काव्यालकार' एव दण्डी का 'काव्यादर्श' इसके प्रमाण है।

सस्कृत-नाटक-साहित्य की दृष्टि से भी यह काल अत्यन्त महत्वपूर्ण है। करुण-रस-मन्दाकिनी के प्रालेयाचल भवभूति ने सातवी शताब्दी मे 'उत्तररामचरित' जैसी अनुपम कृति सस्कृत-साहित्य को दी। उनके 'मालतीमाधव' एव 'महावीर-चरित' का स्थान भी कम महत्वपूर्ण नही है।' ये तीनो नाटक उज्जैन के कालप्रिया-नाथ के महोत्सव पर अभिनीत हुए थे। इनमे 'उत्तररामचरित' उनकी सर्वोत्कृष्ट एव सस्कृत के शीर्षस्थानीय नाटको की कोटि मे गिनी जाने वाली रचना है। राम कथा के जिस नाजुक पक्ष को लेकर भवभूति ने अपनी इस कृति को सफलता पूर्वक सम्पादित किया है, वैसा इस परम्परा मे लिखे गये दूसरे ग्रन्थो मे आज तक नही मिलता है। दूसरे रामकथा-विषयक भारतीय नाटककारों की अपेक्षा भव-भूति ने अपने इस नाटक मे राम और सीता के पवित्र एव कोमल प्रेम का अधिक वास्तविकता से चित्रण किया है।[१३६]

इसके अतिरिक्त व्याकरण शास्त्र का 'काशिका' नामक ग्रथ एव अन्य शास्त्रो के ग्रंथ भी इस काल मे सस्कृत-साहित्य मे रचे जा रहे थे।

वस्तुत: यह काल साहित्यिक उन्नति के दृष्टिकोण से बडा महत्वपूर्ण रहा। राजकुलो के आश्रय में साहित्य रचा गया। गद्य-साहित्य में वर्णन-कौशल का प्रदर्शन एव चमत्कारोत्पादन इस काल की महत्वपूर्ण विशेषता रही। वृहत्त्रयी के दो महान् ग्रन्थो 'किरातार्जुनीय' और 'शिशुपालवध' की रचना से कवियो का कलापक्ष के प्रति झुकाव सिद्ध होता है।

रविषेण ने अपनी सम्मुखस्थ साहित्यिक परिस्थिति का पर्याप्त प्रभाव ग्रहण किया। बाण के 'हर्षचरित' का तो उन पर अत्यधिक प्रभाव पडा है।[१३७] 'लक्षणा-लकृती वाच्य प्रमाण छन्द आगम.' आदि को उपन्यस्त करके उन्होने तत्कालीन चमत्कारी प्रवृत्ति का प्रमाण दिया है। सक्षेप मे रविषेण तत्कालीन साहित्यिक परिस्थिति से अत्यधिक प्रभावित थे।

१३६ ए० ए० मैक्डानल, हिस्ट्री ऑफ सस्कृत लिटरेचर, पृ० ३६५।

१३७. दे० प्रस्तुत शोधप्रबन्ध, का द्वितीय अध्याय रविषेण का लोकशास्त्र काव्याद्यवेक्षण।

चतुर्थ अध्याय

पद्मपुराण की विषयवस्तु

विपय, कथा, कथानक, वृत्त, इतिवृत्त, कथावृत्त, प्रतिपाद्य, वस्तु, कथावस्तु एव विपय-वस्तु—ये सभी प्रायः समानार्थक है। साहित्य-शास्त्र के अनुसार काव्य की विपय-वस्तु त्रिविध मानी गयी है। १—ऐतिहासिक या पौराणिक, २—काल्पनिक एव ३—मिश्रित। व्यापकता के आधार पर विषयवस्तु अथवा इतिवृत्त के दो भेद हो जाते है—आधिकारिक एव प्रासगिक। प्रासगिक के भी दो भेद होते हैं—पताका एव प्रकरी।

'पद्मपुराण' की विपयवस्तु ऐतिहासिक या पौराणिक है। इनमे राम सम्बन्धी कथा आधिकारिक है, सुग्रीव की अन्त तक चलने के कारण 'पताका' एव बालि-वज्रजघ आदि की कथा बीच मे ही समाप्त हो जाने के कारण 'प्रकरी' है।

राम काव्यो की आधिकारिक कथावस्तु विश्वविश्रुत, स्पष्ट एव सरल है जिसे सामासिक रीति से इस प्रकार कहा जा सकता है—

"राजा दशरथ की कई पत्नियाँ थी, परन्तु उनके कोई सन्तान नही थी। वृद्धावस्था मे जाकर उनकी भिन्न-भिन्न पत्नियो से राम, लक्ष्मण, भरत, और शत्रुघ्न चार पुत्र उत्पन्न हुए। इनमे राम सब से बडे थे। राम अपने सद्गुणो के कारण अन्य पुत्रों मे श्रेष्ठ थे। राजा दशरथ उन्हे ही अपना राज्य सौंपना चाहते थे परन्तु षड्यन्त्र के कारण ऐसा न हो सका। राज्य के बदले राम को वनवास लेना पडा। उनके साथ उनकी पत्नी सीता और भाई लक्ष्मण भी वन को गये थे। दुर्भाग्य से वहाँ राक्षसो का शक्तिशाली राजा रावण सीता को अकेली पाकर हर ले गया। राम सीता को जगल-जगल ढूँढने लगे। इसी बीच सुग्रीव से उनकी मित्रता हो गयी। तदनन्तर राम ने सुग्रीव आदि की सहायता से लका-नरेश रावण पर

चढाई कर दी, उसे युद्ध मे हराया और मार गिराया। राम सीता को वापिस ले आये और लक्ष्मण-सीता सहित अयोध्या लौटकर राज्य करने लगे।"

इसी विपयवस्तु को 'व्यास समास स्वमति अनुरूपा' के अनुसार प्राय सभी राम-सम्बन्धी काव्यो मे निबद्ध किया गया है किन्तु प्रत्येक रामकाव्य की विषय-वस्तु मे पर्याप्त वैषम्य भी दृष्टिगत होता है—भले ही उनकी आत्मा समष्टि रूप मे एक हो। यह स्वरूप-भेद आर्यरामायण, बौद्धरामायण और जैनरामायण सम्बन्धी विविध ग्रन्थो मे देखा जा सकता है।

पद्मपुराण मे प्रथम पर्व मे महावीर-वन्दना की गयी है[१३८]। तदनन्तर कुलकरो तथा तीर्थकरो की वन्दना है। इस चमत्कारप्रधान मगलाचरण मे प्रत्येक वन्दनीय के नाम को नामानुरूप विशेपण से 'विशिप्ट' किया गया है, यथा—

वासुपूज्य सतामीश वसूपूज्य जितद्विषम्।
विमल जन्ममूलाना मलानामतिदूरगम्॥
अनन्त दधत ज्ञानमनन्त कान्तदर्शनम्।
धर्म धर्मध्रुवाधार शान्ति शान्तिजिताहितम्॥[१३९]

'पद्मपुराण' मे विद्याधरवश मे रावण का परिचय देने के लिए एक व्यायत भूमिका वनाई गयी है। साथ ही वानर-वश का परिचय भी दिया गया है। राम-कथा का प्रारम्भ तो २५ वे पर्व से होता है। इससे पूर्व तो मगध देश के राजगृह नगर के राजा श्रेणिक का विपुलाचल पर्वत पर महावीर के समवशरण मे जाकर धर्मोपदेश सुनना, राजा श्रेणिक के मन मे शयन-पर पडे-पडे वानर-राक्षसो के विषय मे सन्देह होना (पर्व २), गौतम गणधर से रामकथा-विपय प्रश्न करना, गणधर के द्वारा क्षेत्र-काल-कुलकरो का वर्णन, ऋषभजन्मोत्सव तथा अभिषेक वर्णन, ऋषभ के भरत आदि सौ पुत्रो का वर्णन, नीलाजना नर्तकी की मृत्यु से ऋषभ का दीक्षा-ग्रहण, भरत-बाहुवलि की कथा, नमि-विनमि को धरणेन्द्र द्वारा विजयार्द्ध की उत्तर-दक्षिण श्रेणियो के राज्यदान की कथा, विजयार्द्ध-गिरि-वर्णन (पर्व ३), बाहुवलि का वैराग्य एव ब्राह्मणो की सृष्टि आदि का वर्णन (पर्व ४) करके 'स्थित्यधिकार' समाप्त करना ही भूमिका रूप मे निबद्ध है।

'पद्मपुराण' मे राक्षसवश का विस्तृत परिचय मिलता है। अयोध्या के राजा

---

१३८ "सिद्ध सम्पूर्णभव्यार्थसिद्धे कारणमुत्तमम्।
प्रशस्तदर्शनज्ञानचारित्र – प्रतिपादनम्॥
सुरेन्द्र मुकुटाश्लिष्टपादपद्माशुकेशरम्।
प्रणमामि महावीर लोकत्रितयमगलम्॥" (पद्म० १।१-२)

१३९ पद्म १।६-१०

धरणीधर का उल्लेख करते हुए मेघवाहन राजा की वश-परम्परा मे महारक्ष आदि अनेक राजाओ के अन्त मे कीर्तिधवल का वर्णन किया गया है (पर्व ५) 'एव तेष्वप्यतीतेसु धनप्रभसुतोऽभवत् । लकायामधिप कीर्तिधवलो नाम विश्रुत ॥'[१४०] कीर्तिधवल का साला श्रीकण्ठ था। उसने कीर्तिधवल से वानर-द्वीप माँग लिया था। श्रीकण्ठ के वश मे अमरप्रभ उत्पन्न हुआ। उसका विवाह लका के धनी की पुत्री 'गुणवती' से होने जा रहा था। गुणवती वेदी पर बने बन्दरो के चित्रो से भयभीत हो गयी जिसके कारण अमरप्रभ वानरो के और उनके चित्र वनाने वालो के प्रति क्रुद्ध हो उठता है किन्तु वाद मे मन्त्रियो के अनेक प्रकार से समझाने पर उनके चिह्न ध्वजाओ एव मुकुटो पर अकित कराता है। इसी से 'वानरवश' प्रसिद्ध होता है।[१४१] इन्ही वानरो की वश-परम्परा मे आगे चलकर

१४० पद्मपुराण ५।४०३।

१४१ "इत्युक्ते मन्त्रिभि सान्त्व प्रत्युवाचामरप्रभ ।
त्यजन् क्षणेन कोपोत्थविकार वदनार्पितम् ॥
मगल सेविता पूर्वैर्यद्यस्माकममी तत ।
किमित्यालिखिता भूमौ यस्या पादादिसगम ॥
नमस्कृत्य वहाम्येतान् शिरसा गुरुगौरवात् ।
रत्नादिघटितान् कृत्वा लक्षणान्मौलिकोटिपु ॥
ध्वजेपु गृहशृगेपु तोरणाना च मूर्द्धसु ।
शिरस्सु चातपत्राणामेतानाशु प्रयच्छत ॥
ततस्तैस्तत्प्रतिज्ञाय तथा सर्वमनुष्ठितम् ।
यथा दिगीक्ष्यते या या तत्र तत्र प्लवगमा ॥" (पद्म०, ६।१८७-१९१)

'पद्मपुराण' मे वानरवश की वौद्धिक व्याख्या की गयी है। यहाँ 'वानर' 'वन्दर' नही है, अपितु 'वानरचिह्नधारी' राजा है—

"एव वानरकेतूना वशे सख्याविवर्जिता ।
आत्मीयै कर्मभि प्राप्ता स्वर्ग मोक्ष च मानवा ॥
वशानुसरणच्छायामात्रमेतत्प्रकीर्त्यते ।
नामान्येषा समस्ताना शक्त क परिकीर्तितुम् ॥
लक्षण यस्य यल्लोके स तेन परिकीर्त्यते ।
सेवक सेवया युक्त कर्षक कर्षणात्तथा ॥
धानुष्को धनुपो योगात् धार्मिको धर्मसेवनात् ।
क्षत्रिय क्षततस्त्राणात् ब्राह्मणो ब्रह्मचर्यत ॥
इक्ष्वाकवो यथा चैते नमेश्च विनमेस्तत ।
कुले विद्याधरा जाता विद्याधरणयोगत ॥
परित्यज्य नृपो राज्य श्रमणो जायते महान् ।
तपसा प्राप्य सम्वन्ध तपो हि श्रम उच्यते ॥

अनेक राजाओ का वर्णन है। उधर सुकेशपुत्र माली लका को जीत लेता है (पर्व ६) इन्द्र के साथ युद्ध करने पर माली के मारे जाने पर उसके भाई सुमाली और माल्यवान् अलकारपुर (पाताललका) मे भाग जाते है। वहाँ सुमाली का पुत्र रत्नश्रवा हुआ। इसी का पुत्र रावण था। भानुकर्ण, विभीषण और चन्द्रनखा भी रत्नश्रवा की सन्तान थे (पर्व ७)।

'पद्मपुराण' मे रावण के मुख का हार मे प्रतिविम्ब पडने के कारण उसका नाम 'दशानन' है।[१४२] रावण के १० मुख नही है। दशाननादि भाइयो की विद्या-सिद्धि,[१४३] अनावृत यक्ष के उपसर्ग एव दशानन की सहस्रो (सहस्र तस्य विद्या-

---

अय तु व्यक्त एवास्ति शब्दोऽन्यत्र प्रयोगवान्।
यष्टिहस्तो यथा यष्टि कुन्त कुन्तकरस्तथा ॥
मञ्चस्था पुरुषा मञ्चा यथा च परिकीर्तिता।
साहचर्यादिभिर्धर्मैरेवमाद्या उदाहृता ॥
तथा वानरचिह्नेन छत्रादिविनिवेशिना।
विद्याधरा गता ख्याति वानरा इति विष्टपे ॥"

(पद्म०, ६।२०६-२१५)

१४२ "स्थूलस्वच्छेषु रत्नेषु नवान्यानि मुखानि यत्।
हारे दृष्टानि यातोऽसौ तद्दशाननसंज्ञिताम् ॥" (पद्म० ७।२२२)

१४३ रविषेण ने विद्याधरकुमार दशानन एवम् उसके भाइयो की विद्याओ का नामोल्लेख इस प्रकार किया है—

"नभ सचारिणी कामदायिनी कामगामिनी।
दुर्निवारा जगत्कम्पा प्रज्ञप्तिर्भानुमालिनी ॥
अणिमा लघिमा क्षोभ्या मन स्तम्भनकारिणी।
सवाहिनी सुरध्वसी कौमारी बधकारिणी ॥
सुविधाना तपोरूपा दहनी विपुलोदरी।
शुभप्रदा रजोरूपा दिनरात्रिविधायिनी ॥
वज्रोदरी समाकृष्टिरदर्शन्यजरामरा।
अनलस्तम्भनी तोयस्तम्भनी गिरिदारिणी ॥
अवलोकन्यरिध्वसी घोरा धीरा भुजगिनी।
वारुणी भुवनावध्या दारुणा मदनाशिनी ॥
भास्करी भयसम्भूतिरैशानी विजया जया।
बन्धनी मोचनी चान्या वराही कुटिलाकृति ॥
चित्तोद्भवकरी शान्ति कौवेरी वशकारिणी।
योगेश्वरी बलोत्सादी चण्डा भीति प्रवर्षिणी ॥ (पद्म ७।२२५-३३२)

उपर्युक्त रावण की विद्याओ के अतिरिक्त सर्वाहा-रतिसवृद्धि-जृम्भिणी-व्योमगामिनी भानुकर्ण को तथा 'सिद्धार्थी शत्रुदमनी निर्व्याघाता खगामिनी' विभीषण को प्राप्त हुई। (पद्म० ७।३३३-३४)

नामनेक वशतामितम् (७।३१४) विद्याओ, भानुकर्ण की पॉच विद्याओ और विभीषण की चार विद्याओ का उल्लेख है, (पर्व ७)। रावण की मन्दोदरी के अतिरिक्त पद्मावती, अशोकलता, विद्युत्प्रभा आदि अनेक स्त्रियो का नामोल्लेख है, साथ ही भानुकर्ण की 'तडिन्माला' (८।१४२) और विभीषण की 'राजीवसरसी' (८।१५१) पत्नी के नामोल्लेख के साथ सहस्रो रानियो का सकेत है (पर्व ८)। रावण 'मेघरव' पर्वत पर छ हजार कुमारियो से क्रीडा करता है, वह दिग्विजय करता है, त्रिलोकमण्डन हाथी को वश मे करता है, लका को वैश्रवण से छीनता है, यम को परास्त करता है, अपनी बहन चन्द्रनखा का खरदूषण से विवाह करता है, वालि को वशगत करना चाहता है किन्तु असफल रहता है। वालि-अधिष्ठित कैलास को उठाता है किन्तु वालि के अँगूठे से पर्वत के दब जाने पर कष्ट पाकर जिनेन्द्रस्तुति करता है तथा नागराज के द्वारा 'अमोघविजया' शक्ति को प्राप्त करता है (पर्व ८-९), सहस्ररश्मि को जीतता है, मरुत्वान् का यज्ञध्वस करता है, नारद को बचाता है, कनकप्रभा से विवाह कर अनेक देशो मे भ्रमण करता है (पर्व १०-११), अपनी कृतचित्रा कन्या का मथुरा के राजा हरिवाहन के पुत्र मधु के साथ विवाह करता है, नलकूबर को परास्त करता है, उसकी पत्नी उपरम्भा को अपने ऊपर आसक्त होने से रोकता है, इन्द्र को पराजित करता है तथा इन्द्र के पिता सहस्रार के प्रति नम्रता प्रदर्शन करके इन्द्र को छोड देता है (पर्व १२-१३), सुवर्णगिरि पर्वत पर अनन्तबल मुनिराज के समीप धर्म का विस्तार से वर्णन सुनकर भानुकर्ण के साथ शुभ प्रतिज्ञा करता है[१४४] (पर्व १४) वरुण को परास्त करता है और विशाल साम्राज्य स्थापित करता है (पर्व १९)। 'पद्मपुराण' के अनुसार 'खरदूषण' दो पात्र न होकर एक ही पात्र है तथा रावण का बहनोई है, रावण सुग्रीव का बहनोई है (पर्व ९) सुतारा का विवाह सुग्रीव से होता है एव अग और अगद-सुग्रीव के दो पुत्र है।

---

१४४ अवधार्येति भावेन प्रणम्यानन्तविक्रमम् ।
देवासुरसमक्ष स प्रकाशमिदमभ्यधात् ॥
भगवन्न मया नारी परस्येच्छाविवर्जिता ।
गृहीतव्येति नियमो ममाय कृतनिश्चय ॥
भानुकर्ण ने चतु शरण का आश्रय लेकर यह नियम लिया —
करोमि प्रातरुत्थाय साम्प्रत प्रतिवासरम् ।
स्तुत्वा पूजा जिनेन्द्राणामभिषेकसमन्विताम् ॥
वरिवस्यामवस्त्राणामकृत्वा विधिनान्वितम् ।
अद्यप्रभृति नाहार करोमीति ससमद ॥" (पद्म० १४।३७०-३७४)

'पद्मपुराण' मे हनूमान् की उत्पत्ति एव कार्यो का विस्तृत और विलक्षण वर्णन है (पर्व १५-१९)। महेन्द्र और हृदयवेगा से अञ्जना उत्पन्न होती है एव प्रह्लाद राजा और केतुमती से पवनञ्जय उत्पन्न होता है। दोनो का विवाह होता है। गलतफहमी के कारण पवनञ्जय अञ्जना से रुष्ट हो जाता है तथा रावण के बुलाये जाने पर, वरुण के विरुद्ध लडने, चला जाता है। वियोग मे अञ्जना दुखी होती है। पवनञ्जय विरहिणी चक्रवाकी के दर्शन से प्रेरणा पाकर छिपकर अञ्जना के साथ विस्तृत सम्भोग करता है। अञ्जना गर्भवती हो जाती है और शकित केतुमती द्वारा सन्दिग्ध होकर घर से निकाल दी जाती है। वह पिता के घर जाती है किन्तु कञ्चुकी द्वारा उसके गर्भ का समाचार पाकर वह उसे आश्रय नही देता। निदान, अञ्जना अपनी सखी वसन्तमालिनी के साथ वन मे जाकर एक पर्वत के समीप पहुँचती है, गुफा मे मुनिराज के दर्शन करती है। मुनिराज उसके पूर्वभवो का वर्णन करके उसे सान्त्वना देकर अन्यत्र चले आते है। अञ्जना सखी के साथ वही रहती है तथा हनूमान् को उत्पन्न करती है। वरुण के युद्ध से लौटकर पवनञ्जय घर आता है किन्तु वहाँ अञ्जना को न देख उसकी खोज मे घर से निकल जाता है। वह भूतरव वन मे मरने का निश्चय कर लेता है किन्तु बाद मे विद्याधरो के प्रयत्न से उसका अञ्जना से मिलाप हो जाता है। हनूमान् बहुत पराक्रमी है। वह वरुण के विरुद्ध रावण की सहायता करता है और वरुण को परास्त करता है। हनूमान् को रावण चन्द्रनखा की पुत्री 'अनगपुष्पा' देता है, किष्कुपुराधीश नल भी उसे 'हरिमालिनी' कन्या देता है, इसी प्रकार वह सहस्राधिक रमणियो का स्वामी हो जाता है—'इति क्रमेणास्य बभूव योषिता पर सहस्राद्गणनम् महात्मन·।' (पद्म० १९।१०५)

'पद्मपुराण' का 'दशरथ-जनक-काल-निवर्तन' का वृत्तान्त भी जैन रामकाव्य परम्परा की एक नई सूझ है। यह वृत्तान्त इस प्रकार है —सागरबुद्धि नामक निमित्तज्ञानी से विभीषण को पता चलता है कि रावण की मृत्यु का कारण दाशरथि और जनक-दुहिता होगे। विभीषण जनक और दशरथ को मारने जाता है। नारद द्वारा इसकी सूचना पाकर दशरथ और जनक मत्रियो पर राज्य छोडकर चले जाते है। मन्त्री उनके पुतलो को राज्य-सिंहासन पर आरूढ कर देते है तथा विभीषण उन्हे वास्तविक दशरथ और जनक समझकर काट डालता है। बाद मे वह पश्चात्ताप भी करता है। इधर दशरथ और जनक कौतुकमगल नगर पहुँचते है। वहाँ शुभमति राजा की सकलकलाधारिणी पुत्री केकया स्वयम्वर मे राजा दशरथ को वरती है तथा स्वयम्वरोत्तर राजाओ के साथ युद्ध मे दशरथ का रथ हाँककर उससे एक वर प्राप्त करके उसे धरोहर के रूप मे उसके ही पास छोड देती

है। इसके अतिरिक्त पद्मपुराण मे दशरथ की अपराजिता, सुमित्रा (कैकयी),[१४५] केकया एव सुप्रभा इन चार रानियो का उल्लेख है जिनसे क्रमशः राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न उत्पन्न होते है। (पर्व २५)

जनक की दो जुडवाँ सन्तान है—'भामण्डल' और 'सीता'। भामण्डल के जन्म लेते ही उसे, महाकाल असुर अवधि-ज्ञान से पूर्व जन्म के वैर के कारण, उडा कर ले गया किन्तु बाद मे दया से द्रवीभूत होकर उसने उसे दिव्यकुण्डलो से अलकृत करके आकाश से नीचे गिरा दिया। रथनूपुरनगराधिपति चन्द्रगति विद्याधर ने उसे सँभाल लिया और अपनी अपुत्रवती रानी पुष्पवती को सौप दिया। पुत्र का जन्मोत्सव मनाया गया और उसका नाम 'भामण्डल' रखा गया। सीता, अपने महल मे, दर्पण मे नारद की आकृति को देखकर भयभीत हो उठती है। सेवक नारद को तिरस्कृत करते है। नारद अपमान का बदला लेने के लिए सीता का चित्र दिखाकर भामण्डल को उसके प्रति उत्सुक कर देता है। उधर जनक के राज्य मे म्लेच्छो द्वारा उपद्रव होता है। उसे रोकने के लिए वे दशरथ को बुलाते है। दशरथ तत्काल वहाँ जाने को उद्यत होते हैं किन्तु राम-लक्ष्मण दशरथ को रोक कर स्वय जाकर म्लेच्छोच्छेद करते है। इस अभूतपूर्व सहयोग से प्रसन्न होकर जनक दशरथ के पुत्र राम के लिए अपनी पुत्री देने का निश्चय कर लेते हैं। इधर भामण्डल सीता के विरह मे दु खी है। राजा चन्द्रगति की सम्मति से चपलवेग नामक विद्याधर अश्व का रूप धारण कर मिथिला से जनक को हर कर रथनूपुरनगर ले आता है। वहाँ चन्द्रगति उनसे अपने पुत्र भामण्डल के लिए सीता को माँगता है किन्तु जनक निषेध करते हैं तथा अपने पूर्व निश्चय को दुहराते हैं। अन्त मे—"वज्रावर्त समारोप्य पद्मो गृह्णतु कन्यकाम्। अस्माभि प्रसभ पश्य तामानीतामिहान्यथा ॥ (पद्म० २८।१७१)"—विद्याधरो की इस शर्त को मान कर जनक लौट आते है। स्वयवर होता है। राम 'वज्रावर्त' धनुष को चढा

---

१४५ 'पद्मपुराण' मे 'कैकयी' सुमित्रा है जो लक्ष्मण की माता है। केकया भरत की माता है। 'कैकयी' का नाम ही 'सुमित्रा' है।

"पुरमस्ति महारम्य नाम्ना कमलसकुलम्।
सुबन्धुतिलकस्तस्य राजा मित्रास्य भामिनी ॥
दुहिता कैकयी नाम तयो कन्या गुणान्विता।
० ० ०
मित्राया जनिता यस्मात् सुचेष्टा रूपशालिनी।
सुमित्रेति तत ख्याति भुवने समुपागता ॥"

(पद्मपुराण, २२।१७३-७४)

देते है तथा सीता को प्राप्त करते है। भामण्डल निराश होता है।

'पद्मपुराण' मे सीता-राम के विवाह के साथ केवल लक्ष्मण और भरत का विवाह दिखलाया गया है (पर्व २८)। लक्ष्मण 'सागरावर्त' धनुष को चढाते है—"क्षुब्धाकूपारनिस्वान सागरावर्तकार्मुकम्। तावच्च लक्ष्मणोऽधिज्य कृत्वास्फालयदुन्नतम्॥" (२८।२४७) इस पर चन्द्रवर्द्धन विद्याधर ने उन्हे १८ (अठारह) कन्याएँ समर्पित की—'विक्रान्ताय तथा तस्मै विद्याभृच्चन्द्रवर्द्धन। अष्टादश ददौ कन्या धियैवाप्रौढिका इति॥' (पद्म० २८।२५०) राम-लक्ष्मण का विवाह देखकर भरत को शोक होता है कि 'देखो, मेरा भाग्य कैसा मन्द है!' इस पर केकया ने भरत के अभिप्राय को जानकर दशरथ से जनक के अनुज कनक की सुप्रभा रानी से उत्पन्न 'लोकसुन्दरी' नामक पुत्री भरत के लिए माँगने का विचार दिया। दशरथ ने इसे स्वीकार कर कनक को सूचित किया और कनक ने अगले दिन राजाओ को बुलाकर लोकसुन्दरी का विवाह भरत से कर दिया।[१४६]

१४६ वृत्तान्तमिममालोक्य भरत पुरुविस्मय।
अशोचदेवमात्मान मनसा सम्प्रबुद्धवान्॥
कुलमेक पिताप्येक एतयोर्मम चेदृशम्।
प्राप्तमद्भुतमेताभ्या (रामलक्ष्मणाभ्या) न मया मन्दकर्मणा॥
अथवा कि मनो व्यर्थं परलक्ष्म्याभितप्यसे।
पुरा चारूणि कर्माणि न कृतानि ध्रुव त्वया॥
पद्मगर्भदलच्छाया साक्षाल्लक्ष्मीरिवोज्ज्वला।
ईदृशी पुरुपुण्यस्य पुसो भवति भामिनी॥
कलाकलापनिष्णाता विज्ञाना केकया तत।
विज्ञाय तनयाकूत कर्णे प्रियमभाषत।
भरतस्य मया नाथ! शोकवल्लक्षित मन।
तथा कुरु यथा नाय निर्वेद परमृच्छति॥
अस्त्यत्र कनको नाम जनकस्यानुजो नृप।
सुप्रभाया ततो जाता सुकन्या लोकसुन्दरी॥
स्वयम्वराभिध भूय समुद्घोष्य नियोज्यताम्।
तथाय यावदायाति नान्य त भावनान्तरम्॥
तत परममित्युक्त्वा वार्ता दशरथेन सा।
कर्णगोचरमानीता कनकस्य सुचेतस॥
यदाज्ञापयतीत्युक्त्वा कनकेनान्यवासरे।
समाहूता नृपा क्षिप्र गता ये निलय निजम्॥
ततो यथोचितस्थानस्थितभूनाथमध्यगम्।
नक्षत्रगणमध्यस्थशर्वरीवरविभ्रमम्॥
उपात्तसुमनोदामा कानकी कनकप्रभा।
सुप्रभा भरत वव्रे सुभद्रा भरत यथा॥ (पद्मपुराण, २८।२५२-२६३)

रामायणादि मे वर्णित सीता-राम-विवाह से पूर्व की घटनाएँ यथा विश्वामित्र के साथ राम-लक्ष्मण का जाना, ताडका-सुबाहु को मारना, अहल्या का उद्धार करना, मिथिला-स्वयम्वर मे तमाशा देखने जाना, वाटिका मे पुष्प-चयन करते हुए सीता-साक्षात्कार करना, लक्ष्मण-परशुराम-सवाद, बारात-आगमन, राम-विवाहोत्सव आदि 'पद्मपुराण' मे वर्णित नही है।

वृद्ध कचुकी का प्रसग दशरथ के वैराग्य के कारण रूप मे उपस्थित हुआ है। यह प्रसग इस प्रकार है —आषाढी आष्टाह्निका को, राजा दशरथ रानियो के पास जिन-प्रतिमा का गन्धोदक भिजवाते है सुप्रभा रानी के पास एक वृद्ध कञ्चुकी गन्धोदक ले जाता है तथा अन्य रानियो के पास तरुण दासियाँ ले जाती है। सभी रानियो के पास गन्धोदक जल्दी पहुँच जाता है किन्तु सुप्रभा के पास वह उतनी जल्दी नही पहुँचता जिसे सुप्रभा अपना अपमान समझ कर आत्मघात करना चाहती है। राजा दशरथ उसके पास पहुँचते है तथा अन्य रानियो के साथ उने समझाते है। इसी बीच वृद्ध कञ्चुकी गन्धोदक ले आता है तथा रानी सुप्रभा उसे शिर पर धारण करती है। राजा वृद्ध कञ्चुकी से विलम्ब का कारण पूछते है तो वह अपनी वृद्धावस्था को ही इसमे हेतु बताता है। उसकी जर्जर अवस्था देखकर राजा दशरथ विरक्त हो जाते है। (पर्व २९) 'पद्मपुराण' मे, भामण्डल सीता के वियोग मे जलकर सेना के साथ सीता को लेने के लिए अयोध्या की ओर प्रस्थान करता है किन्तु मार्ग मे अपने पूर्वभव का स्मरण करके मूर्च्छित हो जाता है एव जागने पर अत्यन्त लज्जित होता है। उसे ज्ञात होता है कि सीता उसकी सगी बहिन है। वह अपने पिता चन्द्रगति-सहित अयोध्या आता है और अपने अपराध के लिए क्षमा माँगता है।

'पद्मपुराण' मे, केकया-वर-याचना-प्रसग इस प्रकार है—वृद्ध कचुकी की दशा देखकर निर्विण्ण दशरथ प्रव्रज्या का विचार करने लगे और भरत भी प्रव्रज्या की सोचने लगा। उसके इस अभिप्राय को जानकर केकया अत्यन्त चिंतित हुई। अत राम को राज्य सौपने को उद्यत राजा दशरथ से उसने भरत को दीक्षा से विरक्त कराने के निमित्त पूर्वोपार्जित एक वर माँग लिया ('वर सम्प्रति त यच्छ मह्य' पद्म० ३१।१०५।)। इसमे उसने भरत के लिए राज्य माँगा। राम के वन-वास का वर केकया नही माँगती। राम वन तो स्वेच्छा से जाते है (पर्व ३१)। दशरथ केकया को बिना किसी विचिकित्सा के भरत के राज्य का वर दे देते है।

'पद्मपुराण' मे दशरथ भरत को राम-वन-गमन से पूर्व ही राज्य देते है, राम वन जाने से पूर्व भरत से राज्य करने का अनुरोध करते हैं और उसे अपनी

ओर से निश्चिन्त करते हैं ।[१४७] राम के साथ उनकी माता भी चलने का अनुरोध करती है। लक्ष्मण, दशरथ पर पहले क्रोध करता है फिर शान्त होकर राम के साथ चल देता है। सीता से राम कहते हैं कि मैं दूसरे नगर को (वन को नही) जा रहा हूँ, तुम यही रहो 'प्रिये त्व तिष्ठ चात्रैव गच्छाम्यहृ पुरान्तरम्'। राम-वन-गमन के समय दशरथ खम्भे से टिके हुए मूर्च्छित हो जाते हैं जिससे उन्हे कोई मूर्च्छित नही जान पाता।

'पद्मपुराण' मे वन-प्रस्थान का वृत्तान्त इस प्रकार है —राम-लक्ष्मण-सीता के साथ प्रजा के अनेक लोग चले जाते हैं। राम-लक्ष्मण-सीता अनुसारियो को धोखा देने के लिए साय समय जिन-मन्दिर मे टिक जाते है—

"अनुप्रयातुकामस्य कर्तुं लोकस्य वञ्चनम्।
ससीतौ तावरेशस्य स्थान प्राप्तौ क्षपामुखे ॥' (पद्म० ३१।२२३)

दशरथ की रानियाँ दशरथ से प्रार्थना करती है कि वे शोकसागरमग्न कुल के रक्षार्थ राम-लक्ष्मण को लौटा लें किन्तु दशरथ अब इस प्रपञ्च मे नही पडते। सीता के साथ राम-लक्ष्मण मध्यरात्रि मे सबको सोता छोड़ मन्दिर के पश्चिम द्वार से दक्षिण दिशा की ओर चल पडते है। प्रात जागने पर कितने ही लोग उनके पीछे दौडते है तथा कुछ दूर तक साथ जाते हैं। अन्त में परियात्रा नामक वन के बीच मे पड़ने वाली शर्वरी नामक नदी को सीता को पकडकर राम-लक्ष्मण तो पार कर जाते है किन्तु सामन्त एव अन्य प्रजाजन उसे पार नहीं कर पाते।

१४७ "तत पद्मोऽपि तत्पाणौ गृहीत्वैवमभापत।
प्रेमनिर्भरया पश्यन् दृष्ट्या मधुरनिस्वन ॥
तातेन भ्रातरुक्त यत्कोऽन्यस्तद्गदितु क्षम।
नहि सागररत्नानामुत्पत्ति सरसो भवेत् ॥
वयस्तपोऽधिकारे ते जायतेऽद्यापि नोचितम्।
कुरु राज्य पितु कीर्तिरुद्यातु शशिनिर्मला ॥
इय च शोकतप्ताङ्गा माता यद्याति पञ्चताम्।
न तद्युक्त महाभागे नन्दने त्वादृशे सति ॥
पितु पालयितु सत्य त्यजामोऽपि वय तनुम्।
कथ त्व तु कृत प्राज्ञ श्रिय न प्रतिपद्यसे ॥
नद्या गिरावरण्ये वा तत्र वास करोम्यहम्।
यत्र कश्चिन्न जानाति कुरु राज्य यथेप्सितम् ॥
भाग सर्वं परित्यज्य पन्थानमपि मश्रित।
न करोमि पृथिव्या ते काचित्पीडा गुणालय ॥
मा श्वसीर्द्दीर्घमुष्ण च मुञ्च तावद्भ्रयाद्भयम्।
कुरु वाक्य पितु क्षोणी रक्ष न्यायपरायण ॥　　(पद्मपुराण, ३१।१५४-१६१)

फलस्वरूप कितने ही लौट जाते है और कितने ही दीक्षित हो जाते है। दशरथ भी सर्वभूतहित मुनि के पास दीक्षा ले लेते है (पर्व ३२)।

'पद्मपुराण' मे राम-लक्ष्मण चित्रकूट वन को पार कर अवन्तिदेश मे पहुँचते है। वहाँ एक ऊजड देश को देखकर तत्रागत दीन-हीन मनुष्य से उसका कारण पूछते है। वह इसी प्रकरण मे दशागपुर के राजा वज्रकर्ण का वृत्तान्त सुनाता है। तदनन्तर सिंहोदर की उद्दण्डता से वह राम को परिचित कराता है और सिंहोदर तथा वज्रकर्ण के पारस्परिक सघर्ष का निरूपण करके कुपित सिंहोदर के द्वारा इस देश के विध्वसीकरण का उल्लेख करता है। राम-लक्ष्मण आहार प्राप्त करने की इच्छा से आगे बढते हैं। लक्ष्मण के सौन्दर्य से आकृष्ट होकर राजा वज्रकर्ण उसे उत्तमोत्तम भोज्य पदार्थ देता है। लक्ष्मण उन सबको लेकर राम के पास आते है। वज्रकर्ण के इस आतिथ्य-सत्कार से राम के हृदय पर भारी प्रभाव पडता है और वे लक्ष्मण को वज्रकर्ण को रक्षा के लिए भेजते हैं। लक्ष्मण भरत के सेवक बनकर सिंहोदर की अक्ल ठिकाने लगाते हैं और उसे परास्त कर वज्रकर्ण की रक्षा करते है। अन्त मे वज्रकर्ण और सिंहोदर की मित्रता कराते है। लक्ष्मण को वज्रकर्ण की आठ एव सिंहोदर आदि राजाओ की तीन सौ कन्याएँ प्राप्त होती है।[१४८] (पर्व ३३) वनयात्रा-प्रकरण मे ही कुमारवेशधारिणी 'कल्याणमाला' से लक्ष्मण के विवाह का वृत्तान्त है, 'कपिल ब्राह्मण' की कथा है, वनमाला-लक्ष्मण-प्रसग है। राम-लक्ष्मण पृथ्वीधर की सभा मे दूत के मुख से भरत पर राजा अतिवीर्य के भावी आक्रमण का समाचार प्राप्त कर नर्तकीवेश मे उसकी सभा मे जाकर अपने अनुपम सगीत और कलापूर्ण नृत्य से वशीभूत करके उसे पकड लेते हैं तथा भरत के प्रति आक्रमण के विचार को उससे तिलाञ्जलि दिला देते हैं। राजा अतिवीर्य दयालु सीता के द्वारा मुक्त किया जाता है एव दीक्षा ले लेता है। आगे चलकर क्षेमाञ्जलिपुर के राजा शत्रुदमन की शक्ति को झेलकर लक्ष्मण उसकी पुत्री जितपद्मा को अपने ऊपर आसक्त करते है तथा राजा उसका विवाह उनके साथ कर देता है (पर्व ३४-३८)। इसके बाद राम-लक्ष्मण देशभूषण-

---

१४८ "वज्रकर्णस्तत कृत्वा रामलक्ष्मणयो पराम्।
पूजामानाययत्क्षिप्रमष्टौ दुहितरो वरा ॥
सजायो दृश्यते ज्यायानिति तास्तेन ढौकिता।
लक्ष्मीधर कृतोदारविभूपाविनयान्विता ॥
नृपा सिंहोदराद्याश्च ददु परमकन्यका।
एव सन्निहित तस्य कुमारीणा शतत्रयम् ॥"

(पद्मपुराण, ३३।३११-३१३)

कुलभूषण मुनि का उपसर्ग दूर करते है (पर्व ३९), वशस्थलपुर के राजा सुरप्रभ द्वारा चरमशरीरी राम का अभिवादन होता है, राम-लक्ष्मण दण्डकवन-प्रस्थान करते है, सीता-सहित कर्णरवा नदी मे स्नान करते है, जटायु का वृत्तान्त आता है एव उसके पूर्व जन्म की कथा का उल्लेख किया जाता है (पर्व ४०-४२)।

सीताहरण का हेतु 'पद्मपुराण' मे शम्बूकवध है, न कि शूर्पणखा का नाक-कान-कर्तन। शम्बूकवध का वृत्तान्त इस प्रकार है—एक दिन लक्ष्मण वन भ्रमण करते हुए दूर निकल गये। उन्हे एक ओर से अद्भुत गन्ध आयी जिससे आकृष्ट होकर वे उसी ओर वढते गये। एक वाँस के भिडे मे छिपकर चन्द्रनखा-खरदूषण का पुत्र शम्बूक सूर्यहास खड्ग सिद्ध कर रहा था। देवोपनीत खड्ग आकाश मे लटक रहा था। उसी की सुगन्ध सर्वत्र फैल रही थी। लक्ष्मण ने लपक कर सूर्यहास खड्ग हाथ मे लेकर उसकी तीक्ष्णता की परख के लिए उसे वाँसो से भिडे पर चला दिया जिससे वह वाँसो का भिडा एक दम कट गया और उसके भीतर स्थित शम्बूक भी दो टुकडे हो गया। इधर जब चन्द्रनखा पुत्र को भोजन देने आयी तो उसको मरा हुआ देखकर परम शोकाभिभूत हुई तथा विलाप करने लगी। कुछ समय वाद राम-लक्ष्मण के सौदर्य से उसका मन हर लिया गया और वह उनमे से एक को वरण करने की इच्छा से कन्या बन गयी—'इति सचिन्त्य ससाधुकन्या-कल्प समाश्रिता' (४३।९३) उसने राम लक्ष्मण के प्रति अपना अनुराग प्रकट किया किन्तु अपनी लक्ष्यप्राप्ति मे असफल रही। यही यह भी वर्णन है कि चन्द्रनखा के चले जाने के वाद उसके सौन्दर्य से अभिभूतचित्त लक्ष्मण राम की नजर बचाकर उसे ढूँढने गये और मन मे पश्चात्ताप करने लगे, कि मैने उस घनस्तनी, रूपलावण्यगुणपूर्णा, मदनाविष्टनगेन्द्र-वनितासमगामिनी को आते ही स्तनोपपीडनाश्लेष को प्राप्त क्यो न करा दिया? अब न जाने वह सुलोचना कहाँ होगी? 'जाता सा विषये कस्मिन् कस्य वा दुहिता भवेत्। यूथभ्रष्टा मृगीवेय कुत प्राप्ना सुलोचना (४३।१२०)' अस्तु (पर्व ४३)। कामेच्छा पूर्ण न होने पर पुत्र-शोकाभिभूत चन्द्रनखा विलाप करती हुई अपने पति खरदूषण के पास गयी। खरदूषण ने स्वय आकर पुत्र को देखा। उसका क्रोध उबल पडा। वह राम-लक्ष्मण के साथ युद्ध करने को उठ खडा हुआ तथा रावण को भी उसने इस घटना की सूचना दी। खरदूषण का इधर लक्ष्मण के साथ घमासान युद्ध होता है उधर रावण उसकी सहायता के लिये आता है। वह बीच मे सीता को देखकर मोहित हो उठता है तथा छल से सिंहनाद करके राम को लक्ष्मण के पास भेजकर एकाकिनी सीता को हर ले जाता है (पर्व ४४)।

सीता को हर कर ले जाते हुए रावण के पीछे अर्कजटी का पुत्र रत्नजटी दौडता है किन्तु रावण उसकी आकाशगामिनी विद्या छीनकर उसे आकाश से गिरा देता है। वह समुद्र के मध्य कम्बुद्वीप मे जाकर पडता है। इधर राम-लक्ष्मण का विराधित से परिचय होता है और वह विद्याधरो से सीता का पता लगाने को कहता है (पर्व ४५)।

उधर रावण सीता को लेकर लङ्का मे पहुँचता है। वहाँ पश्चिमोत्तर दिशा मे स्थित देवारण्य उद्यान मे सीता को ठहराकर उससे प्रेम याचना करने लगता है किन्तु शीलवती सीता उसके प्रस्ताव को ठुकरा देती है। रावण माया द्वारा सीता को भयभीत करने का भी प्रयत्न करता है किन्तु वह अपने पथ से विचलित नही होती। रावण सीता के प्रेम को प्राप्त करने के लिए बहुत दु खी है। रावण की विप्रलम्भजन्य दुर्दशा को देखकर मन्दोदरी लाचार होकर उसका दौत्य-सम्पादन करती है तथा सीता को समझाती है।[१४९]

---

१४९ रावण की विप्रलभजन्य दुर्दशा से सन्तप्त मन्दोदरी के प्रश्न एव रावण द्वारा उत्तर और मन्दोदरी के सीता को समझाने का वर्णन इस प्रकार किया गया है—

"ततो महोदर स्वैर निश्वस्योवाच रावण ।
तल्प किंचित्परित्यज्य धारितोदीरिताक्षरम् ॥
'श्रृणु सुन्दरि सद्भावमेक ते कथयाम्यहम ।
स्वामिन्यसि ममासूना सर्वदा कृतवाञ्छिता ॥
यदि वाञ्छसि जीवन्त मा ततो देवि नार्हसि ।
कोप कर्तुं ननु प्राणा मूल सर्वस्य वस्तुन ॥'
ततस्तथैवमित्युक्ते शपथैर्विनियम्य ताम् ।
विलक्ष इव किंचित्स रावण समभाषत ॥
'यदि सा वेद्यम सृष्टिरपूर्वा दु खवर्णना ।
सीता पति न मा वष्टि ततो मे नास्ति जीवतम् ॥'
ततो मन्दोदरी कष्टा ज्ञात्वा तस्य दशामिमाम् ।
विहसन्ती जगादैव विस्फुरद्दन्तचन्द्रिका—
'इद नाथ महाश्चर्यं वरो यत्कुरुतेऽर्थनम् ।
अपुण्या सावला नून या त्वा नार्थयने स्वयम् ॥
अथवा निखिले लोके मैवैका परमोदया ।
या त्वया मानकूटेन याच्यते परमापदा ॥
केयूररत्नजटितैरिमै करिकरोपमै ।
आलिङ्ग्य बाहुभि कस्माद् बलात्कामयसे न ताम् ?
सोऽवोचद्देवि विज्ञाप्यमस्त्यत्र श्रृणु कारणम्—
० ० ०

विटसुग्रीव साहसगति विद्याधर के द्वारा उपद्रुत होकर इधर-उधर घूमता-फिरता हुआ विराधित की पाताललका में आता है। विराधित उसका सम्मान करता है। वही उसका राम से परिचय होता है। (राम विराधित के कहने से सीताहरण के वाद पाताललङ्का (अलङ्कारपूर) चले आये थे।) मन्त्री राम से सुग्रीव की दु खद दशा का वर्णन करते है तथा राम उसकी सहायता करने का वचन देकर साहसगति विद्याधर का वध कर सुग्रीव को निश्चिन्त करते है। यहाँ

यावन्नेच्छति मा नारी परकीया मनस्विनी।
प्रसभ सा मया तावन्नाभिगम्यापि दु खिना ॥
एतच्चाप्यभिमानेन गृहीत दयिते व्रतम्।
का मा किल समालोक्य साध्वी मान करिष्यति ॥

० ० ०

यावन्मुञ्चामि नो प्राणान् तावत्सीता प्रसाद्यताम्।
भस्मभावङ्गते गेहे कूपखानश्रमो वृथा ॥
ततस्त तादृश ज्ञात्वा सञ्जातकरुणोदया।
बभाण रमणी नाथ स्वल्पमेतत्समीहितम् ॥

० ० ०

मन्दोदरी क्रमात्प्राप्य सीतामेवमभाषत।
समस्तनयविज्ञानकृतमण्डमानसा ॥
'अयि सुन्दरि हर्षस्य स्थाने कस्माद्विषीदसि ?
त्रैलोक्येऽपि हि सा धन्या पतिर्यस्या दशानन ॥
सर्वविद्याधराधीश पराजितसुराधिपम्।
त्रैलोक्यसुन्दर कस्मात्पति नेच्छसि रावणम् ?
नि स्व क्ष्मागोचर कोऽपि तस्यार्थे दु खितासि किम् ?
सर्वलोकवरिष्ठस्य स्वस्य सौख्य विधीयताम् ॥
आत्मार्थं कुर्वत कर्म सुमहासुखसाधनम्।
दोषो न विद्यते कश्चित्सर्वं हि सुखकारणम् ॥
मयेति गदित वाक्य यदि न प्रतिपद्यते।
ततो यद्भविता तत्ते शत्रुभि प्रतिपद्यताम् ॥
बलीयान् रावण स्वामी प्रतिपक्षविवर्जित।
कामेन पीडित कोप गच्छेत्प्रार्थनभञ्जनात् ॥
यौ राम-लक्ष्मणौ नाम तव कावपि सम्मतौ।
तयोरपि हि सन्देह क्रुद्धे सति दशानने ॥
प्रतिपद्यस्व तत्क्षिप्र विद्याधरमहेश्वरम्।
ऐश्वर्यं परम प्राप्ता सौरी लीला समाश्रय ॥

(पद्मपुराण, ४६।४४-८१)

बालि का स्थान साहसगति ने प्रकारान्तर से ले लिया है (पर्व ४७)।

पद्मपुराण मे रत्नजटी पता देता है कि सीता को रावण हर कर ले गया है। रावण का नाम सुनकर विद्याधरो के होश ठण्डे पड़ जाते है। राम के प्रबल आग्रह-वश वानर यह कहकर सहयोग देने को तत्पर होते है कि रावण की मृत्यु कोटि-शिला उठाने वाले के द्वारा होगी—ऐसा अनन्तवीर्य मुनीन्द्र ने कहा था। (यो निर्वाणशिला पुण्यामतुलामर्चिता सुरै । समुद्यता स ते मृत्यो. कारणत्व गमिष्यति ।। ४८।१८६) तो यदि आप लोग कोटिशिला उठा सके तो हम रावण के स.थ युद्ध करने के लिए उद्यत हो सकते है। लक्ष्मण कोटिशिला उठा देते हैं (शिलामचालयत् क्षिप्र लक्ष्मणो विमलद्युति ।। ४०।२१३)। वानर उनकी शक्ति का विश्वास कर युद्ध के लिए उद्यत हो जाते है। सुग्रीव हनूमान् को बुलाने के लिए कर्मभूतिनामक दूत को भेजता है। वहाँ हनूमान् अपने नगर (श्रीपुर) मे अपनी अनेक रानियो के साथ रँगरेलियाँ मनाता हुआ होता है। दूर से राम-लक्ष्मण का पराक्रम सुनकर और अपने सम्बन्धी खरदूषण का वध सुनकर क्रोध-सरुद्धसर्वाग (४९।२२) हनूमान् क्षुब्ध हो जाता है तथा उसकी पत्नी 'अनंग-कुसुमा' (चन्द्रनखा की सुता) बहुत दुखी होती हैं। पिता के शोक नाश का समाचार सुनकर हनूमान् की दूसरी पत्नी (सुग्रीवसुता) पद्मरागा प्रसन्न होती है जिससे हनूमान् राम के प्रति सहानुभूतिपूर्ण होकर उनके पास आकर लका जाता है (पर्व ४९)।

'पद्मपुराण' मे हनूमान् अपने विमान मे बैठकर लंका जाता है। मार्ग मे वह अपने नाना महेन्द्र के नगर मे पहुँचता है जहाँ उसके द्वारा किये गये माता के अपमान का स्मरण होने से वह क्रुद्ध होकर उसे बलपूर्वक परास्त करता है। हनूमान् का आदेश पाकर राजा महेन्द्र अपनी पुत्री अञ्जना के साथ मिलता है (पर्व ५०)। दधिमुखद्वीप मे स्थित मुनियो के ऊपर दावानल के उपसर्ग को हनूमान् दूर करता है। समीपस्थित गन्धर्वकन्याएँ विद्या सिद्ध हो जाने के कारण हनूमान् के प्रति कृतज्ञता प्रकट करती है। राम को गन्धर्वकन्या की प्राप्ति होती है (पर्व ५१)। आगे चलकर अचानक अपनी सेना की गति रुक जाने से हनूमान् आश्चर्य मे पड जाता है। मामले का पता लग जाने पर वह आगे बढकर मायामय कोट को ध्वस्त करता है और शीघ्र ही वज्रायुध को निष्प्राण कर देता है। इस वज्रायुध की पुत्री लका सुन्दरी हनूमान् से विकट युद्ध करती है किन्तु युद्ध करते हुए ही दोनो परस्पर अनुरक्त हो जाते हैं। लंका सुन्दरी का हनूमान् से विवाह होता है (पर्व ५२)।

लका मे पहुँचकर हनूमान् सर्वप्रथम विभीषण से मिलता है और रावण के

दुष्कर्म का उसे उपालम्भ देता है। तदनन्तर विभीषण की विवशता को जानकर वह प्रमदोद्यान मे आता है। वहाँ सीता की गोद में राम द्वारा दी गयी अँगूठी छोडता है। सीता को राम का सन्देश सुनता है। राम का सन्देश पाकर सीता ग्यारहवे दिन आहार ग्रहण करती हैं। सीता को हनूमान् जब अँगूठी देता है तब मन्दोदरी भी उपस्थित है। वह मन्दोदरी को भी फटकार लगाता है। वह उद्यान तथा लका को क्षतिग्रस्त करता है। लौटकर सीताप्रदत्त चूडामणि राम को देता है तथा सीता की दयनीय दशा का वर्णन करता है। चन्द्रमरीचि विद्याधर की प्रेरणा से उत्तेजित होकर सभी विद्याधर राम को साथ लेकर लका की ओर प्रयाण करते हैं (पर्व ५३)। राम के लका के निकट पहुँचने पर राक्षसो मे क्षोभ उत्पन्न हो जाता है। विभीषण रावण को समझाता है। जब विभीषण रावण को समझाता है तब बीच मे ही इन्द्रजित् उसका विरोध करता है और कहता है—

"साधो ! केनासि पृष्टस्त्व कोऽधिकारोऽपि वा तव।
येनैव भाषसे वाक्यमुन्मत्तगदितोपमम् ॥ (५५।१५)

इस पर विभीषण इन्द्रजित् को फटकारता है। रावण उसे खड्ग से मारने को तत्पर हो जाता है और विभीषण भी एक खम्भा उखडकर युद्धसन्नद्ध हो जाता है।[१५०] जैसे-तैसे मन्त्रियो के द्वारा बीच-बचाव किया जाता है। विभीषण तीस अक्षौहिणी सेना लेकर राम के पास जा मिलता है (पर्व ५५)।

रावण की सेना युद्ध करने के लिए लका से बाहर निकलती है। नल और नील के द्वारा हस्त और प्रहस्त मारे जाते है, अनेक राक्षस मारे जाते हैं। पद्मपुराण मे 'समुद्र-बन्धन' का प्रसग और रूप मे आया है। लका जाते समय नल वेलन्धरपुर के स्वामी 'समुद्र' को परास्त करता है।[१५१]

---

१५०. एव प्रवदमान त क्रोधप्रेरितमानस।
उत्खाय रावण खड्गमुद्गतो हन्तुमुद्यत ॥
तेनापि कोपवश्येन दृष्टान्तेनोपदेशने।
उन्मूलित प्रचण्डेन स्तम्भो वज्रमयो महान् ॥
युद्धार्थमुद्गतावेतौ भ्रातरावुग्रतेजसौ।
सचिवैर्वारितौ कृच्छ्राद्गतौ स्व-स्व निवेशनम् ॥"
(पद्मपुराण, ५५।३१-३३)

१५१ वेलन्धरपुरस्वामी समुद्रो नाम तत्र च।
नलस्य परम युद्धमातिथ्य समुपानयन् ॥
ततो नलेन सस्पर्द्धं जित्वा निहतसैनिक।
बद्धो बाहुबलाढ्येन समुद्र खेचर पर ॥
(पद्मपुराण, ५४।६५-६६)

'पद्मपुराण' मे, युद्ध के समय, अगद भानुकर्ण का अधोवस्त्र खोल देता है, जिससे वह अपना वस्त्र सँभालने मे लग जाता है। (पर्व ६०)।

राम-लक्ष्मण को सिहवाहिनी-गरुडवाहिनी विद्याओ की प्राप्ति होती है तथा अनेक युद्ध होते है। रावण द्वारा लक्ष्मण को शक्ति लगती है। शक्तिनिहित लक्ष्मण को देखने के लिये रावण राम को अनुमति दे देता है।[१५२] भानुकर्ण, मेघवाहन और इन्द्रजित् राम-सेना द्वारा बन्दो वना लिये जाते है, जिनके छुडाने की चिन्ता रावण करता है। (पर्व ६२)

शक्तिनिहत लक्ष्मण जहाँ पडे थे वहाँ किकर एक शिविर वना देते है[१५३] और वहाँ सात गोपुरो मे क्रमशः नील-नल-विभीषण-कुमुद-सुषेण-सुग्रीव-भामण्डल और पूर्व-पश्चिम-उत्तर दिशाओ के द्वारो पर शरभ-जाम्ववकुमार-चन्द्ररश्मि पहरा देते है (पर्व ६३)। सीता लक्ष्मण-विषयक समाचार सुनकर विलाप करती है। इधर चन्द्रप्रतिम विद्याधर राम से लक्ष्मण के उपचार के लिये विशल्या के गन्धोदक का प्रस्ताव रखता है। विशल्या द्रोणमेघ की कन्या है (रामायण के अनुसार विशल्या द्रोणगिरि पर एक औषधि है)। राम हनूमान्, भामण्डल तथा अगद को अविलम्ब अयोध्या भेजते है।[१५४] उनसे लक्ष्मण-सम्वन्धी समाचार पाकर भरत राक्षसो के साथ युद्ध करने के लिये तैयार हो जाते है और अयोध्या मे हलचल मच जाती है।[१५५] भामण्डलादि से विशल्या का समाचार सुनकर भरत द्रोणमेघ के

१५२ राम की रावण से प्रार्थना और उसकी अनुमति इस प्रकार है—
'सग्रामेऽभिमुखो भ्राता यो मे शक्त्या त्वयाहत ।
प्रेतस्याभिमुख तस्य वीक्ष्ये यद्यनुमन्यमे ॥'
—एवमस्त्विति सम्भाष्य प्रार्थनाभगदुर्विध ।
ययौ दशाननो लकामृद्ध्याऽखण्डलसनिभ ॥ (पद्म० ६२।९४-९५)

१५३ अथोत्सार्य कवधादीन्निमिषार्द्धेन सा मही ।
किकरैर्विहितोत्तुगदूष्यप्राकारमण्डपा ॥'
सप्तकक्ष्याट्टसम्पन्ना कृतदिक्चयनिर्गमा ।
वहि कवचितैर्योधैर्गुप्ता कार्मुकधारिभि ॥ (पद्म० ६३।२८-२९)

१५४ अञ्जनाजविदेहाजसुताराजास्तत कृता ।
अयोध्या गमिन कृत्वा सन्मन्त्र निश्चित द्रुतम् ॥ (पद्म० ६५।२)

१५५ 'साकेत एक अध्ययन' नामक ग्रथ मे डा० नगेन्द्र ने हनुमान् के मुख से लक्ष्मण-शक्ति का समाचार सुन अयोध्या की रण-सज्जा को गुप्तजी की मौलिक उद्भावना वताया है किन्तु यह उद्भावना तो ७ वी श० ई० से पूर्व ही हो चुकी थी। 'पद्मपुराण' की कुछ पक्तियाँ तुलनार्थ प्रस्तुत है—

अथ शोकरसादुग्रात् क्षणमात्रभुव परम् ।
राजा क्रोधरस भेजे परम भरतश्रुति. ।

पास आदमी भेजता है कि वह विशल्या को लका भेज दे। इस पर द्रोणमेघ और उसके पुत्र क्रुद्ध हो जाते है तथा भरत के मन्त्रियों के साथ युद्ध करने को तैयार हो जाते है। अन्त मे केकया के समझाने पर द्रोणमेघ विशल्या को लका भेज देता है—सहस्रमधिक चान्यत्कन्याना सुमनोहरम्। राजगोत्रप्रसूताना कृतं गामि सम तया॥ (६५।३३) भामण्डल उसे अपने विमान मे बैठाकर सूर्योदय से पूर्व ही लका से जाता है जहाँ वह गन्धोदक के प्रभाव से 'अमोघविजया' नामक शक्ति को निकाल देती है और लक्ष्मण से विवाह कर लेती है (पर्व ६४-६५)।

महाभेरीध्वनिं चाशु, रणप्रीतिमकारयत्।
सकला येन साकेता सम्प्राप्ताऽकुलता परम्॥
लोको जगाद किं न्वेतद्वर्तते राजसद्मनि।
महान् कलकल शब्द श्रूयतेऽत्यन्तभीषण॥
किन्नु रात्रौ निशीथेऽस्मिन् काले दुष्टिमति पर।
अतिवीर्य सुत. प्राप्तो भवेदापातपण्डित॥
कश्चिदकगता कान्ता त्यक्त्वा सन्नद्धुमुद्यत।
सन्नाहनिरपेक्षोऽन्य सायके करमर्पयत्॥
मुग्धबालकमादाय काचिदके मृगेक्षणा।
हस्त स्तनतटे न्यस्य चक्रे दिगवलोकनम्॥
काचिदीर्ष्याकृत त्यक्त्वा निद्रारहितलोचना।
सुप्तमाश्रयते कान्त शयनीयैकपार्श्वगम्॥
पार्थिवप्रतिम कश्चिद्धनी कान्तामुदाहरत्।
कान्ते! बुद्ध्यस्व किं शेषे किमपीदमशोभनम्॥
राजालये समुद्योतो लक्ष्यते जात्वलक्षित।
सन्नद्धा रथिनो मत्ता करिणोऽमी च सहिता॥
नीतिज्ञै सतत भाव्यमप्रमत्तै. सुपण्डितै।
उत्तिष्ठोत्तिष्ठ गोपाय स्वापतेय प्रयत्नत॥
शातकौम्भानिमान् कुम्भान् कलधौतमयास्तथा।
मणिरत्नकरण्डाश्च कुरु भूमिगृहान्तरे॥
पट्टवस्त्रादिसम्पूर्णानिमान् गर्भालयान् द्रुतम्।
तालयान्यदपि द्रव्य दु स्थित सुस्थित कुरु॥
शत्रुघ्नोऽपि सुसभ्रान्तो निद्रारुणितलोचन।
आरुह्य द्विरद शीघ्र घण्टाटकारनादितम्॥
सचिवै परमैर्युक्त शस्त्राधिष्ठितपाणिभि।
विमुचन् बकुलामोद चलदम्बरपल्लव॥
भरतस्यालय प्राप्तस्तथाऽन्ये नरपुंगवा।
शस्त्रहस्ता सुसन्नद्धा नरेन्द्रहिततत्परा॥

(पद्मपुराण ६५।७-२१)

मृगाङ्क आदि मन्त्री रावण को समझाते है कि सीता राम को देकर उनके साथ सन्धि कर लेना ही उचित है। रावण मन्त्रियो के समक्ष तो यह कह देता है कि जैसा आप कहते है वैसा ही करूँगा किन्तु दूत-प्रेषण के समय इशारे से दूत को कुछ और ही बात समझा देता है। दूत राम के दरबार मे पहुँच कर रावण की प्रशसा करता हुआ उसके भाई और पुत्रो को छोड देने की प्रेरणा देता है। राम उत्तर देते है कि मुझे राज्य की आवश्यकता नही है।[१५६] दूत पुन. रावण का पक्ष का समर्थन करता है जिस पर भामण्डल क्रुद्ध होकर उसे मारने को उद्यत हो जाता है किन्तु लक्ष्मण उसे शान्त कर देते हे (पर्व ६६)। दूत से इस समाचार को सुनकर रावण पहले तो किंकर्त्तव्यविमूढ हो जाता है किन्तु बात मे बहुरूपिणी विद्या सिद्ध करने का निश्चय करता है। उसकी आज्ञा से शान्ति-जिनालय सजते है तथा स्थान-स्थान पर जिनेन्द्र-पूजा होती है। फाल्गुन शुक्ला अष्टमी से पूर्णिमा तक 'नन्दीश्वर पर्व' मे दोनो सेनाओ से शान्ति रहती है और रावण शान्ति-जिनालय मे बैठकर विद्या सिद्ध करता है। मन्दोदरी भी यम-दण्ड मन्त्री को आज्ञा देती है कि जब तक पतिदेव विद्या-साधना मे निमग्न हैं तब तक सभी लोग शान्ति से रहे और उनकी हितसाधना के लिए नाना नियम ग्रहण करे[१५७] (पर्व ६७-६९)। बहुरूपिणी-साधक रावण का समाचार पाकर राम-पक्ष के योद्धा घबराते है तथा उसकी विद्या-सिद्धि मे उपद्रव करके विघ्न उपस्थित करते है यद्यपि राम ने कह दिया था कि नियमस्थित प्राणी से युद्ध नही करना चाहिए। किन्तु बात की उपेक्षा करके विद्याधरकुमार लका मे भेजे जाते है और वे वहाँ उपद्रव करते है। अगद अनेक प्रकार के उपद्रव करता है। वह रावण की माला तोड देता है, उसकी स्त्रियो की दुर्दशा करता है[१५८] एव

---

१५६ एष प्रेष्यामि ते पुत्रौ भ्रातर च दशानन।
सम्प्राप्य परमा पूजा सीता प्रेष्यसि मे यदि॥
एतया सहितोऽरण्ये मृगसामान्यगोचरे।
यथासुख भ्रमिष्यामि मही त्व भुड्क्ष्व पुष्कलाम्॥" (पद्म० ६६।३४-३५)

१५७ "दाप्यता घोषणा स्थाने यथा लोक समन्तत।
नियमेषु नियुक्तात्मा जायता सुदयापर॥
० ० ०
यावत्समाप्यते योगो नाथ भुवनभोगिन.।
तावत् श्रद्धापरो भूत्वा जनस्तिष्ठतु सयमी॥" (पद्म० ६९।१२-१४)

१५८ कृतग्रन्थिकमाधाय कण्ठे कस्याश्चिदशुकम्।
गुर्वारोपयति द्रव्य किंचित्स्मितपरायण॥
उत्तरीयेण कण्ठेऽन्या सयम्यालम्बयत्पुर।
स्तम्भेऽमु चत्पुन शीघ्र कृतदु खविचेष्टिताम्॥

मन्दोदरी को हर ले जाने को तैयार हो जाता है। रावण विद्यासिद्धि मे मग्न होने के कारण सब कुछ सहन कर लेता है। अन्त मे उसकी 'बहुरूपिणी' विद्या सिद्ध होने पर अगदादि भाग जाते है (पर्व ७०-७१)।

'पद्मपुराण' का रावण अपने किये को बुरा समझता है तथा पश्चात्ताप करता है।[१५९] वह अपने हृदय को धिक्कारता भी है। वह राम-लक्ष्मण को जीवित पकड कर अपने सम्मान को बनाये हुए सीता को लौटा देने की भी सोचता है।[१६०] किन्तु भाग्य का किसको पता है! लक्ष्मण से युद्ध करता हुआ वह उन पर 'चक्ररत्न' चला देता है और उनके द्वारा समझाया जाने पर भी मानवश ऐंठता रहता है और अन्ततोगत्वा उन्ही के हाथ से मारा जाता है (पर्व ७२-७६)।

दीनारै पचभि काचित् काञ्चीगुणसमन्विताम्।
हस्ते निजमनुष्यस्य व्यक्रीणात्क्रीडनोद्यत ॥

१५९ मन्दोदरी से कहा गया कथन इसका प्रमाण है—

तत किंचिदधोवक्त्रो रावणोऽर्द्धाक्षवीक्षण।
सव्रीड स्वैरमूचेऽह परस्त्रीहस्त्वयोदित ॥
किं मयोपचित पश्य परमाकीर्तिगामिना।
आत्मा लघूकृतो मूढ परस्त्रीसक्तचेतसा ॥
विषयामिषसक्तात्मन् पापभाजन चचल।
धिगस्तु हृदयत्व ते हृदय क्षुद्रचेष्टिता ॥

(पद्मपुराण, ७३।८२-८४)

१६० सीता की दयनीय दशा देखकर रावण का अन्तर्द्वन्द्व बड़ा ही मार्मिक है—

तदवस्थामिमा दृष्ट्वा रावणो मृदुमानस।
बभूव परम दु खी चिन्ता चैतामुपागत ॥
अहो निकाचितस्नेह कर्मबन्धोदयादयम्।
अवसानविनिर्मुक्त कोऽपि ससारगह्वरे ॥
धिक् धिक् किमिदमश्लाघ्य कृत सुविकृत मया।
यदन्योन्यरत भीरुमिथुन सद्वियोजितम् ॥
पापातुरो विना कार्य पृथग्जनसमो महत्।
अयशोमलमाप्तोऽस्मि सद्भिरत्यन्तनिन्दितम् ॥
शुद्धाम्भोजसम गोत्र विपुल मलिनीकृतम्।
दुरात्मना मया कष्ट कथमेतदनुष्ठितम् ॥

० ० ०

आसीदथानुकूलो मे विद्वान् भ्राता विभीषण।
उपदेष्टा तदा नैव शम दग्ध मनो गतम् ॥
प्रमादाद्विकृर्ति प्राप्त मन समुपदेशत।
प्राय पुण्यवता पुसा वशीभावेऽवतिष्ठते ॥

'पद्मपुराण' मे इन्द्रजित्, मेघवाहन और कुम्भकर्ण छोड दिये जाते है और वे दीक्षा ले लेते हैं, साथ ही मन्दोदरी-चन्द्रनखा आदि भी आर्यिका बन जाती है (पर्व ७८)। राम और लक्ष्मण महावैभव के साथ लका मे प्रवेश करते है। राम के मनोमुग्धकारी रूप को देखकर स्त्रियाँ उनकी परस्पर प्रशसा करती हैं और सीता के सौभाग्य को सराहती है। राम सीता के पास जाकर उनका आलिंगन करते हैं (पर्व ७९)। सीता को साथ लेकर वे हाथी पर आरूढ होकर रावण के महल जाते है। वहाँ शान्तिनाथ-जिनालय मे शान्तिनाथ भगवान् की भक्तिभाव से स्तुति करते है तथा विभीषण एव रावण-परिवार को सान्त्वना देते है। विभीषण अपने घर जाकर अपनी विदग्धा रानी के द्वारा श्रीराम को निमन्त्रित करता है। श्रीराम सपरिवार उसके घर जाते है। विभीषण उनका स्वागत कर भोजन कराता है और उनका अभिषेक करना चाहता है किन्तु वे कहते हैं—'पिता के द्वारा जिसे राज्य प्राप्त हुआ हो ऐसा भरत अभी अयोध्या मे विद्यमान है, उसका अभिषेक होना चाहिए।' राम-लक्ष्मण वनवास के समय विवाहित स्त्रियों को बुला लेते है तथा आनन्द से रहते हुए ६ वर्ष बिता देते हैं। एक दिन नारद के मुख से अपनी माता की दयनीय दशा को सुनकर वे अयोध्या की ओर चलने के लिए उद्यत होते हैं किन्तु विभीषण के विनम्र निवेदन करने पर १६ दिन और रुक जाते हैं। इस बीच मे विभीषण विद्याधर कारीगरो को भेजकर अयोध्यापुरी का नव-निर्माण कराता है, भरपूर रत्नों की वर्षा करता है और विद्याधर दूत भेजकर राम-लक्ष्मण की

ध्व सङ्ग्रामकृतो सार्द्धं सचिवैर्मन्त्रण कृतम् ।
अधुना कीदृशी मैत्री वीरलोकविगर्हिता ।।
योद्धव्य कथ्या चेति द्वयमेतन्निरुध्यते ।
अहो सकटमापन्न प्रक्रान्तोऽहमिद महत् ।।
यद्यर्पयामि पद्माय जानकी कृपयाधुना ।
लोको दुर्ग्रहचित्तोऽय ततो मा वेत्त्यशक्तकम् ।।
यत्र चित्कण्ठोन्मुक्त सुख जीवन्ति निर्धन ।
जीवन्त्यस्मद्विधो दुःख [illegible] ।।
हरितार्क्ष्यसमुन्नद्धौ तौ कृपाऽञ्चौ निरन्तरौ ।
जीवग्राह गृहीतौ न पद्मलक्ष्मणसज्ञौ ।।
पश्चाद्विभवसयुक्तौ पद्मनाभाय मैथिलीम् ।
अर्पयामि न मे पाप तदा [illegible] ।।
महाल्लोकापवादश्च [illegible] ।
न जायते करोम्येव ततो [illegible] ।।

([illegible])

कुशल-वार्ता भरत के पास भेजता है। १६ दिन वाद राम-लदमण-सीता अयोध्या आते है (पर्व ८०-८२)।

अयोध्या प्रत्यावर्तन के वाद का कथानक इस प्रकार है —राम-लक्ष्मण अपार वैभव का उपभोग करते है। इधर भरत यद्यपि १५० स्त्रियो के स्वामी है और भोगोपभोग से परिपूर्ण है तथापि वे ससार से विरक्त रहते है। वे राम वनवास से पूर्व ही दीक्षा-जिघृक्षु थे किन्तु दीक्षा न ले सके, अव वे ससार की प्रत्येक वस्तु के प्रति निर्वेद धारण कर लेते है और सब के निषेध करने पर भी दीक्षा के लिये सन्नद्ध है। केकया के रुदन और राम-लक्ष्मण-भरत की स्त्रियो के विविध आकर्षण-मय कृत्य उन्हे नही रोक पाते। इसी बीच त्रिलोकमण्डन हाथी विगडकर नगर मे उपद्रव करता है, प्रयत्न करने पर भी वह शान्त नही होता किन्तु भरत के दर्शन कर वह शान्त हो जाता है (पर्व ८३)। त्रिलोकमण्डन हाथी को राम वश मे कर लेते है। सीता और विशल्या के साथ उस हाथी पर आरूढ हो भरत राजमहल मे प्रवेश करते है उसके क्षुब्ध होने से नगर में जो क्षोभ फैल गया था वह दूर हो जाता है। चार दिन वाद महावत आकर राम-लक्ष्मण के सामने त्रिलोक-मण्डन की दु खमय दशा का वर्णन करते है और कहते है कि हाथी चार दिन से कुछ खा-पी नही रहा है (पर्व ८४)।

अयोध्या मे देशभूषण-कुलभूषण केवली का आगमन होता है। सर्वत्र आनन्द छा जाता है। सब लोग वन्दना के लिये जाते है। केवली धर्मोपदेश देते है। लक्ष्मण प्रसग पाकर त्रिलोक-मण्डन हाथी के क्षुब्ध होने, शान्त होने तथा आहार-पानी छोडने के विषय मे प्रश्न करते है जिसके उत्तर मे केवली विस्तार से हाथी और भरत के पूर्व भवो का वर्णन करते है, जिन्हे सुनकर भरत का वैराग्य और उमड पडता है और वे उन्ही केवली के पास दीक्षा ले लेते है। भरत के अनुराग से प्रेरित होकर एक हजार से अधिक राजा दिगम्बर दीक्षा धारण कर लेते है। भरत के निष्क्रान्त होने पर माता केकया भी तीन सौ स्त्रियों के साथ आर्यिका की दीक्षा ले लेती है। त्रिलोकमण्डन हाथी समाधि धारण कर ब्रह्मोत्तर स्वर्ग मे देव होता है और भरत मुनि अष्ट कर्मो का क्षय करके निर्वाण प्राप्त करते है (पर्व ८५-८७)। सब लोग भरत की स्तुति करतेहै। समस्त राजा लोग राम-लक्ष्मण का राज्याभिषेक करते है। राज्याभिषेक के अनन्तर राम-लक्ष्मण अन्य राजाओ के लिए देशो का विभाग करते हैं (पर्व ८८)।

राम और लक्ष्मण शत्रुघ्न से अभीष्ट देश के ग्रहण के विषय मे कहते हैं। शत्रुघ्न मथुरा लेने की इच्छा प्रकट करता है। इस पर राम-लक्ष्मण वहाँ के राजा मधुसुन्दर की वलवत्ता का वर्णन कर उसे और कोई देश लेने की प्रेरणा देते है

परन्तु वह नही मानता। राम-लक्ष्मण वडी सेना के साथ उसे मथुरा की ओर रवाना करते हैं। वहाँ जाने पर उसका मधु से भीषण युद्ध होता है। अन्त मे हाथी पर बैठा-बठा मधु घायल अवस्था मे ही विरक्त होकर केश उखाड कर दीक्षा ले लेता है। शत्रुघ्न यह दृश्य देखकर उसके चरणो मे गिर कर क्षमा माँगता है। वाद मे शत्रुघ्न राजा वनता है (पर्व ८६)। शूलरत्न से मधु के वध के समाचार से कुपित होकर चमरेन्द्र मथुरा नगरी मे महामारी फैलाता है। कुलदेवता की प्रेरणा पाकर शत्रुघ्न अयोध्या चला जाता है (पर्व ९०)। उसके मथुरानुराग के सम्वन्ध मे पूर्वभव की कथा कही जाती है (पर्व ९१)।

इसके वाद सेठ अर्हद्दत्त की कथा एव सप्तर्षि मुनियो के सीता के घर आहार होने का वृत्तान्त (पर्व ९२), राम-लक्ष्मण के लिए क्रमश श्रीदामा-मनोरमा कन्याओ की प्राप्ति का वृत्तान्त (पर्व ९३), राम-लक्ष्मण का अनेक राजाओ को वश मे करने का वर्णन तथा लक्ष्मण की अनेक स्त्रियो और पुरुषो का वर्णन होता है (पर्व ९४)।

एक दिन सीता स्वप्न मे देखती है कि दो अष्टापद उसके मुख मे प्रविष्ट हुए है और वह पुष्पक विमान से नीचे गिर रही है। राम स्वप्नो का फल सुनाकर उसे सन्तुष्ट करते है तथा द्वितीय स्वप्न को कुछ अनिष्ट जान उसकी शान्ति के लिये मन्दिरो मे जिनेन्द्र भगवान् का पूजन कराते है। सीता को जिन-मन्दिरो की वन्दना का दोहद उत्पन्न होता है और राम उसकी पूर्ति के लिए सजे हुए मन्दिरो मे जिन-वन्दन करते है। वसन्तोत्सव मनाये जाते हैं (पर्व ९५)।

श्री राम महेन्द्रोदय उद्यान मे स्थित है। प्रजा के कुछ चुने हुए लोग उनसे कुछ प्रार्थना करने के लिये आते है किन्तु उन्हे कुछ कहने का साहस नही होता। दाहिनी आँख फडकने से सीता मन ही मन दुःखी होती है। सखियो के कहने से वह किसी तरह शान्त हो मन्दिर मे शान्तिकर्म करती है। इधर साहस इकट्ठा करके प्रजा के प्रमुख लोग श्री राम से सीता-विषयक-लोक-निन्दा का वर्णन करते है।[१६१] खिन्न राम लक्ष्मण को बुलाकर सीता के अपवाद का समाचार सुनाते है।

---

१६१ विज्ञाप्य श्रूयता नाथ ! पद्मनाभ नरोत्तम।
प्रजाऽधुनाऽखिला जाता मर्यादारहिताधिका॥
स्वभावादेव लोकोऽय महाकुटिलमानस।
प्रकट प्राप्य दृष्टान्त न किञ्चित्तस्य दुष्करम्॥
परम चापल धत्ते निसर्गेण प्लवगम।
किमग पुनरारुह्य चपल यन्त्रपञ्जरम्॥
तरुण्यो रूपसम्पन्ना पुसामल्पवलात्मनाम्।
ह्रियन्ते वलिभिश्छिद्रै पापचित्तै प्रसह्य च॥

लक्ष्मण सुनते ही आग-बबूला हो जाते है और दुष्टों को नष्ट करने के लिए कटिबद्ध हो जाते है। वे सीता के शील की प्रशसा कर राम के चित्त को प्रसन्न करना चाहते है परन्तु राम लोकापवाद के भय से सीता को कृतान्तवक्त्र सेनापति के द्वारा जिन-मन्दिरो के दर्शन के बहाने से वन मे भेज देते हैं। गगा के उस पार जाकर दु खी कृतान्तवक्त्र सीता को राम का आदेश सुनाता है। सीता वज्रताडित-सी मूर्च्छित हो पृथ्वी पर गिर पडती है और सचेत होने पर राम को सन्देश भिजवाती है कि जैसे आपने मुझे छोड दिया है वैसे जैन धर्म को मत छोड देना।[१६२] वह मूर्च्छित हो जाती है। सेनापति लौट जाता है। उसी समय पुण्डरीकपुर का स्वामी राजा वज्रजघ सेना सहित उधर से सीता का विलाप सुनकर उसे धर्म-बहिन मान कर पुण्डरीकपुर ले जाता है और बडी विनय और श्रद्धा के साथ सीता को अपने यहाँ रखता है। इधर कृतान्तवक्त्र लौटकर श्री राम को सीता का सन्देश सुनाता है। वन की भीषणता और सीता की गर्भदशा का विचार कर राम बहुत दु खी होते हैं। लक्ष्मण उन्हे समझाते हैं (पर्व ९६-९९)।

वज्रजघ के राजमहल में सीता अनगलवण और मदनाकुश नामक दो पुत्रो को उत्पन्न करती है। इन पुण्यशाली पुत्रो की पुण्यमहिमा से राजा वज्रजघ का वैभव निरन्तर बढता रहता है। सिद्धार्थ नामक क्षुल्लक दोनो को विद्या ग्रहण कराता है (पर्व १००)। विवाह के योग्य अवस्था होने पर राजा वज्रजघ अपनी

प्राप्तदु खा प्रिया साध्वी विरहात्यन्तदु खित ।
कश्चित्सहायमासाद्य पुनरानयते गृहम् ॥
प्रलीनधर्ममर्यादा यावन्नश्यति नावनि ।
उपायश्चिन्त्यता तावत्प्रजाना हितकाम्यया ॥
राजा मनुष्यलोकेऽस्मिन्नधुना त्व यदा प्रजा ।
न पासि विधिना नाशमिमा यान्ति तदा ध्रुवम् ॥
नद्युद्यानसभाग्रामप्रपाध्वपुरवेश्मसु ।
अवर्णवादमेक ते मुक्त्वा नान्यास्ति सकथा ॥
स तु दाशरथी राम सर्वशास्त्रविशारद ।
हृता विद्याधरेशेन जानकी पुनरानयत् ॥
तत्र नून न दोषोऽस्ति कश्चिदप्येवमाश्रिते ।
व्यवहारेऽपि विद्वास प्रमाण जगत· परम् ॥
कि च यादृशमुर्वीश कर्मयोग निषेवते ।
स एव सहतेऽस्माकमपि नाथानुवर्तिनाम् ॥
एव प्रदुष्टचित्तस्य वदमानस्य भूतले ।
निरकुशस्य लोकस्य काकुत्स्थ ! कुरु निग्रहम् ॥" (पद्म० ९६।४०-५१)

१६२ सीता के इस मार्मिक सन्देश के लिए देखिए—(पद्मपुराण ९७।११६-१३३)

लक्ष्मी रानी से उत्पन्न शशिचूला आदि ३२ पुत्रियाँ लवण को देने का निश्चय करता है और अकुश के लिए योग्य पत्नी की खोज मे लग जाता है। बहुत विचार करने के पश्चात् वह पृथ्वीपुर के राजा पृथु की अमृतवती रानी के गर्भ से उत्पन्न कनकमाला नाम की पुत्री के लिए अपना दूत भेजता है परन्तु पृथु इस प्रस्ताव को अस्वीकृत कर उसका अपमान करता है जिससे क्रुद्ध होकर वज्रजघ उसका देश उजाडने लगता है। जब तक पृथु अपनी सहायता के लिए पोदन देश के राजा को बुलाता है तब तक वज्रजघ अपने पुत्रो को बुला लेता है। दोनो ओर से घनघोर युद्ध होता है जिसमे वज्रजघ विजयी होता है। राजा पृथु अपनी पुत्री कनकमाला अकुश के लिए देता है। विवाह के बाद दोनो वीर कुमार दिग्विजय कर अनेक राजाओ को अपने अधीन करते है (पर्व १०१)।

एक दिन प्रसगवश नारद लवण-अकुश को राम-लक्ष्मण का परिचय देता है तथा उनके पत्नी-त्याग तक की कथा सुनाता है। गर्भिणी स्त्री का त्याग कुमारो को ठीक नही जँचता और वे राम से युद्ध करने का सकल्प कर लेते हैं। इसी बीच सीता अपनी सब कथा पुत्रो को सुनाती है तथा उनसे कहती है कि तुम लोग अपने पिता-चाचा से नम्रतापूर्वक मिलो परन्तु कुमारो को यह दीनता रुचिकर नही होती और वे सेनासहित जाकर अयोध्या को घेर लेते है। राम लक्ष्मण से उनका घनघोर युद्ध होता है।[१६३] राम-लक्ष्मण अमोघ शस्त्रो का प्रयोग करके भी जब दोनो कुमारो को नही जीत पाते तब नारद की सम्मति से सिद्धार्थ क्षुल्लक उनके सम्मुख कुमारो का रहस्य प्रकट करता हुआ कहता है कि ये आपके ही युगल पुत्र हैं जो सीता के गर्भ से उत्पन्न हुए हैं जिसे सुनते ही राम-लक्ष्मण शस्त्र फेंक देते है तथा पिता-पुत्रो का मिलन होता है (पर्व १०२-१०३)।

हनूमान्, सुग्रीव तथा विभीषण की प्रार्थना पर राम सीता को इस शर्त पर बुलाना स्वीकृत कर लेते हैं कि वह देश-विदेश के समस्त लोगो के समक्ष अपनी निर्दोषता शपथ द्वारा सिद्ध करे। सीता की अग्नि-परीक्षा होती है, उसमे वह सफल होती है, अग्निकुण्ड जलपूर्ण वापिका हो जाता है। महेन्द्रोदय उद्यान मे सर्वभूषण मुनिराज के ध्यान और उपसर्ग का वृत्तान्त आता है। सीता की अग्नि-परीक्षा की सफलता पर राम अपने अपराध की क्षमा माँगकर घर चलने के लिए कहते है किन्तु सीता ससार से विरक्त हो चुकी है, इसलिए वह घर न जाकर पृथिवीमती आर्यिका के पास दीक्षा ले लेती है। राम सर्वभूषण केवली के पास जाकर धर्मश्रवण करके पूछते है कि क्या मै भव्य हूँ? इसके उत्तर मे केवली ने

---

१६३ इस युद्ध मे हनूमान् 'लागूल' नामक अस्त्र लेकर लवणाकुश के पक्ष से लडते है।

कहा कि तुम भव्य हो और इसी भव से मोक्ष प्राप्त करोगे (पर्व १०४-१०५)। विभीषण के द्वारा पूछने पर केवली द्वारा राम-लक्ष्मण और सीता के भवान्तरो का वर्णन होता है (पर्व १०६)।

ससार-भ्रमण से विरक्त होकर कृतान्तवक्त्र सेनापति राम से दीक्षा लेने की आज्ञा माँगता है। राम उसे दीक्षा की कठिनता बताते है तथा कहते है कि यदि तुम निर्वाण प्राप्त कर सको और देव होओ तो मोह मे पडे हुए मुझको सम्बोधना न भूलना। सेनापति राम का आदेश पाकर दीक्षा ले लेता है। सर्वभूषण केवली का जब विहार हो गया तब राम सीता के पास जाकर कठिन तपश्चर्या पर आश्चर्य प्रकट करते है (पर्व १०७)। श्रेणिक के प्रश्न करने पर इन्द्रभूति गणधर सीता के दोनो पुत्रो लवण और अंकुश के चरित्र का कथन करते है। (पर्व १०८)। सीता बासठ वर्ष तपकर अन्त मे तैंतीस दिन की सल्लेखना धारण कर अच्युत स्वर्ग में प्रतीन्द्र हो जाती है। अच्युत स्वर्ग के तत्कालीन इन्द्र राजा मधु का वर्णन होता है (पर्व १०९)।

काञ्चनस्थान नगर के राजा काञ्चनरथ की दो पुत्रियो—मन्दाकिनी और चन्द्रभाग्या ने जब स्वयवर मे क्रमश. अनगलवण और मदनाकुश को वर लिया तब लक्ष्मण के पुत्र उत्तेजित होते हैं परन्तु लक्ष्मण की आठ पट्टरानियो के आठ प्रमुख पुत्र उन्हे समझाकर शान्त कर देते है और स्वय ससार से विरक्त होकर दीक्षा धारण कर लेते है (पर्व ११०)। वज्रपात से भामण्डल की मृत्यु हो जाती है (पर्व १११)। हनूमान् आकाश में विलीन होती हुई उल्का को देखकर विरक्त हो जाता है और धर्मरत्न मुनिराज के पास दीक्षा धारण कर लेता है। अन्त मे वह निर्वाणगिरि पर्वत पर मोक्ष प्राप्त करता है (पर्व ११२-११३)। लक्ष्मण के आठ कुमारो और हनूमान् की दीक्षा का समाचार सुनकर यह कहते हुए श्रीराम हँसते हैं कि अरे इन लोगो ने क्या भोग भोगा ? सौधर्मेन्द्र अपनी सभा मे स्थित देवो को धर्म का उपदेश देता हुआ कहता है कि सब बन्धनो मे स्नेह का बन्धन है, इसका टूटना सरल नही (पर्व ११४)। राम और लक्ष्मण के स्नेह बन्धन की परख करने के लिए स्वर्ग से दो देव अयोध्या आते है और विक्रिया से झूठा रुदन दिखाकर लक्ष्मण से कहते है कि 'राम की मृत्यु हो गयी है' यह सुनते ही लक्ष्मण का शरीर निष्प्राण हो जाता है। अन्तपुर मे हाहाकार छा जाता है। राम दौडे हुए आते है किन्तु लक्ष्मण के निर्गत प्राण नही लौटते। देव अपनी करतूत पर पछताते है और वापिस चले जाते है। इस घटना से लवणाकुश भी विरक्त होकर दीक्षा ले लेते है (पर्व ११५)। लक्ष्मण के निष्प्राण शरीर को राम गोदी मे लिये फिरते है और पागल की भाँति करुण विलाप करते है (पर्व ११६)। लक्ष्मण के मरण का समा-

चार सुनकर सुग्रीव तथा विभीषणादि अयोध्या आते है और ससार की स्थिति का वर्णन करते हुए राम को समझाते है (पर्व ११७)। वे लक्ष्मण का दाहसंस्कार करने की प्रेरणा देते है परन्तु राम उनसे कुपित हो लक्ष्मण के शव को लेकर अन्यत्र चले जाते है तथा उसे नहलाते है, भोजन कराने का प्रयत्न करते है और चन्दनादि के लेप से अलकृत करते है। इसी दशा मे दक्षिण के कुछ विरोधी राजा अयोध्या पर आक्रमण की सलाह कर भारी सेना लेकर आ पहुँचते है परन्तु राम के पूर्वभव के स्नेही कृतान्तवक्त्र सेनापति और जटायु के जीव, जो स्वर्ग मे देव हुए थे आकर इस उपद्रव को नष्ट कर देते है, वे शत्रुजन्य उपद्रव को दूर कर नाना उपायो से राम को सम्बोधते हैं जिससे राम छ मास बाद लक्ष्मण का दाह-सस्कार करते है (पर्व ११८)। राम ससार से विरक्त होकर शत्रुघ्न को राज्य देना चाहते है किन्तु वह लेने से निषेध कर देता है। तब सीता के पुत्र अनगलवण को राज्यभार सौपकर वे निर्ग्रन्थ-दीक्षा धारण कर लेते हैं। इसी समय विभीषण आदि भी अपने पुत्रो को राज्य देकर दीक्षा धारण कर लेते है (पर्व ११९)।

महामुनि राम चर्या के लिये नगरी मे आते है किन्तु वहाँ अद्भुत प्रकार का क्षोभ हो जाने से वे विना आहार किये ही वन को लौट जाते है (पर्व १२०)। वे पाँच दिन का उपवास लेकर यह नियम लेते है कि यदि वन मे आहार मिलेगा तो लेंगे अन्यथा नही। राजा प्रतिनन्दी और रानी प्रभवा वन मे ही उन्हे आहार देकर अपना गृहस्थ जीवन सफल करते है (पर्व १२१)।

राम तपश्चर्या मे लीन हैं। सीता का जीव अच्युत स्वर्ग का प्रतीन्द्र जब अवधिज्ञान से यह जानता है कि ये इसी भव से मोक्ष को जाने वाले है तो उन्हे विचलित करने का प्रयत्न करता है परन्तु उसका सब प्रयत्न व्यर्थ हो जाता है। महामुनि राम क्षपक श्रेणी प्राप्त कर केवली हो जाते है (पर्व १२२)।

सीता का जीव नरक मे जाकर लक्ष्मण के जीवको सम्बोधता है, धर्मोपदेश देता है, उसके दु ख से दु खी होता है तथा उसे नरक से निकालने का प्रयत्न करता है परन्तु सब प्रयत्न व्यर्थ हो जाता है। नरक से निकलकर सीतेन्द्र राम केवली की शरण मे जाता है और उनसे दशरथ का जीव कहाँ उत्पन्न हुआ है? भामण्डल का क्या हाल है? लक्ष्मण तथा रावणादि का आगे क्या हाल होगा?—इत्यादि प्रश्न पूछता है। राम केवली अपनी दिव्य ध्वनि के द्वारा उसका समाधान करते है।[१६४] अन्त मे राम केवली निर्वाण प्राप्त करते है (पर्व १२३)।

---

१६४ रावणादि के भावी जन्मो का कथन इस प्रकार है—

भविष्यत स्वकर्माभ्युदयौ रावणलक्ष्मणौ।
तृतीयनरकादेत्य अनुपूर्वाच्च मन्दरात्॥

इस प्रकार पद्मपुराण की विषयवस्तु का उपसंहार करते हुए अन्त मे रविषेण ग्रन्थमाहात्म्य और अपनी प्रशस्ति देते है।

शृणु सीतेन्द्र निर्जित्य दुःख नरकसम्भवम्।
नगर्यां विजयावत्यां मनुष्यत्वेन चाप्स्यते ॥
गृहिण्यां रोहिणीनाम्न्यां सुनन्दस्य कुटुम्बिनः।
सम्यग्दृष्टे प्रियौ पुत्रौ क्रमेणैतौ भविष्यतः ॥
अर्हद्दासर्षिदासाख्यौ वेदितव्यौ च सद्गुणैः।
अत्यन्तमहचेतस्कौ श्लाघनीयक्रियापरौ ॥
गृहस्थविधिनाभ्यर्च्य देवदेवं जिनेश्वरम्।
अणुव्रतधरौ काले सुग्रीवाणौ भविष्यतः ॥
पञ्चेन्द्रियसुखं तत्र चिरं प्राप्य मनोहरम्।
च्युत्वा भूयश्च तत्रैव जनिष्येते महाकुले ॥
सद्दानेन हरिक्षेत्रं प्राप्य च त्रिदिवं गतौ।
प्रच्युतौ पुरि तत्रैव नृपपुत्रौ भविष्यतः ॥
तातः कुमारकीर्त्याख्यो लक्ष्मीस्तु जननी तयोः।
वीरौ कुमारकावेतौ जयकान्तजयप्रभौ ॥
ततः परं तपः कृत्वा लान्तवं कल्पमाश्रितौ।
विबुधोत्तमतां गत्वा भोक्ष्येते तद्भवं सुखम् ॥
त्वमत्र भरतक्षेत्रे च्युतः सन्नारणाच्युतात्।
सर्वरत्नपतिः श्रीमान् चक्रवर्ती भविष्यति ॥
तौ च स्वर्गच्युतौ देवौ पुण्यनिस्यन्दतेजसा।
इन्द्राम्भोदरथाभिख्यौ तव पुत्रौ भविष्यतः ॥
आसीत्प्रीतिरिपुर्योऽसौ दशवक्त्रो महाबलः।
येनेमे भारते वास्ये त्रयः खण्डा वशीकृताः ॥
न कामयेत्परस्य स्त्रीमकामामिति निश्चयः।
अपि जीवितमत्याक्षीत्तत्सत्यमनुपालयन् ॥
सोऽयमिन्द्ररथाभिख्यो भूत्वा धर्मपरायणः।
प्राप्य श्रेष्ठान् भवान् काश्चित्तिर्यङ्नरकवर्जितान् ॥
स मानुष्यं समासाद्य दुर्लभं सर्वदेहिनाम्।
तीर्थकृत्कर्मसङ्घातमर्जयिष्यति पुण्यवान् ॥
ततोऽनुक्रमतः पूजामवाप्य भुवनत्रयात्।
मोहादिशत्रुसघातं निहत्यार्हंतमाप्स्यति ॥
रत्नस्थलपुरे कृत्वा राज्यं चक्ररथस्त्वसौ।
वैजयन्तेऽहमिन्द्रत्वमवाप्स्यति तपोबलात् ॥
स त्वं तस्य जिनेन्द्रस्य प्रच्युतः स्वर्गलोकतः।
आद्यो गणधरः श्रीमानृद्धिप्राप्तो भविष्यति ॥

आलोचना :

उपर्युक्त विवेचन से 'पद्मपुराण' की विपयवस्तु का स्वरूप स्पष्ट हो चुका है। अष्टम वलभद्र-राम के चरित्र को वर्णित करके रविपेण जैनधर्म की भावनाओ को पाठको तक पहुँचाने का प्रयत्न करते है। अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिये कवि ने विषयवस्तु की अपनी प्रतिभानुसार योजना की है।

अव हम पद्मपुराण की प्रवन्धात्मकता पर किञ्चत् विचार करेंगे। प्रवन्धात्मकता परखने के लिए (१) कथानक के प्रारम्भ, (२) कथानक-गति के हेतु मार्मिक स्थल, चलते वर्णन, अरोचक वर्णनो के त्याग, अप्रिय प्रसगो की स्थिति, निरर्थक आवृत्ति से वचाव, प्रासगिक कथाओ की सगति एव उपाख्यानो तथा (३) उपसहार पर विचार करना होता है। हम इसी निकपग्रावा पर 'पद्मपुराण' की परीक्षा करने का प्रयत्न करेगे।

'पद्मपुराण' की विषयवस्तु का आरम्भ पौराणिक ढग के आख्यानो को लेकर हुआ है। आधिकारिक कथा-राम की कथा—तो वहुत वाद मे आती है। १ से २० पर्व तक तो ऐसा प्रतीत होता है कि 'पद्मपुराण' न पढकर हम 'रावण-पुराण' ही पड रहे हो। वानर-राक्षस वश के परिचय के समय चौसठ-चौसठ राजाओ की नामावलियाँ मुख्य कथा तक पहुँचने मे एक अडचन सी डालती हैं।

कथानक की गति का जहाँ तक प्रश्न है, 'पद्मपुराण' का कथानक अधिक गतिशील नही है। मार्मिक प्रसगो की पहिचान कवि को है। उसने अपनी कथा के अनुसार धनुपोत्सव, अनेक स्थलो पर तरुणो को देख कर नारियो के भावालाप, वनगमन करते राम-लक्ष्मण को देखकर तरुणियो की विह्वलता, सीता-हरण पर राम विलाप, अञ्जना-पवनञ्जय-वियोग, राम-लक्ष्मण-प्रेम, लवणाकुश-युद्ध, सीता का राम को सदेश एव सीता की तपस्या आदि अनेक मार्मिक प्रसगो को ध्यान मे रखा

तत परमनिर्वाण यास्यसीत्यमरेश्वर ।
श्रुत्वा ययौ परा तुष्टि भावितेनान्तरात्मना ॥
अय तु लाक्ष्मणो भाव सर्वज्ञेन निवेदित ।
अम्भोदरथनामासौ भूत्वा चक्रधरात्मज ॥
चारून् काश्चिद्भवान् भ्रान्त्वा धर्ममगलचेष्टित ।
विदेहे पुष्करद्वीपे शतपत्राह्वये पुरे ॥
लक्ष्मण स्वोचिते काले प्राप्य जन्माभिपेचनम् ।
चक्रपाणित्वमर्हत्त्व लब्ध्वा निर्वाणमेष्यति ॥
सम्पूर्णै सप्तभिश्चाब्दैरहमप्यपुनर्भव ।
गमिष्यामि गता यत्र साधवो भरतादय ॥"

(पद्मपुराण, १२३।११४-१३४)

है। यहाँ उनके उदाहरण देना स्थान स्थगन मात्र होगा।

चलते वर्णनो की दृष्टि से भी पद्मपुराण की समीक्षा कर ली जाये। 'पद्म-पुराण' एक विशालकाय ग्रन्थ होने के कारण प्रत्येक वात का सागोपाग वर्णन देता है, राम से मिलने के वाद भरत के लौटने आदि के वर्णन मे यद्यपि रविषेण ने दो-पक्तियो से ही काम चला लिया है यथा—

"तौ विधाय यथायोग्यमुपचार ससीतयो.।
रामलक्ष्मणयोर्यातौ मातापुत्री यथागतम् ॥"

तथापि अधिकाश वर्णन उसने लम्बे ही किये है। रविषेण को तो जरा कोई वात कहने का अवसर मिलना चाहिए, वस फिर लीजिये सागोपाग वर्णन।

अरोचक वर्णनो के त्याग मे भी प्राय कवि जागरूक है। उन वर्णनो को प्राय. उसने नही किया है, जिनमे पाठक की उत्सुकता नष्ट हो। इसीलिये वर्णनो के आरोह विस्तृत है और अवरोह अत्यन्त सक्षिप्त यथा—रावण की अनेक राजाओं पर विस्तृत चढाई एव सक्षिप्त प्रत्यावर्तन आदि।

निरर्थक आवृत्ति से आत्यन्तिक वचाव 'पद्मपुराण' मे नही हो सका है। दो-तीन वार तो 'रामकथा' का विवरणात्मक परिचय है, यथा—हनूमान् द्वारा सीता के समक्ष एव नारद द्वारा लवकुश के समक्ष।

प्रासगिक कथाओ की सगति का कवि ने पूर्ण प्रयत्न किया है। 'पद्मपुराण' मे सुग्रीव और हनूमान् की कथा प्रासागिक मानी जा सकती है। यह कथा आधि-कारिक कथा के साथ अन्त तक चलती है। सुग्रीव और हनूमान् अन्त तक राम के मित्र, सेवक और सहायक वने रहते है। सुग्रीव को राज्यप्राप्ति और स्त्री-प्राप्ति होती है एव हनूमान् को पत्नी-राज्य-सम्मान-प्राप्ति।

पौराणिक काव्यो मे उपाख्यान पर्याप्त मात्रा मे समाविष्ट रहते है। इनका कही कथा से सीधा सम्वन्ध होता है और कही परम्परा से। इनका अभिप्राय कुछ न कुछ अवश्य होता है। हमारे आलोच्य ग्रथ मे अनेक उपाख्यान आये है। उपाख्यान, योजना का उत्कर्षापकर्षत्व उसकी रोचकता और कथासम्वद्धता से ही आँका जाता है। 'पद्मपुराण' मे अनेक उपाख्यान आये है। जैन-धर्म-सम्वन्धी जितने भी प्रसिद्ध आख्यान-उपाख्यान है—प्राय उन सभी का उल्लेख इसमे हुआ है। इसे धार्मिक जैन उपाख्यानो का भण्डार कहा जा सकता है। 'स्थिति,' 'वशसमुत्पत्ति,' 'भवोक्ति' और 'परनिर्वृति' नामक अधिकारो मे ये उपाख्यान अधिकत. आते है। पात्रो के पूर्वभवो के वर्णन के समय तो एक मे से एक उपाख्यान उसी प्रकार निक-लता चला जाता है जिस प्रकार कदली के छिलके के अन्दर दूसरा छिलका। अधि-काश उपाख्यान या तो गौतम गणधर ने कहे है या फिर किसी जैन मुनि ने। इन

उपाख्यानो को रविषेण ने अपने 'पद्मपुराण' की एक विशेषता समझा है।[१६५] यहाँ उन सब उपाख्यानो का परिचय देना अनावश्यक विस्तार ही सिद्ध होगा, अत नामोल्लेखमात्र किया जाता है—राजाश्रेणिक-आख्यान, ऋषभजन्म-कथा, मेघवाहनकथा, सगरोपाख्यान, भरत-बाहुबलि-आख्यान, ब्राह्मणोत्पत्ति-कथा, हितकरादि-उपाख्यान, हरिदास-भावनोपाख्यान, चन्द्रावर्त्ति-उपाख्यान, श्रीकण्ठ-वज्रकण्ठ-कथा, अमरप्रभ-कथा, सुयशोदत्त-कथा, किष्किन्ध-अन्ध्रक-कथा, सुकेश-पुत्रो की जन्म-कथा, मालि-इन्द्र-युद्ध-कथा, रत्नश्रवा-केकसी कथा, वैश्रवण-रावण-कथा, हरिषेणोपाख्यान, रावण-वालि-युद्ध-कथा, सहस्ररश्मि-रावण-कथा, उपरम्भा-कथा, इन्द्र-रावण-युद्ध-कथा, अनन्तबल-रावणोपाख्यान, मरुत्वान्-यज्ञ-कथा, पवनजय-अजना-कथा, प्रतिसूर्य-अजना-प्रसग, हनूमान्-वरुण-युद्ध-कथा विभीषण-सागरबुद्धि-उपाख्यान विभीषण नारद-सीतोपाख्यान, दशरथ-केकयोपाख्यान, भामण्डलोपाख्यान, वज्रकर्ण-सिंहोदर-कथा, कूवरनरेश (कल्याणमाला)-कथा, रौद्रभूति-कथा, कपिल-ब्राह्मणोपाख्यान, वनमालोपाख्यान, अतिवीर्योपाख्यान, देश-भूषण-कुलभूषण-कथा, दण्डक-जटायु-कथा, रत्नजटी-कथा, विराधित-कथा, जितपद्मोपाख्यान, शम्बूक-कथा, साहसगति-सुग्रीव-कथा, महेन्द्र-हनूमान्-कथा, दधिमुखद्वीपस्थ-मुनि-उपसर्ग-कथा, लका-सुन्दरी-कथा, गिरि-गोभूति-उपाख्यान, हस्तप्रहस्त-नल-नील-कथा (इन्धक-पल्लवकोपाख्यान), चन्द्रप्रतिमोपाख्यान, द्रोणमेघ-विशल्योपाख्यान, चन्द्र-वर्द्धनविषधरकन्योपाख्यान, अरिंदमोपाख्यान, अनन्तवीर्योपाख्यान, प्रथम-पश्चिमोपाख्यान, नोदन-अभिमानोपाख्यान, अमल-भद्राचार्योपाख्यान, भरतोपाख्यान, त्रिलोकमण्डनशमोपाख्यान, मरीचि-उपाख्यान, सूर्योदय-चन्द्रोदयोपाख्यान, मृदु-मति-उपाख्यान, मधु-सुन्दरोपाख्यान, यमुनदेव-चन्द्रभद्राद्युपाख्यान, अर्हद्दत्तोपाख्यान, मनोरमोपाख्यान, सिद्धार्थक्षुल्लकोपाख्यान, सकलभूषणोपाख्यान, गुणवती-धनदत्तोपाख्यान, पद्मरुचि-श्रीचन्द्र-हेमवती-वेदवती-वसुदत्ताद्युपाख्यान, प्रियकर-हितकरोपाख्यान, अग्निभूति-वायुभूति-उपाख्यान, कृतान्तवक्त्रोपाख्यान एव वज्राकाद्युपाख्यान आदि। ये उपाख्यान कही-कही तो इतने अधिक हैं कि मुख्य-कथा को सँभालना कठिन सा लगता है।

'पद्मपुराण' की विषयवस्तु का निर्वाह 'भवोक्ति' और 'परनिर्वृति' नामक

---

१६५. "एतत्तत्सुसमाहित सुनिपुण दिव्य पवित्राक्षरम्
नानाजन्मसहस्रसचितघनक्लेशौघनिर्णाशिनम् ।
आख्यानैर्विविधैश्चित सुपुरुषव्यापारसकीर्तनम्
भव्याम्भोजपरप्रहर्षजनन सकीर्तित भक्तित ॥

(पद्मपुराण, १२३।१६५)

अधिकारों मे मिलता है। कवि राम-राज्य, राम-लक्ष्मण-प्रेम, सीता-वनवास, लवणाकुश-उत्पत्ति, सीता की अग्नि-परीक्षा, लक्ष्मणमृत्यु, सीता का आर्यिका बनकर तपस्या द्वारा स्त्रीयोनिच्छेद करने और प्रतीन्द्र बनने, लवणाकुशराज्याभिषेक और राम की जिन-दीक्षा आदि का वर्णन करता हुआ उनके केवली होने की सूचना देता है। यद्यपि जैन दृष्टिकोण के अनुसार ही कथा का उपसहार दिखाया गया है तथापि उपसहार है अवश्य। प्रतीन्द्र सीता तो केवली राम से सभी पात्रो का भावी जन्म भी जान लेता है। साथ ही अनेक मुनियो के द्वारा प्राय सभी या प्रमुख पात्रो के पूर्वभव का हमे परिचय मिल जाता है। इस प्रकार 'पद्मपुराण' के कथानक का पूर्ण उपसहार हुआ है।

●

पञ्चम अध्याय

पद्मपुराण के पात्र तथा चरित्र-चित्रण

पीछे हम महाकाव्य और पौराणिक काव्य की विशेषताएँ बताते हुए लिख चुके है कि महाकाव्य मे एक नायक होता है तथा अन्य अनेक पात्र होते हैं। इसी प्रकार पौराणिक काव्यो मे अनेक उपाख्यान होते है जिनमे अनेक पात्रो का होना स्वाभाविक ही है। किसी कथा के नायक मात्र से ही कथा को पूर्णता प्राप्त नही होती। उसके लिए उसे अन्य पात्रो से भी सम्पर्क रखना पड़ता है। यह सम्पर्क कही विरोधात्मक होता है और कही सहायता प्रदान करने वाला। इस प्रकार तीन क्षेत्र हो जाते है—नायक-क्षेत्र, विरोधी-क्षेत्र, एव सहायक-क्षेत्र। इन तीनों क्षेत्रो के प्रधान पात्रो को नायक, प्रतिनायक तथा पीठमर्द कहा जाता है। इनके ही अन्य साथी भी होते है। इस प्रकार अनेक पात्रो का किसी बडे प्रवन्धकाव्य मे होना नैसर्गिक ही है। इन पात्रो का अपना-अपना चरित्र होता है जिसका चित्रण कवि तीन प्रणाणियो से करता है —

१—पात्रो के कार्यो द्वारा,

२—उनके वार्तालाप के द्वारा और

३—लेखक के कथन या व्याख्या द्वारा।

इनमे पहली और दूसरी प्रणाली नाटकीय या परोक्ष एव तीसरी प्रत्यक्ष होती हैं।

'पद्मपुराण' के कथानक मे भी हमारे सम्मुख अनेक पात्र आते है जिनका चित्रण कवि ने यथासमय तीनो पद्धतियो से किया हैं उन्ही पात्रो का विवेचन हमे यहाँ करना है।

'पद्मपुराण' में लम्बा कथानक एव अनेक उपाख्यान होने के कारण पात्रो की संख्या बहुत बढी-चढ़ी है।

इन पात्रो की नामावली इस प्रकार दी जा सकती है .[१६६]

अकम्पन (१५), अग्नि (८०), अग्निशिख (१०, १०२), अग्निकुण्डा (८५), अग्निकेतु (३९, ४१), अग्निरथ (१२), अग्निप्रभ (३९), अग्निला (१०९), अग्निभूति (१०९), अचल (२०, ४१, ७४, ९१), अच्युत (९४), अजितनाथ १, २०, ४३), अतिवीर्य (१, ५, ३७), अतिवल (५, २०), अतिध्वस (५), अतिभीम (६), अतिभूति (३०), अतिविजय (५८), अदिति (७), अनन्तनाथ (१, ९, २०), अनन्तवीर्य (१, २२, ४१, ७६), अनावृत (१, १४), अनुराधा (१, ९), अनुत्तर (५), अनुमति (५, १०), अनिल (५), अनन्तवल (१४), अनगवीचि (१८), अनगपुष्पा अनगकुसुमा (१९, ४६, ४८, ५७), अनरण्य (१, २२, २८, ३०, ३१), अनन्तरथ (२२), अनुकोशा (३०), अनुद्धरा (३९), अनुन्धर (३९), अनुद्धर (५८), अनघ (६०), अनगसेना (६३, ६४), अनगशिरा (६४), अनगसुन्दरी (८७), अनुमति (९६), अनगलवण (१००, ११०) अपराजित (२०), अपराजिता (२५), अपरमुख (९१), अपरग (९१), अप्रतीघात (५८). अब्धिदेव (९१), अनगशरा (६३), अभिमाना (८०), अभिनन्दन (१, ९, २०), अभयकुमार (२), अभयानन्द (२०), अभयसेन (२२), अभयनिनाद (१०५), अभिराम (८५), अमृत (५), अमल (५), अमरविक्रम (५), अमररक्ष (५), अमरप्रभ (६), अम्भोधरध्वनि (६), अगिरस (८), अजना (१, १५, १६, १७), अमरसागर (१५), अमरावती (१०९), अमिताग (२०), अम्बिका (२०), अमृतवती (२२), अमृतवेग (५), अमृतस्वर (३९) अमृतार (२०), अमरा (५१), अगारक (५१), अमलचन्द्र (५५), अमृष्ट (५८), अगद (१०, ४७, ५४, ५८, ६०, ७१, ७४), अकुर (६०), अग (६० १०२), अक (९१), अगिका (९१), अमोघशर (८०), अकुश (मदनाकुश) (१००), अभ्रक (६), अयन (४८), अरनाथ (१, ९, २०, ९८, १०९), अरिष्टनेमि (१), अरिंजय (५), अर (५), अरिमर्दन (५) अरिसन्त्रास (५), अरिसज्वर (१२), अरिंदम (१५, २०, ८७), अरिसूदन (३१), अरविन्दा (३८), अर्ककीर्ति (९), अर्कचूड (५), अर्हच्छ्री (५), अर्हद्भक्ति

---

१६६ कोष्ठक मे पर्वो की सख्या है। कोष्ठाकित पर्व सख्या के अतिरिक्त भी पात्रो के नाम आये हैं किन्तु अपने प्रयोजन की सिद्धि एक ही पर्व की सख्या लिख देने मे भी हो जाती है, अत सभी स्थलो का उल्लेख नही किया है।

(५), अर्हन्त (१०, ६७, ११४), अर्णव (२०, ५४), अर्कमाली (४६), अर्धचन्द्र (५८), अजित (६०), अर्क (६०), अर्जुनवृक्ष (६४), अर्कमुख (६१) अर्हद्दास (११६), अर्हद्दत्त (९२), अनक (८८), अवद्वार (६३), अनन्तवेग (१, ६), अश्ववर्मा (५), अश्वायु (५), अश्वध्वज (५), अश्विनीकुमार (७), अशोकलता (८), अष्टचन्द्र विद्याधर (९), अष्टापद (१७), अश्वसेन (२०), अश्वग्रीव (२०), अशोकदत्त (८५), अशोक (१२३), अश्विनी (४६),

आकाशगामी मुनिराज (६), आकाशध्वज (१२), आक्रोश (६०), आनन्दी (५), आत्मश्रेय (४८), आदित्यगति (५), आदित्ययशा (५), आदिनाथ (८५), आनन्द (६ २०, ७३), आनन्दमाल (१३), आनन्दवती (२०), आनन्दा (७७), आन्तरगतम (२७), आर्यगुप्त (२६), आवलि (५), आवली (६), आहल्या (१३),

इन्द्र (५, ७, ६, ६६, ७८, १२३), इन्द्रकेतु (२८), इन्द्रगिरि (२१), इन्द्रजित् (५, ८, ६५, ७८, ११८), इन्द्राणी (६, ८, ३६), इन्द्रदत्त (६१), इन्द्रदत्ता (६१), इन्द्रध्वज (८८), इन्द्रद्युम्न (५), इन्द्रनगर (८), इन्द्रप्रभ (५), इद्रप्रचण्ड (५५), इन्द्रमत (६), इन्द्रमुख (६१), इन्द्रमालिनी (११), इन्द्रायुध (वज्र)प्रभ (६), इन्द्रद्युति (१), इन्द्रायुध (५८), इन्द्ररेखा (५), इन्द्रवज्र (६२, ७०), इन्धक (५६), इभकर्ण (३५), इभवज्र (५५), इभवाहन (२१), इलावर्धन (२१), ईशान (७३), इषु (२५),

उग्र (१२, ६० ७३), उग्रनक (८ क्रूरनक), उग्रनाद (५७), उग्रश्री (६५), उग्रमुख (६१), उडुपालन (५), उनद (५), उत्तरस्वामी (१), उत्पलमती (५), उत्तम (५७), उद्भव (१२), उदयसुन्दर (२१), उदयाचल (५), उदित (५, ३६), उदितपराक्रम (५), उद्दामा (५७), उद्यान (६०) उपरम्भा (१, २), उपमन्यु (३१), उपयोगा (३६), उपाहित (३१), उर्व-(७८), उर्वशी (७, २६, ७७), उल्का (५४) ऊर्जित (५८, ११४), ऊर्मि-रग (७४), ऊरी (३०),

एकचूट (५), ऐन्द्री (८३), ऐर (२४), ऐरावर्णा (३०), ऐरावती (३०), ऋक्षरज (७, ८, ९), ऋषभ (२०), [illegible] (१२३), कनक (२८), कर्णोद (३२), कटक (३२), कदम्ब (५७), कनक (२८, ५८, ८, १२, ६८), कनक-माला (१०१), कनकप्रभ (१०६), कनकद्युति (१५), कनकाभ (३०), कनका-वली (६), कनकाभा (२२, ७७), कनकोदरी (१७), कमलकान्ता (३०), कमलगर्भ (५४), कमलबन्धु (२२), कमला (५४) कमलसंकुला (३६), कमलो-त्सव (३६), कमलानना (७७), कल्याण (३०), कल्पम (३७) कल्याणी (८३),

कलिंग (१०२), कल्याण (१३), कल्याणमाला (८३), कल्याणमाला (६४, ३४) कशिपु (१०८), कर्षक (३६), काचनरथ (११०), काचनाभा (३६), कार्तवीर्य (२०), कान्त (५८), कान्ता (५), कान्ता (८३), कान्ति (७७), काम (५७, ६२), कामलता (३३), कामराशि (५७), कामाग्नि (५७), कामावर्त (५७), काल (५५), काल (५८), कालि (५८), कालचक्र (७४), कालाग्नि (७), किंपुरुष (१३), किष्किन्ध (६, ७, ६३), किष्किन्धाधिपति (१०), किंसूर्य (७), कीर्ति (३, ६४), कीर्तिधर (१), कीर्तिधवल (५, ६) कीर्तिसभा (२१), कीर्तिधर (२२) कीर्तिमान् (२२) कील (५८), कुणिम (२१), कुण्ड (५४, ५७), कुण्डलमण्डित (२६, ३०), कुन्थुनाथ (१, ५, २०, ६), कुन्थुभक्ति (२२), कुवेर (७, ७३), कुदर (८८), कुबेरकान्त (१४), कुबेरदत्त (२२), कुम्म (२०, ५७), कुमुद (५४), कुमुदावर्त (५८), कुमार-सिंह (७०), कुम्भकर्ण (७८), कुमारकीत (१२३), कुरुविन्दा (५५), कुल-वान्ता (१३), कुलन्धर (५), कुल-भूषण (३६, ६१, ८५), कुलकर (८५), कुशसेन (२०), कूट (५), कूर्मि (११), केकसी (१, ६) केकयी (७), केकया (२४), केतुमती (१५, १७), केलीकिल (५४), केवन्नी (५, ३६, ४०, १०५), केशरी (१२), केसरी (३७), कैकयी (२, २०, २२) कैटभ (१०६), कैन्नर-गीत (१६), केशिनी (२०) कोण (५८), क्रूरकर्मा (४५), क्रूर (५४), क्रूरामर (५), क्रोधनध्वनि (५७), कोल (१०), कोलकम्प (८), कोलाहल (५८, ६०) कौवेरी (८३), कौमुदीनदन (५८), कृतचित्रा (११), कृतवर्मा (२०), कृतान्त (६२), कृतान्त्रवक्त्र (८६), कृति (११४), कृष्ण (२०),

खेचरभानु (६), खरदूषण (१, ८, ४४), खरनाद (५७),

गगदेव (२०), गगनानद (६), गगनचन्द, (६), गगनोज्ज्वल (१२), गज (५७) गजस्वन (५४), गगाधर (८), गतभ्रम (५), गतत्रास (५८), गणभृत् (६), गणमाला (५४), गन्धर्वा (५), गन्धर्व (५१) गम्भीर (६०), गभीर-नाद (५७), गरुडाक (५), गरुडेन्द्र (६६), गान्धारी (५), गिरि (५५), गिरि-नदन (६), गुरुभर (७०), गुणवान् (१०६), गुप्ति (४१), गुणपूर्ण (४८) गुणमाला (६६), गुणवती (६, १३, १०६), गुणसागर (२१) गुणसागरा (८३) गुणधर (२०), गुणनिधि (८५), गुप्तिमान् (२०), गौतम (३, ४३), गोमुख (१३) गोभूति (५५), गोरति (५०), गृहक्षेम (५), गृहपाल (४८), गृहलक्ष्मी (५८),

घनप्रभ (५), घनरव (२०), घनरथ (२०), घोर (१२), घोषसेन (२०),

चन्द्रप्रभ (१, ६, २०, ४७), चन्द्रोदर (१, ६, ५६, ७६, ८२),

चन्द्ररथ (५) चन्द्र (५, ७, ५०, ६०, ९४), चन्द्रशेखर (५), चक्रधर्मा (५), चक्रायुध (५), चक्रध्वज (५, २६, ३०), चन्द्रचूड (५) चद्रिणी (५, ८३), चन्द्रप्रभ (१, ५) चण्ड (५, ५७), चन्द्रावर्त (५, १३), चन्द्रकुण्डल (६) चन्द्रानन (६, ७९), चन्द्रवती (६), चलज्योति (७), चन्द्रमालिनी (९), चन्द्रनखा (९, १०, १९, ४५) चक्राक (१०), चतुर्मुख (२०), चन्द्रमति (२८), चपलवेग (२८), चन्द्रवर्धन (२८, ७५, ८०), चन्द्रलेखा (५१), चन्द्रमरीचि (५४), चन्द्रज्योति (५४), चपल (५५, ५७), चलाग (५७), चल (५९), चचल (५७), चन्द्राभ (५८, ६०, ७०, ७९), चन्द्रनपादप (५८), चण्डाशु (५८), चण्डोर्मि (५८), चन्द्ररश्मि (६०, ७०, ७४), चन्द्रमण्डल (६०, ६३), चन्द्र तरग (६०), चन्द्रप्रतिम (६३), चन्द्रवर्धन (७५), चन्द्रमण्डला (७७), चन्द्राकचूड (८१), चन्द्रकाता (८३), चद्रोदय (८५), चद्रकिरण (८८), चमरेद्र (९०), चद्रभद्र (९१), चद्रानना (९३), चद्राभा (१०९), चद्रभाग्या (११०), चद्रनख (११९), चक्ररथ (१२३), चामुण्ड (५), चारुणी (६), चारुदान (७), चारुरत्न (११८), चिन्त (२०), चितारस (२०), चित्तोत्सवा (२६) चित्ररथ (२८), चित्राम्बर (६), चूला (२०), चूडामणि (२१), चेतना (३, २०), चोल (५७),

छत्रच्छाय (१०६),

जनक (१, २६, २८), जयवती (५, ६०), जया (५, १०), जयकीर्तन (५), जह्नु (५), जनमेजय (८), जयकुमार (९, ३८), ज्वलिताक्ष (१२), जयन्त (१२), जरासन्ध (१०), जय (२८, ६०), जटायु (४४), जयमित्र (५८, ९२), जगद्‌वीभत्स (६०), ज्वर (६०), जम्बूमाली (६०), जयस्कन्ध (६०), जगद्द्युति (८५) जनवल्लभ (८८), जयवान् (९२), जक्रकान्त (१२३) जयप्रभ (१२३), जानकी (२७), जाम्बव (५८, ६३, ७०, ७४), जाम्बूनद (६०, ८८) जितशत्रु (५, २०, ८०), जितनाथ (५), जितभास्कर (५), जिनेन्द्रदेव (१७), जितारि (२), जिनेन्द्र (३२, ११४,), जितपद्मा (३८), जिनप्रेमा (५८), जिनसघ (५८) जिनमत (५८), जीमूत (७९), जृम्भक (१०, ११),

टक (१०), डमर (५७), डम्बर (५७), डमरमडल (९२) डामर (१०), डिम्ब (६०), डिण्डि (५७), डिण्डिम (५७),

तडिदगद (५), तडिन्माला (८), तनूदरी (९, ७७), तडिर्त्पिग (१२), तरगमाला ५१), तडिद्‌वक्त्र (५४), तरग (५८), तरल (५८), तरगवेग (१०६), तारा (१९, २०), तारक (२८), तिलकसुन्दरी (५०) तिलकसुन्दर

(३१), तिलक (५८), त्रिचूड (५), त्रिदशजय (५), त्रिजट (५, १०), त्रिलोकमण्डन (८), त्रिपुर (१०), त्रिलोकीय (२०), त्रिपृष्ठ (२०, २५), त्रिशिरा (४५), तीव्र (५४), तीर (५५), तुम्बुरु (७, २१, ७५), तेजस्वी (५),

दशरथ (१, २०, २२, २३, २५, २८, ३२), दशानन (६, ४६, २०), दृढरथ (५, १०, ५८), दण्ड (१२), दमयन्त (१२), दत्त (२०), दमवर (२०), दक्ष (२१), दण्डक (४१), दामदेव (१०८), दिगम्बर (२२), द्विपृष्ठ (२०), द्विरदरथ (२२), द्विरदवाह (६८), दिवाकर (१२३), द्विचूड (५), दीपिनी (३१), दुन्दुभि (१६), द्रुमसेन (२०, ६३, ६४), दुर्मुख (२८), दुर्मर्षण (५४), दुर्बुद्धि (५८), दुष्पक्ष (५८), दुष्ट (५८, ७०), दूषण (५८), दुरित (६०), दुर्मति (६२), दुर्मर्ष (६२), दुर्वृत्त (६६), दुर्ग्रीव (७२), द्युति (८०), द्युतिभट्टारक (६२), देवी (६, ७७), देवकी (२०), देशभूषण (३६, ६१, ८५) देवदेव (११४), द्रोणमेघ (२४, ६३, ६४), द्रव्यलिंगि (१२),

धर्मनाथ (१, २०), धरणेन्द्र (१) धारिणी (१, ३६), धरणीधर (५), धनश्रुति (५), धरा (५, ६१), धर्म (६, २०, ५८), धरणी (१३, ६२), धर्मरुचि(२०), धनरथ (२०), धनरव (२०), धनमित्र (२०), धरण (२०, ६४) धर (३२), धनपाल (४८), धनगति (५४), धन (५८), धवलाग (६६) धनद धर्ममित्राय (८८), धनदत्त (१०६), धारण (६४), धी (८, ६६), धीर (२०, ३२), धीर मदिर (३७), धूर (४८), धुन्धु (५७), धूम्राक्ष (५७) धूमकेश (२६) धृति (३), ध्रुवा (६),

नन्दा (३, ५), नमि, (३, ७, ६२), नमि (५), नक्षत्रदमन (५), नन्दवती (७), नभस्तडित् (८), नन्दनमाला (८), नल (६, १६, ५४, ५८, ७० ७६), नलकूबर (१२, २६), नन्दिषेण (२०), नन्दिमित्र (२०), नघुष (२२), नन्दनिकानाथ (२८), नयनसुन्दरी (३१), नन्दिघोष (३१), नन्दिवर्धन (३१, ८५, १०६), नर्मदा (४६), नक्र (५७, ६०), नक्षत्रलुब्ध (५८), निनद (६०), नन्दन (६०, ७०, ८८), नन्द (७३, ६७), नन्दि (७८), नरेन्द्र (१०६), नक्षत्रमालक (५८), नागकुमार (७८), नाद (५८), नागदत्ता (३६), नारायण (१, ५, २५, ७२, ८५), नागराज-धरणेन्द्र (६), नागवती (८), नाभिराज (३, ८५), नारद (१, ७, २१, २८, ७५), नियमदत्त (५), निर्वाणभक्ति (५), निर्घात (६), नित्यगति (७), निशुम्भ (२०), निर्ग्रन्थ (४१), निकुम्भ (५७), निर्विनष्ट (५८), निःस्वन (५८, ६०), निष्ठुर (६०), निनद (६०), नील (६, ५४, ५८, ६०, ७०, ७४), नेमि (२०),

परमेष्ठी (१६), पल्लवन (५६), पवनवेग (१७), पद्ममुनि (११६), परशुराम (१६, २०, ८०), पद्मप्रभ (१६, २०, ८०), पद्म (२०, २५), पद्मरथ (२०, ५), पद्मरुचि (१०६), पद्मोत्तर (६, २०), पकजगुल्म (२०), परिव्राट् (८५), पद्मासन (२०), पद्मावती (२७, ३६, ७७, ८३), पर्वत (२०), पद्मनाभ (८१), पराम्भोधि (२०), पश्चिम (७, ८), पवनजय (१, १७), पद्मनिभ (५), पद्माली (५), पयोवल (५), पति (५), पद्मा (५, ७७), पद्माभा (६), पद्मश्री (६), पवनगति (१५), पशुपाल (४८), पृथु (५७), पाताल पुण्डरीक (१६), पाप (५८), पार्श्व (२०), पाटनमण्डल (५८), पार्श्वनाथ (२०, १), पाकशासन (६), परिह्लाद (१०), प्रियगुलक्ष्मी (१७), प्रियरूप (५८), प्रियकारिणी (२०), प्रियविग्रह (५८), पिहिताश्रव (२०), प्रियधर्म (८८), प्रियमित्र (२०), प्रियचन्द्री (१७), प्रियानन्दा (८३), पिहितमोह मुनिराज (६), पिंगल (२६, ३०, ६६), प्रियवर्धन (३२), प्रियव्रत (३६), पीठ (२०), प्रीतिकण्ठ (५८), प्रीतिकर (६०, ७७), प्रीतिंकर (७०, ६२, १०८), प्रीति (२०), प्रीति (५, ६, ७७), प्रीतिकान्त (६), प्रीतिमती (७), पूनर्वसु (२०, ६३, ६४), पुरुषोत्तम (२०), पुरुषसिंह (२०), पुण्डरीक (२०), पुरुषर्षभ (२०), पुलोमा (२१), पुरन्दर (२१, ८), पुजस्थल (२२), पुष्पनखा (५), पुष्पभूति (५), पुष्पास्त्र (६०), पुष्पोत्तर (६), पुष्पवती (३०, ८२), पुष्पचड (५७), पुष्पखेचर (५७), पुष्पदन्त (१, ६, २०, ६८), पूश्चन्द्र (५), पूर्णचन्द्र (५, ५८, ७०, ८८), पूर्णघन (५), पूजार्ह (५), प्रहसित (१६), प्रसन्नकीर्ति (१७, ५४), प्रह्लाद (१७, १५, १६, २०), प्रतिसूर्य (१८), प्रस्तर (५८), प्रजापति (२०), प्रमत्त (५८), प्रख्यात (२०), प्रचण्डालि (५८), प्रभवा (२०, १२१), प्रस्थित (६०), प्रभावती (२०, ३०, ७७), प्रज्ञप्ति (६५), प्रवरा (७७), प्रजापाल (२०), प्रतिमन्यु (२२), प्रतिनारायण (१, ५, २०), प्रभूतसेन (५), प्रतापीतपन (५), प्रह्लादना (८५), प्रभाकर (८८), प्रभासकुन्द (१०६), प्रथम (७८), प्रभु (५), प्रतिवल (६), प्रमोद (५), प्रतिचन्द्र (६) प्रहस्त (८, १०, ५५, ५७), प्रवर (६, १२, ४१), प्रभव (१२, ४८), प्रकाशसिंह (२६), प्रवरावली (२६), पृथ्वीधर (८०), पृथु (१०१), पृथ्वी (३४), प्रतिसन्ध्या (३४), प्रचण्ड (५७), प्रशख (५७), पृथिवीधर (३६), पृथिवीमती (२१, २२), पृथ्वी २०), पृथ्वी (२४), प्रोष्ठित (२०), पौण्डरीक (१६), प्रौष्ठिल (३७), पौण्ड्र (१०२),

वलभद्र (१, ५, २१, २५, ७२), वलाक (५) वलि (६, २० ५८, ६०, ६८, १०६), वसन्ततिलका (१५), वसन्त माला (१७), वल (२०, ५८, ७०,

२५, ५८, ६०), वसन्तलता (२२), वन्धु २८, ४८), वसन्तध्वज (३६), वन्धुपाल (४८), वर्वरक (५८), वसन्त (५८), वली (६०), वालिमुनि (६५), वलभद्र (७६, १०३, ११६), वन्धुमती (११३), वाहुवली (१, ४, ५), वालेन्दु (५), वाली (६), वालचन्द्र (२६), वालखिल्य (१३४, ७२), वुध (२८), ब्रह्मदत्त (५, २०), व्रतकीर्तन (५), ब्रह्मरुचि (११), ब्रहरथ (२०, २२), ब्रह्ममूर्ति (२०), वृहस्पति (७), वृपभ (२०), वेलाक्षेपी (५८, ६०),

भरत (१, २८, २२, ३७, २५, ८४), भद्र (५, ३१, २०), भद्रवती (२०), भूरिदन्त (३७), भद्राम्भोजा (२०), भगवती (२०), भवनश्रुत (२०), भगीरथ (५, १०३), भद्रवल (२८), भट्टारक (२८), भूरिचूड (५), भयानक (५७), भर (५८), भग (५८), भद्रा (७७), भरतमुनि (८७), भवान्तक (११४), भानुमती (८३), भावित (५८), भानुमडल (५८) भास्कर (५५) भामडल (५३), भानुराजा (२०), भानुकर्ण (१, ८, १४, ४५, ६०), भानु (५, २८) भानुप्रभ (५), भानुवर्मा (५), भानुगति (५), भास्कर (५), भावन (५), भीम (५, ६, ४५, ५४, ५७, १०३), भिन्नाजनप्रभ (५७), भीमप्रभ (५), भीष्म (५), भीमनाद (५७), भीपण (५८), भीमरथ (५८, भुजवली (५), भूति (३१), भूतनाद (५४), भूरी (५८), भूधर (७४), भूतस्वन (७४), भूषण (८५), भोगवती (६), भोज (२८), भद्राचार्य (८०), भव्यक (५),

महावीर (१, २०), मल्लिनाथ (१, २०, १०६), मन्दोदरी (१, ८, ६, ४६, ५३, ७४), महेन्द्र (१, १५, १७, ५० ५३, ५५, ५८, ५८, ६३), मरुदेवी (३), मतिसमुद्र (४), महावल (५, २०, ५८, ६०, ११०), महेन्द्रविक्रम (५), महेन्द्रजित् (५) मणिग्रीव (५), मणिभासुर (५), मण्यक (५), मणिस्यदन (५), मण्यास्य (५), महाघोप (५), महारक्ष (५) मघवा (५, २०), महापद्म (५, २०, २८), मदनपद्मा (५), मयूरवान् (५), महावाहु (५), मनोरम्य (५), महारव (५), मन्दर (६, २८, ५४, ५८), महोदधि (६), महोदधि के १०२ पुत्र (६), मयविद्याधर (६), मनोजव (६), मघोनी (६), मजुस्वनी (७), मकरध्वज (७, ७०, ७४, ६४), मरुद्वक्त्र (८), मनोवेगा (८, ७७), महालक्ष्मी (८), महीधर (८), मदनावली (८), मलय (२०, ५५, ६३), महाजठर (१२) मणि (१३), मणिचूल (१७), मल्लि (२०), महामेघरथ (२०), मयूर (२०), महेन्द्रदत्त (२०), महातेज (२०), महासेन (२०), मनोहारा (२०), महासुव्रत (२०) मधुकैटभ (२०) महागिरि (२१), महारथ (२१, ५७, ७०) मनोदम (२१), मयूरकुमार (२८), मधु, (३०, ८६, १०६), मदना (३६), मतिवर्धन (३६), महालोचन (३६), महोदर (४५, ६०), महाकाल (५५), मतिकान्त

(५५), मतिसागर (५५), मतिप्रिया (५५), महिदेव (५५) मकर (५७,६०) महामाली (५७), महाद्युति (५७), महाभैरव (५७), मनोहरमुख (५८), मर्दक (५८) मत्त (५८), महाधर (५८), मरुदाह (५८), मनोज्ञ (५८), मदन (६६, ६४), महेन्द्रकेतु (५४) मनोवती (७७), महादेवी (७७), मयमुनि (८०). मनोरमा (८३, ६३), मानसोत्सवा (८३), मरुदेवी (८५), महाबुद्धि (८८), मधुसुन्दर(८६), मनोवेग (६३), मगल(६४), मधुयान(६६), मल्लि-जिनेश्वर (६८), मदनाकुश (१००), मधुमुनि (१०६), महादेव (११४), महेश्वर (११४), मकरी (१२३), मालिनी (१२३), मागध(१०२), मारिदत्त (१०२), माल्यवान् (५७१, ८०), मान्धाता (२२, ८६) मानससुन्दरी (७), मारीच (८, १२, १४, ६, ५५, ५७, ६०, ७४) माली महाराज (६), मानवी (७७), माकोट (२०), मानसचेष्टित (२०), मारुतवेग (२०), माधवी (५, २०, ८५), मारण (५), माली (६, ७, ६०), मिश्रकेशी (१५), मित्रा (२०, २२), मित्रवती (४८), मित्रयशा (८०), मुनिसुव्रतनाथ (६), ६, १७, ३३, ६७, १०५), मुनिराज (२०), मुनिचन्द्र (२०), मुदित (३६, ५७), मुखान्त (६१), मुनीन्द्र (१०६), मृगाक (५, २०), मृगोद्धरण (५), मृगाधिपध्वज (८), मृदुकान्ता (१२), मृगचिह्न (१२), मृगावती (२०), ७७), मृगध्वज (३७) मृत्यु (५७, ६०), मृगेन्द्रदमन (६०), मृगेन्द्रवाहन (१०२), मेघनाद (१), मेघकुमार (२), मेघ (५), मेघध्वान (५), मेरु (६, ३२, १०६), मेरु-कान्त (६), मेनका (७), मेघरथ (७, २०, २५, ८६, १२३), मेधावी (८), मेघवाहन (८, १७, ४३, ५८, ७८), मेघप्रभ (६), मेघमाली (१२), मेरक (२०), मेघेश्वर (८६), मेघकेतु (१०४), मोहन (५), महीधर (५),

यम (३, ७, ८, ७३), यशोधर (५, २०, ३१), यक्षरज (६), ययाति (११), यशोवती (२०), यशोमित्र (३), यमुना (३३, ४८), यज्ञदत्त (४८), यक्ष, (४८), यमदण्ड (६६), यमुनादेव (६१), युगन्धर (२०), युद्धावर्त (५८), योजनगन्धा (३१),

रवितेज (५), रक्तोष्ठ (५), रम्यक (५), रतिमयूख (५), रत्नश्रवा (१, ७), रत्नजटी (१), रत्नमाला (५), रत्नवज्र (५), रत्नावली (६), रत्नचूला (१७, ५४) रत्नमाल (२१), रत्नमाला (३८, ७७), रत्नरथ (३६, ६३) रत्नकेशी (४८), रत्नवती (८३), रत्ना (८५), रत्नाक (१०२), रति-वर्धन (५८, ६०, ७८), रतिकान्ता (७७) रतिमाला (६४), रतवती (३, ६), रति (५, ६४), रवि (५), रविप्रभ (६), रविमन्यु (२२), रवियान (५८) रणखनि (५८), रणोर्मि (३७), रणदक्षक (८), रथनूपुरक (१६), रक्षिता

(२०) रघु (२२), रथ (५८), राम, (१, २२, २६ आदि) रावण (१, १६, १६ आदि), राजीवसरसी (८), राजीव (१६), रामा (२०), रामचन्द्र (२०, २८ आदि) राजीला (४८), राग (५७), रिपुदम (२०), रुद्रभूति (१), रुक्मिणी (२०, ७७), रुचिरा (४१), रूपानन्द (५), रूपवती (१२, ८०, ६४, ११०), रूपिणी (२०, ७७), रोहिणी (१०, १२३), रौद्रनाथ (२०), रौद्रभूति (३४, १०२),

लक्ष्मण (१, २०, २२, २५, २८ आदि), लवण (१, ११०), लवणाकुश (१, १०२ आदि), लम्बिताधर (५), लक्ष्मी (६, २०, ३५, ६४), लकाशोक (५) लतादत्त (४८), लागल (५४), लोल (५८), लोकाक्ष (७३), लोकान्तिक (८५), लोकसुन्दरी (२८), लकासुन्दरी (५२),

वज्रजघ (५), वज्रसेन (५), वज्रध्वज (५), वज्रायुध (५), वज्र (५), वज्रभृत् (५), वज्राभ (५), वज्रबाहु (५), वज्रास्य (५), वज्रपाणि (५) वज्रजात (५), वज्रवान (५), वज्रचूड (५), वज्रमध्य (५), वज्रकण्ठ (५), वज्रदष्ट्र (५) वेगिनी (६), वरुणा (७, १६), वज्रमध्य (८), वज्रनेत्र (८), वप्रा (८, २०), व्याघ्रविलम्बी (६), वसुन्धर (२०), वसु (११), वनमाला (१२, २१, ३६, ३८, ८०, ६४), वज्रवेग (१३), वज्रनाभि (२०), वप्रदेवी (२०), वज्रजद्य (१, ६७, १०१), वरुण (३, ७, ७२), व्योमबिन्दु (७), वह्निशिख (५), व्योमेन्दु (५), वह्निजटी (५), वसुवा (३१), वज्रलोचन (३१), वज्रकर्ण (३३, ८२), वरधर्मा (३७) वसुभूति (३६, २०), वज्रमुख (५२), वज्रोदरी (५३), वज्रदंष्ट्र (५३) वज्राक्ष (५७, ७४), वज्रनाद (५७), वज्रोदर (५७), वसुदर्शन (२०), वसुदेव (२०, १०८), वसन्ततिलक (२२), वसुगिरि (२१), वह्निकुमार (५६, वज्राख्य (६०), वसन्त (६०) व्यावर्त (६३, ६४), वसुन्धरा (७७), वर्वर (१०२) वसुदत्त (१०६, ११६), वज्राग (१२३), वाक्यालकार (८), वासुपूज्य (१, ६, ६, २०, ६७), वारिषेण (२), वायुगति (३७), वासवकेतु (२१), वातायन (७०) वायुकुमार (७८), वायुभूति (१०६), विद्यामन्दिर (६), विमला (६, ३६), विद्याक (६), विद्यासमुद्घात (६), विद्युद्वाहन (६), वसन्तडमरा (८५), वियद्बिन्दु (७), विद्युत्प्रभा (८, ५१), विशुद्धकमल (८), विराधित (६), विमल ५, ६, २०, २२), विष्णुकुमार महामुनि (६), विकट (२०), विचित्रमाला (१२, २२) विद्युत्प्रभ (१५), विमलवाहन (२०), विपुलख्याति (२०), विश्वसेन (२०) विजय (२०, २१, २५, ३२, ५८, ११६), विराधिका (१), विभीषण (१, ८, १५, २३, ५३, ७४), विशल्या (१, ८०, ८३, ६४, ६६), विजयावह (२), विनमि (३), विभु (५) विद्युन्मुख,

(५), विद्युद्दंष्ट्र (५), विद्युत्वान् (५), विद्युदाभ(५), विद्युद्वेग (५), विद्युद-दृढ (५), विद्या (५), विद्युत्केश (६), विजयसिंह (६), विशाल (२८), विशाख(२६), विमुचि(३०), विद्युल्लता(३१), विदग्ध (३२), विनोद(३२), विद्युदग (३३), विश्वानल (३४), विजयशार्दूल (३७), विजयरथ (३८), विजयसुन्दरी (३८), विचित्ररथ (३६), विजयपर्वत (३६), विधुरा(४१), विराधित (४५ ५८, ५०, ५६, ६०, ६३), विनयदत्त (४८), विद्युद्घन (५५), विभ्रम (५७), विद्यटोदर(५७), विद्युज्जिह्व(५७), विद्याकौशिक (५७), विटप (५७) विद्युदम्बुक (५७), विश्वसेन(२०), विष्णु (२०), विचित्रगुप्त (२०), विजया (२०), विश्वनन्दी (२०) विकट (२०), विष्णुराज (२०), विष्णुश्री (२०), विमलसुन्दरी (२०), विद्रुम (२०), विश्वावसु (७, २१, ७५), विजयस्यन्दन (२१), विद्युद्विलसित (२३), विदेहा (२६, २६), विघ्नसूदन (५७), विधि (५८, ६०), विद्युत्कर्ण (५८), विचल (५८) विघट (५८), विद्युद्वाह (५८) विघ्न (६०, ६२), विशालद्युति (६०), विन्ध्या (६३, ६४), विमलचन्द्र (७३), विमलमेघ (७३), विक्रम (७४), विदग्धा (८०) विरस (८८), विश्वाक (८५), विनय-लालस (६२), विमलप्रभ (६४), विनयवती (१०६), विहीत (१०६), विजयावली (१०८), विद्युद्गति (११३). वीर्यदंष्ट्र (१३), वीतभी (५), वीभत्स (५७), वीरक (२१), वीरसेन (२२, १०६), वीर (३८), वृहद्गति (५), वृहत्केतु (३०), वृहद्घन (५५), वृषभ (६४), वृषभध्वज (१०६), वेणुदारी (६०), वेदवती (१०६), वेलाध्यक्ष (६३), वेगवती (८, १३), वैवश्रण (३, ७, ८, २०), वैद्युत (५), वैवस्वत (२५), वैश्वानर (७), वैजयन्ती (२०), वज्रशीला (६),

शशि (५), शम्भवनाथ (१, ६८), शत्रुघ्न (१, २२, २५, २८), शम्बूक (५, ११८), शशांकमुख (५), शतमन्यु (८), शक्रधनु (८), शरभरथ (२२), शतबाहु (१०), शशिप्रभ (१०), शतरथ (२२), शर्मा (१०), शतार (३१), शत्रुदम (३२), शठ (३२), शल्य (५४,८८), शम्भु (५७, ६०, १०६, ११४), शक्राभ (५७), शशिकान्ता (७८), शरभ (६३, ६४), शख (६६), शम्बर (६६), शशिचूला (१०१), शतह्लदा (११०), शान्तिनाथ (१, ५, ६, २०, २३, ८०, ८८), शाखावली (८), शान्ता (२२), शारण (७४), शाम्ब (१०६), शार्दूलविक्रीडित (५७), शिवमति (१०६), शिखी (१२, २५, २८), शिवा(२०), शिवाकर(२०), शिखीवीर(५७), शिलीमुख(५७), शिव (५८, ११४), शीतलनाथ (१, २०), शीतल (६, २०), शील (५८), शीला(७७),

शुभा (७७), शुक्र (८, १२, १३), शुभमति (२४), शुक (५७, ६०, ७३, ७४)

श्रीवर्धन (५, २१), श्रीदेवी (५, ६, २६), श्रीप्रभा (५, ६, ७, ६, ३६), श्रीधर (५, २८, ६४), श्रीग्रीव (५), श्रीकण्ठ (५, ६२), श्रीचद्रा (६), श्रीमाला (६, ७७), श्रीरम्भा (१२), श्रीमाली (१५), श्रीषेण (१८), श्रीशैल (२०), श्रीधर्म (२०), श्रीवृक्ष (२८), श्रीसजय (२८), श्रीनागदमन (३२), श्रीधर (३२), श्रीमति (३३), श्रीवर्धित (७७), श्रीदामा (८०), श्रीमुख (८५), श्रीमन्यु (६१), श्रीकान्त (६२), श्रीधर्मनाथ (१०६), श्रीनन्दन (६८), श्रीदक्षा (६२), श्रीभूति (१०६), श्रीतिलक (१०६), श्रीकृष्ण (१०८), श्रीचन्द्र (१०६), श्रीकान्ता (२०, ३७, १०६), श्रीपर्वत (७७, ८३), श्रुतकीर्ति (२०), श्रुतवुद्धि (३७), श्रुतिरत (८५), श्रुतिधर (८८) श्रेयासनाथ (१), श्रेणिक (१, ४३),

सर्वभूतशरण्य (१), सगर (१, ५, स्तनितकुमार (२), सजयन्त (५), सहस्रनयन (५), सहस्रशीर्ष (५), सनत्कुमार (५, २०, ३५, १०६), सपरिकीर्ति (५), समीरणगति (६), सहस्रार (६), स्मय (७), सर्वश्री (८), सध्या (८), सभव (६, २०), सध्याकार (२०), सहस्ररश्मि (१०), स्वस्तिमती (११), सध्याभ्र (१२), सहस्रभाग (१३), सर्वज्ञदेव (१४), सन्देहपारण (१५), सत्यवती (१६), समुद्रविजय (२०), स्वयप्रभ (२०, ११४, १२२), सीमन्धर (२०), सर्वगुप्ति (२०), सम्भूत (२०, २१), स्वतन्त्रलिंग (२०), स्वयभू (२०, ५७, ६०, ११४), सर्वयशा (२०), सखि (२०), सहदेवी (२२), स्वाहा (२६), सत्यकेतु (३२), समुद्रहृदय (२३), सत्य (३२), समुद्रसग्राम (३३), सह्यानन्द (३५), सत्यव्रत (३८), सम्भिन्नमति (४६), सर्वरुचि (४८), सत्यश्री (५४), समुद्र (५४) स्पन्दन (५५, १०२), स्मरायण (५७), सर्वभूतहित (३०), सम्मान (५८), सम्मुन्नतवल (५८, ७०), सर्वप्रिय (५८, ७०) सर्वसार (५८), सग्रामचपल (५८) सर्वद (५८, ७०), सरभ (५८), समाधिबहुल (५८, ७०), स्वपक्षरचन (५८), सम्मेद (५८, ६०, ७४), स्कन्ध (६२) सहस्रविजय (६३), सत्त्वहित (६३, ६४), समुद्रघोष (७०), सुभूषण (७०), स्कन्द (७०), सन्ध्यावली (७७), सर्वकल्याण माला (८०), समिधा (८५), सत्यवान् (८८), सन्मुख (६१), सर्वसुन्दर (६२), सुरमन्यु (६२), सत्यकीर्ति (६४), सर्वभूपण (१०४), सकलभूषणमुनि (१०४), सरस्वती (१०६), सुरेन्द्र (१०६), सर्वगुप्त (१०८), स्थाणु (११४), सद्धर्म (११४), स्वर्णकुम्भ (११८) सात्यकि (१०६), सागरदेव (६१), साल (५८), सार (५८, ६०), सानु (५८), साधुवत्सल (५८),

सागरोपम (५८), सागरसेन (३६), साधुदत्त (३६), सागरदत्त (२०, १०६), सागरवुद्धि (२३), सामन्तवर्धन (१३), सारण (८, १२, ५७, ६०, ७३), साटोप (८), सागरवृद्धि (६), साहसगति (२०), सागर (५, २८), सितयशा (५), सिंहपाल (५), सिंहप्रभु (५) सिंहकेतु (५) सिंहविक्रम (५, १०२), सिन्धु (८, १०२), सिंहचन्द्र (१७), सिंहवाहन (१७), सिंहरथ (२०, २२), सिद्धार्थ (२०, ८८) सिंहसेन (२०), सिंहिका (२२), सिंहदमन (२२), सिंहोदर (३३, १०२), सिंहवीर्य (३७) सिंहजवन (५७, ७०), सिंहकरी (५८), सिंहजघन (६०), सिंहेन्द्र (८०), सिंहपाद (१०६), सीता (१, २०, २८ आदि), सीरगुप्ति (३३), शील (६५), सुमतिनाथ (१), सुपार्श्वनाथ (१), सुव्रतनाथ (१, १७ २०, ८२, ६८), सुधर्माचार्य (१), सुकेशी (१), सुमाली (१, ८, ६, ७, ६३, ८७), सुग्रीव (१, ५, ६, १६, २०, ४५, ४७, ७४ आदि), सुतारा (१, ४७), सुनन्दा (३, २०, ७६), सुभद्रा (४, २०, २८), सुवल (५), सुभद्र (५), सुवीर्य (५, २०, ५७), सुवज्र (५), सुनयना (५), सुमगला (५, २०), सुलोचन (५), सुरूप (५), सुभीम (५, २०, २२, २५, २८, ६३ ८६), सुमुख (५, २१, २६, ३६, ६१), सुव्यक्त (५), सुरारि (५), सुयशोदत्त (६), सुकेश (६, ७, ३७), सुमगला (६ २८), सुरसुन्दर (८), सुरूपाक्षी (८), सुचाप (८), सुश्रोणी (८), सुमति (६, १२, २०, २८), सुपार्श्व (६, २०, ६८) सुवेल (१०), सुयोवन (१०), सुजट (१०), सुरकान्ता (११), सुमित्र (१२, २०,२१, ८८), सुमना (१५), सुदती (१६), सुविधि (२०), सुरश्रेष्ठ (२०), सुदर्शन (२०, २८, ८५) सुनन्द (२०, ७३, ८८, १२३) सुभूति (२०), सुसीमा (२०), सुप्रतिष्ठ (२०), सुविधिनाथ (२०), सुनेत्रा (२०), सुव्रत (११६), सुवेशा (२०), सुदर्शना (२०, १०६), सुवर्णकुम्भ (२०), सुसिद्धार्थ (२०), सुरेन्द्रमन्यु (२१), सुकोसल (२१, २२), सुवन्धुतिलक (२२), सुमित्रा (२२, २५), सुशर्मा (३५), सुलोचना (३८), सुरप (३६). सुपर्णकुमार (३६, ७८), सुरप्रभ (३०) सुगुप्ति (४१), सुकेत (४१), सुन्द (४५, ५७, ११८), सुभानु (४८, १०८), सुषेण (५४, ५८, ६०, ७४), सुख (५८), सुन्दर (६५), सुखा, (७७), सुन्दरी (७७, ८३), सुकान्त (८०), सुरवती (८३), सुधी (८८), सुपार्श्वकीर्ति (६४), सुचन्द्र (८८), सुप्रजा (६०) सुवन्धु (६८), सुह्म (१०२), सुमेरु (१०२), सुधीर (१०३), सुदेव (१०८), सूरि (११४), सूर्यार (७४), सूर्योदय (८५), सूर्यज्योति (५८, ६०, ७०), सूर्यदेव (५५, ६१), सुभूम (५, ११, २०), सूरसन्निभ (५) सूर्यरज (१, ६, ७, ८६), सूर्यजय (३१), सेना (२०), सोमदेव (१०६), सौम्यवक्त्र (५७),

सोम (३, ८, २०, ४१, ७३), सोमयशा (३, ८५), सौधर्मेन्द्र (३, ८५), सौदास (२०, ८३), ससारसूदन (११४), सत्रास (५८), सत्रासक (६०) सताप (६०), सकटप्रहार (५८), सक्षोधन (६२), सजयन्त (२१), सवृत (११), सवर (२०) सभ्रमदेव (५),

हरिचन्द्र (५, १७), हरिदास (५), हरि (५, २१, २२, २५, ८८), हरिषेण (५, ८, २०), हरिग्रीव (५), हरिणकेशी (७, ७०), हरिकान्त (६), हय (२०), हरिवाहन (१२, २८), हस्त (१२, ५५, ५०), हनूमान् (१५, १८), हरिमालिनी (१६), हरिकेतु (२०), ह्लादन (५७), हल (५८), हरिकटि (६०), हरिपति (८५), हरिवेग (६३), हरिनाग (६४), हा-हा (२१), हितकर (५), हित (५), हिडिम्ब (२६), हिरण्याभ (१५), हिरण्यकशिपु (२२, ७६), हिमवान् (५८), हू-हू (२१), हृदयसुन्दरी (१३), हृदयवेगा (१५), हेमरथ (५, २२), हेमपूर्ण (२०), हेमपाल (२०), हेमवाहु (२०), हेमचूला (२१), हेमप्रभ (२४), हेमगौर (५७), हेड (५८) हेमाक (८०), हेमनाभ (१०६), हेमवती (८), हेमविद्याधर (६), हैहिड (२०), हसद्वीप (२०),

क्षितिवर (५८) क्षपितारि (६०), क्षीरकदम्बक (११), क्षीरधारा (१३), क्षुल्लक (१२), क्षुद्र (४८), क्षुब्ध (६२), क्षेमकर (२१, ३६), क्षेत्रपाल (४८), क्षेम (५८, ६६), क्षोद (५८), क्षोभन (४५, ५७, ६२), त्रिमूर्ध (१०२), ज्ञानचक्षु (११४)। इनमे बहुत से पात्रो की तो सूचना मात्र ही दी गयी है और बहुत से अत्यन्त लघु प्रदेश पर अधिकार रखते है। कुछ प्रसिद्ध जैन देवता है और कुछ उपमादि अलकारो मे समागत पौराणिक नाम हैं। अस्तु, इनमे ऐसे पात्र थोडे ही है जिनका मुख्य कथा मे कोई महत्त्वपूर्ण योगदान हो।

यहाँ हम मुख्य पात्रो के चरित्र-चित्रण पर चर्चा करेगे। 'पद्मपुराण' के मुख्य पात्र इन भागो मे विभक्त किये जा सकते है—

१ **रामपक्ष के पुरुष पात्र**—दशरथ, राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न, अनगलवण और मदनाकुश।

२ **राम-पक्ष के स्त्री पात्र**—अपराजिता (कौशल्या) सुमित्रा (केकयी), केकया, सुप्रभा, सीता, विशल्या, कल्याणमाला और वनमाला।

३ **रावण-पक्ष के पुरुष पात्र**—रावण, भानुकर्ण, विभीषण, इन्द्रजित्, और मेघवाहन।

४. **रावण-पक्ष के स्त्री पात्र**—मन्दोदरी, चन्द्रनखा और लका-सुन्दरी।

५. **प्रासंगिक कथाओ के पुरुष पात्र**—बालि, सुग्रीव, पवनजय, अगद, हनू-

मान्, जाम्ववान् जनक, भामण्डल, कृतान्तवक्त्र, जटायु, वज्रजघ, रत्नजटी, द्रोण-मेघ, खरदूषण और चन्द्रप्रतिम ।

६. प्रासंगिक कथाओं के स्त्री-पात्र—केतुमती, अजना और सुतारा ।

७. पौराणिक महापुरुष पात्र—भरत, बाहुबलि, हरिषेण, नारद, देशभूषण, कुलभूषण, सुव्रतनाथ आदि ।

उपर्युक्त पात्रो को सक्षेप की दृष्टि से तीन भागो मे विभक्त किया जा सकता है—१. राम-पक्ष के पात्र, २ रावण-पक्ष के पात्र तथा ३. प्रासगिक कथाओ के पात्र।

राम-पक्ष के पुरुष पात्र

दशरथ · अयोध्यापति राजा अनरण्य की पृथिवीमती रानी मे उत्पन्न छोटे पुत्र दशरथ है।[१६७] रविषेण ने उन्हे 'निखिलविज्ञानपारदृश्वा', 'गुणगणज्ञानपाण्डित्ययुक्त', 'दानविख्यातकीर्ति,' 'रविसमतेजा' और 'सकलकुभावाभिलाषदोषविमुक्त' आदि विशेषणो से विभूषित किया है।[१६८] नारद जैसे मुनि भी उन्हे 'सम्यग्दर्शनयुक्त' तथा 'गुरुपूजनकारी' कहते हैं।[१६९] इसके अतिरिक्त उनके कार्य भी उन्हे एक उदात्त स्थान प्रदान करते है।

राजा दशरथ का व्यक्तित्व आकर्षक है। उनका शरीर ऊँचा है—'वपुर्दशरथो लेभे नवयौवनभूपितम् । शैलकूटमिवोत्तुग नानाकुसुमभूषितम् ।।'[१७०] उनके भव्य व्यक्तित्व के कारण उन्हे अपराजिता, केकयी (सुमित्रा), सुप्रभा तथा केकया जैसी कुमारियाँ पत्नी-रूप मे प्राप्त होती हैं। नरलक्षण-पण्डिता केकया राजसमूहस्थ दशरथ को उसी प्रकार पहचान लेती है जिस प्रकार कोई वकसमूहस्थ हस को पहचान लेता है। सागरवुद्धि निमित्तज्ञानी से यह जानकर —'भविता दशवक्त्रस्य मृत्युर्दाशरथि. किल' विभीषण उन्हे मारने का उपक्रम करता है किन्तु वे नारद की सलाह से वच जाते हैं।

दशरथ कुशल शासक तथा वीर योद्धा है। इसीलिए जनक ने म्लेच्छो का उच्छेद करने के लिए उन्हे स्मरण किया है। वे केकया के स्वयम्वर मे अकेले ही अनेक राजाओ के छक्के छुडा देते है।

राजा दशरथ परम जिनभक्त है। वे मुनियो का सम्मान करते हैं, प्राचीन

---

१६७ पद्मपुराण, २२।१६१-१६२

१६८ पद्मपुराण, २५।७, ५८, ३१।२४२

१६९. पद्मपुराण, २३।३२

१७० पद्मपुराण, २२।१७०

जिनमन्दिरों का जीर्णोद्धार करवाते है; तीर्थंकरो की पूजा करते है; आषाढधवलाष्टमी को वे जिनेन्द्र भगवान् का अभिषेक करते है तथा रानियो के पास गन्धोदक भिजवाते है। वृद्धकचुकी की वृद्धावस्था को देखकर वे वैराग्य धारण कर लेते है तथा केकया का दिये गये वरदान के अनुसार भरत को ही राज्य करने के लिए उपदेश देते है। वे राम को वन जाते हुए देखकर भी नही विचलित होते। वे अकीर्तिभीरु है। वे स्थिरमति है तथा सर्वभूतहित मुनिराज के पास जिन दीक्षा धारण कर लेते है।

राम राम 'पद्मपुराण' के नायक हे। इन्ही पद्म (राम) का चरित इसमे निवद्ध है--'पद्मस्य चरित वक्ष्ये पद्मालिगितवक्षस.।' इसलिए स्वभावत कवि ने राम के चरित्र की स्वत प्रशसा की है तथा पात्रो के मुख से भी उनकी पर्याप्त प्रशसा कराई है। अपराजिता रानी मे दशरथ से उत्पन्न अष्टम बलभद्र श्रीराम के चरित्र के एक अश को भी पढने या सुनने वाले के पाप नष्ट हो जाते है---ऐसा रविषेण का मत है।

राम का व्यक्तित्व वडा आकर्षक है। वचपन से ही वे 'तरुणादित्यवर्ण', 'मनोज्ञरूप', 'विद्रुमाभरदच्छद', 'रक्तोत्पलसमच्छायपाणिपाद,' 'सुविभ्रम,' 'नवनीतसुखस्पर्श', 'जातिसौरभधारी' तथा अपनी क्रीडा से सभी का चित्त हरण करने वाले है।[१७१] वे सर्वागसुन्दर है। वे 'नीलकुचितसूक्ष्मातिस्निग्धकेश,' 'लक्ष्मीलताविपक्ताग,' 'कुमारभास्करतुल्य,' 'नयनो के समानन्द,' 'मनोहरणकोविद,' 'अपूर्व कर्मो के सर्ग,' 'ज्वलद्विशुद्धरुक्माम्बुरुहगर्भसमप्रभ,' 'मनोज्ञागतनासाग्र' 'सगतश्रवणद्वय,' 'मूर्तिमान् अनग,' 'पुण्डरीकनिभेक्षण,' 'चापानतभ्रू,' 'पूर्णशारदेन्दुनिभानन,' 'विम्वप्रवालरक्तौष्ठ,' 'कुन्दश्वेतद्विजावलि,' 'कम्वुकण्ठ,' 'मृगेन्द्राभवक्षोभाक्,' 'महाभुज,' 'श्रीवत्सकान्तिसम्पूर्णमहाशोभस्तनान्तर,' 'गम्भीरनाभिवक्षाममध्यदेशविराजित,' 'प्रशान्तगुणसम्पूर्ण,' 'नानालक्षणभूषित,' 'सुकुमारकर,' 'वृत्तपीवरोरुद्वयस्तुत,' 'कूर्मपृष्टमहातेज सुकुमारक्रमद्वय,' 'चन्द्राकुरारुणच्छायानखपक्तिसमुज्ज्वल,' 'अक्षोभ्यसत्त्वगम्भीर,' 'वज्रसघातविग्रह,' तथा 'सभी सुन्दर वस्तुओ के एकत्रित सार' है।[१७२] इस आकर्षक व्यक्तित्व के कारण ही उन्हे अनेक कन्याओ की प्राप्ति होती है।

राम की शक्ति और वैभव भी भव्य है।[१७३] वे शैशव मे ही म्लेच्छो को परास्त करते है तथा 'वज्रावर्त,' धनुष को चढाकर सीता की प्राप्ति करते है।

---

१७१ पद्मपुराण, २५।२७-२८

१७२ पद्मपुराण, ४६।५१-६०

१७३ वही, ८३।२-३३

अनेक युद्धो मे उनकी शक्ति के प्रमाण मिलते है।[१७४]

राम का शील भी दर्शनीय है। वे पिता के आज्ञापालक हैं। वे भरत को राज्य दिलाने के लिए दशरथ से कहते है—

"तात रक्षात्मन सत्य त्यजास्मत्परिचिन्तनम्।
शक्रस्यापि श्रिया किं मे त्वय्यकीर्तिमुपागते॥"[१७५]

साथ ही वे भरत से भी राज्य करने को कहते है। वे क्रुद्ध लक्ष्मण को समझाकर अपनी समचित्तता का प्रमाण देते है। वे भरत की रक्षा के लिए राजा अतिवीर्य की सभा मे अपने नृत्यकौशल और वीरता से सभी को स्तब्ध कर देते है। वे क्षमा के सागर है, इसीलिए कपिल जैसे परुषभाषी को भी क्षमा कर देते है। वे अपार सज्जन तथा शरणागतवत्सल हैं, विभीषण पर रावण के द्वारा छोडी गयी शक्ति को अपनी छाती पर झेल लेते हैं। उनका भ्रातृप्रेम अनुपम है, शक्ति-निहत लक्ष्मण को देखने के लिए वे रावण से आज्ञा माँगते है। इसी प्रकार मृत लक्ष्मण को लिये हुए वे छ मास तक घूमते फिरते है। वे अपार विचारवान् तथा दयावान् है, अत रावण-भानुकर्ण-मेघवाहन आदि को मुक्त करा देते है। वे रावण का दाहसस्कार भी करते है क्योकि उनके मत से "मरणान्तानि वैराणि जायन्ते ह्यविपश्चिताम्।" वे सीता को अपार प्रेम करते हैं तथा लोकापवाद के कारण उसे छोड़ते हुए उन्हे अपार अन्तर्द्वन्द्व का सामना करना पडता है। राम परम जैन है, वे जिनेन्द्र की स्तुति करते है, मुनि देशभूषण-कुलभूषण का उपसर्ग दूर करते है, मुनि से श्रद्धा सहित उपदेश सुनते है, जिन मन्दिरो का निर्माण कराते है, दीक्षा लेते है तथा किसी भी प्रलोभन से विचलित नही होते।

लक्ष्मण 'अष्टम नारायण' लक्ष्मण राजा दशरथ और रानी सुमित्रा के पुत्र है तथा राम के अनुज हैं। कवि ने इनकी पर्याप्त कीर्ति गायी है। उसने इन्हे 'सर्वशास्त्रविशारद', 'सर्वलक्षणसम्पूर्ण' आदि अनेक सुन्दर विशेषणो से विशेपित किया है तथा अनेक पात्रो के कथन इनकी महत्ता का पर्याप्त अभिव्यजन करते है। साथ ही इनके कार्यकलाप भी भव्य तथा उदात्त हैं।

लक्ष्मण का व्यक्तित्व बडा आकर्षक है। वे 'प्रौढेन्दीवरगर्भाभ' 'कान्तिवारिकृतप्लव', 'सुलक्ष्मा', 'लक्ष्मीनिलयवक्षस्क' तथा अपनी साँवली सलोनी कान्ति से दर्शको के चित्त को आकर्षित करने वाले है। वे 'इन्दीवरप्रभ', 'नीलोत्पलचयश्याम' हैं जिन्हे देखकर स्त्रियाँ उन्मत्त सी होकर कहने लगती है—

---

१७४ पद्मपुराण पर्व २८, ७८, १०२
१७५ वही ८१।१२५

"भिन्नाजनदलच्छाया कान्तिरस्य बलत्विपा।
भिन्ना प्रयागतीर्थस्य धत्ते शोभा विलासिनीम् ॥"[१७६]

तथा—

"अयि मूढे न पुण्येन नितान्त भूरिणा विना।
लभ्यते सुचिर द्रष्टुमेवविधनराकृति ॥"[१७७]

उनके सौन्दर्य से वशीभूत कल्याणमाला-वनमाला-जितपद्मा-विशल्या आदि अनेक कन्याएँ उन्हे प्राप्त होती है। सिंहोदर आदि राजाओ की ३०० कन्याओ, विद्याधर की आठ कन्याओ तथा अन्य अनेक राजकुमारियो से विवाह करके अपने प्रेम का निर्वाह करते है। उनकी कुल मिलाकर १७००० रानियाँ है।[१७८]

लक्ष्मण की शक्ति और प्रताप अद्भुत है। वे छोटी अवस्था मे ही राम के साथ म्लेच्छो को परास्त करते है, सागरावर्त धनुष को चढा देते है, चक्ररत्न की प्राप्ति करते हैं तथा रावण जैसे पराक्रमी को युद्ध मे परास्त करते है। तब फिर खरदूषण जैसे अनेक योद्धाओ को विजित करने का तो कहना ही क्या !

लक्ष्मण का शील भी प्रशसनीय है। वे महाविनयसम्पन्न है। उनका भ्रातृ-प्रेम अनुपम है। वे स्वभाव से तेजस्वी है। वन जाते हुए राम को देखकर उनका खून खौलने लगता है और वे एक बारगी सोचने लगते है —

"किमद्यैव करोम्यन्या सृष्टिमुत्सृज्य दुर्जनान्।
भरतस्य बलादाहो करोमि विमुखा श्रियम् ॥
विधातुरद्य सामर्थ्य भनज्मि चिरमूर्जितम्।
निरुद्ध्य पादयोर्ज्येष्ठ करोमि श्रीसमुत्सुकम् ॥"[१७९]

किन्तु वे अपने बडे भाई का ध्यान करके शान्त हो जाते है—'ज्येष्ठस्तातश्च जानाति साम्प्रतासाम्प्रत बहु।' वे परम नीतिज्ञ हैं। वे सीता मे मातृबुद्धि रखते है। वे हृदय के कुछ भावुक भी हैं, इसीलिये सूर्यहास खड्ग से शम्बूक वध करने के बाद जब वे पास आयी चन्द्रनखा को राम के द्वारा लौटाया हुआ पाते हैं तो उसे देखने की उत्सुकता उनके चित्त मे रह जाती है और उसे ढूढते फिरते है तथा सोचते है —

"आयान्त्येव सती कस्माद् दृष्टमात्रा न सा मया।
स्तनोपपीडनाश्लेष परिरब्धा हतात्मना ॥" (पद्म० ३४।११८)

---

१७६ पद्म०, २५।२६, और भी वही, ३४।६, ३८।८७, ७०।८५

१७७ वही, ४८।५३

१७८. वही, ९४।१७

१७९. वही, ३१।१९५-१९८

वे परम विलासी है।

साथ ही लक्ष्मण परम जिन-भक्त है। वे मुनियो का उपदेश सुनते है, उनके उपसर्ग दूर करने मे राम को सहायता देते है। अन्त मे भ्रातृप्रेम का परिचय देकर प्राण छोड देते है तथा नरक मे जाते है।

भरत : भरत को प्रारम्भ से ही एक विवेकी पुरुष के रूप मे चित्रित किया गया है। वे पिता दशरथ के दीक्षा के विचार से प्रभावित होकर स्वय भी दीक्षा लेना चाहते है। उनके वैराग्य को दूर करने के लिए केकया उनके लिए दशरथ से राज्य माँगती है किन्तु वे उसे स्वीकार नही करते। वे 'नवेन वयसा कान्त.' होकर भी प्रव्रज्या लेना चाहते है और अपने विवेक का परिचय राजा को देते है जिस पर राजा कहते है—'वत्स, धन्योऽसि विवुद्धो भव्यकेसरी'। वे 'विनीताना शिरसि स्थित.' है।[१८०]

भरत का भ्रातृप्रेम बड़ा प्रवल है; वे राम को लौटाने के लिए जाते हैं और कहते है —

"उत्तिष्ठ स्वपुरी याम· प्रसाद कुरु मे प्रभो।
राज्य पालय नि.शेष यच्छ मेऽतिसुखासिकाम्॥
भवामि छत्रधारस्ते शत्रुघ्नश्चमराश्रित.।
लक्ष्मण. परमो मन्त्री सर्वं सुविहित ननु॥"[१८१]

किन्तु राम के चले जाने पर उन्ही के अनुरोध से इस शर्त पर राज्य चलाते है कि उनके लौटते ही वे दीक्षा ले लेगे।

भरत प्रतापी है। वे राजा अतिवीर्य को परास्त करते है। जव भामण्डल आदि से लक्ष्मण-शक्ति का समाचार सुनते है तो वे एकदम सेना को तैयार करते है।

वे परम जैनी है। उनके दर्शन कर त्रिलोकमण्डन हाथी भी शान्त हो जाता है। अन्त मे वे राम के प्रत्यावर्तन पर अपनी १५० रानियो और अनेक पुत्रो को विलखता छोड़कर दीक्षा धारण कर लेते है। वे अष्ट कर्मो का क्षय करके निर्वाण प्राप्त करते है।

शत्रुघ्न : 'पदमपुराण' मे शत्रुघ्न का कोई अधिक विशिष्ट स्थान नही है। वे दशरथ की सुप्रभा रानी से उत्पन्न है और दशरथ के सव से छोटे पुत्र है।[१८२] उनका मुख्य कथा मे कोई विशिष्ट योगदान नही है। ८९ वें पर्व मे उनकी वीरता

१८० दे० 'पद्मपुराण', ३१।१३२, १४७, १४८
१८१. वही, ३२।१२२, १२३
१८२. वही, २५।३६, ३९

और जैन-धर्मपरायणता के एक साथ दर्शन होते हैं जब कि वे मधुसुन्दर से घोर युद्ध करते हुए शूलरत्न से उसे घायल कर देते है और घायल अवस्था मे उसे केशलुचन करके दीक्षा लेता हुआ देख उसके चरणो मे गिर कर क्षमा माँगते है। पूर्वभवो के सस्कार के कारण मथुरा के प्रति उनका विशेष आकर्षण है। वे अन्त मे ससार के आकर्षणो से विमुख होकर श्रमणत्व प्राप्त कर लेते हैं —

"छित्वा रागमय पाश निहत्य द्वेषवैरिणम्।
सर्वसगविनिर्मुक्त शत्रुघ्न श्रमणोऽभवत् ॥"[१८३]

लवणाकुश : अनगलवण और मदनाकुश का सयुक्त नाम लवणाकुश है। ये दोनो राम द्वारा निर्वासित सीता के पराक्रमी पुत्र हैं जो पुण्डरीकपुर नगर मे, राजा वज्रजघ के महल मे उत्पन्न हुए है। वचपन से ही वे भव्य व्यक्तित्व वाले है, सिद्धार्थ क्षुल्लक से समस्त विद्याओ को अधिगत करते है, दिग्विजय करके अपना प्रताप दिखलाते है, अन्याय के विरोधी हैं और अयोध्या के राजा सीतानिर्वासनकर्त्ता राम पर चढाई कर देते है। वे जैन है।

राम-पक्ष के स्त्री पात्र

अपराजिता दर्भस्थलपुराधीश सुकोशल की अमृतप्रभावा रानी से उत्पन्न अपराजिता दशरथ की प्रधान महिषी और राम की माता है। रामवन-गमन के अवसर पर वह राम के साथ जाना चाहती है और अपने अयोध्या-निवास पर चिन्ता व्यक्त करती है। पति के दीक्षा लेने पर उसकी दशा वडी दयनीय हो जाती है (शोक भेजेऽपराजिता। पद्म० ३२।१०२)। वह पुत्र के वियोग मे विलखती है तथा राम के प्रत्यावर्तन पर उनसे वडे आनन्द से मिलती है। इस प्रकार वह एक पुत्रवत्सला माता के रूप मे आती है।

सुमित्रा : 'पद्मपुराण' की सुमित्रा 'कमलसकुल'-नगराधीश सुवन्धुतिलक की मित्रा रानी से उत्पन्न पुत्री और दशरथ की रानी है। इसका नाम 'केकयी' है और चेष्टाओ के कारण 'सुमित्रा' भी।[१८४] लक्ष्मण इसके पुत्र हैं। इसका कोई विशिष्ट चरित्र-चित्रण नही हुआ है।

केकया : कौतुकमगलनगराधिपति शुभमति की पृथुश्री नामक स्त्री से उत्पन्न केकया दशरथ की तीसरी रानी है। वह समस्त कलाओ मे पारगत है।[१८५] वह वीरागना, बुद्धिमती एव मनोविज्ञान की पारखी है। दशरथ का रथ चलाना,

---

१८३ पद्मपुराण ११९।३८

१८४ पद्मपुराण २२।१७५

१८५ पद्मपुराण के २४ वें पर्व मे उसकी कलाओ का विस्तृत परिचय दिया गया है।

भरत के विवाह का अनुरोध करना तथा राम को मनाना आदि इसके प्रमाण है। वह अपने वर को अवसर के लिए सुरक्षित रखकर अपने धैर्य का परिचय देती है। भरत को दीक्षा से विरक्त कराने के लिए राजा से उसके लिए राज्य माँगती है, उसका राम को वन भेजने का इरादा नही है। बाद मे वह राम को लौटाने भी जाती है 'साकेत' की कैकेयी की तरह वह भी राम को बहुत मनाती है। लक्ष्मण-शक्ति पर वह अपने भाई द्रोणमेघ की कन्या को लक्ष्मण के पास भिजवाकर अपने कर्त्तव्य एव वात्सल्य का परिचय देती है। वह जिन-भक्ता है और अन्त मे भरत के दीक्षा लेने पर स्वय भी आर्यिका बन जाती हैं।

सीता सीता 'पद्मपुराण' की नायिका है। उसके अनेक विशेषण कवि ने स्वय भी प्रयुक्त किये हैं और अनेक पात्रो से भी कराए है। उसका व्यवहार तो उसे अत्यन्त ऊँचा उठा देता है।

सीता जनक की पुत्री है। जन्म लेने के कुछ समय बाद से ही उसके शरीर का विकास होने लगता है। वह शैशव मे ही अत्यन्त भव्याकृति दिखाई देती है[१८६]

---

१८६ सीता-वर्णन की ये पक्तियाँ द्रष्टव्य है—

"प्रमदमुपगताना योपिताभगदेशे
पृथुतनुभवकान्त्या लिम्पती दिक्समूहम्।
विपुलकमलयाता श्रीरिवासौ सुकण्ठा
शुचिहसितसितास्याऽनर्वताम्भोजनेत्रा ॥
प्रभवति गुणसस्य येन तस्या समृद्ध
भजदखिलजनाना सौख्यसम्भारदानम्।
नदतिशयमनोज्ञा चारुलक्ष्मान्विताङ्गा
जगति निगदितासौ भूमिसाम्येन सीता ॥
वदनजितशशाङ्का पल्लवच्छायपाणि
शितिमणिसमतेज -केशसघातरम्या।
जितसमदनहसस्त्रीगति सुन्दरभ्रू-
र्बकुलसुरभिवक्त्रामोदवद्धालिवृन्दा ॥
अतिमृदुभुजमाला शक्रशस्त्रानुमध्या
प्रवरसरसरम्भास्तम्भसाम्यस्थितोरु।
स्थलकमलसमानोत्तुगपृष्ठोज्ज्वलाङ्घ्रि
प्रभवदतिविशालच्छायवक्षोजयुग्मा ॥
प्रवरभवनकुक्षिष्वत्युदारेषु कान्त्या
विविधविहितमार्गा लब्धवर्णा पर सा।
सततमुपगतान्त सप्तकन्याशताना-
मतिशयरमणीय शास्त्रमार्गेण रेमे ॥

उसका राम से विवाह होता है। राम के समीप खड़ी हुई सीता की शोभा अनुपम प्रतीत होती है[१८७] तथापि लोग उसके लिए 'वैदेही रामदेवस्य श्रीसमा वनिता-ऽभवत्' कहकर उपमा देने का प्रयत्न करते हैं।

वह भ्रातृस्नेहिनी एवं पतिव्रता है। राज्य छोड़कर जाते हुए राम के साथ 'यत्र त्वं तत्र चाप्यहम्' (३१।१८५) कहकर वह चल देती है, उसी प्रकार जिस प्रकार इन्द्र के पीछे इन्द्राणी। वन में अनेक घटनाओं से भयभीत होती है, इससे उसकी कोमलता सिद्ध होती है। वह परम दयालु है और राजा अतिवीर्य को

अपि दिनकर-दीप्ति कौमुदी चन्द्रकान्ति
सुरपतिमहिषी वा कापि वा सा सुभद्रा।
यदि भजति तदीयासंगशोभा कथंचि-
न्नियतमतिमनोज्ञारतास्ततो वेदनीया॥
विधिरिव रतिदेवी कामदेवस्य बुद्धया
दशरथतनयस्याकल्पयत्पूर्वजस्य।
जनकनरपतिस्ता सर्वविज्ञानयुक्ता
ननु रविकरमगम्योचिता पद्मलक्ष्मी.॥"

(पद्मपुराण २६।१६५-१७१)

अन्यत्र युवती सीता का वर्णन इस प्रकार है---

"अपश्यच्च महामोहमप्रवेशनकारिणीम्।
रत्यरत्यो समुद्धर्त्री साक्षाल्लक्ष्मीमिव स्थिताम्॥
चन्द्रमःकान्तवदना बन्धूकाभवराधराम्।
तनूदरी च लक्ष्मी च जलजच्छदलोचनाम्॥
महेभकुम्भशिखरप्रोत्तुंगविपुलस्तनीम्।
यौवनोदयसम्पन्ना सर्वस्त्रीगुणमद्गताम्॥
सहितामिव कामेन कान्तिज्या दृष्टिमायकाम्।
निजा चापलता हन्तुं सुखेनैव यथेप्सितम्॥
सर्वस्मृतिमहाचारी रूपातिशयवर्तिनीम्।
सीता मनोभवोदारज्वरग्रहणकारिणीम्॥"

(पद्म०, ४४।६०-६४)

१८७ "पार्श्वस्थया तया रेजे स तथा सुन्दरो यथा।
यथायमिति दृष्टान्तं यो गदेत् स गतत्रप॥"

(पद्म०, २८।२४४)

छुडवा देती है। वह नृत्यादिकलावेदिनी है तथा जिनेन्द्र की वन्दना करती है।[१८८] राम उसे 'साध्वि, पण्डिते, चारुदर्शने, गुणमण्डने' आदि विशेषणो से सम्बोधित करते हैं। मुनियो के लिए वह शुच्यगी 'महाश्रद्धापरीता' है। वह वन मे अणुव्रत पालन करती है।

सीता-रूपी स्वर्ण की परीक्षा रावण के द्वारा हरण-रूपी-अग्नि मे होती है। वह तेजस्विनी निर्भय पतिव्रता है। वह विमान मे तृण की ओट रखकर रावण को भर्त्सित करती है।[१८९] जब मन्दोदरी सीता को फुसलाने के लिए जाती है तब सीता ने उसे जो लताड-पिलाई है वह देखने के योग्य है। उसके उत्तर मे उसकी रामविषयक एक-निष्ठता दमकती-चमकती-सी निकलती है।[१९०] इसके बाद वह रावण के

---

१८८ "ततो विदितनिश्शेषचारुनर्तनलक्षणा।
मनोज्ञाकल्पसम्पन्ना हारमाल्यादिभूषिता॥
लीलया परया युक्ता दर्शिताभिनया स्फुटम्।
चारुबाहुलताभारा हावभावादिकोविदा॥
लयान्तरवशोत्कम्पिमनोज्ञस्तनमण्डला।
निश्शब्दचरणाम्भोजविन्यासा चलितोरुका॥
गीतानुगमसम्पन्नसमस्ताङ्गविचेष्टिता।
मन्दरे श्रीरिवानृत्यज्जानकी भक्तिचोदिता॥" (पद्म० ३९, ५३-५३)

१८९ सीता की रावण को फटकार इस प्रकार है—
"अपसर्प ममाङ्गानि मा स्पृश पुरुषाधम।
निन्द्याक्षरामिमा वाणीमीदृशी भाषसे कथम्॥
पापात्मकमनायुष्यमस्वर्ग्यमयशस्करम्।
अगदीहितमेतत्ते विरुद्ध भयकारि च॥
परदारान् समाकाक्षन् महादुःखमवाप्स्यसि।
पश्चात्तापपरीताङ्गो भस्मच्छन्नानलोपमम्॥
महता मोहपङ्केन तवोपचितचेतस।
मुधा धर्मोपदेशोऽयमन्धे नृत्यविलासवत्॥
इच्छामात्रादपि क्षुद्र बद्ध्वा पापमनुत्तमम्।
नरके वासमासाद्य कष्ट वर्तनमाप्स्यसि॥" (पद्म० ४६।१२-१६)

१९० "वनिते! सर्वमेतत्ते विरुद्ध वचन परम्।
सतीनारीदृश वक्त्रात्कथ निर्गन्तुमर्हति॥
इदमेव शरीर मे छिन्द भिन्दाथवा हन।
भर्तु पुरुषमन्य तु न करोमि मनस्यपि॥
सनत्कुमाररूपोऽपि यदि वाखण्डलोपम।
नरस्तथापि त भर्तुरन्य नेच्छामि सर्वथा॥
युष्मान् ब्रवीमि सक्षेपाद्दारान् सर्वानिहागतान्।
यथा ब्रूत तथा नैतत्करोमि कुरुतेप्सितम्॥"

प्रेमप्रस्ताव पर-ठोकर मार देती है जिसके कारण उसे अनेक त्रास झेलने पड़ते हैं किन्तु वह अपने पथ से रंचमात्र भी विचलित नहीं होती। रावण की माया उसे न्याय्य पथ पथ से टस से मस भी नहीं कर सकी।[१९१] 'सीता दशाननं मेने तृणादपि जघन्यकम्।[१९२] वह बिचारी राम के विरह में 'स्निग्धज्वलनसंकाशा, बाष्पपूरित-लोचना, करविन्यस्तवक्त्रेन्दुर्मुक्तकेशी और कृशोदरी' हो जाती है; श्रीराम के लिए चूड़ामणि भेजती है लक्ष्मण के शक्ति लगने के समाचार से वह परम व्याकुल होती है। युद्ध से पूर्व जब वह दशानन से कह कहती है कि 'हे दशानन बाण चलाने पूर्व राम से मेरा यह सन्देश कह देना कि आपके बिना भामण्डल की बहिन घुट-घुटकर मर गई है' और मूर्च्छित हो जाती है तो रावण भी पिघल जाता है।

अस्तु, विकट विरह के अनन्तर रावण-वध के बाद राम उससे मिलते हैं और लका में ६ वर्ष उसके साथ बिताते हैं। पर हाय रे भाग्य! जनापवाद के कारण सीता अयोध्या से निकाल दी जाती है, वह भी अपने पति के द्वारा। वह फिर भी इसे झेल जाती है। वन से उसने राम के लिए सन्देश भिजवाया कि 'जिस प्रकार मुझे आपने छोड़ दिया इस प्रकार जैन-धर्म को मत छोड देना आदि' जिसे पढ़कर पाठकों की आँखों में आँसू आ जाते हैं।

लवणांकुश के जन्म लेने पर वह एक वात्सल्यमयी माता हो जाती है। मातृत्व और पत्नीत्व का वह आदर्श उदाहरण है।

वह अग्नि-परीक्षा में सफल होती है, साथ ही संसार से विरक्त होकर दीक्षा ले लेती है। कठोर तप करके प्रतीन्द्र बनती है। फिर भी लक्ष्मण की उसे चिन्ता है और उसे प्रबोधती है। अन्त में राम केवली से पूछकर स्वर्ग चली जाती है।

सीता के चरित्र मे कुछ स्थल उसकी उदात्तता के व्याघातक से हैं। यथा—भरत के साथ क्रीड़ा करना, राम की तपस्या मे विघ्न डालना आदि। फिर भी समग्रतः सीता का चरित्र महान् है।

---

१९१. "प्रचण्डैर्विगलद्गण्डै र्गिरिभिर्मत्तदन्तिभिः।
भीषिताप्यगमत्सीता शरणं न दशाननम्॥
दंष्ट्राकरालवदनैर्व्याघ्रैर्दृष्टहति स्वनैः। भीषिता ॥
चलत्केसरसंघातैः सिंहैरुग्रनखाङ्कुशैः। भीषिता ॥
ज्वलत्स्फुलिङ्गनीलाभैर्लोलजिह्वैर्महोरगैः। भीषिता ॥
व्यात्ताननैः कृतोत्पातपतनैः क्रूरवानरैः। भीषिता ॥
तमःपिण्डाभिरैः स्फुरैर्वैतालैः कृतहुङ्कृतैः। भीषिता ॥
एवं नानाविधैरुग्रैरुपसर्गैः क्षणोद्भवैः। भीषिता ॥ (पद्म० ४६।९८-१०४)

१९२. पद्मपुराण ४६।१३१

रावणपक्ष के पुरुष-पात्र

रावण : 'पद्मपुराण' की पात्र-सृष्टि मे रावण का स्थान बहुत महत्त्वपूर्ण है। रविषेण ने साक्षात् तथा परम्परा से रावण के चरित्र को पर्याप्त उच्छ्रित किया है। श्रेणिक एवं गौतम गणधर के मुख से स्पष्टत रविषेण ही बोलते हुए उसकी राक्षसता का खण्डन करते है :—

> "अहो कुकविभिर्मूर्खैर्विद्याधरकुमारक।
> अभ्याख्यानमिद नीतो दु कृतग्रन्थकत्यकै ॥"
> "रावणो राक्षसो नैव न चापि मनुजाशन।
> अलीकमेव तत्सर्व यद्वदन्ति कुवादिन ॥"[१९३]

सम्भवत: इन्द्र विद्याधर से पराजित अलकारपुर (पाताललका)—निवासी सुमाली की प्रीतिमती रानी मे उत्पन्न रत्नश्रवा एव व्योमविन्दु की कनीयसी सुता केकसी से समुत्पन्न अष्टम प्रतिनारायण रावण के लिए जितने विशेषण आचार्य रविषेण ने स्वत प्रयुक्त किये है अथवा पात्रो के मुख से कहलाये है उतने अन्य किसी पात्र के लिए नही। आचार्य ने स्वय उसे स्थान-स्थान पर 'आदित्यमण्डलोपमदर्शन', 'परमाद्भुत', 'कोऽपि महान् नर', 'कृतसिद्धनमस्कृति', 'पूर्णेन्दुसौम्यवदन', 'विसर्पत्कान्तितेजा', 'प्रवणचेता', 'ध्यानस्तम्भसमासक्तनिश्चलस्वान्तधारण', 'स्वेच्छाकल्पितसम्पद्', 'रणमहोत्सव', 'स्वपराक्रमगर्वित', 'कैलासकम्पन', 'साधूना प्रणत.', 'वशी', 'पृथुशासन', 'विनयानतविग्रह', 'प्रणतेपु दयाशील.', 'सातत्यप्रवृत्तपरमोदय', 'श्रीवत्सप्रभृतिस्तुत्यद्वात्रिंशल्लक्षणाचित', 'मनश्चौर,' 'प्राणधारिणा महोत्सव', 'इन्दीवरचयश्याम. स्त्रीणामौत्सुक्यमाहरन्', 'नयशास्त्रविशारद', 'सदाचारपरायण', 'कालवस्तुयोजनकोविद', 'यमविमर्द', 'मरुत्वमखविद्विट्', 'स्फुरन्मौलिमहारत्नकेयूरवरसद्भुज', 'बन्धुभृत्यवर्गाभिनन्दित', 'नाकाधिपप्रख्य', 'यथाभिमतनिर्वृत्त', 'परदुर्ललितप्रिय', 'देवाधिपग्रह', 'सगत. परया लक्ष्म्या', "सम्यग्दर्शनभावित', 'महाद्युति', 'द्वितीय इव देवेन्द्र', 'पृथुविक्रम', 'खगेशी', 'प्रीतिस्मितानन', 'प्रमदान्वितमानस', 'रणकोविद', वहुमानधारी', 'क्षतसर्वशत्रु', 'विशालकान्ति', 'महानुभाव', एवम् 'महाप्रभाव. खण्डत्रयस्यानुपमानकान्ति राजा'–प्रभृति विविध विशेषणों से विशेषित किया है[१९४] तथा

---

१९३ पद्मपुराण २।२३७, ३।२७ और भी वही १९।१३८।

१९४ दे० 'पद्मपुराण' ७।२१८,२५५, २६३, २७१, २८०, २९०, ३७०, ८।२००, ९।१११,२१४,२२२, १०।८०,१४३, ११।३०७,३२७, ३३७,३७१,३७२, १२।५,३३०,३३२, ३४९,३७०,३७४, १४।१,२,४,११,१२,३७७, १८।२, १९।२४,२६,६१,१२८,१२९,१३०, १३२ आदि अनेक स्थल।

श्रेणिक, गौतम गणधर, रत्नश्रवा, विभीषण, अनेक देवियो, अनावृत यक्ष, सुमाली, अनेक मदनातुर नारियों, कृषको, सहस्रार, यहाँ तक कि राम-लक्ष्मण आदि अनेक पात्रो ने उसे विविध स्थलो पर 'विद्याधरकुमारक'. 'त्रिजगद्गतकीर्त्ति', 'महासत्त्व', 'कुलवृद्धिविधायी', 'भवान्तरनिबद्ध सुकृत से उत्तमक्रिय', 'सुरो का भी वल्लभ', 'सुरोपम', 'कान्त्युत्सारिततारेश', 'दीप्त्युत्सारितभास्कर', 'गाम्भीर्य-जिततोयेश', 'स्थैर्योत्सारितभूधर', 'सुरो से भी अपराजित', 'दान से मनोरथ को पूर्ण करने वाले जलद के समान', 'चक्रवर्तिसमृद्धिवान्', 'वरसीमन्तिनीचेतोलोच-नालीमलिम्लुच्', 'श्रीवत्सलक्षणात्यन्तराजितोत्तुगवक्षा', 'नाममात्रश्रुतिध्वस्तमहा-साधनशत्रु', 'साहसैकरसासक्त', 'शत्रुपद्मक्षपाकर', 'श्रीवत्समण्डितोरस्क', 'व्यायताततविग्रह', 'अद्भुतैकरसासक्तनित्यचेष्ट', 'महाबल', 'अखिल जगत् को भस्मच्छन्नाग्निवत् भस्म करने मे शक्त', 'विरुद्धसमप्रयोगस्रष्टा', 'महामन', 'महामति','उदारसत्त्व-दिवाकरजित्वरीद्युति-समुद्रोत्तारी गाम्भीर्य-पराक्रम-धारी', 'रक्ष कुलविशेषक', 'लोकमहाश्चर्यकारिचेष्ट', 'उत्साहपरायण', 'बलविक्रम', 'सत्त्वप्रतापविनयश्रीकीर्ति-रुचिसमाश्रय', 'महोत्सव', 'कुल का शुभलक्षण', 'उपमानविमुक्तेन रूपेण हृतलोचन', 'सिद्धविद्य', 'जगत् का कोई महान् अद्भुत-कारी', 'नराणामुत्तम', 'सुरेन्द्रसुन्दर','साक्षात् वीररस से ही निर्मित शरीर वाला', 'अनन्यसदृशप्रतापवान्', 'महातेजा', 'नयशास्त्रविशारद', 'महासाधनसम्पन्न', 'उग्रदण्ड', 'महोदय', 'शत्रुमर्द', 'धन्य', 'त्यागी', 'महाविनयसंगत', 'वीर्यवान्', 'उत्तमैश्वर्य', 'गुणविभूषण', 'सज्जन' 'वराकृति', 'इन्द्रातिक्रामकपराक्रमधारी', 'दर्शनीय वस्तुओ का एकमात्र भाजन', 'महाविभवपात्र', 'उत्तम', 'भव्य', 'कल्याणसम्भार', 'सर्वेषा प्राणिनाम् महाबन्धु', 'लोकादगामिगुणोपेत, 'मनोहर', 'परोपकृतिकारणमूर्त्तिधारी', 'रक्ष प्रभु', 'बाहुओ एव पुण्य की उदार महिमा दिखाने वाला, 'क्षमावान्', 'समर्थ', 'कुन्दनिर्मलकीर्त्ति, 'गुणालय', 'देवाना प्रिय', 'श्रीमान् विद्याधराधीश', 'विशालपुण्य', 'वीरमूर्द्धस्थ', 'उदारकीर्ति', 'शक्रेणाप्य-पराजित', 'सर्वविद्याधराधीश', 'पराजितसुराधिप' 'त्रैलोक्यसुन्दर', 'स्फीतबल,' 'दीप्तमहाविद्याविशारद', 'स्वामी भरतखण्डाना यस्त्रयाणा निरंकुश:', 'विदुषा श्रेष्ठ', 'धर्माधर्मविवेकी, एव अन्य अनेक उत्तम विशेषणो से स्मरण किया है,[१९५] साथ ही उसकी महनीयता के द्योतक ऐसे-ऐसे भाव अभिव्यक्त किये है—

१९५ दे० पद्मपुराण २।२३७, ७।१८६-१९७,२४६-२४९,२७३,३२३,३४१,३७८-३९१, ८।१४,१५,४५,११६,४८६; ९।५२,५३,१९८,२०८,२११, १०।१६१, ११।२७५,३०६,३३४, ३५३,३५४, ३५८; १२।१०१,१०७,११७,१५६, १३।४,२६,३०,३१, १६।३६, १९।९२,९५,९६, ४४।२२, ४६।७५,२०६, ४७।१३, ४८।९३-९५ आदि अनेक स्थल ।

"योषित् पुण्यवती सोऽय धृतो गर्भे ययोत्तम. ।
पिताप्यसौ कृतार्थत्व प्राप्त कृत्वास्य सम्भवम् ।।
श्लाघ्य स बन्धुलोकोऽपि यस्याय प्रेमगोचर ।
अनेनोपगता यास्तु तासा स्त्रीणा किमुच्यते ।।"[१९६]

तथा—

"नून भद्र समुत्पत्ति सज्जनाना भवादृशाम् ।
सममेव गुणै सर्वलोकाह्लादनकारिभि· ।।
आयुष्मन्नस्य शौर्यस्य विनयोऽय तवोत्तम ।
अलकारसमस्तेऽस्मिन् भुवने श्लाघ्यता गत ।।
भवतो दर्शनेनेद जन्म मे सार्थक कृतम् ।
पितरौ पुण्यवन्तौ तौ त्वया यौ कारणीकृतौ ।।
क्षमावता समर्थेन कुन्दनिर्मलकीर्त्तिना ।
दोषाणा सम्भवाशका त्वया दूरमपाकृता ।।
एवमेतद्यथा वक्षि सर्व सम्पद्यते त्वयि ।
ककुप्करिकराकारौ कुरुत. किं न ते भुजौ ?" आदि[१९७]

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि एक-आध पात्र के अतिरिक्त रावण को सभी अच्छी दृष्टि से देखते है तथा उनके चरित्र की विशेषताओ से प्रभावित है ।

किसी भी पात्र का चरित्र-चित्रण करने के लिए उसकी तीन विशेषताओ को देखना औपयिक होता है—(१) सौन्दर्य, (२) शक्ति तथा (३) शील । रावण के चरित्र मे आचार्य रविषेण ने तीनो का ही भव्य सन्निवेश किया है ।

जहाँ तक रावण के शारीरिक सौन्दर्य एवम् आकर्षक वेशभूषा का प्रश्न है, वह अत्यन्त चेतोहर है । वह निर्धौतसायकश्याम, पक्वबिम्बफलाधर, मुकुटन्यस्त-मुक्ताशुसलिलक्षालितालक इन्द्रनीलप्रभोदारस्फुरत्कुन्तलभारक, सहस्रपत्रनयन, शर्वरीतिलकानन,सज्यचापनतस्निग्धनीलभ्रूयुगराजित, कम्बुग्रीव, हरिस्कन्ध, पीन-विस्तीर्णवक्षा, दिङ्नागनासिकाबाहु, वज्रवमन्ध्यदुर्विध, नागभोगसमाकारप्रसृत, भग्नजानुक, सरोजचरण, न्याय्यप्रमाणस्थितविग्रह, श्रीवत्सप्रभृतिस्तुत्यद्वात्रिंशल्ल-क्षणाचित, रत्नरश्मिज्ज्वलन्मौलि, हारराजितवक्षा, प्रत्यर्द्धचक्रभृद्भोग[१९८], लक्ष्मी-धरसमाकारदिव्यरूपसमन्वित तथा नारीमनकर्षणविभ्रम है[१९९] । उसके इस

---

१९६ पद्मपुराण ११।३३४-३३५ ।
१९७ पद्म० १२।२३-२७ ।
१९८ दे० पद्म०, ११।३२२-३२८ ।
१९९ वही, ६७।२४ और ६७।२५ ।

लोकोत्तर सौन्दर्य से नारियाँ वशीभूत हो जाती है, इसी के कारण उसकी अठारह हजार स्त्रियाँ प्रसन्न हो उससे रमण करती हैं, मन्दोदरी सदृश उदात्त पत्नी उसे इसी सौन्दर्य के कारण प्राप्त हुई है[२००]।

रावण अपरिमित शक्ति का निकाय है। जब वह गर्भ मे आता है तभी उसकी माता की चेष्टाएँ क्रूर होने लगती है जिनसे रावण के अपार शक्तिशाली होने का अनुमान होने लगता है।[२०१] नागेन्द्र-प्रदत्त हार से क्रीडा करना तथा उसमे उसके मुखो का प्रतिबिम्ब पडना—जिससे उसे 'दशाननत्व' प्राप्त हुआ—उसकी शक्ति के ही द्योतक है। बचपन की क्रीडा भी उसकी भयकर ही होती है।[२०२] वह 'त्रिलोक-मण्डन,' हाथी को वश मे कर लेता है।[२०३] वह कैलाससक्षोभ, मरुत्वमखसूदन, यमविमर्द, महाप्रभाव, स्वपराक्रमगर्वित, बलवान्, महासत्त्व, नाममात्रश्रुतिध्वस्त-महासाधनशत्रु, साहसैकरसासवत, शत्रुपद्मक्षपाकर तथा इन्द्र जैसे पराक्रमशाली को भी विजित करने वाला है। वह त्रिकट योद्धा और दिग्विजयी है। वह चतुरगिणियो का अधिपति है।

जहाँ तक रावण के शील का प्रश्न है—वह आदर्श वीर है। वह शरणागत राजाओ को उनके राज्य लौटा देता है—'जित्वा विद्याधराधीशान् द्वीपान्तरगतान् वशी। भूयो न्ययोजयत् स्वेषु राष्ट्रेषु पृथुशासन।'[२०४] उसकी सच्ची वीरता का पता तब चलता है जबकि राम के साथ युद्ध करता हुआ वह शक्तिनिहत लक्ष्मण को देखने के लिये लालायित राम को अनुमति प्रदान करके युद्ध से लौट जाता है। वह सच्चा साधक विद्याधर है। अनावृत यक्ष के द्वारा प्रत्यूह उपस्थित किये जाने पर भी वह विद्यासाधन से पराङमुख नही होता। वह सर्वशास्त्रविशारद है। वह नीति का पण्डित है जिसका परिचय हनूमान्, विभीषण तथा मन्त्रियो आदि अनेक पात्रो से वार्तालाप करते समय वह देता है। वह मातृभक्त है—जिसका प्रमाण वैश्रवण को जीतना है। अपने वश का वह उन्नतिकर्त्ता है, प्रजा का पालक है। जिस मार्ग से वह निकल जाता है, कृषक उसकी प्रशसा करते है। अनेक पात्रो के हृदय की श्रद्धा उसे प्राप्त है। धर्माधर्म का वह विवेकी है। नलकूबर की स्त्री उपरम्भा को उसने जो उपदेश दिया है वह वस्तुत उसे एक उदात्तचरित्र पुरुष की उपाधि देता है। अनन्त-बल केवली के समक्ष उसकी यह प्रतिज्ञा—'भगवन्न मया नारी परस्येच्छावि-

२००. दे० वही, ११।३२९।

२०१ वही ७।२०४-२१०

२०२. वही, ७।२११-२२८

२०३. वही, ८।४१०-४३२

२०४. वही, १०।२०

र्वजिता। गृहीतव्येति नियमो ममाय कृतनिश्चय ।"[२०५] उसकी चारित्रिक दृढता की द्योतक है। उसकी दिनचर्या से उसके सन्तुलित जीवन का पता चलता है। वह स्वाभिमानी और अन्याय का विरोधी है। अपने सगे भाई भानुकर्ण के द्वारा वरुण के नगर की स्त्रियो के पकडे जाने पर उसने उसे जो फटकार पिलाई है उससे उसकी सज्जनता टपकती है —

'अहोऽत्यन्तमिद वाल त्वया दुश्चरित कृतम् ।
कुलनार्यो यदानीता बन्दीग्रहणपंजरम् ।।
दोष: कोऽत्र वराकीनां नारीणा मुग्धचेतसाम् ।
खलीकारमिमा येन त्वयका प्रापिता मुधा ।।[२०६]

वह वीरो का सम्मानकर्त्ता है, हनूमान् आदि को दिया गया सम्मान इसी का प्रतीक है। वह किसी से किसी वस्तु की याचना नही करना चाहता। यहाँ तक कि 'अमोघविजया' विद्या को भी उस 'ग्रहणदुर्विधी' ने कठिनता से ग्रहण किया।[२०७] वह बडो के प्रति परम विनयावत है, इन्द्र विद्याधर के पिता सहस्रार के प्रति उसकी यह उक्ति—

'यथा तात प्रतीक्ष्यस्त्व वासवस्य तथा मम ।
अधिक वा तत: कुर्या कथमाज्ञाविलघनम् ।।
गुरव. परमार्थेन यदि न स्युर्भवादृशा ।
अधस्ततो धरित्रीयं व्रजेन्मुक्ता धरैरिव ।।
पुण्यवानस्मि॰ यत्पूज्यो ददाति मम शासनम् ।
भवद्विधनियोगाना न पद पुण्यवर्जित. ।।[२०८]

उसकी विनीतता का ज्वलन्त उदाहरण है। वह परम जैन है। जैन मुनियो का वह सम्मान करता है, जैन मन्दिरो का निर्माण कराता है, जिनेन्द्र भगवान् की पूजा-स्तुति करता है एव जैन धर्मविरोधी ब्राह्मणो का दमन करता है।[२०९]

'भवितव्यता बलीयसी' के अनुसार वह राम की स्त्री सीता पर मोहित हो जाता है। वह स्वय पश्चात्ताप-युक्त होकर एवम् सबके समझाने पर भी दैववश हरी हुई सीता को राम के पास नही लौटाता। इसी कारण धर्माधर्मविवेकज्ञ, सर्वशास्त्रविशारद तथा विद्वानो मे श्रेष्ठ होने पर भी उसकी अप्रतिष्ठा होती है

---

२०५ वही, १४।३७१
२०६. वही, १९।८४-८५
२०७ वही, ६५।४६
२०८ वही, १३।१४-१६
२०९ वही, ११वाँ पर्व

और राम के भाई लक्ष्मण के हाथ से उसका वध होता है। श्रीराम के ही शब्दो मे—'वह अल्पायुष्क नही है तथा जन्मान्तरसमार्जित पुण्यो से मरणपर्यन्त रक्षित रहा[२१०]।' अन्त मे मरकर वह नरक जाता है।

संक्षेप मे, रावण अत्यन्त उदात्त कोटि का पात्र है तथा उसका अन्यथा चित्रण करना वस्तुस्थिति से मुँह मोडना है। वह राक्षस नही अपितु राक्षसवंशी था। रविषेण के शब्दो मे—

'अन्यन्तमूढकविभि परमार्थदूरै-
लोकेऽन्यथैव कथित पुरुष पुराण ॥'[२११]

कुम्भकर्ण 'पद्मपुराण' मे रावण का अनुज 'भानुकर्ण' ही 'कुम्भकर्ण' है। सुन्दर कपोलो के कारण इसका नाम 'भानुकर्ण' रखा गया—

'भानुकर्णस्ततो जात कालेऽनीते कियत्यपि।
यस्य भानुरिव न्यस्त कर्णयोर्गण्डशोभया ॥[२१२]

वह कुम्भपुर नगर के राजा महोदर की सुरूपाक्षी नामक स्त्री से उत्पन्न तडिन्माला नामक कन्या को प्राप्त करता है और इस कुम्भपुर के सम्बन्ध से ही उसका नाम 'कुम्भकर्ण' हो जाता है—

'तत्र कुम्भपुरे तस्य केनचित् कृतशब्दने।
श्वसुरस्नेहत कर्णौ सतत पेपतुर्यत ॥
कुम्भकर्ण इति ख्याति ततोऽसौ भुवने गत।
धर्मसक्तमतिर्वीर कलागुणविशारद ॥'[२१३]

रविषेण के अनुसार वह भद्र पुरुष है, मासादि का भक्षक नही है—

'अय स प्रखलै ख्यातिमन्यथा गमितो जनै।
मासासृग्जीवनत्वेन तथा षण्मासनिद्रया ॥
आहारोऽस्य शुचि स्वादुर्यथाकामप्रकल्पित।
सुरभिर्बन्धुयुक्तस्य प्रथम तर्पितातिथि ॥
सन्ध्यासवेशनोत्थानमध्यकालप्रवर्तिनी।
निद्रास्य शेषकालस्तु धर्मन्यासक्तचेतस ॥

---

२१० वही, ६२।९१-९३
२११. वही, १९।१३८, और भी १९।१२८-१३८
२१२ वही, ६।२२३
२१३. वही, ८।१४४-१४५

परमार्थविवोधेन वियुक्ता पापचेतस ।
कल्पयन्त्यन्यथा साधून् धिक् तान् दुर्गतिगामिन ॥'[२१४]

वह विद्या सिद्ध करता है। वह वीर है और अनेक युद्धो मे रावण की ओर से लडता है किन्तु वरुण के नगर मे लूट करते समय स्त्रियो का अपहरण करके उसने अच्छा नही किया जिसके लिए उसे रावण से फटकार खानी पडती है। वह अनन्त-वल केवली की शरण मे निन्यप्रति जिनेन्द्र-वन्दना की प्रतिज्ञा लेता है। अन्त में राम से युद्ध करते हुए वन्दी हो जाता है एव छूटने पर दीक्षा ले लेता हैं।

विभीषण : 'पद्मपुराण' का विभीपण विद्याधरकुमार एव रावणानुज है। वह रावण का अत्यन्त सम्मान करता है। अपनी माता को वह रावण का प्रताप वताता है। वह विद्या-सिद्धि करता है। वह निमित्तज्ञानी से रावण की मृत्यु को जनक-दशरथापत्यजन्य जानकर दशरथ-जनक की हत्या का प्रयास करता है किन्तु वाद मे पश्चात्ताप करता है। वह रावणापहृत सीता के दु ख से सन्तप्त है। वह रावण को सीता को लौटाने के लिए नीतिपूर्ण सलाह भी देता है। वह अतिथि-सत्कार-कर्ता है, हनूमान् और राम का सत्कार इसका परिचायक है। उसकी नीतिज्ञता तव भी सिद्ध होती है जव वह नलकूवर की पत्नी उपरम्भा का मन न मारने के लिए रावण को परामर्श देता है।

किन्तु जव उसके समझाने पर भी रावण सीता को लौटाने के लिए सहमत नही होता और उसे तलवार से मारने को उद्यत हो जाता है तो वह भी खम्भा उखाडकर युद्ध के लिए सन्नद्ध हो जाता है। मन्त्रियो के वीच-वचाव करने पर वह तीस अक्षौहिणी सेना के साथ राम से जा मिलता है और राम को अनेक प्रकार के परामर्श एव साहाय्य देता है। वह उन्ही के पक्ष से रावण से लडता भी है। इस प्रकार वह एक अन्यायी भाई के विरोधी के रूप मे आता है किन्तु रावण की मृत्यु पर उसका भ्रातृप्रेम फिर जागृत हो जाता है और वह मूर्च्छित होकर फूट-फूटकर रोने लग जाता है, यहाँ तक कि आत्मघात की इच्छा करता है—

'सोदर पतित दृष्ट्वा महादु खसमन्वित- ।
क्षुरिकाया कर चक्रे स्ववधाय विभीपण ॥'[२१५]

वह राम के प्रति परम कृतज्ञ है। उन्हे लका का राज्य भी देना चाहता है, उनका परमातिथ्य करता है, चलने से पूर्व उनकी नगरी अयोध्या को कारीगरो से सजवाता है (पर्व ८१), लक्ष्मण-मृत्यु पर संवेदना प्रकट करने के लिए अयोध्या आता है। वह परम जिन भक्त है और अन्त मे दीक्षा से लेता है (पर्व ११६)।

२१४ वही, ८।१४६-१४९
२१५ वही, ७७।१

मेघवाहन और इन्द्रजित् : मेघवाहन और इन्द्रजित् रावण के पुत्र हैं। इन्द्रजित् हनूमान् को बाँधकर रावण के सामने लाता है। वह विभीषण को खरी-खोटी सुनाता है किन्तु युद्ध मे उसका लिहाज भी करता है।[२१६] 'पद्मपुराण' मे इन्द्रजित् मारा नही जाता बन्दी बनाया जाता है तथा अन्त में मुक्त होने पर दीक्षा ले लेता है।

खर-दूषण : यह एक छोटा सा चरित्र है। वह रावण का बहनोई है। वह चन्द्रनखा का हरण करता है तथा लक्ष्मण से युद्ध करता हुआ मारा जाता है।

रावण-पक्ष के स्त्री-पात्र

मन्दोदरी . जिस प्रकार रावण के चरित्र को अत्युदात्त दिखाने की चेष्टा रविषेण ने की है, उसी प्रकार उसकी पटरानी मन्दोदरी की भी भव्यता सिद्ध करने की पूर्ण चेष्टा की है। उसने उसके स्वत भी अनेक विशेषण दिये है, पात्रो से भी उसकी प्रशसा कराई है और उसके कार्यो से भी उसे उदार एव उदात्त महिला सिद्ध करना चाहा है।

वह नितान्त सुन्दरी है।[२१७] वह वनितोत्तमा 'ह्रीः श्रीर्लक्ष्मीर्धृति कीर्ति प्राप्तमूर्तिः सरस्वती' सी लगती है और 'निखिलयोषिताम् मूर्ध्नि स्थिता सृष्टि' है।[२१८] उसको प्राप्त करके रावण को लगता है मानो उसने समस्तभुवनाश्रित श्री ही पा ली हो।[२१९] उसके विभ्रम अनुपम है।

वह पति की हितैषिणी है और शान्त मस्तिष्क की विचारवती स्त्री है। चन्द्रनखा के खर-दूषण द्वारा हरण किये जाने पर रावण खड्ग लेकर लडने जाना चाहता है किन्तु 'व्यक्तज्ञातलौकिकसंस्थिति'[२२०] मन्दोदरी उसे समझाती है—

'कन्या नाम प्रभो देया परस्मायेव निश्चयात्।
उत्पत्तिरेव तासा हि तादृशी सार्वलौकिकी॥
खेचराणां सहस्राणि सन्ति तस्य चतुर्दश।
ये वीर्यावृतसन्नाहा. समरादनिवर्तिन.॥
बहून्यस्य सहस्राणि विद्याना दर्पशालिन।

---

२१६. वानर सेना का ध्वस करके इन्द्रजित् ने विभीषण को सामने आया देखकर इस प्रकार विचार किया है—

"तातभ्रात्य च को भेदो न्यायो यदि निरीक्ष्यते।
ततोऽभिमुखमेतस्य नावस्थातु प्रशस्यते॥" (पद्म० ६०।१२३)

२१७ मन्दोदरी के 'नखशिख-वर्णन' लिए देखें 'कलापक्ष' के अन्तर्गत 'वर्णन'-विवेचन मे उद्धृत 'पद्मपुराण' के ८ वें पर्व के ५७-७२ श्लोक।

२१८ पद्म०, ८।७६

२१९ वही ८।८१

२२०. वही, ९।३१

सिद्धानीति न किं लोकाद् भवता श्रवणे कृतम् ।।
प्रवृत्ते दारुणे युद्धे भवतो समशौर्ययो ।
सन्देह एवं जायेत जयस्यान्यतर प्रति ।।
कथंचिच्च हतेऽप्यस्मिन् कन्याहरणदूषिता ।
अन्यस्मै नैव विश्राण्या केवल विधवीभवेत् ।।
किंच सूर्यरजोमुक्ते त्वत्पुरे प्रत्यवस्थितम् ।
अलकारोदये नाम्ना चन्द्रोदरनभश्चरम् ।।
निर्वास्यासौ स्थित. सार्धं तव स्वस्रा महाबल ।
उपकारित्वमेतस्मात्सम्प्राप्त स्वजन स ते ।।'[२२१]

और रावण उसकी सलाह से प्रभावित होता हुआ अपना इरादा छोड देता है। वह पति को सर्वस्व समझती है और उसकी प्रसन्नता के लिए एकबारगी सीता के पास दूती बनकर भी जाती है, पति के आराम के लिए वह सापत्न्य भी झेलने को सहर्ष प्रस्तुत है।

वह अपने पति की प्राणस्वामिनी वल्लभा है और उसका पति पर प्रभाव है। जब रावण की उग्रता का वर्णन कर समस्त मन्त्री उसे समझाने मे अपनी अशक्तता प्रकट करते है तो मन्दोदरी स्वय रावण को धिक्कारती हुई 'कान्तासम्मित उपदेश' देती है जिसे रावण भी स्वीकार करता है, भले ही बाद मे उसका मस्तिष्क और ही हो जाता है। उसे अपने रूप का अभिमान भी है।[२२२]

रावण की मृत्यु पर वह अत्यन्त दयनीय हो जाती है तथा मेघवाहन, इन्द्रजित् एव मय की दीक्षा पर कुररी के समान विलाप करने लगती है किन्तु शशिकान्ता आर्यिका के समझाने पर आर्यिका हो जाती है।

---

२२१ वही, ९।३२-३८

२२२ सीता के अभिलाषुक रावण को मन्दोदरी की इस फटकार का वर्णन बडा मनोवैज्ञानिक है।

"ऊचे मन्दोदरी सार्द्ध तया (सीतया) रतिसुख भवान् ।
वाञ्छत्यर्पय मे तामित्येव च वदतेऽत्रप ।।
इत्युक्त्वेर्ष्याभव क्रोध वहन्ती विपुलेक्षणा ।
कर्णोत्पलेन सौभाग्यमतिरेनमताडयत् ।।
पुनरीर्ष्या नियम्यान्तर्जगाद 'वद सुन्दर ।
किं माहात्म्य त्वया तस्या दृष्ट ता यदभीच्छसि ।।
न सा गुणवती ज्ञाता ललामा न च रूपत ।
कलासु च न निष्णाता न च चित्तानुवर्तिनी ।।

चन्द्रनखा . चन्द्रनखा रावण की बहिन और खरदूषण की पत्नी है। सूर्यहास-खड्ग-साधक अपने पुत्र शम्बूक को देखने की लालसा से वह उसके सिद्धिस्थल पर जाती है किन्तु उसे कटा हुआ देखकर स्तब्ध रह जाती है एव विलाप करती है। अस्तु। इधर-उधर घूमती हुई वह राम लक्ष्मण मे से अन्यतर को सम्भोग के लिए चाहती है किन्तु उसकी उपेक्षा हो जाती है। तब वह 'त्रियाचरित्र' दिखाती हुई स्वय विरूपित होकर खर-दूषण से 'क्वाबला क्व बली पुमान् ?' कहकर लक्ष्मण की शिकायत करती है तथा युद्ध करवाती है। इस प्रकार वही सीताहरण की भी सूत्रधारिणी है। अन्त मे वह भी दीक्षा लेती है। इस प्रकार वह एक पुश्चली कुटिल एव अन्त मे जैनधर्मावलम्बिनी आर्यिका के रूप मे हमारे समक्ष आती है।

लंका पद्मपुराण मे 'लकासुन्दरी' वज्रायुध की पुत्री है जो हनूमान् के द्वारा पिता की मृत्यु कर दिये पर उससे युद्ध करती है तथा बाद मे उस पर आसक्त हो जाती है और विवाह कर लेती है। इस प्रकार वह वीरागना और भावुक सिद्ध होती है।

ईदृश्यापि तया साक कान्त का ते रतौ मति ।
आत्मनो लाघव शुद्ध भवत्त्व नानुबुद्ध्यसे ॥
न कश्चित्स्वयमात्मान शमन्नाप्नोति गौरवम् ।
गुणा हि गुणता यान्ति गुण्यमाना पराननै ॥
तदह नो वदाम्येव किं नु वेत्सि त्वमेव हि ।
वराक्या सीतया किं वा न श्रीरपि समेति मे ॥
विजहीहि विभोऽस्यन्त सीतामगेप्सिनात्मकम् ।
माऽनुपगानले तीव्रे प्राप्नो नि परिहारके ॥
मदवज्ञाकरो वाढम् भूमिगोचरिणीमिमाम् ।
शिशुर्वैडूर्यमुत्सृज्य काचमिच्छसि मन्दक ॥
न दिव्य रूपमेतस्या जायते मनसि स्थितम् ।
इमा ग्रामेयकाकारा नाथ कामयसे कथम् ॥
यथाममीहिताकल्पकल्पनानिविचक्षणा ।
भवामि कीदृशी ब्रूहि जाये त्वच्चित्तहारिणी ॥
पद्मालया रति मद्य श्रीर्भवामि किमीश्वर ।
शक्रलोचनविश्रान्तभूमि. किं वा शची प्रभो ॥
मकरध्वजचित्तस्य बन्धनी रतिरेव वा ।
साक्षाद्भवामि कि देव भवदिच्छानुवर्तिनी ॥"

(पद्मपुराण ७३।६९-८०)

और भी देखिये—'पद्मपुराण' के ७३ वें पर्व के सख्या ८४ से ११६ तक के श्लोक।

प्रासंगिक कथाओं के प्रधान पुरुष-पात्र

हनूमान् : हनूमान् पवनजय और अजना के पुत्र है, जिनके गिरने से चट्टान चूर-चूर हो जाती है। उनका नाम श्रीशैल भी है। वे परम पराक्रमी, तरुण, वीर तथा न्याय के पक्षपाती है। रावण जैसा योद्धा उनका सम्मान करता है। वे विलासी है और १८ हजार कुमारियो से विवाह करते है। वे वानरवशी-विद्याधर है, वानर नही। वे मातृभक्त है और अपनी माता के अपमानकर्ता अपने नाना को धर्षित करते है। वे सफल दूत है, सीता की सुधि लाने मे उनका प्रमुख हाथ है। वे निर्भीक है एव रावण-मन्दोदरी को फटकारते है। वे राम की अनेक प्रकार की सहायता करते हैं तथा विशल्या को लाने के लिए तुरन्त लवणाकुश की तरफ से लाङ्गूलास्त्र लेकर राम की सेना से युद्ध करते है। वे विवेकी जैन है और ज्योतिबिम्ब को अन्धकार मे विलीन होता हुआ देखकर दीक्षा ग्रहण कर लेते है।

बालि : बालि सुग्रीव का वडा भाई है। वह रावण से युद्ध करने को निष्प्रयोजन जानकर दीक्षा लेकर तपस्या करता है। जब रावण कैलास उठाता है तो बालिमुनि अपने अँगूठे से पर्वत को दबाकर अपने वल की झलक और साथ ही क्षमाशीलता भी दिखाता है। उसने सुग्रीव को स्वेच्छा से राज्य दिया है।

सुग्रीव : सुग्रीव बालि का अनुज है। वह बालि के दीक्षा लेने पर उसी की इच्छा से सिहासन पर बैठता है, साहसगति विद्याधर के द्वारा उपद्रुत होकर वह राम की सहायता लेता है और राम द्वारा उसके वध कर दिये जाने पर वह विलासी बन जाता है किन्तु लक्ष्मण की प्रताडना पर पूरी शक्ति से वह राम की सहायता करता है। वह योद्धा है तथा अन्त मे किष्किन्धा पर्वत का राज्य करके अगद को युवराज बना कर जिनदीक्षा ले लेता है।

अंगद : अगद का कार्य राम की सेवा करना और रावण को अपमानित करना है। वह सुग्रीव का पुत्र है। वह योद्धा, साहसी, सुन्दर, प्रभावक और रसिक है। वह रावण की स्त्रियो की दुर्दशा करता है किन्तु रावण के विद्या सिद्ध कर लेने पर भाग खडा होता है, जिससे उसकी चतुरता भी सिद्ध होती है। सुग्रीव के दीक्षा लेने पर वह राजा होता है।

जनक : जनक सीताके पिता और राम के श्वसुर है। वे विभीषण से आतकित होकर दशरथ के साथ कौतुल-मगल नगर मे भाग जाते हैं। उनके भामण्डल और सीता नामक दो सन्तान है। दशरथ जैसे प्रतापी राजा से उनका अच्छा परिचय है। म्लेच्छ सेना के विध्वस पर राम के साथ सीता का वाग्दान करके वे अपनी कृतज्ञता का परिचय देते है। वे परम स्वाभिमानी एव निर्भय वक्ता है; चन्द्रगति

विद्याधर से भूमिगोचरियो की निन्दा सुनकर वे करारा उत्तर देते हैं। वे अपने वचन के पक्के हैं और सीता-राम के विवाह पर शांति की सांस लेते हैं। कथा के अन्त मे राम केवली सीतेन्द्र को बताते हैं कि जनक स्वर्ग प्राप्त कर चुके हैं।

जाम्बवान् : 'पद्मपुराण' मे जांबवान् हनूमान् को लंका भेजने की राय देकर एक परामर्शदाता के रूप मे चित्रित हुआ है।

जटायु : जटायु पूर्व जन्म मे दण्डक राजा था। गुप्ति-सुगुप्ति नामक मुनियो से अपनी पूर्वजन्म-कथा सुनकर एव धर्मोपदेश सुनकर वह सुन्दर रूप धारण कर लेता है। वह एक गिद्ध पक्षी ही है जो कि अब सीता-राम के साथ खेलता हुआ समय विताता है। रावण द्वारा सीता हरण किये जाने पर वह अपनी चोंच से उसे घायल करके सीता-मुक्ति का असफल प्रयास करता है। अन्त में श्रीराम के द्वारा कर्ण-जाप किये जाने पर वह देव-पर्याय को प्राप्त हो जाता है। बाद मे वह देव-शरीर से राम की सहायता करता है।

प्रासंगिक कथाओ के स्त्री-पात्र

सुतारा : 'पद्मपुराण' मे सुतारा सुग्रीव की पत्नी है। जब विटसुग्रीव और असली सुग्रीव मे युद्ध होता है तब वाली का पुत्र चन्द्ररश्मि उसकी रक्षा करता है। कपटी सुग्रीव जब उसे छीनने का प्रयत्न करता है तब बिचारी का कातरत्व सिद्ध होता है। उसे अपने पति के समस्त लक्षणो की पहचान है। राम द्वारा कपटी सुग्रीव के वध पर वह असली सुग्रीव के साथ सिंहासन पर प्रतिष्ठित होती है।

पौराणिक महापुरुष-पात्र

नारद : 'पद्मपुराण' का नारद 'जल्पाकपथ-पडित,' 'सर्वशास्त्रार्थ-कोविद' और 'अनेकान्त-दिवाकर' है। वह ब्राह्मणो को शास्त्रार्थ में पराजित करता है और यज्ञ का विरोध करके जैन धर्म की उच्चता प्रतिपादित करता है। उसमें इधर-उधर लगाने की भी आदत है। राजा जनक और दशरथ को वह विभीषण के इरादो से परिचित कराता है और राज्य छोड़कर जाने के लिए कहता है। यद्यपि रावण के द्वारा वह उपकृत है तथापि उसकी निष्कण्टकता को सदेह में डाल देता है। सीता का चित्र भामण्डल को दिखाकर उसे सीता के प्रति उत्सुक बनाता है और अपनी प्रतिशोध प्रवृत्ति का परिचय प्रस्तुत करता है। अपराजिता से मिलकर आकाश गति से लका-वासी राम के पास जाकर उन्हे अयोध्या बुलवाता है। लवणांकुश के समक्ष राम की कथा सुनाकर उसका राम-लक्ष्मण से युद्ध करवा देता है। बेचारे की दुर्गति के भी कुछ स्थल हैं यथा मरुत्वान् के यज्ञ में ब्राह्मणों

द्वारा उसे पीटा जाना एवम् सीता के महल मे द्वारपालो द्वारा उसके पीछे हल्ला-मचाना एवम् हाथ-धोकर पड जाना आदि ।

'पद्मपुराण' के अन्य विशेष पात्र

'पद्मपुराण' मे और भी कुछ विशेप चरित्र है—जिनमे ऋषभदेव के प्रतापी पुत्र भरत और बाहुबली, दशरथ की चौथी रानी सुप्रभा, लक्ष्मण की विशल्या, वनमाला, कल्याणमाला और जितपद्मा आदि अनेक पत्नियाँ, हनुमान् के माता-पिता अजना-पवनजय, सीता का भाई भामण्डल, राम का सेनापति कृतान्तवस्त्र, पुण्डरीकनगराधिपति वज्रजघ और रत्नजटी आदि आते है। इनका मुख्य कथानक मे कोई विशेप महत्त्व नही है ।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि रविषेण ने चरित्र-चित्रण मे अपनी विचार-धारानुसार कौशल प्रदर्शित किया है। चरित्र-चित्रण के मूल-मन्त्र मनोविज्ञान का ज्ञान उसे है। अपने दृष्टिकोण के अनुसार उसने कुछ पात्रो को अधिक सुन्दरता के साथ चित्रित किया है। उसने लक्ष्मण, रावण, सीता, लवणाकुश, मन्दोदरी, लका-सुन्दरी और हनूमान् आदि का चरित्र बडे मनोयोग और विस्तार के साथ चित्रित किया है। रावण की तो उसने काया-पलट ही कर दी है जिसका परिचय हम पीछे दे चुके है। ०

षष्ठ अध्याय

'पद्मपुराण' का भावपक्ष-निरूपण

काव्यानुशीलन के सौविध्य की दृष्टि से आलोचको ने काव्य के दो पक्ष किये है—भावपक्ष और कलापक्ष । काव्य का यह पक्ष-विभाजन उपचार से ही स्वीकार किया जाना चाहिए । भावपक्ष के अन्तर्गत भावना, कल्पना और विचार पर विचार किया जाता है । भावना या रागतत्त्व के अन्तर्गत रसादि (हृदय-पक्ष) पर विचार होता है, कल्पना के अन्तर्गत प्रतिभा पर और विचार के अन्तर्गत—कवि की विचारधारा (मस्तिष्क-पक्ष) पर । यहाँ हम 'पद्मपुराण' की इसी दृष्टि से समीक्षा करेंगे ।

'पद्मपुराण' में रस-व्यजना

'पद्मपुराण' का अगी-रस शान्त है जिसके प्रधान अग है—शृगार, वीर, रौद्र और करुण । अत एव यहाँ इन रसो की अभिव्यक्ति सर्वाधिक हुई है जब कि अन्य रसो की अपेक्षाकृत कम । इन रसो की अभिव्यक्ति करते समय कवि ने बडे स्वाभाविक और मनोहारी वर्णन किये है जिनकी विशद सूची हम सप्तम अध्याय मे 'वर्णन' शीर्षक के अन्तर्गत देगे । यहाँ हम 'पद्मपुराण' मे रसाभिव्यक्ति पर विचार करेंगे ।

सम्भोग-शृङ्गार : सम्भोग शृङ्गार की कोई इयत्ता नही है, अत एव इस का एक भेद कहा गया है । जितनी बार प्रेमी मिलते है, एक नया रूप होता है, क्षण-क्षण में सयोगी को नवीनता की उपलब्धि होती रहती है, फिर भला उसका वर्गीकरण कैसे किया जाय ? इसलिए आचार्य विश्वनाथ ने कहा है—

"सख्यातुमशक्यतया चुम्बनपरिरम्भणादिबहुभेदात् ।
अयमेक एव धीरै कथित. सम्भोगशृगार ॥

तत्र स्यादृतुषट्क चन्द्रादित्यौ तथोदयास्तमय ।
जलकेलिवनविहारप्रभातमधुपानयामिनीप्रभृति ।
अनुलेपनभूषाद्या वाच्य शुचि मेध्यमन्यच्च ॥"[२२३]

और इसीलिए भरत मुनि ने भी कहा है—"यत्किंचिल्लोके शुचि मेध्यमुज्ज्वल दर्शनीय वा तत्सर्व शृगारेणोपमीयते।" फिर भी पूर्वरागादि विरहभेदो के अनन्तर होने के कारण इसे 'पूर्वरागानन्तर सम्भोग' आदि नाम दिये जा सकते है।

'पद्मपुराण' मे उपर्युक्त सभी और 'अन्यच्च' के भी यथास्थान प्रभूत उदाहरण उपलब्ध होते है, यथा—(१) महारक्ष की उद्यान केलि, (२) तडित्केश का सुन्दरियो के साथ विलास, (३) मन्दोदरी के साथ रावण की केलि, (४) छ सहस्र कुमारियो के साथ रावण की जलकेलि, (५) सहस्ररश्मि की जलकेलि, (६) पवनञ्जय-अञ्जना-सम्भोग, (७) सीता-राम की वनक्रीडा, (८) अनेक स्त्रियो के नखशिख-सौन्दर्य तथा (९) सुन्दर युवा के दर्शन की दीवानी नारियो के वर्णन आदि[२२४]। यहाँ एक उदाहरण प्रस्तुत है—

गलतफहमी के बाद दिल साफ होने पर पवनजय-अजना के प्रथम रात्रि-मिलन का वर्णन करता हुआ कवि कह रहा है—

"आश्लिष्टा दयितास्यासौ तथा गात्रेष्वलीयत।
पुनर्वियोगभीतेव गतान्तर्विग्रह यथा॥
आलिंगनविमुक्तायास्तस्या. स्तिमितलोचनम्।
मुख मुक्तनिमेपाभ्या लोचनाभ्या पपौ प्रिय ॥
पादयो करयोर्नाभ्या स्तनयोश्चिबुकेऽलिके।
गण्डयोर्नेत्रयोश्चास्याश्चुम्बन मदनातुर ॥
पुन पुनश्चकारासौ स्वेदिना पाणिना स्पृशन्।
आप्तसेवा हि सा नून क्रियते वक्त्रचुम्बने॥
तत प्रबुद्धराजीवगर्भच्छदसमप्रभम्।
स पपावधर तस्या विमुञ्चन्तमिवामृतम्॥

---

२२३ 'साहित्य-दर्पण' ३।२११-२१३।

२२४ दे० 'पद्मपुराण' ५।२९७-३०४, ६।२२७-२३८, ८।८४-८९, ८।९५-११०, १०। ६५-८४, १६।१७९-२१३, ३९।३३-३८, ७३।१५८-१७७, ३।३३१-३३५, ८।५७-७२, ८।३२१-३२३, ८।५२३-५२७; १२।९७ १११, १४।१३७-१४६, १५।१६-२१, १५।१४०-१४६, १९।१०८-१०९, १९।१२२-१४४, २१।३२-३५, २४।५-२३, ३४।३-७, ३८।४८-५६, २६।१६५-१७१, ३९।५४-५६ आदि अन्य अनेक स्थल।

नीवीविमोचनव्यग्रपाणिमस्य त्रपावती ।
रोद्धुमैच्छन्न सा शक्ता पाणिना वेपथुश्रिता ॥

० ० ०

अथ केनापि वेगेन परायत्तीकृतात्मना ।
गृहीता दयिता गाढ पवनेनाब्जकोमला ॥
यथा ब्रवीति वैदग्ध्य यथाज्ञापयति स्मर. ।
अनुरागो यथा शिक्षा प्रयच्छति महोदय. ॥
तथा तयो रति. प्राप्ता दम्पत्योर्वृद्धिमुत्तमाम् ।
काले तत्र हि यो भावो नैवाख्यातु स पार्यते ॥

० ० ०

तिष्ठ मुञ्च गृहाणेति नानाशब्दसमाकुलम् ।
तयोर्युद्धमिवोदार रतमासीत्सविभ्रमम् ॥
अधरग्रहणे तस्या· पुरुसीत्कारपूर्वकम् ।
प्रविधूत करो रेजे लताया इव पल्लव ॥
प्रियदत्ता नखास्तस्या नखाङ्का जघने वभु. ।
वैडूर्यजगतीभागे पद्मरागोद्गमा इव ॥

० ० ०

प्रियमुक्ता तनुस्तस्या ऊहे कान्तिमनुत्तमाम् ।
कनकाद्रितटाश्लिष्टघनपंक्तिकृतोपमाम् ॥"[२२५]

इसी प्रकार आगे भी 'सुरतोत्सव' का पूरा ब्यौरा दिया गया है जिसे स्थानानुरोव से पूर्ण रूप से प्रस्तुत नही किया जा सकता ।

वियोग-शृङ्गार

'वियोग-शृङ्गार' के चार भेद माने गये है—(१) पूर्वराग, (२) मान, (३) प्रवास तथा (४) करुण । इनमे 'करुण-विप्रलम्भ' को छोडकर शेष सभी वियोग के भेदो के 'पद्मपुराण' मे उदाहरण आये है यथा—(१) हरिषेण की विरहावस्था, (२) पवनञ्ज-अञ्जना-विरह, (३) रावण-विरह, (४) राम-विरह, (५) सीता-विरह तथा (६) वनमाला कल्याणमाला आदि के वियोग[२२६]।

---

२२५. पद्मपुराण १६।१८४-२०३ ।

२२६ देखिए—पद्मपुराण ८।३०८-३१५, १५।९५-१००, १०२-११७; १८।३३-४७, २८।२२-४७, ४६।१०७-११२, ४८।२-२२, ५२।४२-५५, १६।२-२४, ८४-८६,१६८-१७२, ५४।१७-२२ आदि ।

उदाहरण के लिए 'राम-वियोग' का कुछ अश प्रस्तुत है—

जिस प्रकार मुनि मुक्ति का ध्यान करते है, उसी प्रकार विरही राम-सीता का अनन्य ध्यान करते रहते है, पक्षियो से उसी के विषय मे प्रश्न करते है तथा समस्त जगत् को प्रियामय ही देखते है—

"अनन्यमानसोऽसौ हि मुक्तनि शेषचेष्टित ।
सीता मुनिरिव ध्यायन् सिद्धिमास्थान्महादर ॥
न शृणोति ध्वनि किंचिद् रूप पश्यति नादरम् ।
जानकीमयमेवास्य सर्व प्रत्यवभासते ॥
न करोति कथामन्या कुरुते जानकीकथाम् ।
अन्यामपि च पार्श्वस्था जानकीत्यभिभाषते ॥
वायस पृच्छति प्रीत्या गिरैव कलनादया ।
'भ्राम्यता विपुल देश दृष्टा स्यान्मैथिली क्वचित्'॥
सरस्युन्निद्रपद्मादिकिञ्जल्कालङ्कृताम्भसि ।
चक्राह्वमिथुन दृष्ट्वा किञ्चित्सञ्चिन्त्य कुप्यति ॥
सीताशरीरसम्पर्कशङ्कया बहुमानवत् ।
निमील्य लोचने किञ्चित्समालिङ्गति मारुतम् ॥
एतस्या सा निषण्णेति वसुधा बहु मन्यते ।
जुगुप्सितस्तया नूनमिति चन्द्रमुदीक्षते ॥
अचिन्तयच्च 'किं सीता मद्वियोगाग्निदीपिता ।
तामवस्था भवेत्प्राप्ता स्यादस्या यापदैंपिणाम् ॥
किमिय जानकी नैपा लता मन्दानिलेरता ।
किमशुकमिद नैतच्चलपत्रकदम्बकम् ॥
एते किं लोचने तस्या नैते पुष्पे सपट्पदे ।
करोऽय किं चलस्तस्या नाय प्रत्यग्रपल्लव ॥"[२२७]

इसी प्रकार आगे वे सीता के अग-प्रत्यगो का प्रकृति मे कथञ्चित् पृथक्-पृथक् साक्षात्कार कर लेते है किन्तु एक साथ सामुदायिक रूप मे उसकी शोभा नही पाते—

"शोभा तु समुदायस्य तस्याः पश्यामि न क्वचित् ॥"[२२८]

हास्य . यद्यपि 'पद्मपुराण' मे 'हास्य' रस की अधिक अभिव्यक्ति नही है

२२७. पद्मपुराण ४८।४-१३ ।
२२८. वही, ४८।१४-१८ ।

तथापि ग्यारहवे पर्व मे नारद की ब्राह्मणों द्वारा पिटाई के अवसर पर 'हास्य' की झलक मिल जाती है।

करुण : 'पद्मपुराण' मे 'करुण' रस के अनेक उदाहरण मिलते है। क्योंकि कवि ससार की असारता दिखाकर दीक्षा का पक्षधर है, अत वैभव और उसका नाश दिखाकर वह शान्त-रस के प्रति पाठक को प्रेरित करता है। इसी कारण वैभव और इष्ट के नाश पर यह 'करुण'-रस स्थान-स्थान पर अभिव्यक्त हुआ है। 'पद्मपुराण' मे अनेक व्यक्तियो के नाश पर कारुणिक विलाप आये है जिनमे मुख्य ये है—(१) चन्द्रनखा-विलाप, (२) लक्ष्मण की शक्ति तथा मृत्यु पर राम के विलाप, (३) रावण की मृत्यु पर विभीषण का विलाप, (४) सीता त्याग पर राम का विलाप, (५) भाई अन्धक के लिए किष्किन्ध का विलाप आदि[२२९]। इसी प्रकार राजाओ के दीक्षा लेते समय अन्त पुर तथा परिजनो के दृश्य भी परम कारुणिक है। इन सभी से रविषेण की करुण-रस-व्यजना का वैभव प्रमाणित होता है।

उदाहरणार्थ—'रावणवध पर उसके सम्बन्धियो का दृश्य' तथा 'लक्ष्मणवध पर राम की दशा' के कुछ अश प्रस्तुत है—

"सोदर पतित दृष्ट्वा महादु खसमन्वित ।
क्षुरिकाया कर चक्रे स्ववधाय विभीषण ॥
वारयन्ती वध तस्य निश्चेष्टीकृतविग्रहा ।
मूर्च्छा काल कियन्तच्चिच्चकारोपकृर्ति पराम् ॥
लब्धसज्ञो जिघासु स्व ताप दु सहमुद्वहन् ।
रामेण विधुत कृच्छ्राद्दुत्तीर्य निजतो रथात् ॥
त्यक्तास्त्रकवचो भूम्या पुनर्मूर्च्छामुपागत ।
प्रतिबुद्ध पुनश्चक्रे विलाप करुणाकरम् ॥

० ० ०

एतस्मिन्नन्तरे ज्ञातदशाननिपातनम् ।
क्षुब्धमन्त पुर शोकमहाकल्लोलसकुलम् ॥
सर्वाश्च वनिता वाष्पधारासिक्तमहीतला ।
रणक्षोणी समाजग्मुर्मुहु प्रस्खलितक्रमा ॥

---

२२९ पद्मपुराण ६।४७१-४७८, ४०।७६-८७, ६३।३-२०, ७७।५-२, ९९।५९-८१, ९९।८८-१०३, १०३।४८-५४, ११६।५-४४, ४९।१४-१६, ६४।७-१३, ७७।२२-४३ आदि।

त चूडामणिसकाश क्षितेरालोक्य सुन्दरम् ।
निश्चेतन पतिं नार्यो निपेतुरतिवेगत ॥
० ० ०
काश्चिन्मोहं गता. सत्य सिक्ताश्चन्दनवारिणा ।
समुत्प्लुतमृणालाना पद्मिनीना श्रियं दधु ।
आश्लिष्टदयिता काश्चिद् गाढं मूर्च्छामुपागता ।
० ० ०
निर्व्यूढमूर्च्छना काश्चिदुरस्ताडनचञ्चला ॥"[२३०]

इसी प्रकार मृत लक्ष्मण को लिए हुए राम की चेष्टाएँ भी मार्मिक है—

"स्वरूपमृदु सदगन्ध स्वभावेन हरेर्वपु. ।
जीवेनापि परित्यक्त न पद्माभस्तदाऽत्यजत् ॥
आलिंगति निधायाके मार्ष्टि जिघ्रति निक्षति ।
निषीदति समाधाय सस्पृह भुजपञ्जरे ॥
अवाप्नोति न विश्वास क्षणमप्यस्य मोचने ।
वालोऽमृतफलं यद्वत् स त मेने महाप्रियम् ॥
विललाप च हा भ्रात किमिद युक्तमीदृशम् ?
यत्परित्यज्य मा गन्तु मतिरेकाकिना कृता ॥
० ० ०
शय्या व्यरचयत् क्षिप्र कृत्वा विष्णु भुजातरे ।
व्यापारान्तरनिर्मुक्त. स्वप्तुं राम. प्रचक्रमे ॥"[२३१]

यहाँ केवल सकेत ही दिये गये है, करुण-रस की पुष्कल सामग्री तो ग्रन्थ को देखने पर ही, वास्तविक रूप मे, हृदयगोचर होती हैं।

रौद्र : 'पद्मपुराण' मे अनेक युद्धो का वर्णन है जहाँ 'वीर'-रस के साथ ही प्राय 'रौद्र'-रस की भी अभिव्यञ्जना हुई है। इसके अतिरिक्त कर्णकुण्डलनगर मे हुए मुनि के क्रोध तथा अन्य कुछ स्थलो पर 'रौद्र' के उदाहरण मिलते हैं।[२३२] यहाँ राम के क्रोध का एक चित्र प्रस्तुत है

"अथेक्षाञ्चक्रिरे तस्य वदनेऽव्यक्तसौम्यके ।
भ्रकुटीजालक भीम मृत्योरिव लतागृहम् ॥

---

२३०. पद्मपुराण ७७।१-१९, और भी आगे देखिए ।
२३१ पद्मपुराण ११६।२-२० और भी आगे देखिए ।
२३२ पद्मपुराण ४१।८४-९१, ६।२४५-२४८ ।

लङ्कायां तेन विन्यस्ता दृष्टि शोणस्फुरत्त्विपम् ।
केतुरेखामिवोद्यातां राक्षसक्षयसञ्चिनीम् ।।
तामेव च पुनर्न्यस्ता चिरमध्यस्थतां गते ।
दृष्टस्थाम्नि निजे चापे कृतान्तभ्रूलतोपमे ।।
कोपकम्पश्लथ चास्य केशभारं स्फुरद्युतिम् ।
निधानमिव कालस्य निरोद्धु तमसा जगत् ।।
तथाविध च तद्वक्त्र ज्योतिर्वलयमध्यगम् ।
जरठीभवदुत्पातप्रभाभास्करसन्निभम् ।।
गृहीतगमनक्ष्वेड रक्षसा नागनायतम् ।
दृष्ट्वा ते गमने सज्जा जाता सम्भ्रान्तमानसा. ।।"[२३३]

वीर 'पद्मपुराण' मे वीर के १. दानवीर, २ धर्मवीर, ३. दयावीर एव ४ युद्ध-वीर—चारो के रूप मिलते हैं। दानवीर दशरथ, धर्मवीर राम-लक्ष्मण (जिन्होंने मुनियो के अनेक उपसर्ग दूर किये), दयावीर रावण (जब कि लक्ष्मण को देखने के लिए वह राम को अनुमत करता है) तथा युद्धवीर अनेक राजा और राजकुमार इनके उदाहरण है। सर्वाधिक 'युद्धवीर' की अभिव्यक्ति है क्योकि 'पद्मपुराण' मे युद्ध के पर्याप्त चित्रण है यथा—१ भरत-बाहुबलियुद्ध, २ किष्किन्ध-अन्ध्रक की क्षुब्ध वानर सेना, ३ वानर-विद्याधर-युद्ध, ४. इन्द्र विद्याधर और माली का युद्ध ५. वैश्रवण-रावण-युद्ध ६. सहस्ररश्मि-रावण-युद्ध, ७. इन्द्र-रावण युद्ध, ८. रावण और वरुण की सेना का युद्ध, ९. दशरथ का केकया के स्वयवर मे राजाओ से युद्ध, १०. राम-लक्ष्मण का म्लेच्छो से युद्ध, ११. रावण-राम-युद्धभूमि मे अनेक राजाओं के युद्ध, १२. महेन्द्र-हनूमान्-युद्ध १३. लक्ष्मण-रावण-युद्ध, १४. शत्रुघ्न-मधु युद्ध, १५ लवणाकुश-पृथु युद्ध, १६. लवणाकुश-राम-युद्ध आदि।

इन युद्धो के वर्णन मे कवि ने रणशौण्ड वीरो की चेष्टाओ से वीर रस की अजस्र धाराएँ प्रवाहित की है। लवणाकुश-राम-युद्ध का एक अंश प्रस्तुत है जिसमे युद्धवीर मर जाना अच्छा समझते है किन्तु पीठ दिखाना नही—

"आपातमात्रकेणैव रामदेवस्य सद्ध्वजम् ।
अनगलवणश्चाय निचकर्त्त कृतायुधः ।।
० ० ०
महाहवो यथा जात पद्मस्य लवणस्य च ।
अनुक्रमेण तेनैव लक्ष्मणस्याकुशस्य च ।।

---

२३३ वही, ५४।४१-४६।

एव द्वन्द्वमभूद् युद्ध स्वामिरागमुपेयुषाम् ।
सामन्तानामपि स्व-स्व-वीर-शोभाभिलाषिणाम् ॥
अश्ववृन्द क्वचित्तुङ्ग तरङ्गकृतरङ्गणम् ।
निरुद्धपरचक्रेण घन चक्रे रणाङ्गणम् ॥
क्वचिद्विच्छिन्नसन्नाह प्रतिपक्ष पुर स्थितम् ।
निरीक्ष्य रणकण्डूलो निदधे मुखमन्यत. ॥
केचिन्नाथ समुत्सृज्य प्रविष्टा. परवाहिनीम् ।
स्वामिनाम समुच्चार्य निजघ्नुरभिलक्षितम् ॥
अनादृतनरा. केचिद् गर्वशौण्डा महाभटा. ।
प्रक्षरद्दानधाराणा करिणामरितामिता: ॥
दन्तशय्यां समाश्रित्य कश्चित्समददन्तिन ।
रणनिद्रासुख लेभे परम भटसत्तम ॥
कश्चिदभ्यायतोऽश्वस्य भग्नशस्त्रो महाभट ।
अदत्वा पदवी प्राणान् ददौ सकरताडनम् ॥
प्रच्युत प्रथमाघाताद् भट कश्चित्त्रपान्वित ।
भणन्तमपि नो भूय. प्रजहार महामना ॥
च्युतशस्त्र क्वचिद् वीक्ष्य भटमच्युतमानस ।
शस्त्र दूर परित्यज्य वाहुभ्या योद्धुमुद्यत ॥
दातारोऽपि प्रविख्याता सदा समरवर्तिन ।
प्राणानपि ददुर्वीरा न पुन पृष्ठदर्शनम् ॥"[२३४]

यहाँ एक नही—सभी समरक्षीव वीरता के पुतले दिखाई देते है। युद्धो के वर्णन मे उभयपक्ष की वीरता के अनुमप नमूने रविषेण ने प्रस्तुत किये है।

भयानक . 'पद्मपुराण' मे भयानक रस की भी अभिव्यक्ति अनेक स्थलो पर हुई है यथा—१. तपस्या करते हुए रावणादि का उपसर्ग, २ देशभूषण-कुलभूषण-मुनि-उपसर्ग, ३ अञ्जना के वन-भ्रमण के समय सिंह का वर्णन, ४ सहदेवी-व्याघ्री-वर्णन, ५ श्मशान-वर्णन, ६ डाकिनी-वर्णन तथा ७ नरक-वर्णन आदि ।[२३५] रावण का 'कैलासकम्पन' भी भयानक रस का सञ्चार करता है, यथा—

"ततो विषकणक्षेपिलम्बमानोरगाधर. ।
केसरिक्रमसम्प्राप्तभ्रश्यन्मत्तमतगज ॥

---

२३४. पद्मपुराण १०२।१७७-१९३

२३५ पद्मपुराण ६।३०६-३११, २२।६७-७१, २२।८५-९०, १७।२३४-२३८, ३३।९५-९९, १०६।११६-१२८, १०९।९३-९५, १२३।१-११ आदि स्थल देखिए

सम्भ्रान्तनिश्चलोत्कर्णसारगककदम्बक ।
स्फुटितोद्वेगनिष्पीतत्रुटिताखिलनिर्झर· ॥
पर्यस्यदुद्धतारावमहानोकहसहतिः ।
स्फुटीकृतशिलाजालसन्धिशब्दै. सुदु स्वर ॥
पतद्विकटपाषाणरवापूरितविष्टप. ।
चलितश्चालयन् क्षोणी भृश कैलासपर्वत ॥
स्फुटितावनिपीताम्बु· प्राप शोष नदीपतिः ।
ऊहु स्वच्छतया मुक्ता विपरीत समुद्रगा ॥
त्रस्ता व्यलोकयन्नाशा प्रमथा पृथुविस्मया ।
कि किमेतदहो-हा हा-हुं-हीति प्रसृतस्वरा ॥
जहु रप्सरसो भीता लताप्रवरमण्डपम् ।
वयसा निवहा प्राप्ता कृतकोलाहला नभ ॥
पातालादुत्थितै क्रूरैरट्टहासैरजन्तरै . ।
दशवक्त्रै· सम दिग्भि· पुस्फोटे च नभस्तलम् । ॥"[२३६]

यहाँ 'हा-हा-हुं-ही' से ऐसा लगता है मानो भय के कारण 'हाय-हाय' मची हुई हो। इसी प्रकार अन्य वर्णन भी लिये जा सकते है यथा कपिल ब्राह्मण के आगे सर्पादि का वर्णन।[२३७]

बीभत्स : 'पद्मपुराण' मे 'बीभत्स रस के स्थल है—युद्ध के बाद युद्धस्थल की बीतभसता के वर्णन, नरक तथा श्मशान आदि के वर्णन। एक उदाहरण प्रस्तुत है—खरदूषण-लक्ष्मण-युद्ध के अनन्तर युद्धस्थल की बीभत्सता का दृश्य प्रस्तुत करता हुआ कवि कहता है—

"तत्राद्राक्षीद्रथान् भग्नान् गजाश्च गतजीवितान् ।
सामन्तानश्वसयुक्तान् निर्भिन्नच्छिन्नविग्रहान् ॥
दह्यमानान्नृपान् काश्चित् काश्चिन्निश्वसितास्तथा ।
क्रियमाणानुमरणान् कान्ताभिरपरान् भटान् ॥
विच्छिन्नार्धभुजान् काश्चित् काश्चिदर्धोरुवर्जितान् ।
नि सृतान्त्रचयान् काश्चित्काश्चिद्दलितमस्तकान् ॥
गोमायुप्रावृतान् काश्चित् खगै काश्चिन्निषेवितान् ।
रुदता परिवर्गेण काश्चिच्छादितविग्रहान् ॥"[२३८]

---

२३६ पद्मपुराण ९।१३७-१४४
२३७ पद्मपुराण ३५।१३०
२३८ वही ४७।२-५

अद्भुत 'पद्मपुराण' मे 'अद्भुत' रस के लिए भी पर्याप्त अवकाश है। अनेक विद्याधरो की आकाशमार्ग से की गयी यात्राओ मे, मायायुद्धो मे, माया से उत्पादित दुर्ग आदि के वर्णनो मे, जैन धर्म के अगीकरण से समुपलव्ध सम्पदाओ के वर्णनो मे तथा जिनेन्द्र के अभिषेकादि के वर्णनो मे—'अद्भुत-रस' की अभिव्यक्ति हुई है। इसी प्रकार सीता की अग्नि–परीक्षा के समय अग्नि का जल-रूप मे परिवर्तित हो जाना 'अद्भुत' रस का सञ्चार करता है, यथा—

"अभिधायेति सा देवि प्रविवेशानल च तम्।
जात च स्फटिकस्वच्छ सलिल सुखशीतलम्॥
भित्वेव सहसा क्षोणी तरसा पयसोद्यता।
परम पूरिता वापी रगद्भृगाकुलाऽभवत्॥
० ० ०
उत्तस्थावथ मध्येऽस्या विपुल विमल शुभम्।
सहस्रच्छदन पद्मविकच विकट मृदु॥"[२३९]

इसी प्रकार वालि के प्रभाव से रावण का विमान रुकना आदि अनेक 'अद्भुत-रस' के निदर्शन उपलब्ध होते हैं।

शान्त : यह हमने प्रारम्भ मे ही कह दिया है कि 'पद्मपुराण' का अगी रस 'शान्त' है। सभी पात्रो ने अन्ततोगत्वा दीक्षा धारण कर ली है। अनेक मुनियो के उपदेशो मे शान्त रस की अभिव्यक्ति हुई है। इसी प्रकार जब कोई पात्र नर्तकी की मृत्यु अथवा कलम-वन-सकोच अथवा शरद्मेघ-विलय अथवा राहुग्रस्तसूर्य अथवा पलिताकुर अथवा वृद्धावस्था अथवा विजली का विलय आदि[२४०] देखकर ससार की असारता पर विचार करता है तथा उसके मन मे वैराग्य की भावना आती है तो शान्त रस की अभिव्यक्ति हुई है। एक उदाहरण प्रस्तुत है.—

"अथोपरि विमानस्य निषण्ण. शिखरान्तिके।
प्राग्भारचन्द्रशालाया कैलासाधित्यकोपमे॥
ज्योतिष्पथात्समुत्तुगात्पतत्प्रस्फुरितप्रभम्।
ज्योतिर्विम्व मरुत्सूनुरालोकत तमोऽभवत्॥
अचिन्तयच्च हा कष्ट ससारे नास्ति तत्पदम्।
यत्र न क्रीडति स्वेच्छ मृत्यु. सुरगणेष्वपि॥

---

२३९ पद्मपुराण १०५।२९-४८

२४० पद्मपुराण ३।२६७, ५।३०५, ६।५०२, २१।३०, २१।१४६, २१।१४६ २२।१०६, २९।७२, ११२।७६-७७ आदि।

तडिदुल्कातरंगातिभंगुर जन्म सर्वत. ।
देवानामपि यत्र स्यात् प्राणिना तत्र का कथा ।।
अनन्तशो न भुक्त यत्ससारे चेतनावता ।
न तदास्ति सुख नाम दु.ख वा भुवनत्रये ।।
अहो मोहस्य माहात्म्य परमेतद्वलान्वितम् ।
एतावन्त यत काल दु खपर्यटित भवेत् ।।

o o o

तदल निन्दितैरेभिर्भोगै परमदारुणै ।
विप्रयोग सहामीभिरवश्य येन जायते ।।

o o o

आसीन्निरर्थकतमो विगतीतकालो
दीर्घेऽ सुखार्णवजले पतितस्य निन्द्ये ।
आत्मानमद्य भवपञ्जरसन्निरुद्ध
मोक्षामि लब्धशुभमार्गमतिप्रकाश. ।।[२४१]

भक्ति : रविषेण जैन थे । 'जिनभक्ति' उनकी दृष्टि मे सर्वोच्च की। फिर भला 'भक्ति रस' के अवसर वे अपने 'पद्मपुराण' क्यो न निकालते ? इसीलिए उन्होने स्थान-स्थान पर जिनेन्द्र पूजा कराई है। इन्द्र, राम, सुग्रीव तथा रावण आदि अनेक पात्रो के द्वारा जिन-पूजा एव अनेक पात्रो द्वारा जिनेन्द्र देव की स्तुति के समय 'भक्ति रस' के उदाहरण मिलते है।[२४२] एक उदाहरण प्रस्तुत है। जिसमे रावण अपनी नस की वीणा बजाकर भगवान् जिनेन्द्र देव की स्तुति करता है :—

"निष्कृष्य च स्नसातन्त्री भुजे वीणामवीवदत् ।
भक्तिनिर्भरभावश्च जगौ स्तुतिशतैर्जिनम् ।।
नमस्ते देवदेवाय लोकालोकावलोकिने ।
तेजसातीतलोकाय कृतार्थाय महात्मने ।।
त्रिलोककृतपूजाय नष्टमोहमहारये ।
वाणीगोचरतामुक्तगुणसघातधारिणे ।।
महैश्वर्यसमेताय विमुक्तिपथदेशिने ।
सुखकाष्ठासमृद्धाय दूरीभूतकुवस्तवे ।।"[२४३]

---

२४१ पद्मपुराण ११२।७६-९८ ।
२४२ दे० पद्म० २।१२७, ३।२०२, ३।२३७, ३।२४९, ५।१४३, ९।१७-१९१, १७।२८१-२८२, २८।१११-११५, ३५।१३२, ४८।२००-२१२, ८०।१४-२४ ।
२४३. वही, ९।१७७-१७९ और भी आगे देखिए ।

वात्सल्य : वात्सल्य रस के स्थल—रामलक्ष्मण की बाल-लीला, लवणांकुश-क्रीडा, पवनजय-प्रसग तथा विदेहा-प्रसग आदि है जिनमे इसके सयोग और वियोग दोनो रूप अभिव्यक्त हुए है। उदाहरणार्थ लवणाकुश की बाललीला का प्रसग लिया जा सकता है —

(सयोग) "तत क्रमेण तौ वृद्धि वालकौ व्रजतस्तदा।
जननीहृदयानन्दौ प्रवीरपुरुषाऽकुरौ।
रक्षार्थं सर्षपकणा विन्यस्ता मस्तके तयो।
समुन्मिषत्प्रतापाग्नि-स्फुलिगा इव रेजिरे॥
वपुर्गोरोचनापकपिजर परिवारितम्।
समभिव्यज्यमानेन सहजेनेव तेजसा॥
विकटा हाटकावद्धवैयाघ्रनखपक्तिका।
रेजे दर्पाकुरालीव समुद्भेदमिता हृदि॥
आद्य जल्पितमव्यक्त सर्वलोकमनोहरम्।
वभूव जन्मपुण्याह सत्यग्रहणसन्निभम्॥
मुग्धस्मितानि रम्याणि कुसुमानीव सर्वत।
हृदयानि समाकर्षन् कुलानीव मधुव्रतान्॥
जननीक्षीरसेकोत्थविलासहसितैरिव।
जात दशनकैर्वक्त्रपद्मक लब्धमण्डनम्॥
धात्रीकरागुलीलग्नौ पचषाणि पदानि तौ।
एवभूतौ प्रयच्छन्तौ मन कस्य न जह्रतु॥
पुत्रकौ तादृशौ वीक्ष्य चारुक्रीडनकारिणौ।
शोकहेतु विसस्मार समस्त जनकात्मजा॥"[२४४]

(वियोग) केतुमती अपने दूरगत पुत्र के विषय मे विलाप कर रही है —

"हा वत्स, विनयाधार, गुरुपूजनतत्पर।
जगत्सुन्दर, विख्यातगुण, क्वासि गतो मम॥
भवदु खाग्निसन्तप्ता मातर भ्रातृवत्सल।
प्रतिवाक्यप्रदानेन कुरु शोकविवर्जिताम्॥"[२४५]

'रस्यते आस्वाद्यते' इस व्युत्पत्ति के अनुसार भाव, रसाभास, भावाभास, भावोदय, भावसन्धि,-भावशवलता तथा भावशान्ति भी रसादि मे परिगणित होते है। 'भाव' के तो उदाहरण 'भक्ति भावना' के अन्तर्गत देखे जा सकते है, शेष के

२४४. पद्मपुराण १००।२२-३०।
२४५ पद्मपुराश १८।६९-७०।

उदाहरण प्रस्तुत है —

रसाभास : नलकूबर की पत्नी उपरम्भा के रावण के प्रति अनुराग, सीता के विरह मे रावण की दशा, सीता-विरह मे भामण्डल की अवस्था तथा अन्य अनेक छोटे-मोटे प्रसगो मे रसाभास के दर्शन होते है, यथा चित्तोत्सवा आदि के प्रसङ्ग। यहाँ 'परवनिता सीता मे आसक्त' रावण की विरहावस्था का प्रसग प्रस्तुत है—

"ततो मदनदीप्ताग्निज्वालालीढ समन्तत. ।
आर्त्तो व्यचिन्तयद् भूरि मग्नोऽसौ व्यसनार्णवे ।।
शोचत्युन्मुक्तदीर्घोष्णनि श्वासानिलसन्तति ।
शुष्य॰मुख पुन किञ्चिद्गायत्यविदिताक्षरम् ।।
स्मरप्रालेय-निर्दग्ध धुनाति मुखपकजम् ।
मुहु किमपि सञ्चिन्त्य स्मयते क्षणनिश्चल॰ ।।
अनुबन्धमहादाहान् समस्तावयवानलम् ।
क्षिपत्यविरत भूमौ कुट्टिमायां विवर्त्तक. ।।
उत्तिष्ठति पुन शून्य सेवते निजमासनम् ।
नि क्रामति पुनर्दृष्ट्वा जन प्रति निवर्तते ।।
नागेन्द्र इव हस्तेन सर्वदिङमुखगामिना ।
आस्फालयति नि शक: कुट्टिम कम्पमानयन् ।।
स्मरन् सीता मनोयातामात्मान पौरुप विधिम् ।
निरपेक्षमुपालब्धु साश्रुनेत्रः प्रवर्त्तते ।।
किंचिदाह्वयते दत्तहुकारश्चातिकैर्जनै॰ ।
तूष्णीमास्ते पुन किं किमिति शून्य प्रभाषते ।।
सीता सीतेति कृत्वास्यमुत्तान भाषते मुहु ।
तिष्ठत्यवाङमुख भूयो नखेन विलिखन् महीम् ।।
करेण हृदय मार्ष्टि वाहुमूर्द्धानमीक्षते ।
पुनर्मुञ्चति हुङ्कार तल्प मुञ्चति सेवते ।।
दधाति हृदये पद्म पुनर्दूर निरस्यति ।
मुहु॰ पठति शृंगार गगनागणमीक्षते ।।
हस्त हस्तेन सस्पृश्य हन्ति पादेन मेदिनीम् ।
निश्वासदहनश्याममाकृष्याधरमीक्षते ।।
धत्ते कहकह स्वान केशान् वर्त्तयति क्षणम् ।
कोपेन दुस्सहा दृष्टि क्वचिदेव विमुञ्चति ।।
जृम्भोत्तानीकृतोरस्को वाष्पाच्छादितलोचनः ।

वाहुतोरणमुद्यम्य भिनत्ति स्फुटदगुलि ।।
अशुकान्तेन हृदय वीजयत्याहितेक्षणम् ।
कुसुमै. कुरुते रूप पुनर्नाशयति द्रुतम् ।।
चित्रयत्य.दरी सीता द्रवयत्यश्रुभि पुन ।
दीन क्षिपति हाकारान् न न मा मेति जल्पति ।।"[२४६]

भावाभास : राजा दण्डक के द्वारा मुनियो के ऊपर किये गये अत्याचार को सुनकर निर्ग्रन्थ मुनि के भडकने मे 'भावाभास' देखा जा सकता है —

"अथास्य ग्नतदु खेन प्रेरित ग्रमगह्वरात् ।
निरम्बरमहीध्रस्य निरगात्क्रोधकेसरी ।।
रक्ताशोकप्रकाशेन निखिल तस्य चक्षुप ।
तेजसा विहित व्योम सन्ध्यामयमिवाभवत् ।।"[२४७]

भावोदय तथा भावशान्ति : लकासुन्दरी-हनूमान्-प्रसग को 'भावोदय' तथा 'भावशान्ति' के उदाहरण के रूप मे प्रस्तुत किया जा सकता है जब कि लका सुन्दरी के चित्त मे युद्धोत्साह शान्त होकर प्रेम उदित हो जाता है —

"चिन्तयत्येवमेतस्मिन् शाप्यनगेन चोदिता ।
त्रिकूटसुन्दरीकन्या करुणासक्तमानसा ।।
विकस्वरमनोदेह त पद्मच्छदलोचनम् ।
अवालेन्दुमुख वाल किरीटन्यस्तवानरम् ।।
मूर्तियुक्तमिवानग सुन्दर वायुनन्दनम् ।
हन्तु समुद्यता शक्ति सञ्जहार त्वरावती ।।
दध्यौ च मारयाम्येत कथ दोपमपि श्रितम् ।
रूपेणानुपमानेन छिन्ते मर्माणि यो मम ।।
यद्यनेन सम सक्ता कामभोगोदयद्युतिम् ।
न निषेवे च लोकेऽस्मिन् ततो मे जन्म निष्फलम् ।।"[२४८]

भावसन्धि : 'पद्मपुराण' मे भावसन्धि के अनेको स्थल है, यथा वैराग्योदय के समय ससार के प्रति रति, युद्ध के समय उत्साह तथा रति आदि का अनुभव आदि । उदाहरणार्थ—

"एकतो दयितादृष्टिरन्यत तूर्यनिस्वनम् ।

---

२४६. पद्म० ४६।१७०-१८५ ।
२४७. पद्म० ४१।८१-८२ ।
२४८. पद्म० ५२।२१-२७

इति हेतुद्वयादोलामारूढ भटमानसम् ॥"

अथवा

"ततो जगाद वैदेही प्रभ्रष्टहृदया सती ।
कृतान्तवक्त्र ! कस्मात्त्व विरौषीद सुदु खिवत् ॥
प्रस्तावेऽत्यन्तहर्षस्य विषादयसि मामपि ।"२४९

भावशबलता : 'भावशवलता' के 'पद्मपुराण' मे अनेक उदाहरण है, यथा—

"श्रुत्वा स्वसुर्यथा वृत्त वात्सल्यगुणयोगतः ।
बभूव परम दु खी प्रभामण्डलपण्डित. ॥
विषाद विस्मय हर्ष विभ्राणश्च त्वरान्वित. ।
आरुह्य मनसा तुल्य विमान पितृसगतः ॥
पौण्डरीक पुर चैव प्रस्थिनः स्नेहनिर्भर ॥"२५०

इसी प्रकार राम जब सीता का त्याग करने का विचार करते है तब उनके मन मे निर्वेद-चिन्ता-मोह-तर्क-विबोध-स्मृति-मति-विषाद भाव एक साथ उठते है—

"अचिन्तयच्च हा कष्टमिदमन्यत्समागतम् ।
यद्यशोऽम्बुजखण्ड मे दग्धु लग्नो यशोऽनल ॥
यत्कृत दु.सह सोढ विरहव्यसन मया ।
सा क्रिया कुलचन्द्र मे प्रकरोति मलीमसम् ॥
विनीता या समुद्दिश्य प्रवीरा कपिकेतव ।
करोति मलिना सीता सा मे गोत्रकुमुद्वतीम् ॥
यदर्थमब्धिमुत्तीर्य रिपुध्वसि रण कृतम् ।
करोति कलुप सा मे जानकी कुलदर्पणम् ॥
युक्त जनपदो वक्ति दुष्टपुसि परालये ।
अवस्थिता कथ सीता लोकनिन्द्या मयाहृता ॥
अपश्यन् क्षणमात्र या भवामि विरहाकुल ।
अनुरक्ता त्यजाम्येता दयितामधुना कथम् ॥
चक्षुर्मानसयोर्वास कृत्वा याऽवस्थिता मम ।
गुणधानीमदोषा ता कथ मुञ्चामि जानकीम् ॥
अथवा वेत्ति नारीणा चेतस को विचेष्टितम् ।
दोषाणा प्रभवो यासु साक्षाद्वसति मन्मथ ॥
० ० ०

२४९ पद्मपुराण ९७।१०५-१०६
२५० पद्मपुराण १०२।१३०-१३२

दृङ्मात्ररमणीया ता निर्मुक्तमिव पन्नग. ।
तस्मात्त्यजामि वैदेही महादुःखजिहासया ।
अशून्य सर्वदा तीव्रस्नेहबन्धवशीकृतम् ।।
यया मे हृदय मुक्त्या विरहामि कथ तकाम् ।
यद्यप्यह स्थिरस्वान्तस्तथाप्यासन्नवर्तिनी ।
अर्चिर्वन्मम वैदेही मनोविलयनक्षमा ।।
मन्ये दूरस्थिताऽप्येपा चन्द्ररेखा कुमुद्वतीम् ।
यथा चालयितु शक्ता वृत्ति मम मनोहरा ।।
इतो जनपरीवादश्चेत स्नेह सुदुस्त्यज ।
अहोऽस्मि भयरागाभ्या प्रक्षिप्तो गहनान्तरे ।।
श्रेष्ठा सर्वप्रकारेण दिवौकोयोपितामपि ।
कथ त्यजामि ता साध्वी प्रीत्या यातामिवैकताम् ।।
एता यदि न मुञ्चामि साक्षाद्दुःकीर्तिमुद्गताम् ।
कृपणो मत्समो मह्या तदैतस्या न विद्यते ।।"[२५१]

इनके अतिरिक्त निर्वेद, आवेद, दैन्य, श्रम, मद, जडता, उग्रता, मोह, विवोध, स्वप्न, अपस्मार, गर्व, मूर्च्छा, आलस्य, अमर्ष, निद्रा, अवहित्था, औत्सुक्य, उन्माद, शका, स्मृति, मति, ग्लानि सत्राम, लज्जा, हर्ष, असूया, विषाद आदि सभी सचारी भावो के उदाहरण पद्मपुराण मे मिलते हैं जिनको हम स्थानाभाव के कारण यहाँ प्रस्तुत नही कर पा रहे है।

'पद्मपुराण' मे कल्पनातत्त्व :

कवि के लिए कल्पना अनिवार्य होती है। यही वह तत्त्व है जिसके आधार पर कवि वहाँ पहुँच सकता है जहाँ कि रवि भी नही पहुँच पाता। आलोचना की दृष्टि से 'कल्पना' का विचार भावपक्ष के विवेचन के अन्तर्गत हुआ करता है।

रविषेण कल्पना के धनी हैं। उनकी कल्पना का पूर्ण वैभव तो ग्रन्थावलोकन से ही शक्य है तथापि स्थालीपुलाकन्याय से इनके काव्य के कल्पनातत्त्व पर दिङ्मात्र विचार किया जा रहा है।

'पद्मपुराण' मे कल्पना इन दशाओ मे सहायता प्रदान करती हुई दृष्टिगोचर होती है —

(१) गुण तथा स्वभाव-चित्रण मे,

(२) भाव-चित्रण मे,

---

२५१ पद्मपुराण ९६।५४-७१

(३) कार्य-व्यापार-चित्रण मे,
(४) घटना-चित्रण मे,
(५) वस्तु-चित्रण मे तथा
(६) कल्पना-वैभव के प्रदर्शन मे।

प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध के सप्तम अध्याय मे हम सैकडो ऐसे सकेत देगे जिनमे इन रूपो को साक्षात्कृत किया जा सकेगा। उपमा-उत्प्रेक्षा-रूपको मे, विविध वर्णनो मे एव अपने अनुसार घटनाचक्र को मोडने मे कल्पना का सुन्दर प्रयोग किया है जिसका व्याख्यान हम प्रस्तुत-शोध प्रबन्ध के चतुर्थ और पञ्चम अध्याय मे घटनाओ और पात्रों का विचार करते समय कर आये हैं एव सप्तम अध्याय मे अलकारो, वर्णनो और भापा आदि के विचार के समय करेंगे। यहाँ व्यर्थ विस्तार की आवश्यकता नही है।

'पद्मपुराण' में विचार या बुद्धितत्त्व

काव्य के भावपक्ष मे कल्पना, भावना और विचार समन्वित रूप मे उपस्थित हुआ करते है—यह हम पहले ही बता चुके है। 'शक्तिर्व्युत्पत्तिरभ्यास.' को समष्टिरूप मे काव्यहेतुता प्रदान करने का भी यही आशय ज्ञात होता है। कवि अपने काव्य के माध्यम से अपने ज्ञान, अपने दर्शन एव अपनी विचारधारा को पाठको तक सम्प्रेषित करना चाहता है किन्तु उसे सहृदयत्व को अक्षुण्ण बनाये रखने के निमित्त यह ध्यान रखना चाहिए कि अधिक बौद्धिकता से काव्य दर्शन न बन जाये, कही हृदय को मस्तिष्क दबोच न बैठे, कही सहृदय सरस भावधारा से निकल कर विचारो की विकट-विन्ध्याटवी मे न उलझ जाये और कही कविता 'प्रोपेगन्डा' न बन जाये। प्रत्येक भापा के प्रत्येक कवि ने किसी न किसी विचार (चाहे यह धार्मिक, सामाजिक, आर्थिक, साहित्यिक अथवा कैसा ही हो) को—दर्शन को—मान्यता को—अपनी कृतियो मे प्रकाशित किया है, यथा—हिन्दी के जायसी ने सूफी विचारधारा को, तुलसी ने समन्वयात्मक वैष्णव-विचारधारा को तथा प्रसाद आदि ने समरसतावाद आदि को। कवियो के इन विचारो का मूल्याकन करते समय हमे यह देखना होता है कि ये विचार 'कान्तासम्मित' रीति से प्रस्तुत है अथवा 'कटुकौषध' रूप मे? क्या कवि ने व्यजना का अधिक आश्रय लिया है अथवा कोरी अभिधा का? यहाँ हम 'पद्मपुराण' विचारतत्त्व पर सक्षिप्त विचार करेंगे।

'पद्मपुराण' की रचना के मूल मे एक 'विचार' निहित है, वह है आर्य रामायण की दोषपूर्णता दिखाना तथा उसका परिष्कार। यह परिष्कार रविषेण के मत

से उसे जैनी बाना देकर ही किया जा सकता है। राजा श्रेणिक ने जो आर्य राम-कथा-विषयक चिन्ता प्रकट की है एव उसके रचयिता वाल्मीकि को परोक्ष रीति से 'कुकवि' की उपाधि से विभूषित किया है[२५२] वह आचार्य रविषेण का जैन मस्तिष्क ही बोल रहा है जिसका समाधान गौतम गणधर के मुख से उन्होंने प्रस्तुत कराया है। उनका 'कविनिबद्धवक्तृभणितिसिद्ध' विचार स्पष्टत. देखा जा सकता है—

"कथ जिनेन्द्रधर्मेण जाता सन्तो नरोत्तमा ।
महाकुलीना विद्वासो विद्यद्योतितमानसा. ॥
श्रूयन्ते लौकिके ग्रन्थे राक्षसा रावणादय ।
वसाशोणितमासादिपानभक्षणकारिण ॥

० ० ०

एवविधं किल ग्रन्थ रामायणमुदाहृतम् ।
शृण्वता सकल पाप क्षयमायाति तत्क्षणात् ॥
तापत्यजनचित्तस्य सोऽयमग्निसमागम ।
शीतापनोदकामस्य तुषारानिलसगमः ॥
हैयङ्गवीनकाङ्क्षस्य तदिद जलमन्थनम् ।
सिकतापीडन तैलमवाप्तुमभिवाञ्छत ॥
महापुरुषचारित्रकूटदोषविभाविषु ।
पापैरधर्मशास्त्रेषु धर्मशास्त्रमति कृता ॥

० ० ०

अश्रद्धेयमिद सर्व वियुक्तमुपपत्तिभि ।"[२५३]

अभिप्राय यह है कि राक्षसो, वानरों, कुम्भकर्ण के षाण्मासिक निद्रात्याग, रावण की इन्द्रादि-विजय, राम द्वारा सुवर्ण-मृग-हनन तथा छिपकर वाली-हनन आदि के विषय मे शकाएँ उठाकर उनका 'जिनेन्द्रोक्त तत्त्वशसन पर वाक्य'[२५४] से समाधान करना ही 'पद्मपुराण' का मूल विचार है। इस समाधान के लिए भूमिका बनायी गयी जिसके अनुसार क्षेत्र-काल-कुलकर-तीर्थंकर-वानरवश-राक्षसवश आदि की उत्पत्ति तथा स्थल-स्थल पर अनेक जैन-सिद्धान्तो का प्रस्तुतीकरण किया गया है क्योंकि—

---

२५२ दे० पद्मपुराण २।२२९-२४९ ।

२५३ दे० पद्म० २।२३०, २३१, २३८, २३९, २४०, २४१, २४९ ।

२५४ वही, ३।२६ ।

"न विना पीठवन्धेन विधातु सद्म शक्यते ।
कथाप्रस्तावहीन च वचन छिन्नमूलकम् ।।"[२५५]

ये जैन-सिद्धान्त कही साक्षात् रूप मे और कही परम्परया पात्रो के वचन और कर्मो से आचार्य रविषेण ने प्रकाशित किये है। इनको तीन भागो मे विभक्त किया जा सकता है—(१) यथावस्थित-जेनधर्म निरूपण तथा उपदेश, (२) फुटकल प्रसगो मे जैनधर्म की उदात्तता एव कुतीर्थियो की निन्दा एव (३) विविध पात्रो के आचरण से जैन-मान्यताओ का गौरव तथा उनके आचरण पर वल का प्रतिपादन।

जहाँ तक यथावस्थित जैन धर्म के सिद्धान्तो के निरूपण एव उसके उपदेशो का प्रश्न है—वे एक हजार तीन सौ वहत्तर (१३७२) पद्यो मे फैले हुए हैं जिनमे महाव्रत, अणुव्रत, कषाय, तीर्थंकर, कुलकर, अहिंसा, दिनभोजन, दैगम्बरी दीक्षा, जिनेन्द्रविम्बनमस्कार आदि के माहात्म्य, जैनेतर मतो का खण्डन, वैदिक यज्ञानुष्ठान-खण्डन आदि विस्तृत रूप से वर्णित है। समस्त जैन-धर्म का निष्कर्ष इन पद्यो मे देखा जा सकता है। इस आधार पर यदि 'पद्मपुराण' को जैनधर्म का 'ज्ञान-कोप' कहा जाय तो अतिशयोक्ति नही है। गणभृत के द्वारा जिनेन्द्रोक्त-धर्म-कथन, क्षेत्र-काल-कुलकर-आदि-वर्णन, ऋषभ के सासारिक-क्षणिकता-प्रतिपादक विचार, वृषभदेव द्वारा अणुव्रतादि का धर्मोपदेश, अजित द्वारा तीर्थंकर-चक्रवर्ती-वलभद्र-नारायण-प्रतिनारायण-वर्णन, विद्युत्केश-महोदधि को मुनिराज का उपदेश, ब्रह्मरुचि ब्राह्मण को मुनिराज का उपदेश, मरुत्वान् के यज्ञ मे नारद का शास्त्रार्थ, अनन्तवल केवली का रावण को उपदेश, गणधर द्वारा चौबीस तीर्थंकरो एव अन्य शलाका-पुरुषो का वर्णन, गुरु का कुण्डलमण्डित को उपदेश, सर्वभूतहित का दशरथ को उपदेश, द्युतिभट्टारक का भरत को उपदेश, भरत की वैराग्य-चिन्ता, देशभूषण मुनि का उपदेश, सर्वभूषण केवली का राम को उपदेश, लक्ष्मण से पुत्रो का कथन, हनूमान् की सासारिक-क्षणिकता-विषयक-चिन्ता, इन्द्र का भाषण तथा मोहग्रस्त राम को विभीषण का समझाना—ये ऐसे उपदेश है जिन्हे पढकर आचार्य रविषेण के 'पद्मपुराण' के कथा-नेपथ्य मे स्थित विचार-सघात का परिचय मिल जाता है।[२५६] इन सभी का सार यह है जो वारम्वार घूम फिर

---

२५५ पद्मपुराण ३।२८

२५६ देखिए—पद्मपुराण २।१५५-१९८, ३।३०-८८, ३।२६४-२६७, ४।३५-५१, ५।१८५-२८३, ५।३२५-३४२, ६।२७६-३१२, ११।३७-५१, ११।१२४-१३९, ११।१५९-२५१, १२।९२-९७, १४।१८-३५८, २०।१-२५०, २६।६८-९४, २६।९६-१०३, ३१।८-२१, ३२।१४१-१८३, ८३।४७-६४, ८५।१८-२५, १०५।१०९-२६१, ११०।७२-८९, ११२।७७-९९, ११४।१७-४४, ११७।५-४४ ।

कर हमारे समक्ष आता है—

"जैनमेवोत्तम वाक्य जैनमेवोत्तम तप ।
जैन एव परो धर्मो जैनमेव महामतम् ॥"[२५७]

यदि इन उपदेशो पर ही बारीकी से विचार किया जाय तो एक खासा 'शोध-ग्रथ' लिखा जा सकता है किन्तु यहाँ उनके पूर्ण व्याख्यान का अवकाश नही है, अत. दिङ्मात्र सकेत कर दिया गया है।

विचारो के अभिव्यञ्जन का दूसरा रूप है फुटकल प्रसगागत पद्य जिनमे जैन धर्म की सर्वोच्चता सिद्ध की गयी है; कुतीर्थियो, मूत्रकण्ठो, यज्ञदीक्षाख्यपातक-कारियो एव दुष्टात्मा निर्दय वेदाभ्यासियो की निन्दा की गयी है, सम्यग्दर्शन-भावित मुनियो तथा अर्हद्‌विम्ब-नमस्कारकारियो की पावनता सिद्ध की गयी है, चैत्यनिर्माण की महिमा गायी गयी है, मासादि-त्याग पर वल दिया गया है, निर्ग्रन्थ मुनियो की सेवा को मान्य ठहराया गया है तथा वेदसज्ञक कुग्रथ की गर्हा की गयी है। दो शब्दो मे—स्वमतमण्डन एव परमतगर्हणा की गयी है। प्राय पर्व के अन्तिम पद्य एव अन्य सैकडो पद्य इसी प्रकार के निदर्शन है[२५८] जिनमे ऐसे-ऐसे भाव हमारे समक्ष आते है —

"इति प्रबुद्धोद्यतमानसा जना
जिनश्रुती मज्जत भो पुन. पुन ॥"

तथा

"ततो भजत भो जना सततभूरिसौख्यावह
भवासुखतमश्छिद जिनवरोक्तधर्म रविम् ॥"[२५९]

विचारो की अभिव्यक्ति का तीसरा रूप है—अनेक पात्रो के आचरण द्वारा जैन धर्म-सम्मत विचारो का प्रचार। प्राय सभी पात्रो को आरम्भ मे या अन्त मे

---

२५७ पद्मपुराण ६।३००

२५८ दे० पद्मपुराण १।३२, ३।२४४-२४६,२४९-२५३,२८३-२८९,३००,३३९,४।९०-१३१, ५।३३, ३८, ३९, ४२, ६७, ७०, १७७, ३०५-३१४, ३१५-३२०, ६।८५, १४५-१४७, १५०, २०७, २१४, २४१, २६०-२६६, ३३०, ३३४, ४७९-४८४, ७।१०-१२४, १८५, १९६ १९७, १९९, २०३, ८।५३, १४९, २२०, २४४-२४८, २५१, २८५, २८६, ३९८, ९।७४, ९०-९९, १२६, १४७, १६१, १७७-१९२, १९८, २०४-२०७, २१२-२२३, १०।१००, १६३-१६६, ११।४, ५, ६, ९, ७२, ७९, ८०, ८१, ८२, ८३-१०५, २८१,२९३, १२।६३-६६, १०६, १४। ७४, १७।१७५, १७६, १९८, २०५, २०६, २९६, १९।५५, १३८, १३९, १४०, २१।२१-२४, ३७, ५८-७१, २२।८३, १००, १३५, १७९-१८१, २३।६, ७, १०, ११, १९; २४।६६ २५।१० तथा और भी अनेक स्थल ।

२५९ पद्म० १६।२४३

दैगम्वरी दीक्षा दिलाकर अथवा श्रमणधर्म का अगीकार कराकर अथवा जिनस्तुति कराकर रविषेण ने जैनधर्म-परायणता का स्पष्ट प्रचार किया है। कपिल ब्राह्मण की कथा से यह सिद्ध कर दिया गया है कि विना जैन-दीक्षा के प्राणी का कल्याण हो ही नही सकता। इसीलिए ऐसे उपाख्यानो को पढने का भी अपार माहात्म्य वताया गया है, यथा—

"य इद कपिलानुकीर्तन पठति प्रह्वमति शृणोति वा।
उपवाससहस्रसम्भव लभतेऽसौ रविभासुर फलम्।।"[२६०]

इस प्रकार के प्रभूत उपाख्यान 'पद्मपुराण' मे भरे पडे है जिनमे पात्रो के पूर्वभवो के वृत्तान्त तथा इस जन्म मे जलबुद्बुद-समाकार, शरद्घनसकाश, विद्युद्द्योतप्राय नि सार जीवन का ध्यान करके उनकी निर्ग्रन्थ-दीक्षा-दैगम्वरीदीक्षा—जिनदीक्षा का वर्णन है जिसकी ध्वनि यही है कि 'हे पद्मपुराण के पाठको, तुम भी जिनदीक्षा से मुँह मत मोडना, जैनी गुणगणकथा करते रहना।' प्राय पात्रो के सम्यग्दर्शनयुक्त आचरण दिखाकर बाद मे यह उपदेश दे दिया जाता है—

"धन्याः सद्युति कारयन्ति परम लोके जिनाना गृहम्[२६१]

अथवा

"वित्तस्य जातस्य फल विशाल
वदन्ति सुज्ञा मुक्तोपलम्भम्।
धर्मश्च जैन परमोऽखिलेऽस्मिन्
जगत्यभीष्टस्य रविप्रकाशे।।"[२६२]

विचारतत्त्व के अध्ययन की एक दिशा और हो सकती है—वह है सूक्तियो का अध्ययन। इन सूक्तियो से कवि के विचारो से परिचित हुआ जा सकता है। रविषेण ने सहस्राधिक सूक्तियाँ 'पद्मपुराण' मे दी है जिनकी एक सक्षिप्त सूची हम परिशिष्ट मे देगे। इन सूक्तियो मे रविषेण ने अपने अनुभूत विचारो का प्रकाशन किया है।

०

---

२६० वही, ३५।१९५
२६१ वही, ६७।२७
२६२ वही ६७।२८

सप्तम अध्याय

'पद्मपुराण' का कलापक्ष-निरूपण

यो तो काव्य के भावपक्ष और कलापक्ष अविभाज्य है किन्तु अध्ययन के सौकर्य के लिए उन्हे उपचार मे द्विधा विभक्त करके परीक्षित किया जाता है। काव्य के भावपक्ष मे रसादि का विवेचन हुआ करता है और कलापक्ष मे भाषा-छन्द—अलकार-गुण-दोप-रीति-शव्दशक्ति-वक्रोक्ति-वर्णनकौशल आदि का। कहने का आशय यह है कि काव्य के कलापक्ष मे हम काव्य के उत्कर्षापकर्षाधायक तत्त्वो का विवेचन किया करते है। कलापक्ष के अध्ययन से ही हम किसी कवि की शैली से परिचित होते है। यहाँ हमे 'पद्मपुराण' का उपर्युक्त दृष्टिकोण से अध्ययन करना है।

शैली . अनुभूति की अभिव्यक्ति के प्रकार को शैली कहा जाता है। इसके अनेक गुणो मे—अनेकता मे एकता और थोड़े मे वहुत की व्यजना करना आदि आते है। इनके अतिरिक्त शैली मे सरलता, सुवोधता, चारु-अलकार-योजना, रमणीयता और प्रवाह आदि गुण भी देखने होते है। इन्ही के आधार पर आलोच्य ग्रन्थ का परीक्षण हमे करना है।

'पद्मपुराण' एक पौराणिक शैली का काव्य है जैसा कि पहले मे वताया जा चुका है। इसमे कविता और धार्मिकता का साथ-साथ निर्वाह हुआ है। साहित्यिक सस्कृत भापा के मात्रावृत्त और वर्णवृत्तो मे कथा चलती है। आलकारिक वर्णनो का प्राचुर्य है। कथा सात अधिकारो एव १२३ पर्वो मे विभक्त हैं। इसमे कवि की शैली वौद्धिकताप्रधान है। किसी भी चीज को स्पष्ट और तर्कसंगत रूप मे उपस्थित करना कवि का लक्ष्य रहा है। इसीलिए प्रथम पर्व मे 'सूत्रविधान'

किया गया है तथा अनेक स्थलो पर प्रचलित मान्यताओ की बौद्धिक व्याख्याएँ प्रस्तुत की गयी है। यहाँ कवि की अपने समस्त लोकशास्त्र-काव्याद्यवेक्षण को प्रदर्शित करने की प्रवृत्ति का स्पष्ट आभास मिलता है। गद्य और पद्य—दोनो शैलियो मे उसने अपने काव्य को सँवारा है। कवि ने स्थान-स्थान पर अभिधा या व्यजना से जैन धर्म का प्रचार किया है। किसी भी वस्तु या प्रसग का सागोपाग वर्णन करने मे कवि का मन बहुत रमा है। भाव यह कि 'पद्मपुराण' की शैली पौराणिक काव्य की अलकृत शैली है।

भाषा : शब्द और अर्थ का नित्य सम्बन्ध है। अनुभूति की अभिव्यक्ति का प्रधान साधन भाषा ही है। काव्य की भाषा मे ,उसके नादसौदर्य तथा अवसरानुकूलता आदि का होना आवश्यक होता है। यहाँ हम अपने आलोच्य ग्रन्थ की भाषा पर विचार करेंगे।

'पद्मपुराण' की भाषा सस्कृत है जिसे देखकर रविषेण के भाषाधिकार का सहज ही ज्ञान हो जाता है। उनकी भाषा की भावानुकूल समस्तता-व्यस्तता, नाद-सौन्दर्य, चित्रात्मकता, तिडन्त-सुबन्त-पदो के मजुल प्रयोग, गतिशीलता, आलकारिकता तथा प्रासादिकता को देखकर प्रतीत होता है जैसे वाणी वश्य होकर ही उनके पीछे चल रही हो। उनकी रचना मे शब्दो का 'अहमहमिकया परापतन' आदि से अन्त तक देखने को मिलता है। उनकी भाषा के गुणालकार तो हम पृथक् निर्दिष्ट करेंगे, यहाँ केवल उनकी भाषा की कतिपय विशेषताओ का सक्षिप्त सकेत करते है।

आचार्य रविषेण ने भाषा को भावानुसार चलाया है। विकटविन्ध्याटवी, दण्डकवन एव युद्ध आदि के वर्णन मे वह समस्त है तथा विरह-विलाप-उपदेश आदि के समय व्यस्त। कही-कही तो श्लोक के पूरे-के-पूरे पाद एक शब्द ही बन गये है और कही अवसरानुसार एक-एक पाद मे कई-कई वाक्य हो गये है। आलकारिक वर्णन के समय भाषा रत्नहार के सदृश ग्रथित है तो साधारण स्थलो पर मुक्ताकणो के तुल्य। उदाहरणार्थ युद्ध का वर्णन लीजिए जहाँ एक-एक चरण एक-एक शब्द हो गया है—

"एव महति सङग्रामे प्रवृत्ते भीतिभीषणे।
भटानामुत्तमानन्दसम्पादनपरायणे ॥
गजनासासमाकृष्टवीरकल्पिततत्करे ।
जवनाश्वखुराघातपतत्तत्कर्त्तनोद्यते ॥
सारथिप्रेरणाकृष्टरथविक्षतवाजिनि ।
जङघावष्टम्भसङक्रान्तक्षतकुम्भमहागजे ॥

११. दन्तास्त एव ये शान्तकथासगमरञ्जिताः।
शेषा सश्लेष्मनिर्वाणद्वारबन्धाय केवलम्॥ २।३२

१२. मुख श्रेय परिप्राप्तेर्मुख मुख्यकथारतम्।
अन्यत्तु मलसम्पूर्ण दन्तकीटाकुल विलम्॥२।३३

१३. वदिता योऽथवा श्रोता श्रेयसा वचसां नरः।
पुमान् स एव शेषस्तु शिल्पिकल्पितकायवत्॥१।३४

१४. गुणदोषसमाहारे गुणान् गृह्णन्ति साधव।
क्षीरवारिसमाहारे हसा. क्षीरमिवाखिलम्॥१।३५

१५. गुणदोषसमाहारे दोषान् गृह्णन्त्यसाधवः।
मुक्ताफलानि सत्यज्य काका मासमिव द्विपात्॥१।३७

१६. अदोषामपि दोषाक्ता पश्यन्ति रचना खला.।
रविमूर्तिमिवोलूकास्तमालदलकालिकाम् ॥१।३७

१७. सरोजलागमद्वारजालकानीव दुर्जनाः।
धारयन्ति मदा दोषान् गुणबन्धनवर्जिताः॥१।३८

१८. स्वभावमिति सञ्चिन्त्य सज्जनस्येतरस्य च।
प्रवर्तन्ते कथाबन्ध स्वार्थमुद्दिश्य साधव॥१।३६

१९. सत्कथाश्रवणाद् यच्च सुख सम्पद्यते नृणाम्।
कृतिना स्वार्थ एवासौ पुण्योपार्जनकारणम्॥२।४०

२०. सन्मार्गे प्रकटीकृते हि रविणा कस्त्वारुदृष्टिः स्खलेत्॥१।६०३

२१. मनुष्यभावमासाद्य सुकृत ये न कुर्वते।
तेषा करतलप्राप्तममृत नाशमागतम्॥२।१६७

२२. सम्प्राप्तं रक्षित द्रव्य भुञ्जानस्यापि नो शम.।
प्रतिवासरसवृद्धगर्द्धाग्निपरिवर्तनात् ॥२।१७७

२३. हिंसातः ससृतेर्मूल दुःख ससारसज्ञकम्॥२।१८१

२४. प्रष्टव्या गुरवो नित्यमर्थं ज्ञातमपि स्वयम्।
स तैर्निश्चयमानीतो ददाति परम सुखम्॥२।२५२

२५. न विना पीठबन्धेन विधातु सद्म शक्यते।
कथाप्रस्तावहीन च वचनं छिन्नमूलकम्॥३।२८

२६. साधौ तपोऽगारे व्रतालङ्कृतविग्रहे।
सर्वग्रन्थविनिर्मुक्ते दत्त दान महाफलम्॥३।६६

२७. यद्यदाधीयते वस्तु दर्पणे, तस्य दर्शनम्॥३।७२

२८ अस्मिंस्त्रिभुवने कृत्स्ने जीवानां हितमिच्छताम्।
शरण परमो धर्मस्तस्माच्च परम सुखम् ॥४।३५

२९. सुखार्थं चेष्टित सर्वं तच्च धर्मनिमित्तकम्।
एव ज्ञात्वा जना यत्नात् कुरुध्वं धर्मसङ्गमम् ॥४।३६

३०. वृष्टिर्विना कुतो मेघै· क्व सस्यं बीजवर्जितम्।
जीवानां च विना धर्मात् सुखमुत्पद्यते कथम् ॥४।३७

३१ गन्तुकामो यथा पङ्गुमूको वक्तु समुद्यत·।
अन्धो दर्शनकामश्च तथा धर्मादृते सुखम् ॥४।३८

३२ परमाणोः पर स्वल्प न चान्यन्नभसो महत्।
धर्मादन्यश्च लोकेऽस्मिन् सुहृन्नास्ति शरीरिणाम् ॥४।३९

३३ न कल्पते। साधूनामीदृशी भिक्षा या तदुद्देशसस्कृता ॥४।९५

३४. प्राणा धर्मस्य हेतव ॥४।९७

३५ अहो बत महाकष्टं जैनेश्वरमिद व्रतम् ॥४।९९

३६ प्राप्यते सुमहद् दुःख जन्तुभिर्भवसागरे ॥५।१२१

३७. कष्ट यैरेव जीवोऽय कर्मभि. परितप्यते।
तान्येवोत्सहते कर्तुं मोहित. कर्ममायया॥
आपातमात्ररम्येषु विषवद् दुःखदायिषु।
विषयेषु रतिः का वा दु.खोत्पादनवृद्धिषु॥
कृत्वापि हि चिरं सङ्ग धने कान्तासु बन्धुषु।
एकाकिनैव कर्त्तव्यं ससारे परिवर्तनम्॥
तावदेव जन सर्वः प्रियत्वेनानुवर्तते।
दानेन गृह्यते यावत्सारमेयशिशुर्यथा॥
इयता चापि कालेन को गत. सह बन्धुभि.।
परलोक कलत्रैर्वा सुहृद्भिर्बान्धवेन वा॥
नागभोगोपमा भोगा भीमा नरकपातिन.।
तेषु कुर्यान्निर. सङ्ग को वा य. स्यात्सचेतन॥
अहो परमिद चित्र सद्भावेन यदाश्रितान्।
लक्ष्मी· प्रतारयत्येव दुष्टत्व किमतः परम्॥
स्वप्ने समागमो यद्वत्तद्वद् बन्धुसमागम·।
इन्द्रचापसमान च क्षणमात्र च तै सुखम्॥
जलबुद्बुदवत्काय. सारेण परिवर्जितः।
विद्युल्लताविलासेन सदृश जीवित चलम् ॥५।२२९-२३७

३८. महातरौ यथैकस्मिन्नुषित्वा रजनी पुनः।
प्रभाते प्रतिपद्यन्ते ककुभो दश पक्षिणः॥
एव कुटुम्ब एकस्मिन् सङ्गम प्राप्य जन्तव.।
पुन स्वा स्वा प्र पद्यन्ते गति कर्मवशानुगा ॥५।२६५-२६६

३९. बलवद्भ्यो हि सर्वेभ्यो मृत्युरेव महाबलः।
आनीता निधन येन बलवन्तो वलीयसा।।५।२६८

४०. फेनोर्मीन्द्रधनु स्वप्नविद्युद्बुद्बुदसन्निभा ।
सम्पद प्रियसम्पर्का विग्रहाश्च शरीरिणाम् ।।५।२७०

४१ नास्ति कश्चिन्नरो लोके यो व्रजेदुपमानताम्।
यथायममरस्तद्वद्वय मृत्यूज्भिता इति ।।५।२७१

४२ येऽपि शोषयितु शक्ताः समुद्र ग्राहसङ्कुलम्।
चुर्युर्वा करयुग्मेन चूर्णं मेरुमहीधरम्॥
उद्धर्त्तुं धरणी शक्ता ग्रसितु चन्द्रभास्करौ।
प्रविष्टास्तेऽपि कालेन कृतान्तवदन नरा. ।।५।२७२-२७३

४३. मृत्योर्दुर्लङ्घितस्यास्य त्रैलोक्ये वशता गते।
केवल व्युज्भिता सिद्धा जिनधर्मसमुद्भवा ।।५।२७४

४४. शोक कुर्याद्विबुद्धात्मा को नरो भवकारणम् ? ५।२७६

४५. सङ्घस्य निन्दन कृत्वा मृत्युमेति भवे भवे।।५।२९३

४६. धिगिच्छामन्तवर्जिताम् ।५।३०७

४७ मधुदिग्धासिधाराया लेहने कीदृश सुखम्।
रसन प्रत्युतायाति शतधा यत्र खण्डनम् ।।५।३११
विषयेषु तथा सौख्य कीदृश नाम जायते।
यत्र प्रत्युत दु खानामुपर्युपरि सन्तति ।।५।३१२

४८. यथा स्वजीवित कान्त सर्वेषा प्राणिना तथा।।५।३२८

४९. दुर्लभ सति जन्तुत्वे मनुष्यत्व शरीरिणाम्।
तस्मादपि सुरूपत्व ततो धनसमृद्धता॥
ततोऽप्यार्यत्वसम्भूतिस्ततो विद्यासमागम ।
ततोऽप्यर्थज्ञता तस्माद् दुर्लभो धर्मसङ्गम ।।५।३३३-३३४

५०. परपीडाकर वाक्य वर्जनीय प्रयत्नत ।
हिंसायाः कारण तद्धि सा च ससारकारणम् ।।५।३४१
तथा स्तेय स्त्रियाः सङ्ग महाद्रविणवाच्छनम्।
सर्वमेतत्परित्याज्य पीडाकारणता गतम् ।।५।३४२

५१ भवान्तरकृतेन तपोबलेन सम्प्राप्नुवन्ति पुरुषा मनुजेषु भोगान् ॥५।४०५
५२ दुष्कर्मसक्तमतय परमा लभन्ते निन्दा जना इह भवे मरणात्पर च ।५।४०६
५३ पापतमसो रविता भजध्वम् ॥५।४०६
५४. आचाराणा विघातेन कुदृष्टीना च सम्पदा।
धर्मं ग्लानिपरिप्राप्तमुच्छ्रयन्ते जिनोत्तमा. ॥
ते त प्राप्य पुनर्धर्मं जीवा बान्धवमुत्तमम्।
प्रपद्यन्ते पुनर्मार्गं सिद्धस्थानाभिगामिन· ॥५।२०६-२०७
५५ कालप्राप्त नय सन्तो युञ्जाना यान्ति तुङ्गताम् ॥६।२५
५६ स्वभाव एव कन्याना यत्परागारसेवनम् ॥६।४३
५७ शुद्धाभिजनता मुख्या गुणाना वरभाजिनाम् ॥६।४६
५८ स्वयमेव तु कन्यार्थे रोचते क्रियतेऽत्र किम् ? ६।५०
५९ हा कष्ट क्षुद्रशक्तीना मनुष्याणा धिगुन्नतिम् ॥६।१४४
६० मनोज्ञ प्रायशो रूपं धीरस्यापि मनोहरम् ॥६।१६७
६१ कान्ताभिप्रायसामर्थ्यात् सुरूपमपि नेष्यते ॥६।१७१
६२ मङ्गल यस्य यत्पूर्वं पुरुषै· सेवित कुले।
प्रत्यवायेन सम्बन्धो निरासे तस्य जायते ॥
क्रियमाण तु तद्भक्त्या करोति शुभसम्पदम् ॥६।१८६
६३ अभिमानेन तुङ्गाना पुरुषाणामिद व्रतम्।
नमयन्त्येव यच्छत्रु द्रविणे विगताशाया ॥६।१६५
६४ प्रायशो विषवल्लीव दृष्टा पूर्वैर्नृ पद्युति ॥६।२००
६५ पूर्वोपार्जितपुण्याना पुरुषाणा प्रयत्नत ।
सजातासु न लक्ष्मीषु भाव. सञ्जायते महान् ॥
यथैव ता समुत्पन्नास्तेषामल्पप्रयत्नत ।
तथैव त्यजतामेषा पीडा तासु न जायते ॥
तथा कथञ्चिदासाद्य सन्तो विषयज सुखम्।
तेषु निर्वेदमागत्य वाञ्छन्ति परम पदम् ॥६।२०१-२०३
६६ यन्त्रोपकरणै साध्यमात्मायत्त निरन्तरम्।
महदन्तेन निर्मुक्त सुख तत् को न वाञ्छति ? ६।२०४
६७ लक्षण यस्य यल्लोके स तेन परिकीर्त्यते ॥६।२०८
६८ तपो हि श्रम उच्यते ॥६।२११
६९ परा हि कुरुते प्रीति पूर्वाचरितसेवनम् ॥६।२१६
७०. आचार्ये म्रियमाणे यस्तिष्ठत्यन्तिकगोचरे।

करोत्याचार्यक मूढ· शिष्यता दूरमुत्सृजन् ॥
नासौ शिष्यो न चाचार्यो निर्धर्म. स कुमार्गग. ।
सर्वतो भ्र शमायात स्वचारात्साधुनिन्दित. ॥६।२६४-२६५

७१. अहो परममाहात्म्य तपसो भुवनातिगम् ॥६।२६७

७२ मार्गोऽयमिति यो गच्छेद् दिशामज्ञाय मोहवान् ।
प्राधीयसापि कालेन नेप्ट स्थान स गच्छति ॥६।२७८

७३. धर्मस्य हि दया मूल तस्या मूलमहिंसनम् ॥६।२८६

७४ अन्य. कस्तस्य कथ्येत धर्मस्य परमो गुण: ।
त्रिलोकशिखर येन प्राप्यते सुमहासुखम् ॥६।२९५

७५. अय (मनुष्यभव) हि दुर्लभो लोके धर्मोपादानकारणम् ॥६।३७६

७६ वाञ्छिते हि वरत्वेन दृष्टिश्चञ्चलता व्रजेत् ॥६।३९४

७७. बीज युद्धस्य योषित. ॥६।४५०

७८. दारजात पराभवम् ॥६।४६३

७९. शोको हि पण्डितैर्दृष्ट पिशाचो भिन्ननामक ॥६।४८०

८०. कर्मणा विनियोगेन वियोग. सह बन्धुना ।
प्राप्ते तत्रापर दु ख शोको यच्छति सन्ततम् ॥६।४८१

८१ अविधाय नरा कार्यं ये गर्जन्ति निरर्थकम् ।
महान्त लाघव लोके शक्तिमन्तोऽपि यान्ति ते ॥६।५४६

८२. प्रेक्षापूर्वप्रवृत्तेन जन्तुना सप्रयोजन ।
व्यापार सतत कृत्य शोकश्चायमनर्थक ॥६।४८१

८३. प्रत्यागम. कृते शोके प्रेतस्य यदि जायते ।
ततोऽन्यानपि सगृह्य विदधीत जन. शुचम् ॥६४८३

८४ शोक प्रत्युत देहस्य शोषीकरणमुत्तमम् ।
पापानामयमुद्रेको महामोहप्रवेशन· ॥६।४८४

८४. (अ) नानुबन्ध (सस्कार) त्यजत्यरि. ॥

८४. (आ) बलीयसि रिपौ गुप्ति प्राप्य काल नयेद् बुध. ।
तत्र तावदवाप्नोति न निकार(पा विकार)-मरातिकम् ॥६४८८

८४. (इ) प्राप्य तत्र स्थित काल कुतश्चिद् द्विगुण रिपुम् ।
साधयेन्नहि भूतानामेकस्मिन् सर्वदा रति ॥६।४८९

८४ (ई) भग्ना. किलानुसर्तव्या शत्रवो न ॥६।४९६

८४ (उ) अनुकम्पा हि कर्त्तव्या महता दु:खिते जने ॥६।४९८

८४ (ऊ) पृष्ठस्य दर्शनं येन कारितं कातरात्मना।
जीवन्मृतस्य तस्यान्यत् क्रियता किं मनस्विना ? ६।४६६

८४. (ऋ) मनुष्यजन्म चात्यन्तदुर्लभं भवसङ्कटे ॥६।५०३

८५ अभिप्रेत्य वधं शत्रोरारुह्य जयिनं द्विपम्।
प्रस्थितः पौरुषं बिभ्रत्कथं भूयो निवर्त्तते ? ७।५०

८६. भट. किं विनिवर्त्तते ? ७।५२

८७ 'असौ पलायितो भीतो वराक' इतिभाषितम्।
कथमाकर्णयद्धीरो जनताया सुचेतस.। ७।५६

८८ यत्नेन महतान्विष्य हन्तव्या लोककण्टका.। ७।६६

८९. पक्षपातो भवत्येव योगिनापि सज्जने। ७।१६०

९० ज्ञातव्येषु हि नारीणा प्रमाणं प्रियमानसाम्। ७।१८४

९१ भवेदमृतवल्लीतो विषस्य प्रसव· कथम् ? ७।१९७

९२. मूलं हि कारणं कर्म स्वरूपविनियोजने।
निमित्रमात्रमेवास्य जगत· पितरौ स्मृतौ। ७।१९९

९३ हेतुसम फलम्। ७ २०२

९४. वितथं नैव जायते यतिभाषितम्। ७।२२०

९५ अवाप्तं मरणं पुसा स्वस्थानभ्रंशतो वरम् ।७।२४०

९६. कुर्वन्त्याराधनं यत्नात्साधवस्तपसो यथा।
आराधनं तथा कृत्यं विद्याया. खग-गोत्रजैः ॥ ७।२५४

९७ कापुरुषा एव स्खलन्ति प्रस्तुताशयात्। ७।२८०

९८. स्वसरि प्रेम हि प्राय. पितृभ्या सोदरे परम्। ७।३०३

९९. विद्या हि साध्यते पुत्रा. ! स्वजनाना समृद्धये ॥ ७।३०४

१००. पुत्रा हि गदिता पित्रो प्ररोहा इव धारका.। ७।३०६

१०१. निश्चयात् किं न लभ्यते ? ७।३१५

१०२ निश्चयोऽपि पुरोपात्ताल्लभ्यते कर्मण सितात्।
कर्मण्येव हि यच्छन्ति विघ्न दु.खानुभाविन.॥ ७।३१६

१०३ काले दानविधिं पात्रे क्षेमे चायु स्थितिं क्षयम्।
सम्यग्बोधिफला विद्या नाभव्यो लब्धुमर्हति ॥ ७।३१७

१०४. कस्यचिद्दशभिर्वर्षैर्विद्या मासेन कस्यचित्।
क्षणेन कस्यचित्सिद्धि यान्ति कर्मानुभावत. ॥७।३१८

१०५ धरण्या स्वपितु त्याग करोतु चिरमन्धस।
मज्जत्वप्सु दिवानक्तं गिरे. पततु मस्तकात् ॥

विधत्ता पञ्चतायोग्यां क्रिया विग्रहशोपिणीम् ।
पुण्यैर्विरहितो जन्तुस्तथापि न कृती भवेत् ।। ७।३१९-३२०

१०६ अन्नमात्र क्रिया पुसा सिद्धे. सुकृतकर्मणाम् ।
अकृतोत्तमकर्माणो यान्ति मृत्यु निरर्थका ।। ७।३२१

१०७ सर्वादरान्मनुष्येण तस्मादाचार्यसेवया ।
पुण्यमेव सदा कार्यं सिद्धि पुण्यैर्विना कुत. ।। ७।३२२

१०८. पूर्वभवार्जितेन पुरुपा पुण्येन यान्ति श्रियम् ।। ७।३९४

१०९ अग्ने. किं न कण. करोति विपुल भस्म क्षणात् काननम् ? ७।३९४

११०. मत्ताना करिणा भिनत्ति निवह सिंहस्य वा नार्भक. ? ७।३९४

१११ बोध ह्याशु कुमुद्वतीषु कुरुते शीताशुरोचिर्लव
सन्ताप प्रणुदन् दिवाकरकरैरुत्पादित प्राणिनाम् ।
निद्राविद्रुतिहेतुभिश्च समये जीमूतमालानिभ
ध्वान्त दूरमपाकरोति किरणैरुद्योतमात्रो रविः ।। ७।३९५

११२. कन्याना यौवनारम्भे सन्तापाग्निसमुद्भवे ।
इन्धनत्व प्रपद्यन्ते पितरौ स्वजनै. समम् ।।८।६
एवमर्थं ददत्यस्या जन्मनोऽनन्तर बुधा ।
लोचनाञ्जलिभिस्तोय दु खाकुलितचेतस. ।।८।७

११३. कन्याना देहपालने ।
जनन्य उपयुज्यन्ते पितरो दानकर्मणि ।।८।१०

११४ भर्तृ छन्दानुवर्तिन्यो भवन्ति कुलबालिका ।।८।११

११५. प्रपद्यन्ते परिभ्र श कुलज्ञा नोपचारत ।।८।३१

११६. क न कुर्वन्ति सज्जना दर्शनोत्सुकम् ? ८।४८

११७. सता हि कुलविद्येय यन्मनोहरभापणम् ।।८।४९

११८ प्रतिकूलसमाचारा न भवन्त्येव साधव ।।८।५१

११९. नीयन्ते विपयै. प्राय. सत्त्ववन्तोऽपि वश्यताम् ।।८।७३

१२०. सह्यतापत्रपा तावद् दु सहा स्मरवेदना ।।८।१०७

१२१. शशाङ्केन विमुक्ताना ताराणा काभिरूपता ? ।।८।११०

१२२. एकाकी पृथुक. सिंह प्रस्फुरत्सितकेसर. ।
किं वा नानयते ध्वस यूथ समददन्तिनाम् ।।८।१२७

१२३ आनन्द पुत्रतो नान्यत् प्रीतेरायतन परम् ।।८।१५७

१२४. तिरश्चा मानुषाणा च प्रायो भेदोऽयमेव हि ।
कृत्याकृत्य न जानन्ति यदेकेऽन्ये तु तद्विद. ।।८।१६९

१२५. विस्मरन्ति च नो पूर्वं वृत्तान्त दृढमानसा. ।
जातायामपि कस्याञ्चिद्भूतौ विद्युत्समद्युतौ ।।८।१७०

१२६ को हि स्वकुलनिर्मूलत्वसहेतुक्रिया भजेत् ।।८।१७१

१२७. हृदयस्थेन नाथेन पिशाचेनेव चोदिता ।
दूता वाचि प्रवर्तन्ते यन्त्रदेहा इवावशा ।।८।१८८

१२८. अकीर्तिरुद्रवत्युर्वीलोके क्षुद्रवधे कृते ।।८।१८९

१२९ नहि गण्डूपदान् हन्तु वैनतेय प्रवर्तते ।।८।१९०

१३० धिग् भृत्य दु खनिर्मितम् । ८।१९२

१३१ धिक् कष्ट ससार दु खभाजनम् ।
चक्रवत्परिवर्तन्ते प्राणिनो यत्र योनिषु ।।८।२२०

१३२ कृत्वा प्राणिवध जन्तुर्मनोज्ञविषयाशया ।
प्रयाति नरक भीम सुमहादु खसङ्कुलम् ।।८।२२४

१३३. यथैकदिवस राज्य प्राप्त सवत्सर वधम् ।
प्राप्नोति सदृश तेन निश्चये विषयै सुखम् ।।८।२२५

१३४. चक्षु पक्ष्मपुटासङ्ग क्षणिक ननु जीवितम् ।।८।२२६

१३५. मत्तस्तम्बेरमारूढैर्मण्डलाग्रकरैर्नरै ।
क्रियते मारण शत्रोर्न तु वर्मनिवेदनम् ।।८।२२८

१३६. कुर्वाणो हि निज कर्म पुरुषो नैव लज्जते ।।८।२३०

१३७. वीर्यमक्षतकायाना शूराणा नहि वर्धते ।।८।२३३।।

१३८. वीराणा शत्रुभङ्गेन कृतत्व न धनादिना ।।८।२४२

१३९ एतदर्थं न वाञ्छन्ति सन्तो विषयज सुखम् ।
यदेतदध्रुव स्तोक सान्तराय सदु खकम् ।।८।२४६

१४० निमित्तमात्रतान्येषामसुखस्य सुखस्य वा ।
बुधास्तेभ्यो न कुप्यन्ति ससारस्थितिवेदिन ।।८।२४८

१४१ भव्य कस्य न सम्मत ? ।।८।२९६

१४२. मृदु पराभवत्येष लोक प्रखलचेष्टित. ।
उद्वृत्याप्यसुख कर्तुं नाभिवाञ्छति कर्कशे ।।८।३३२

१४३ परकार्येषु यो रत ।
कार्ये तस्य कथ स्वस्मिन्नौदासीन्य भविष्यति ? ८।३७७

१४४ विविधरत्नसमागमसम्पद प्रबलशत्रुसमूलविमर्दनम् ।
सकलविष्टपगामि यश सित भवति निर्मितनिर्मलकर्मणाम् ।।८।५३०

१४५. रिपव उग्रतरा विषयाह्वया अपनयन्ति भुवस्त्रितये स्मृतिम् ।
बहिरवस्थितिशत्रुगण पुनः सततमानमते यदनन्तरम् ।।८।५३१

१४६. इति विचिन्त्य न युक्तमुपासितु विषयशत्रुगणं पुरुचेतस ।।
अमरमेति जनस्तमसा तत न तु रवे. किरणैरवभासितम् ।।८।३२

१४७. स्त्रीणा स्वाभाविकी त्रपा ।।६।३५

१४८. कन्या नाम प्रभो ! देया परस्मायेव निश्चयात् ।
उत्पत्तिरेव तासा हि तादृशी सार्वलौकिकी ।।६।३२

१४९. हिंसित्वा जन्तुसघात नितान्तं प्रियजीवितम् ।
दु ख कृतसुखाभिख्य प्राप्यते तेन को गुण. ? ।।६।८१

१५०. अरघट्टघटीयन्त्रसदृशाः प्राणधारिणः ।
शश्वद्भवमहाकूपे भ्रमन्त्यत्यन्तदु खिता. ।।६।८२

१५१. क्व धर्मः क्व च संक्रोधः ? ।।१०।१३२

१५२. इन्द्राणामपि सामर्थ्यमीदृशं नाथ नेक्ष्यते ।
यादृक् तप समृद्धानां मुनीनामल्पयत्नजम् ।।६।१६३

१५३. पुण्यवन्तो महासत्त्वा मुक्तिलक्ष्मीसमीपगाः ।
तारुण्ये विषयास्त्यक्त्वा स्थिता ये मुक्तिवर्त्मनि ।।६।१७२

१५४. जिनवन्दनया तुल्य किमन्यद्विद्यते शुभम् ? ।।६।२०१

१५५. जिनेन्द्रवन्दनातुल्य कल्याणं नैव विद्यते ।।६।२०२

१५६. ददाति परिनिर्वाणसुख या समुपासिता ।
जिननत्या तया तुल्य न भूतं न भविष्यति ।।६।२०६

१५७. असाध्यं जिनभक्तेर्यत्साधु तन्नैव विद्यते ।।६।२०५

१५८. आस्ता तावदिदं स्वल्प व्याघाति भवज सुखम् ।
मोक्षज लभ्यते भक्त्या जिनानामुत्तम सुखम् ।।६।२०७

१५९ एकया दशया कस्य कालो गच्छति सज्जन !
विपदोऽनन्तरा सम्पत् सम्पदोऽनन्तरा विपत् ।।६।२११

१६०. धिङ्मनोभवदूषितम् ! ।।१०।११३

१६१. महेच्छा हि तुष्यन्त्यानतिमात्रत ।।१०।२१

१६२. बलाना हि समस्तानां बल कर्मकृत परम् ।।१०।२६

१६३. प्रायो हि सोदरस्नेहात् पर स्नेहो न विद्यते ।।१०।३२

१६४. पराभिभवमात्रेण क्षत्रियाणां कृतार्थता ।।१०।१४७

१६५. स्वर्गं धिक् च्युतियोगेन धिग् देह दु खभाजनम् ।।१०।६३

१६६. प्रवयसां नृणाम् । प्रव्रज्या शोभते ।।१०।१६५।।

१६७ नैव मृत्युर्विवेकवान् । शरद्घन इवाकस्माद्देहो नाशं प्रपद्यते ॥१०।६६६

१६८ येन केनचिदुदात्तकर्मणा कारणेन रिपुणेतरेण वा ।
निर्मितेन समवाप्यते मति श्रेयसी न तु निकृष्टकर्मणा ॥१०।१७७

१६९ य प्रयोजयति मानस शुभे यस्य तस्य परम स बान्धवः ।
भोगवस्तुनि तु यस्य मानस य करोति परमारि कस्य स. ॥१०।१७८

१७०. निसर्गोऽय यदाप्तस्य पुर· शोको विवर्द्धते । ११।३०

१७१. प्राणनाथपरित्यक्ता का वा स्त्री सुखमृच्छति ? ११।५४

१७२. सत्य वदन्ति राजान. पृथिवीपालनोद्यता ।
ऋषयस्ते हि भाष्यन्ते ये स्थिता जन्तुपालने ॥ ११।५८

१७३ यतो धर्मस्ततो जय ॥ ११।७४

१७४. हिंसायज्ञमिम घोरमाचरन्ति न ये जना ।
दुर्गति ते न गच्छन्ति महादु खविधायिनीम् ॥ ११।१०४

१७५. कष्ट पश्यत नर्त्यन्ते कर्मभिर्जन्तव. कथम् ? ११।१२३

१७६. यथा हि छर्दित नान्न भुज्यते मानुषै पुनः ।
तथा त्यक्तेषु कामेषु न कुर्वन्ति मतिं बुधा. ॥ ११।१२६

१७७ दह्यमाने यथागारे कथञ्चिदपि नि सृत. ।
तत्रैव पुनरात्मान प्रक्षिपेन्मूढमानस ॥ ११।१३२
यथा च विवर प्राप्य निष्क्रान्त. पञ्जरात् खग ।
निवृत्य प्रविशेद् भूयस्तत्रैवाज्ञानचोदित. ॥ ११।१३३
तथा प्रव्रजितो भूत्वा यो यातीन्द्रियवश्यताम् ।
निन्दित. स भवेल्लोके न च स्वार्थं समश्नुते ॥ ११।१३४

१७८ प्राणिनो ग्रन्थसगेन रागद्वेषसमुद्भव ।
रागात् सञ्जायते कामो द्वेषाज्जन्तुविनाशनम् ॥ ११।१३६
कामक्रोधाभिभूतस्य मोहेनाक्रम्यते मन ।
कृत्याकृत्येषु मूढस्य मतिर्न स्याद्विवेकिनी ॥ ११।१३७
यत्किञ्चित्कुर्वतस्तस्य कर्मोपार्जयतोऽशुभम् ।
ससारसागरे घोरे भ्रमण न निवर्तते ॥ ११।१३८
एतान् ससर्गजान् दोषान् विदित्वाशु विपश्चित ।
वैराग्यमधिगच्छन्ति नियम्यात्मानमात्मना ॥ ११।१३९

१७९ अरण्यान्या समुद्रे वा स्थित वारातिपञ्जरे ।
स्वयकृतानि कर्माणि रक्षन्ति न परो जन ॥ ११।१४७

य पुन. प्राप्तकाल स्याज्जनन्यङ्कगतोऽपि स.।
म्रियते मृत्युना जीव स्वकर्मवशता गत ।। ११।१४८

१८० अशुद्धै कर्तृभि प्रोक्त वचन स्यान्मलीमसम्।। ११।१६६

१८१ सति सर्वज्ञतायोगे वक्ता हि सुतरा भवेत् ।। ११।१८५

१८२. गुणैर्वर्णव्यवस्थिति ।। ११।१९८

१८३. ब्राह्मण्य गुणयोगेन न तु तद्योनिसम्भवात् ।। ११।२००

१८४ न जातिर्गर्हिता काचिद् गुणा कल्याणकारणम् । ११।२०३

१८५ विद्याविनयसम्पन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि।
शुचि चैव श्वपाके च पण्डिता समदर्शिन ।। ११।२०४

१८६. शास्त्रमुच्यते। तद्धि यन्मातृवच्छास्ति सर्वस्मै जगते हितम्। ११।२०९

१८७ प्रायश्चित्त च निर्दोषे वक्तु कर्मणि नोचितम् ।। ११।२१०

१८८. किञ्चिन्न कृत्य प्राणिहिंसया ।। ११।३००

१८९ अज्ञानेन हि जन्तूना भवत्येव दुरीहितम् ।। ११।३०५

१९० पुण्यसम्पूर्णदेहाना सौभाग्य केन कथ्यते ? ११।३७१

१९१ नाम श्रुत्वा प्रणमति जन· पुण्यभाजा नराणाम् ।। ११।३८३

१९२. पुण्यबन्धे यतध्वम् ।। ११।३८३

१९३ ज्येष्ठो व्याधिसहस्राणा मदनो मतिसूदन.।
येन सम्प्राप्यते दु ख नरैरक्षतविग्रहै.।। १२।३३

१९४. प्रधान दिवसाधीश सर्वेषा ज्योतिषा यथा।
तथा समस्तरोगाणा मदनो मूर्ध्नि वर्तते ।। १२।३४

१९५. आमगर्भेषु दु खानि प्राप्नुवन्ति चिर जना ।
ये शरीरस्य कुर्वन्ति स्वस्याविधिनिपातनम् ।। १२।४८

१९६. अहो कष्ट. ससार सारवर्जित ।। १२।५०

१९७. पृथक् पृथक् प्रपद्यन्ते सुखदु खकरी गतिम्।
जीवा. स्वकर्मसपन्ना कोऽत्र कस्य सुहृज्जन ? १२।५१

१९८. विजिगीषुत्व क्रियते दीर्घदर्शिना ।। १२।९४

१९९ समान ख्याति येनात सखिशब्द प्रवर्तते ।। १२।१००

२००. सख्यो हि जीवितालम्बन परम्। १२।१०१

२०१. विधवा भर्तृसयुक्ता प्रमदा कुलबालिका।
वेश्या च रूपयुक्तापि परिहार्या प्रयत्नत ।। १२।१२४

२०२ लोकद्वयपरिभ्रष्ट. कीदृशो वद मानव ? १२।१२५

२०३ नरान्तरमुखक्लेदपूर्णेऽन्याङ्गविमर्दिते।
उच्छिष्टभोजने भोक्तु (भद्रे !) वाञ्छति को नर ? ८।१२६

२०४ उदारा भवन्ति हि दयापरा ॥ १२।१३१

२०५ प्राणिना रक्षणे धर्म श्रूयते प्रकटो भुवि ॥ १२।१३२

२०६ उत्तिष्ठतो मुख भक्तुमधरेणापि शक्यते।
कण्टकस्यापि यत्नेन परिणाममुपेयुप ॥ १२।१६०

२०७ उत्पत्तावेव रोगस्य क्रियते ध्वसन सुखम्।
व्यापी तु बद्धमूल स्यादूर्ध्व स क्षेत्रियोऽथवा ॥ १२।१६१

२०८ जायते विफल कर्माप्रेक्षापूर्वकारिणाम् ॥ १२।१६५

२०९ भवत्यर्थस्य ससिद्ध्यै केवल च न पौरुपम्।
कर्पकस्य विना वृष्ट्या का सिद्धि कर्मयोगिन ? १२।१६०

२१० समानमहिमानाना पठता च समादरम्।
अर्थभाजो भवन्त्येके नापरे कर्मणा वशात् ॥ १२।१६७

२११. प्रकृष्टवयसा पुसा धीर्यात्येवाथवा क्षयम् ॥ १२।१७२

२१२ हतानेककुरग किं शवरो हन्ति नो हरिम् ॥ १२।१७६

२१२(क) सग्रामे शस्त्रसम्पातजातज्ज्वलनजालके।
वर प्राणपरित्यागो न तु प्रतिनरानति ॥ १२।१७७

२१३ प्राणानभिमुखीभूता मुञ्चन्ति न तु सायकान् ॥ १२।२०४

२१४ नखेन प्राप्यते छेद वस्तु यत्स्वल्पयत्नत ।
व्यापार परशोस्तत्र ननु (तात !) निरर्थक ॥ १२।२२८

२१५ तन्दुलेषु गृहीतेपु ननु शालिकलापत ।
त्यागस्तुषपलालस्य क्रियते कारणाद्विना ॥ १२।३५२

२१६ धिगतिचपल मानुषसुखम्। १२।३७५

२१७ रविरुचिकर यान्तु सुकृतम् ॥ १२।३७६

२१८. परगर्वापसाद हि समीहन्ते नराधिपा ॥१३।४

२१९ (किन्तु) मातेव नो शक्या त्यक्तु जन्मवसुन्धरा।
सा हि क्षणाद्वियोगेन कुरुते चित्तमाकुलम् ॥ १३।२८

२२० जन्मभूमे. किमुच्यताम् ? १३।३०

२२१ धिग् विद्यागोचरैश्वर्यं विलीन यदिति क्षणात्।
शारदानामिवाब्दाना वृन्दमत्यन्तमुन्नतम् ॥१३।४०

२२२ अथवा कर्मणामेतद्वैचित्र्य कोऽन्यथा नर ।
कर्त्तु शक्नोति तेपा हि सर्वमन्यद्बलाधरम् ॥१३।४२

२२३. कर्मणामुचित तेषां जायते प्राणिना फलम् ॥१३।६८

२२४. हेतुना न विना कार्यं भवतीति किमङ्गुतम् ? १३।६९

२२५. लोकत्रयेऽपि तन्नास्ति तपसा यन्न साध्यते।
वलानां हि समस्तानां स्थितं मूर्ध्नि तपोवलम् ॥१३।९२

२२६. न सा त्रिदशनाथस्य शक्तिः कान्तिर्द्युतिर्घृति·।
तपोधनस्य या साधोर्यथाभिमतकारिण·॥१३।९३

२२७ विधाय साधुलोकस्य तिरस्कार जना महत्।
दु खमत्र प्रपद्यन्ते तिर्यक्षु नरकेषु च ॥१३।९४

२२८ मनसापि हि साधूना पराभूति करोति यः।
तस्य सा परमं दुःख परत्रेह च यच्छति ॥१३।९५

२२९. यस्त्वाक्रोशति निर्ग्रन्थ हन्ति वा क्रूरमानसः।
तत्र किं शक्यते वक्तु जन्तौ दुष्कृतकर्मणि ॥१३।९६

२३०. कायेन मनसा वाचा यानि कर्माणि मानवा।
कुर्वते तानि यच्छन्ति निकचानि फल ध्रुवम् ॥१३।९७

२३१. साधो· सङ्गमनाल्लोके न किञ्चिद्दुर्लभ भवेत्।
वहुजन्मसु न प्राप्ता वोधिर्येनाधिगम्यते ॥१३।१०१

२३२. प्रायेण महता शक्तिर्यादृशी रौद्रकर्मणि।
कर्मण्येवं विशुद्धेऽपि परमा चोपजायते ॥१३।१०८

२३३. स्तोकमपीह न चाद्भुतमस्ति न्यस्य समस्तपरिग्रहसङ्गम्।
यत्क्षणतः दुरितस्य विनाशं ध्यानवलाज्जनयन्ति वृहन्त·॥१३।१११

२३४. अर्जितमत्युरुकालविधानादिन्धनराशिमुदारमशेषम्।
प्राप्य परं क्षणतो महिमान किं न दहत्यनिलः कणमात्र·॥१३।११२

(चतुर्दश पर्व मे अनन्तवल केवली का उपदेश है। उसमे प्राय विचारात्मक पद्य ही हैं जिन्हे धार्मिक सुभाषित कहा जा सकता है। उनमें कुछ यहाँ दिये जा रहे हैं।)

२३५. सुप्तमेतेन जीवेन स्थलेऽम्भसि गिरौ तरौ।
गहनेषु च देशेषु भ्राम्यता भवसकटे ॥१४।३६

२३६. तिलमात्रोऽपि देशोऽसौ नास्ति यत्र न जन्तुना।
प्राप्तं जन्म विनाशो वा संसारावर्तपातिना ॥१४।३८

२३७. सर्वं तु दुःखमेवात्र सुखं तत्रापि कल्पितम् ॥१४।४६

२३८ कृत्वा चतुर्गतौ नित्य भवे भ्राम्यन्ति जन्तवः ।
अरघट्टघटीयन्त्रसमानत्वमुपागता. ॥१४।५०

२३९ सम्यग्दर्शनशक्त्या च त्रायन्ते मुनयो जनान् ॥१४।५५

२४० दर्शनेन विशुद्धेन ज्ञानेन च यदन्वितम् ।
चारित्रेण च तत्पात्र परम परिकीर्तितम् ॥१४।५६

२४१ दान निन्दितमप्येति प्रशसा पात्रभेदत. ।
शुक्तिपीत यथा वारि मुक्तीभवति निश्चयम् ॥१४।७७

२४२ अन्तरङ्ग हि सकल्प· कारण पुण्यपापयो ।
विना तेन वहिर्दान वर्ष पर्वतमूर्धनि ॥१४।७९

२४३ वाणिज्यसदृशो धर्मस्तत्रान्वेष्याल्पभूरिता ।
वहुना हि पराभूति क्रियतेऽल्पस्य वस्तुन ।१४।९१

२४४. यथा विपकण प्राप्त सरसी नैव दुष्यति ।
जिनधर्मोद्यतस्यैव हिंसालेशो वृथोद्भव. ॥१४।९२

२४५ आशापाशवशा जीवा मुच्यन्ते धर्मवन्धुना ॥१४।१०२

२४६ नैव किञ्चिदसाध्यत्व धर्मस्य प्रतिपद्यते ॥१४।१२५

२४७ सारस्त्रिभुवने धर्मः सर्वेन्द्रियसुखप्रद ।
क्रियते मानुषे देहे ततो मनुजता परा ॥१४।१५५

२४८. तृणाना शालय. श्रेष्ठा. पादपाना च चन्दना ।
उपलाना च रत्नानि भवाना मानुषो भव ॥१४।१५६

२४९ पतित तन्मनुष्यत्व पुनर्दुर्लभसङ्गमम् ।
समुद्रसलिले नष्ट यथा रत्न महागुणम् ॥१४।१५९

२५० इहैव मानुषे लोके कृत्वा धर्मं यथोचितम् ।
स्वर्गादिषु प्रपद्यन्ते सर्वं प्राणभृत. फलम् ॥१४।१६०

२५१ न शील न च सम्यक्त्व न त्याग साधुगोचर ।
यस्य तस्य भवाम्भोधितरण जायते कथम् ॥१४।२२९

२५२. ससारसागरे भीमे रत्नद्वीपोऽयमुत्तम ।
यदेतन्मानुष क्षेत्रं तद्धि दु.खेन लभ्यते ॥१४।२३४

२५३ यथात्र सूत्रार्थं कश्चित् सचूर्णयेन्मणीन् ।
विषयार्थं तथा धर्मरत्नाना चूर्णको जन ॥१४।१३६

२५४ स्वल्पं स्वल्पमपि प्राज्ञै. कर्त्तव्य सुकृतार्जनम् ।
पतद्भिर्विन्दुभिर्जाता महानद्य. समुद्रगा· ॥१४।२४४

२५५. वर्जनीया निशाभुक्तिरनेकापायसगता ॥१४।३०८

२५६. धर्मो मूल सुखोत्पत्तेरधर्मो दु खकारणम् ।
इति ज्ञात्वा भजेद्धर्ममधर्मं च विवर्जयेत् ॥१४।३१०
२५७ आगोपालाङ्गन लोके प्रसिद्धिमिदमागतम् ।
यथा धर्मेण शर्मेति विपरीतेन दु खितम् ॥१४।३११
१५८. हुताशनशिखा पेया बद्धव्यो वायुरशुके ।
उत्क्षेप्तव्यो धराधीशो निर्ग्रन्थत्वमभीप्सता ॥१४।३६३
२५९. भवन्ति कर्माणि यदा शरीरिणा प्रशान्तियुक्तानि विमुक्तिभाविनाम् ।
तदोपदेश परम गुरोर्मुखादवाप्नुवन्ति प्रभव शुभस्य ते ॥१४।३८०
२६० अत्यन्तव्याकुलप्राय कन्यादु.ख मनस्विनाम् ॥१५।२३
२६१ गमिष्यति पति श्लाघ्य रमयिष्यति त चिरम् ।
भविप्यत्युज्झिता दोपैरतिचिन्ता नृणा सुता ॥१५।२४
२६२. स्त्रीहेतो किं न वेष्यते ? १५।३५
२६३ अथवा वचनज्ञानमस्पष्टमुपजायते ॥१५।५२
२६४ हताश धिगनङ्ग कम् ॥१५।१०१
२६५ मृदुचित्ता स्वभावेन भवन्ति किल योपित ॥१५।११२
२६६. अथवा सर्वकार्येपु साधनीयेषु विष्टपे ।
मित्र परममुज्झित्वा कारण नान्यदीक्ष्यते ॥१५।११०
२६७. कुटुम्बी क्षितिपालाय, गुरुवेऽन्तेवसन्, प्रिया ।
पत्यै, वैद्याय रोगार्तो, मात्रे शैशवसङ्गत ॥१५।१२२
निवेद्य मुच्यते दु खाद्यथात्यन्तपुरोरपि ।
मित्रायैव नर प्राज्ञ ॥१५।१२३
२६८. जीवित ननु सर्वस्यादिष्ट सर्वशरीरिणाम् ।
सति तत्रान्यकार्याणामात्मलाभस्य सम्भव ॥१५।१२७
२६९ श्लाघ्यसम्बन्धजस्तोपो वधूनामभवत्पर ॥१५।१५१
२७० इतरस्यापि नो युक्तं कर्त्तुं नारीविपादनम् ॥१५।१७३
२७१. विचित्रा चेतसो वृत्तिर्जनस्यात्र न कुप्यते ॥१५।१७५
२७२. सन्देहविपमावर्त्ता दुर्भावग्रहसङ्कुला ।
दूरत परिहर्तव्या पररक्ताङ्गनापगा ॥१५।१७९
२७३ कुभावगहनात्यन्त हृषीकव्यालजालिनी ।
बुधेन नार्यरण्यानी सेवनीया न जातुचित् ॥१५।१८०
२७४ किं राजसेवन शत्रुसमाश्रयसमागमम् ।
श्लथं मित्र स्त्रिय चान्यसक्ता प्राप्य कुत सुखम् ? १५।१८१

२७५. इष्टान् बन्धून् सुतान् दारान् बुधा मुञ्चन्त्यसत्कृताः ।
पराभवजलाध्माता क्षुद्रा नश्यन्ति तत्र तु ॥१५।१८२
२७६ मदिरारागिण वैद्यं द्विप शिक्षाविवर्जितम् ।
अहेतुवैरिण क्रूरं धर्मं हिंसनसङ्गतम् ॥१५।१८३
मूर्खगोष्ठी कुमर्याद देश चण्ड शिशुं नृपम् ।
वनिता च परासक्तां सूरिर्दूरेण वर्जयेत् ॥१५।१८४
२७७ अविदिततत्त्वस्थितयो विदधति यज्जन्तव परेऽशर्म ।
तत्तत्र मूलहेतौ कर्मरवौ तापके दृष्टम् ॥१५।२२७
२७८. अस्मत्प्रयतनासाध्यो गोचरो ह्येष कर्मणाम् ॥१६।३०
२७९. नोदाराणा यत कृत्ये मुच्यते चेतसा रसः ॥१६।५४
२८० भर्तापि तेजसा कृत्य कुरुतेऽरुणसङ्गत ॥१६।६९
२८१ जगद्दाहे स्फुलिङ्गस्य किं वा वीर्यं परीक्ष्यते ? १६।७६
२८२ रमणेन वियुक्ताया पल्लवोऽप्येति खड्गताम् ।
चन्द्रांशुरपि वज्रत्व स्वर्गोऽपि नरकायते ॥१६।११६
२८३. धिगस्मत्सदृशान् मूर्खानप्रेक्षापूर्वकारिणः ।
जनस्य ये विना हेतु यत्कुर्वन्त्यसुखासनम् ॥१६।१२१
२८४ निश्चित्य विहिते कार्ये लभन्ते प्राणिन सुखम् ॥५६।१२६
२८५. कर्मवशीकृतम् ।
जगत्सर्वमवाप्नोति दु खं वा यदि वा सुखम् ॥१६।१५९
२८६ ननु चन्द्रेण शर्वर्या. सगमे का न चारुता ? १६।१६३
२८७ भवत्यन्यथवा काले कल्याण कर्मचोदितम् ॥१६।१६५
२८८. क्षेमाय दीर्घदर्शित्व कल्पते प्राणधारिणाम् ॥१६।२३२
२८९. कदाचिदिह जायते स्वकृतकर्मपाकोदयात्,
सुखं जगति सगमादभिमतस्य सद्वस्तुन. ।
कदाचिदपि सभवत्यसुभृतामसौख्यं परम्,
भवे भवति न स्थिति समगुणा यतः सर्वदा ॥१६।२४२
२९०. यत्रैव जनक क्रुद्धो विदधाति निराकृतिम् ।
तत्र शेषजने काऽऽस्था तच्छन्दकृतचेष्टिते ॥१७।६१
२९१ नेत्रे निमील्य सोढव्य कर्म पाकमुपागतम् ॥१७।८१
२९२. सर्वेषामेव जन्तूना पृष्ठत. पार्श्वतोऽग्रतः ।
कर्म तिष्ठति ॥१७।८२

२९३. अप्सर.शतनेत्रालीनिलयीभूतविग्रहा. ।
प्राप्नुवन्ति पर दु ख सुकृतान्ते, सुरा अपि ।।१७।८३

२९४. चिन्तयत्यन्यथा लोक प्राप्नोति फलमन्यथा ।
लोकव्यापारसक्तात्मा परमो हि गुर्विधि. ।।१७।८४

२९५. हितङ्करमपि प्राप्त विधिर्नाशयति क्षणात् ।
कदाचिदन्यदा धत्ते मानसस्याप्यगोचरम् ।।१७।८५

२९६. गतय कर्मणा कस्य विचित्रा परिनिश्चिता· ।।१७।८६

२९७. साधुवर्गो हि सर्वेभ्य· प्राणिभ्य शुभमिच्छति ।।१७।१७१

२९८. भवे चतुर्गतौ भ्राम्यन् जीवो दु खैश्चित सदा ।
सुमानुपत्वमायाति शमे कटुककर्मण ।।१७।१७५

२९९. यानि यानि हि सौख्यानि जायन्ते चात्र भूतले ।
तानि तानि हि सर्वाणि जिनभक्ते विशेषत. ।।१७।२०५

३०० रोगमूलस्य हि च्छाया न स्निग्धा जायते तरोः ।।१७।३३२

३०१ दु ख हि नाशमायाति सज्जनाय निवेदितम् ।
महता ननु ु शैलीय यदापद्गततारणम् ।।१७।३३४

३०२ स्खलन्ति न विधातव्ये वनेऽपि गुणिनो जनाः ।।१७।३५७

३०२. सम्भवतीह भूधररिपु· पविरपि कुसुम,
वह्निरपीन्दुपादशिशिर पृथु कमलवनम् ।
खड्गलतापि चारुवनिता सुमृदुभुजलता,
प्राणिषु पूर्वजन्मजनितात्सुचरितबलत ।।१७।४०५

३०४. एष तपत्यहो परिदृढं जगदनवरत
व्याधिसहस्ररश्मिनिकरो ननु जननरविः ।।१७.४०६

३०५. विवेकेन हि निर्मुक्ता जायन्ते दु.खिनो जना. । १८।४७

३०६. अपरीक्षणशीलाना सहसा कार्यकारिणाम् ।
पारचात्तापो भवत्येव जनाना प्राणधारिणाम् ।। १८।६२

३०७. न त्वापन्नहितोन्मुक्ता महात्मानो भवन्ति हि ।। १८।७९

३०८. उपायेभ्यो हि सर्वेभ्यो वशीकरणवस्तुनि ।
कामिनीसङ्गमुज्झित्वा नापर विद्यते परम् ।। १८।९९

३०९. किं शिवस्थान कदाचिल्लब्धमाप्यते ? १९।११

३१०. पुण्यस्य पश्यतौदार्यं यदुद्भवति तद्वति ।
बहूनामुद्भव. पुसा पतिते पतन तथा ।। १९।६८

३११. कर्मवैचित्र्याल्लोकोऽयं चित्रचेष्टित ।। १९।७९

३१२. पालिका मुग्धलोकस्य शत्रुलोकस्य नाशिका।
गुरुशुश्रूषिणी चेष्टा ननु चेष्टा महात्मनाम्॥१९।८६

३१३. ग्रहणं ननु वीराणां रणे सत्कीर्तिकारणम्। १९।८९

३१४ द्वयमेव रणे वीरैः प्राप्यते मानशालिभिः।
ग्रहणं मरण वापि कातरैश्च पलायितुम्॥ १९।९०

३१५. एकापि यस्येह भवेद् विरूपा
नरस्य जाया प्रतिकूलचेष्टा।
रतेः पतित्व स नरः करोति
स्थित. सुखे संसृतिधर्मजाते॥ १९।१३१

३१६. विषयवशमुपेतैर्नष्टतत्त्वार्थबोधैः
कविभिरतिकुशीलैर्नित्यपापानुरक्तैः।
कुरचितगरहेतुग्रन्थवाग्वागुराभि-
प्रगुणजनमृगौघो वध्यते मन्दभाग्य.॥ १९।१३९

३१७ कुलानामिति सर्वेषां श्रावकाणा कुलं स्तुतम्।
आचारेण हि तत्पूतं सुगत्यर्जनतत्परम्॥ २०।१४०

३१८. असारा धिगिमां शोभां मर्त्यानां क्षणिकामिति॥ २०।१६०

३१९. न पाथेयमपूपादि गृहीत्वा कश्चिदृच्छति।
लोकान्तरं न चायाति किन्तु तत्सुकृतेतरम्॥ २०।१९६

३२०. कैलासकूटकल्पेषु वरस्त्रीपूर्णकुक्षिषु।
यद्वसन्ति स्वगारेषु तत्फलं पुण्यवृक्षजम्॥ २०।१९७

३२१. शीतोष्णवासयुक्तेषु कुगृहेषु वसन्ति यत्।
दारिद्रयपङ्कनिर्मग्नास्तदधर्मतरोः फलम्॥ २०।१९८

३२२. विन्ध्यकूटसमाकारैर्वारणेन्द्रैर्व्रजन्ति यत्।
नरेन्द्राश्चामरोद्धूताः पुण्यशालेरिदं फलम्॥ २०।१९९

३२३. तुरङ्गैर्यदल स्वङ्गैर्गम्यते चलचामरैः।
पादातमध्यगैः पुण्यनृपतेस्तद्विचेष्टितम्॥ २०।२००

३२४. कल्पप्रासादसङ्काश रथमारुह्य यज्जना.।
व्रजन्ति पुण्यशैलेन्द्रात् स्रुतोऽसौ स्वादुनिर्झरः॥ २०।२०१

३२५. स्फुटिताभ्यां पदाङ्घ्रिभ्यां मलग्रस्तपटच्चरैः।
भ्रम्यते पुरुषै. पापविषवृक्षस्य तत्फलम्॥ २०।२०२

३२६. अन्न यदमृतप्रायं हेमपात्रेषु भुज्यते।
स प्रभावो मुनिश्रेष्ठैरुक्तो धर्मरसायनः॥ २०।२०३

३२७ देवाधिपतिता चक्रचुम्बिता यच्च राजता।
लभ्यते भव्यशार्दूलैस्तदर्हिसालताफलम् ॥ २०।२०४

३२८. रामकेशवयोर्लक्ष्मीर्लभ्यते यच्च पुङ्गवैः।
तद्धर्मफलम् ॥ २०।२०५

३२९. सनिदान तपस्तस्माद्वर्जनीय प्रयत्नतः।
तद्धि पश्चान्महाघोरदु खदानसुशिक्षितम् ॥ २०।२१५

३३० केचिद्गच्छन्ति मोक्ष कृतपुरुतपस. स्तोकपङ्काश्च केचित्।
केचिद्भ्राम्यन्ति भूयो बहुभवगहना ससृर्ति निर्विरामा ॥ २०।२४९

३३१. चक्रवत्परिवर्तन्ते व्यसनानि महोत्सवैः।
शनैर्मायादयो दोपा प्रयान्ति परिवर्द्धनम् ॥२१।५९

३३२. शुभाशुभसमासक्ता व्यतिक्रामन्ति मानवा ॥२१।७१

३३३. जातस्य सुन्दरावश्य मृत्यु प्रेतस्य सम्भव· ॥२१।११३

३३४. मृत्युजन्मघटीयन्त्रमेतद् भ्रात्म्यत्यनारतम्।
विद्युत्तरङ्गदुष्टाहिरसनेभ्योऽपि चञ्चलम् ॥२१।११४

३३५. स्वप्नभोगोपमा भोगा जीवित बुद्बुदोपमम् ॥२१।११५

३३६. सन्ध्यारागोपम स्नेहस्तारुण्यं कुसुमोपमम् ॥२१।११६

३३७. परिहासेन किं पीत नौषध हरते रुजम् ॥२१।११७

३३८. अर्थो धर्मश्च कामश्च त्रयस्ते तरुणोचिता।
जरापरीतकायस्य दुष्करा प्राणधारिण· ॥२१।१३६

३३९. कष्टमहो न शक्यते
विधिर्विनेतु प्रकटीकृतोदय ।·२१।१४६

३४०. उत्सार्य यो भीषणमन्धकार
करोति निष्कान्तिकमिन्दुबिम्बम्।
असौ रवि. पद्मवनप्रबोध.
स्वर्भानुमुत्सारयितु न शक्त ॥२१।१४७
तारुण्यसूर्योऽप्ययमेवमेव
प्रणश्यति प्राप्तजरोपसगः।
जन्तुर्वराको वरपाशबद्धो
मृत्योरवश्य मुखमभ्युपैति ॥२१।१४८

३४१. धर्मे विनष्टे वद किं न नष्टम्? २१।१५५

३४२. पश्य श्रेणिक! ससारे समोहस्य विचेष्टितम्।
यत्राभीष्टस्य पुत्रस्य माता गात्राणि खादति ॥२२।९३

किमतोऽन्यत्पर कष्ट यज्जन्मान्तरमोहिता.।
वान्धवा एव गच्छन्ति वैरिता पापकारिण ॥२२।६४

३४३ कर्मभूमिमिमा प्राप्य धन्यास्ते युवपुङ्गवा ।
व्रतपोत समारुह्य तेरुर्ये भवसागरम् ॥२२।१११

३४४ अधोगति (यंतो) राज्यादत्यक्तादुपजायते ।
सम्यग्दर्शनयोगात्तु गतिरूर्ध्वमसशया ॥२२।१७८

३४५. जीवितायाखिल कृत्य क्रियते (नाथ!) जन्तुभि ।
त्रैलोक्येशत्वलाभोऽपि (वद) तेनोज्झितस्य क· ? २३।३८

३४६ उपर्युपरि हि प्रायश्चलन्ति विदुषा धिय ॥२३।४५

३३७ जन्तुभ्यो यो ददात्यभय नर ।
किं न तेन भवेद्दत्त साधूना धुरि तिष्ठता ? २३।४६

३४८. यद्यत्र यावच्च यतश्च येन
दु ख सुख वा पुरुषेण लभ्यम् ।
तत्तत्र तावच्च ततश्च तेन
सम्प्राप्यते कर्मवशानुगेन ॥२३।६२

३४९ दु.शिक्षितार्थैर्मनुजैरकार्ये
प्रवर्तते जन्तुरसारबुद्धि ॥२३।६४

३५० आशीविषाङ्गप्रभवोऽपि सर्प–
स्ताक्ष्यस्य शक्नोति किमु प्रहर्तुम् ? २३।६०

३५१. क्वेभ सशङ्को मदमन्दगाभी
क्व केसरी वायुसमानवेग ? २३।६१

३५२. कालज्ञान हि सर्वेषा नयाना मूर्धनि स्थितम् ॥२४।१००

३५३ अवस्थित जगद्व्याप्य नुदेदर्क कथ तम ।
सव्येष्टा चेद्भवेदस्य न मूर्तिररुणात्मिका ॥२४।१२८

३५४. दुराचारयुक्ता पर यान्ति दुख
सुख साधुवृत्ता रविप्रख्यभास. ॥२४।१३५

३५५. द्रविणोपार्जन विद्याग्रहण धर्मसग्रह ।
स्वाधीनमपि तत्प्रायो विदेशे सिद्धिमश्नुते ॥२५।४४

३५६. ज्ञानं सम्प्राप्य किञ्चिद् व्रजति परमता तुल्यमन्यत्र यात
तावत्त्वेनापि नैति क्वचिदपि पुरुषे कर्मवैषम्ययोगात् ।
अत्यन्त स्फीतिमेति स्फटिकगिरितटे तुल्यमन्यत्र देशे
यात्येकान्तेन नाशं तिमिरवति रवेरंशुवृन्द खगौघै. ॥२५।५६

३५७. विद्याधर्मावगाहश्च जायतेऽव्हितात्मनाम् । २६।७

३५८. पुरा ससर्गतः प्रीतिः प्राणिनामुपजायते ।
प्रीतितोऽभिरतिप्राप्ती रतेर्विश्रम्भसम्भवः ॥
सद्भावात्प्रणयोत्पत्ति. प्रेमैव पञ्चहेतुकम् ।
दुर्मोच वध्यते कर्म पातकैरिव पञ्चभिः ॥ २६।८-९

३५९. भीषिताना दरिद्राणामार्ताना च विशेषत ।
नारीणा पुरुषाणा च सर्वेषा शरण नृपः ॥ २६।२२

३६०. स्नेहस्य किमु दुष्करम् । २६।४२

३६१. आखोर्गिरिविलस्थस्य किं करोतु मृगाधिपः । २६।४९

३६२. दु.खिताना दरिद्राणा वर्जिताना च बान्धवै ।
व्याधिसपीडिताना च प्रायो भवति धर्मधी. ॥ २६।६१

३६३. माता पिता च पुत्रश्च मित्राणि च सहोदराः ।
भक्षितास्तेन यो मास भक्षयत्यधमो नरः ॥ २६।७४

३६४. ननु रविकरसङ्गस्योचिता पद्मलक्ष्मी । २६।१७१

३६५. न ह्याखूना विरोधेन क्षुभ्यन्ति वरवारणा. ।
न चापि तूलदाहार्थं सन्नह्यति विभावसु. ॥ २७।३७

३६६. सद्य उत्पन्नो भृशमल्पोऽपि पावक ।
कथ दहति विस्तीर्णं महद्भि. किं प्रयोजनम् ॥ २७।४०

३६७. बाल सूर्यस्तमो घोर द्युतीर् ऋक्षगणस्य च ।
एको नाशयति क्षिप्र भूतिभि कि प्रयोजनम् ॥ २७।४१

३६८. सत्त्वत्यागादिवृत्तीना क्षत्रियाणामिय स्थिति ।
उत्सहन्ते प्रयातु यद्विहातुमपि जीवितम् ॥ २७।४३

३६९. अथवा क्षयमप्राप्ते जन्तुरायुषि नाश्नुते ।
मरण गहन प्राप्त पर यद्यपि जायते ॥ २७।४४

३७०. स्व ननु कर्म पुसाम् ।
समागमे गच्छति हेतुभाव वियोजने वा सुजनेन साकम् ॥ २७।९३

३७१. शिशोर्विषफले प्रीतिर्नि स्वस्य बदरादिषु ।
ध्वाङ्क्षस्य पादपे शुष्के स्वभावः खलु दुस्त्यजः ॥ २८।१४३

३७२. अत्यन्तविपुल. क्षारसागरः ।
न तत्करोति यद्वाप्य. स्तोकस्वादुपयोभृत. ॥ २८।१४६

३७३. अत्यन्तघनबन्धेन तमसा भूयसापि किम् ।
अल्पेन तु प्रदीपेन जन्यते लोकचेष्टितम् ॥ २८।१४७

३७४. असंख्या अपि मातङ्गा मदिनः कुर्वते न तत् ।
केशरी यत्किशोरः संश्चन्द्रनिर्मलकेसरः ॥ २८।१४८

३७५. अर्हन्तस्त्रिजगत्पूज्याश्चक्रिणो हरयो बलाः ।
उत्पद्यन्ते नरा यस्यां सा कथं निन्दिता मही ॥ २८।१५४

३७६. वायसा अपि गच्छन्ति नभसा तेन किं भवेत् ।
गुणेष्वत्र मनः कृत्यमिन्द्रजालेन को गुणः ॥ २८।१६५

३७७. शरीरे सति कामिन्यो भविष्यन्ति मनीषिताः ॥ २८।१८४

३७८. ननु कर्मार्जितं पुरा ।
नर्तयत्यखिलं लोकं नृत्ताचार्यो ह्यसौ परः ॥ २८।२०२

३७९ पद्मगर्भदलच्छाया साक्षाल्लक्ष्मीरिवोज्ज्वला ।
ईदृशी पुरुपुण्यस्य पुंसो भवति भामिनी ॥ २८।२५५

३८०. यादृग् येन कृतं कर्म भुङ्क्ते तादृक् स तत्फलम् ।
न ह्युप्तान् कोद्रवान् कश्चिदश्नुते शालिसम्पदम् ॥ २८।२६५

३८१. समवगम्य जनाः शुभकर्मण- फलमुदारमशोभनतोऽन्यथा ।
कुरुत कर्म बुधैरभिनन्दितं भवत येन रवेरधिकप्रभाः ।२८।२७५

३८२. सर्वतो मरणं दुःखम् ॥२९।२६

३८३. प्रसादव्वनिपर्यन्तप्रकोपा हि महास्त्रियः ॥२९।२९

३२४. प्रणयादपरावेऽपि ननु तुष्यन्ति योषितः ॥२९।३७

२८५. दयिते क्रियते यावत्कोपो दारुणमानसे ।
तावत्संसारसौख्यस्य विघ्नं जानीहि शोभने ॥२९।३८

३८६. यत्प्राप्तव्यं यदा येन यत्र यावद्यतोऽपि वा ।
तत्प्राप्यते तदा तेन तत्र तावत्ततो ध्रुवम् ॥२९।८३

३८७. असिधाराव्रतं जैनो जनोऽसक्त निषेवते ॥२९।९७

३८८. शक्नोति न सुरेन्द्रोऽपि विधातुं विधिमन्यथा ॥३०।२४

३८९ शासनस्य जिनेन्द्राणामहो माहात्म्यमुत्तमम् ॥३०।४७

३९०. करणं यदतिक्रान्तं मृतमिष्टं च बान्धवम् ।
हृतं विनिर्गतं नष्टं न शोचन्ति विचक्षणाः ॥३०।७२

३९१. कातरस्य विषादोऽस्ति दयिते प्राकृतस्य च ।
न कदाचिद्विषादोऽस्ति विक्रान्तस्य बुधस्य च ॥३०।७३

३९२. चरितं निरगाराणां शूराणां शान्तमीहितम् ।
शिवं सुदुर्लभं सिद्ध सारं क्षुद्रभयावहम् ।:३०।८३

३९३. कुतः श्रद्धाविमुक्तस्य धर्मो धर्मफलानि च ? ३१।२०

३९४. पुण्येन लभते सौख्यमपुण्येन च दु.खिता ।
कर्मणामुचित लोकः सर्वं फलमुपाश्नुते ।।३१।७६
३९५. अहो कष्ट दुश्छेद्य स्नेहवन्धनम् ।।३१।९५
३९६. जन्तुरेकक एवाय भवपादपसङ्कुले ।
मोहान्धो दु खविपिने कुरुते परिवर्तनम् ।।३१।९९
३९७. अत्यत दुर्धरोद्दिष्टा प्रव्रज्या जिनसत्तमै. ।.३१।१०९
३९८. मृत्यु. प्रतीक्षते नैवं वाल तरुणमेव वा ।।३१।१३३
३९९. गृहाश्रमे महावत्स ! श्रूयते धर्मसञ्चयः ।
अशक्यः कुनरैः कर्त्तु कुरुते राज्यसंगत. ।।३१।१३४
४००. कामक्रोधादिपूर्णस्य का मुक्तिर्गृहसेविन ।।३१।१३५
४०१. न करोति यत. पात पित्रोः शोकमहोदधौ ।
अपत्यत्वमपत्यस्य तद्वदन्ति सुमेधसः ।।३१।१५३
४०२. न हि सागररत्नानामुत्पत्ति. सरसो भवेत् ।।३१।१५५
४०३. भ्राजते त्रायमानः सन् वाक्यं तत्पितृकस्य यत् ।
लब्धवर्णैरिदं भ्रातुर्भ्रातृत्व परिकीर्तितम् ।।३१।१६३
४०४. स्वार्थ ससक्तनित्याश धिक् स्त्रैणमनपेक्षितम् ।।३१।१९३
४०५. सर्वासामेव शुद्धीना मन.शुद्धि- प्रशस्यते ।
४०६. अन्यथालिङ्ग्यतेऽपत्यमन्यथालिङ्ग्यते पतिः ।।३१।२३३
४०७. नानाकर्मस्थितौ त्वस्यां को नु शोचति कोविद. ।।३१।२३७
४०८. असमाप्तेन्द्रियसुख कदाचित्स्थितिसक्षये ।
पक्षी वृक्षमिव त्यक्त्वा देह जन्तुर्गमिष्यति ।।३१।२३९
४०९ धिग्भोगान्भोगिभोगाभान् भङ्गुरान्भीतिभाविन. ।।३२।५९
४१०. वियोगमरणव्याधिजराव्यसनभाजनम् ।
जलबुद्बुदनि सार कृतघ्न धिक् शरीरकम् ।।३२।६१
४११ भाग्यवन्तो महासत्त्वास्ते नरा श्लाघ्यचेष्टिता. ।
कपिभ्रूभङ्गुरा लक्ष्मी ये तिरस्कृत्य दीक्षिता. ।।३२।६२
४१२. धिक् स्नेह भवदु खानां मूलम् ।। ३२।८३
४१३. नहि भक्तेर्जिनेन्द्राणा विद्यते परमुत्तमम् ।।३२।१८२
४१४. हित करोत्यसौ स्वस्य भूतानां यो दयापरः ।
दीक्षितो गृहयातो वा बुधो निर्मलमानस. ।।३३।१०२
४१५. साहस कुरुते किं न मानवो योषिता कृते ।।३३।१४९

४१६ यथा किलाविनीतानां भृत्याना विनयाहृतौ ।
कुर्वन्ति स्वामिनो यत्न विरोध कोऽत्र दृश्यते ॥३३।२१६

४१७ ननु योषित्सु कारुण्य कुर्वन्ति पुरुषोत्तमा· ॥३३।२७३

४१८. प्रणम्य त्रिजगद्वन्द्य जिनेन्द्र परम शिवम् ।
तुङ्गेन शिरसा तेन कथमन्यः प्रणम्यते ॥३३।२६५

४१९. मकरन्दरसास्वादलब्धवर्णो मधुव्रत. ।
रासभस्य पद पुच्छे प्रमत्तोऽपि करोति किम् ? ३३।२६६

४२०. अपकारिणि कारुण्य य करोति स सज्जन ।
मध्ये कृतोपकारे वा प्रीति· कस्य न जायते ॥३३।३०६

४२१. प्रायो माङ्गलिके लोको व्यवहारे प्रवर्तते ॥३४।४३

४२२ श्रमणा ब्राह्मणा गाव पशुस्त्रीबालवृद्धका. ।
सदोषा अपि शूराणा नैते वध्या किलोदिता ॥३५।२८

४२३ धिग् धिग् नीचसमासङ्ग दुर्वच श्रुतिकारणम् ।
मनोविकारकरण महापुरुषवर्जितम् ॥३५।३०

४२४. वर तरुतले शीते दुर्गमे विपिने स्थितम् ।
परित्यज्याखिल ग्रन्थ विहृत भुवने वरम् ॥
वरमाहारमुत्सृज्य मरण सेवितु सुखम् ।
अवज्ञातेन नान्यस्य गृहे क्षणमपि स्थितम् ॥३५।३१-३२

४२५ अणुव्रतधरो यो ना गुणशीलविभूषित ।
त राम· परया प्रीत्या वाञ्छितेन समर्चति ॥३५।८०

४२६ धनवान् पूज्यते नित्य यथादित्यो हिमागमे ॥३५।१८

४२७. द्रविणानीह पूज्यन्ते ॥३५।१५९

४२८. यस्यार्थास्तस्य मित्राणि यस्यार्थास्तस्य बान्धवा. ।
यस्यार्था स पुमाँल्लोके यस्यार्था स च पण्डितः ॥३५।१६१

४२९ अर्थेन विप्रहीनस्य न मित्र न सहोदर ।
तस्यैवार्थसमेतस्य परोऽपि स्वजनायते ॥३५।१६२

४३०. सार्थो धर्मेण यो युक्तो सो धर्मो यो दयान्वित ।
सा दया निर्मला ज्ञेया मास यस्या न भुज्यते ॥३५।१६३

४३१. मासाशनान्निवृत्ताना सर्वेषा प्राणधारिणाम् ।
अन्या मूलेन सम्पन्ना· प्रशस्यन्ते निवृत्तय ॥३५।१६४

४३२. अनभिज्ञो विशेषस्य विशेष कमवाप्तवान् ? ३५।१७१

४३३. अयमन्यश्च विवशो जनै. स्वकृतभोगिभि ।
न योऽवगम्यते यत्र न स तत्र जनोऽर्च्यते ॥३५।१७२

४३४. सर्वेषामेव जीवाना धनमिष्टसमागम ।
जायते पुण्ययोगेन यच्चात्मसुखकारणम् ॥३५।७८

४३५ योजनाना शतेनापि परिच्छिन्ने श्रुतान्तरे ।
इष्टो मुहूर्त्तमात्रेण लभ्यते पुण्यभागिभि. ॥३६।७९

४३६ ये पुण्येन विनिर्मुक्ता प्राणिनो दु.खभागिन. ।
तेषा हस्तमपि प्राप्तमिष्टवस्तु पलायते ॥३६।८०

४३७. अरण्याना गिरेर्मूर्ध्नि विषमे पथि सागरे ।
जायन्ते पुण्ययुक्ताना प्राणिनामिष्टसङ्गमा. ॥३६।८१

४३८. सिंहे करीन्द्रकीलालपङ्कलोहितकेसरे ।
शान्तेऽपि शावकस्तस्य कुरुते करिपातनम् ॥३७।४४

४३९ किं तारा भान्ति भास्करे ? ३७।६४

४४०. जातो वशलतातोऽपि मणि सगृह्यते ननु ॥३७।६५

४४१. सहसारभ्यमाण हि कार्यं व्रजति सशयम् ॥ ३७।६७

४४२. प्रस्तुतमत्यक्त्वा समारब्ध प्रशस्यते ॥३७।६८

४४३. कष्टमेककयोर्जाते विरोधे कारण विना ।
पक्षद्वय मनुष्याणा जायते विवशक्षयम् ॥३७।७९

४४४. अज्ञाता एव ये कार्यं कुर्वन्ति पुरुषाद्भुतम् ।
तेऽतिश्लाघ्या यथात्यन्त निवृष्य जलदा गताः ॥ ३७।९१

४४५ चकासति रवौ पापलक्ष्मीर्दोषाकरस्य का ॥ ३७।१२२

४४६. को दोप. कर्मसामर्थ्याद्यदायान्त्यापद नरा· ।
रक्ष्या एव तथाप्येते दधतामतिसाधुताम् ॥ ३७।१४१

१४७. इतरो ऽपि खलीकर्तुं साधूना नोचितो जन । ३७।१४२

४४८. महतामेव जायन्ते सम्पदो विपदन्विताः ।३७।१५०

४४९. षट्खण्डा यैरपि क्षोणी पालितेय महानरै· ।
न तृप्तास्ते ऽपि ॥ ३७।१५५

४५०. प्रभाव तपसः पश्य त्रिदशेष्वपि दुर्लभम् ॥३८।७

४५१. समस्तेभ्यो हि वस्तुभ्य. प्रिय जगति जीवितम् ।
तदर्थमितरत् सर्वमिति को नावगच्छति ॥३८।६९

४५२. वर्तिकाग्रहणे को वा बहुमानो गरुत्मतः ॥३८।१०२

४५३. ये जन्मान्तरसञ्चितातिसुकृता सर्वासुभाजा प्रिया:
य य देशमुपव्रजन्ति विविध कृत्य भजन्त परम् ।
तस्मिन् सर्वहृपीकसौख्यचतुरस्तेपा विना चिन्तया
मृष्टान्नादिविधिर्भवत्यनुपमो यो विप्टपे दुर्लभ. ॥३८।१४२

४५४. भोगैर्नास्ति मम प्रयोजनमिमे गच्छन्तु नाश खला
इत्येपा यदि सर्वदापि कुरुते निन्दामल द्वेपक. ।
एतै सर्वगुणोपपत्तिपटुभिर्यातोऽपि शृङ्ग गिरेः
नित्य याति तथापि निर्जितरविर्दीप्त्या जन सङ्गमम् ॥३८।१४३

४५५. कालं देश च विज्ञाय नीतिशास्त्रविशारदै. ।
क्रियते पौरुप तेन न जातु विपदाप्यते ॥३६।२२

४५६ नि.सारमीहित सर्वं ससारे दु खकारणम् ॥३६।३६

४५७. मित्राणि द्रविण दारा पुत्रा. सर्वे च बान्धवा ।
सुखदु खमिद सर्वं धर्म एक सुखावह ॥३६।३७

४५८ नैव वारयितु शक्यास्तपस्तेजोऽतिदुर्गमा. ।
त्रिदशैरपि दिग्वस्त्रा किमुतास्मादृशैर्जनै ॥३६।१०३

४५६. करिबालककर्णान्तचपल ननु जीवितम् ।
मानुष्यक च कदलीसारसाम्य विभर्त्यद ॥३६।११३

४६०. स्वप्नप्रतिममैश्वर्यं सक्त च सह बान्धवै ॥३६।११४

४६१. धिगत्यन्ताशुचि देह सर्वाशुभनिधानकम् ।
क्षणनश्वरमत्राण कृतघ्न मोहपूरितम् ॥३६।११७

४६२ शरीरसार्थं एतस्मिन् परलोकप्रवासिनि ।
मुष्णन्त प्रसभ लोक तिष्ठन्तीन्द्रियदस्यव ॥३६।१२०

४६३ रमते जीवनृपति. कुमतिप्रमदावृत ।
अवस्कन्देन मृत्युस्त कदर्थयितुमिच्छति ॥३६।१२१

४६४. मनो विपयमार्गेपु मत्तद्विरदविभ्रमम् ।
वैराग्यबलिना शक्य रोद्धु ज्ञानाङ्कुशश्रिता ॥३६।१२२

४६५. परस्त्रीरूपसस्येपु बिभ्राणा लोभमुत्तमम् ।
अमी हृपीकतुरगा वृतमोहमहाजवा. ॥
शरीररथमुन्मुक्ता पातयन्ति कुवर्त्मसु ।
चित्तप्रग्रहमत्यन्त योग्य कुरुत तद्दृढम् ॥३६।१२३-१२४

४६६ यद्यथा निर्मित पूर्वं तद्योग्य जायतेऽधुना ।
ससारवाससक्तानां जीवाना गतिरीदृशी ॥३६।१४२

४६७. किमधीतैरिहानर्थग्रन्थैरौशसनादिभि ।
एकमेव हि कर्तव्य सुकृत सुखकारणम् ।।३६।१४३

४६८. न शृणोति स्मरग्रस्तो न जिघ्रति न पश्यति ।
न जानात्यपरस्पर्शं न बिभेति न लज्जते ।।३६।२०८

४६६ आश्चर्यं मोहत कष्टमनुताप प्रपद्यते ।
अन्धो निपतित कूपे यथा पन्नगसेविते ।।३६।२०६

४७०. इह यत् क्रियते कर्म तत्परत्रोपभुज्यते ।
पुराकृताना पुण्यानामिह सम्पद्यते फलम् ।।४०।३७

४७१ अस्माकमत्र वसता बिभ्रता सुखसम्पदाम् ।
अमी ये दिवसा यान्ति न तेषां पुनरागम ।।४०।३८

४७२. नदीना चण्डवेगानामायुपो दिवस्य च ।
यौवनस्य च सौमित्रे यद्गत गतमेव तत् ।।४०।३६

४७३. स्त्रीचित्तहरणोद्युक्ता. किं न कुर्वन्ति मानवा· ।।४१।६२

४७४ दृष्टान्त परकीयोऽपि शान्तेर्भवति कारणम् ।
असमञ्जसमात्मीय किं पुन. स्मृतिमागतम् ।।४१।१०१

४७५ इद कर्मविचित्रत्वाद् विचित्र परम जगत् ।।४१।१०५

४७६ तिर्यञ्चोऽपि ह्येते रम्य परुषकृतिरहितमनसा विन्दन्ति समीहितम् ।।४२।८१

४७७. यथावस्थितभावाना श्रद्धान परम सुखम् ।
मिथ्याविकल्पितार्थाना ग्रहण दु खमुत्तमम् ।।४३।३०

४७८. जनोऽविदितपूर्वो यो जने बध्नाति सौहृदम् ।
अनाहूतश्च सामीप्य व्रजति त्रपयोज्झित ।।
अनादृत प्रभूत च भापते शून्यमानस. ।
उत्पादयति विद्वेप कस्य नासौ क्रमोज्झित ।।४३।१०५-१०६

४७६. न्यायेन सङ्गता साध्वी सर्वोपप्लववर्जिताम् ।
को वा नेच्छति लोकेऽस्मिन् कल्याणप्रकृतिस्थितम् ।।४३।१०८

४८०. दधति परमशोक बालवद् बुद्धिहीना ।।४३।१२२

४८१. किमिदमिह मनो मे किं नियोज्य तदिष्ट कथमनुगतकृत्यै प्राप्यते श मनुष्यै ।
इति कृतमतिरुच्चैर्यो विवेकस्य कर्ता रविरिव विमलोऽसौ राजते लोकमार्गे ।।
४३।१२३

४८२. क्वाबला क्व पुमान् बली ।।४४।२०

४८३. धिगिद शौर्यमस्माकं सहायान् यदि वाञ्छति ।।४४।३५

४८४. चित्रा हि मनसो गति ।।४४।६५

४८५ लोको हि परमो गुरु· ।।४४।७१

४८६. महाप्रकृष्टपूरस्य नदस्योदाररहस· ।
तटयो पातने शक्ति. केन न प्रतिपद्यते ।।४४।७६

४८७ न प्रसादयितु शक्य क्रुद्ध शीघ्र नरेश्वर. ।
अभीष्ट लब्धुमथवा द्युतिर्वा कीर्तिरेव वा ।।
विद्या वाभिमता लब्धु परलोकक्रियाऽपि वा ।
प्रिया वा मनसो भार्या यद्वा किञ्चित् समीहितम् ।।४४।९६-९७

४८८ प्रतीक्षते हि तत्काल मृत्यु कर्मप्रचोदित ।।४४।१००

४८९ मानुपत्व परिभ्रष्ट गहने भवसङ्कटे ।
प्राप्तुमत्यद्भुत भूय· प्राणिनाशुभकर्मणा ।।
त्रैलोक्यगुणवद्रत्न पतित निम्नगापतौ ·
लभेत क पुनर्धन्य कालेन महताप्यलम् ।। ४४।१२३-१२४

४९० अहो दु खस्य चित्रता ।।४४।१४४

४९१. अहो दु खार्णवो महान् ।।४४।१४५

४९२ प्रायोऽनर्था बहुत्वगा: ।।१४६

४९३ न ये भवप्रभवविकारसङ्गते पराङमुखा जिनवचनान्युपासते ।
वशीकृतान् शरणविवर्जितानमून् तपत्यल स्वकृतरवि· सुदुस्सह: ।।४४।१५१

४९४ कृत्स्न विधिवश जगत् ।।४५।५२

४९५ शोको हि नाम कोऽप्येप विषभेदो महत्तम· ।
नाशयत्याश्रित देह का कथान्येपु वस्तुषु ।।४५।८१

४९६. जीवन् पश्यति भद्राणि धीरश्चिरतरादपि ।
ग्रही ह्रस्वमतिर्भद्रं कृच्छादपि न पश्यति ।।४५।८३

४९७ औदासीन्यमिहानर्थं कुरुते परम पुरा ।।४५।८४

४९८ अरण्यमपि रम्यत्व याति कान्तासमागमे ।
कान्तावियोगदग्धस्य सर्व विन्ध्यवनायते ।।४५।९९

४९९. यद्यप्याशा पूर्वकर्मानुभावात् सङ्ग कर्तु जायते प्राणभाजाम् ।
प्राप्य ज्ञान साधुवर्गोपदेशाद् गन्त्री नाश सा रवे शर्वरीव ।।४५।१०५

५०० राजते चारुभावाना सर्वथैव हि चारुता ।।४६।५

५०१. शक्नोति सुखधी. पातु क. शिखामाशुशुक्षणे ।
को वा नागवधूमूर्ध्नि स्पृशेद् रत्नशलाकिकाम् ।।४६।२१

५०२. जगत्प्राग्विहित सर्वं प्राप्नोत्यत्र न सशय ।।४६।३२

५०३. प्राणा मूल सर्वस्य वस्तुन ।। ४६।६४

५०४. निवृत्तिरेकापि ददाति परम फलम् ॥४६।५६
५०५. जन्तूना दु खभूयिष्ठभवसन्ततिसारिणाम् ।
पापान्निवृत्तिरल्पाऽपि ससारोत्तारकारणम् ॥४६।५७
५०६ येपा विरतिरेकापि कुतश्चिन्नोपजायते ।
नरास्ते जर्जरीभूतकलशा इव निर्गुणा· ॥४६।५८
५०७ कर्मानुभावत सर्वे न भवन्ति समक्रिया ॥४६।६२
५०८ भस्मभावङ्गते गेहे कूपखानश्रमो वृथा ॥४६।६६
५०९. आत्मार्थं कुर्वत· कर्म सुमहासुखसाधनम् ।
दोषो न विद्यते कश्चित्सर्वं हि सुखकारणम् ॥४६।७७
५१०. सज्जनस्याग्रे नून शोक प्रवर्द्धते ॥४६।११४
५११. परदाराभिलाषोऽयमयुक्तोऽतिभयङ्कर ।
लज्जनीयो जुगुप्स्यश्च लोकद्वयनिपूदन ॥४६।१२३
५१२. धिक्शब्द· प्राप्यते योऽय सज्जनेभ्य समन्तत ।
सोऽय विदारणे शक्तो हृदयस्य सुचेतसाम् ॥४६।१२४
५१३. यो ना परकलत्राणि पापबुद्धिर्निपेवते ।
नरक स विशत्येष लोहपिण्डो यथा जलम् ॥४६।१२६
५१४. सर्वथा प्रातरुत्थाय पुरुपेण सुचेतसा ।
कुशलाकुशल स्वस्य चिन्तनीय विवेकत· ॥४६।१२०
५१५. चित्र हि स्मरचेष्टितम् ॥४६।१८६
५१६ मन्त्रणीय हि सम्बद्ध स्वामिने हितमिच्छता ॥४६।२११
५१७. उद्योगेन विमुक्ताना जनाना सुखिता कुत. ॥४७।११
५१८. नवोऽनुरागवन्द्यो हि चन्द्रो लोकस्य नान्यदा ॥४७।१२
५१९. मन्त्रदोपमसत्कार दान पुण्य स्वशूरताम् ।
दु.शीलत्व मनोदाह दुर्मित्रेभ्यो न वेदयेत् ॥४७।१५
५२० सद्भाव हि प्रपद्यन्ते तुल्यावस्था जना भुवि ॥४७।१७
५२१. अथवाश्रयसामर्थ्यात् पुसा किं नोपजायते ॥४७।२०
५२२. मद्यपस्यातिवृद्धस्य वेश्याव्यसनिनः शिशो ।
प्रमदानां च वाक्यानि जातु कार्याणि नो बुधै. ॥४७।६३
५२३. अत्यन्तदुर्लभा लोके गोत्रशुद्धि ॥४७।६४
५२४. समानेषु प्राय· प्रेमोपजायते ॥४७।९१
५२५ मानसानि मुनीना हि सुदिग्धान्यनुकम्पया ॥४८।४८
५२६. मोहो जयति पापिनाम् ॥४८।४५

५२७ शक्ति दधताऽपि परा प्राप्यापि पर प्रबोधमारभ्ये।
भवितव्य नयरतिना रविरिव काले स यात्युदयम् ॥४८।२५०

५२८ क्षुद्रशक्तिसमासक्ता मानुषास्तावदासताम्।
न सुरैरपि कर्माणि शक्यन्ते कर्तुमन्यथा ॥४९।७

५२९ श्वपाकादपि पापीयान् लुब्धकादपि निर्घृण·।
असम्भाष्य. सता नित्य योऽकृतज्ञो नराधम ॥४९।९४

५३०. दुर्लभ सङ्गमो भूय पूजित. सर्ववस्तुषु।
ततोऽपि दुर्लभो धर्मो जिनेन्द्रवदनोद्गत ॥४९।१०६

५३१. महात्मनामुन्नतगर्वशालिनो भवन्ति वश्या पुरुषा बलान्विता ॥५०।५४

५३२ अहो नो भवितव्यता ॥५१।२३

५३३ न मुनेर्वाक्य कदाचिज्जायतेऽनृतम् ॥५१।३३

५३४. गुणान्वितैर्भवति जनैरलङ्कृता समस्तभू शुभललितै सुसुन्दर।
विना जन मनसि कृतास्पद सदा व्रजत्यसौ गहनवनेन तुल्यताम् ॥५१।५०

५३५ पुराकृतादतिनिचितात्समुकटाज्जन. परा रतिमनुयाति कर्मण।
ततो जगत्सकलमिद स्वगोचरे प्रवर्तते विधिरविणा प्रकाशते ॥५१।५१

५३६ राज्यविधौ स्थिता।
पित्रादीनपि निघ्नन्ति नरा. कर्मबलेरिता ॥५२।६४

५६७ अस्मिन् हि सकले लोके विहित भुज्यते ॥५२।६५

५३८. कृत्य प्रत्युपकारस्य बान्धवैरनुमोदितम् ॥५२।७५

५३९ चित्रमिद परमत्र नृलोके, यत्परिहाय भृश रसमेकम्।
तत्क्षणमेव विशुद्धशरीर जन्तुरुपैति रसान्तरसङ्गम् ॥५२।८४

५४०. उचित किमिद कर्त्तु यद्वास्यार्द्धपति स्वयम्।
कुरुते क्षुद्रवत्कश्चिच्चोरण परयोषित ॥५३।४

५४२. मर्यादाना नृपो मूलमापगाना यथा नग।
अनाचारे स्थिते तस्मिन् लोकस्तत्र प्रवर्तते ॥५३।५

५४२ विमल चरित लोके न केवलमिहेष्यते।
किन्तु गीर्वाणलोकेऽपि रचिताञ्जलिभि. सुरै ॥५३।६

५४३ परार्थं य पुरस्कृत्य पुन स्व विनिगूहति।
सोऽतिभीरुतयात्यन्त जायते निकृतो नर. ५३।३९

५४४. परमापदि सीदन्त जन सन्धारयन्ति ये।
अनुकम्पनशीलाना तेषा जन्म सुनिर्म्मलम् ॥५३।४०

५४५. हानि पुरुषकारस्य न चात्मनि निदर्शिते।
प्रकाश्ये गुरुता याति जगति श्रीर्यशस्विनी ॥५३।४१

५४६ विग्रहो नि प्रयोजन ॥५३।८५

५४७. कार्यसिद्धिरिहाभीष्टा सर्वथा नयशालिभिः ॥५३।८५

५४८. शूरा. सत्त्वयशोऽन्विता ।
गुणोत्कटा न शसन्ति धीरा स्व स्वयमुत्तमाः ॥५३।६१

५४६ सुख प्रसादतो यस्य जीव्यते विभवान्वित'।
अकार्यं वाञ्छतस्तस्य दीयते न मति कथम् ॥५३।१०१

५५० आहारम् भोक्तुकामस्य विज्ञात विषमिश्रितम्।
मित्रस्य कृतकामस्य कथ न प्रतिषिध्यते ? ५३।१०२

५५१ रविरश्मिकृतोद्योत सुपवित्र मनोहरम्।
पुण्यवर्द्धनमारोग्य दिवाभुक्त प्रशस्यते ॥५३।१४१

५५२ सहायैर्मृगराजस्य कुर्वतो मृगशासनम्।
कियद्भिरपरै. कृत्य त्यक्त्वा सत्त्वं सहोद्भवम् ॥५३।२००

५५३. चिह्नानि विटजातस्य सन्ति नाङ्गेषु कानिचित्।
अनार्यमाचरन् किञ्चिज्जायते नीचगोचर ॥५३।२३६

५५४. मत्ता केसरिणोऽरण्ये शृगालानाश्रयन्ति किम् ?
नहि नीच समाश्रित्य जीवन्ति कुलजा नरा ॥५३।२४०

५५५ को जानाति विना पुण्यैर्निग्राह्य को विधेरिति ।।५३।२४२

५५६ या येन भाविता बुद्धि' शुभाशुभगता दृढम्।
न सा शक्याऽन्यथाकर्तुं पुरन्दरसमैरपि ॥५३।२४७

५५७. निरर्थक प्रियशतैर्दुर्मतौ दीयते मति ॥५३।२४२

५५८. विहितेन हतो हत. ॥५३।२४८

५५९. प्राप्ते विनाशकालेऽपि बुद्धिर्जन्तोर्विनश्यति।
विधिना प्रेरितस्तेन कर्मपाक विचेष्टते ॥५३।२४६

५६०. इति सुविहितवृत्ता पूर्वजन्मन्युदारा
सकलभुवनरोधिव्याप्यकीर्तिप्रधानाः ।
अभिसरपरिमुक्ता कर्म तत्कर्त्तुमीशा
जनयति परम तद्विस्मय दुर्विचिन्त्यम् ॥५३।२७३

५६१. भजत सुकृतसङ्ग तेन निर्मुच्य सर्वं
विरसफलविधायि क्षुद्रकर्म प्रयत्नात्।

भवत परमसौख्यास्वादलोभप्रसक्ता·
परिजितरविभासो जन्तव· कान्तलीलाः ॥५३।२७४

५६२ य य देश विहितसुकृता. प्राणभाज श्रयन्ते,
तस्मिंस्तस्मिन् विजितरिपवो भोगसङ्गं भजन्ते।
न ह्येतेषा परजनमत किञ्चिदापद्युतानाम्
सर्वं तेषां भवति मनसि स्थापितं हस्तसक्तम् ॥५४।७९

५६३. तस्माद् भोग भुवनविकट भोक्तुकामेन कृत्य·,
श्लाघ्यो धर्मो जिनवरमुखादुद्गत. सर्वसारः।
आस्तां तावत्क्षयपरिचितो भोगसङ्गोऽपि मोक्षम्
धर्मादस्माद् व्रजति रवितोऽप्युज्ज्वलं भव्यलोक ? ॥५४।८०

५६४. यदर्थे मत्तमातङ्गमहावृन्दान्धकारिणि ।
पतद्विविधशस्त्रौघे सङ्ग्रामेऽत्यन्तभीषणे॥
हत्वा शत्रून् समुद्वृत्तास्तीक्ष्णया खड्गधारया।
भुजेनोपार्ज्यते लक्ष्मी सुकृच्छ्राद् वीरसुन्दरी॥
सुदुर्लभमिदं प्राप्य तत्स्त्रीरत्नमनुत्तमम्।
मूढवन्मुच्यते कस्मात्? ५५।१७-१९

५६५ परस्पराभिघाताद्वा कलुषत्वमुपागतम्।
प्रसाद पुनरप्येति कुलं जलमिव ध्रुवम् ॥५५।५३

५६६. द्रव्यादिलोभेन भ्रात्रादीनामपि स्फुटम्।
ससारे जायते वैर यौनबन्धो न कारणम् ॥५५।६८

५६७. भ्राता ममाय सुहृदेष वश्यो
ममैव बन्धु सुखदः सदेति।
ससारवैचित्र्यविदा नरेण
नैतन्मनीषारविणा विचिन्त्या ॥५५।९५

५६८. लोक स्वचरितरविरेव प्रेरयत्यात्मकार्ये ॥५६।३६

५६९ आभिमुख्यगत मृत्यु वर प्राप्ता महाभटाः।
पराङ्मुखा न जीवन्तो धिक्शब्दमलिनीकृता ॥५७।८

५७०. नरास्ते(दयिते!) श्लाघ्या ये गता रणमस्तकम्।
त्यजन्त्यभिमुखा जीव शत्रूणां लब्धकीर्त्तय. ॥५७।२१

५७१ उद्भिन्नदन्तिदन्ताग्रदोलादुर्लडितं भटा.।
कुर्वन्ति न विना पुण्यै· शत्रुभिर्घोपितस्तवा· ॥५७।२२

५७२. गजदन्ताग्रभिन्नस्य कुम्भदारणकारिण: ।
यत्सुख नरसिहस्य तत् क कथयितु क्षम. ? ५७।२३

५७३ दोषोऽपि हि गुणीभाव प्रस्तावे प्रतिपद्यते ।।५७।४४

५७४. प्राप्ते काले कर्मणामानुरूप्याद्
दातुं योग्य तत्फल निश्चयाप्यम् ।
शक्तो रोद्धु नैव शक्रोऽपि लोके
वार्तान्येपां कैव वाङमात्रभाजाम् ? ५७।७३

५७५. विभर्ति तावद् दृढनिश्चय जन . प्रभोर्मुख पश्यति यावदुन्नतम् ।
गते विनाश स्वपतौ विशीर्यते, यथारचक्र परिशीर्णतुम्वकम् ।।५८।४७

५७६. सुनिश्चितानामपि सन्नराणा, विना प्रधानेन न कार्ययोग. ।
शिरस्यपेते हि शरीरवन्ध., प्रपद्यते सर्वत एव नाशम् ।।५८।४८

५७७ प्रधानसम्वन्धमिद हि सर्वं, जगद्यथेष्टं फलमभ्युपैति ।
राहूपसृष्टस्य रवेर्विनाश, प्रयाति मन्दो निकर: कराणाम् ।।५८।४९

५७८. पूर्वकर्मानुभावेन स्थितिर्दुष्कृतिनामियम् ।
असौ मारयिता तस्य यो येन निहत: पुरा ।।५९।४
असौ मोचयिता तस्य वन्धनव्यसनादिषु ।
यो येन मोचिता पूर्वमनर्थे पातितो नर ।।५९।५

५७९. हतवान् हन्यते पूर्वं पालक: पाल्यतेऽधुना ।
औदासीन्यमुदासीने जायते प्राणधारिणाम् ।।५९।२१

५८०. यं वीक्ष्य जायते कोपो दृष्टकारणवर्जित ।
नि.सन्दिग्धं परिज्ञेय स रिपु: पारलौकिक. ।।५९।२२

५८१. य वीक्ष्य जायते चित्तं प्रह्लादि सह चक्षुपा ।
असन्दिग्ध सुविज्ञेयो मित्रमन्यत्र जन्मनि ।।५९।२३

५८२. क्षुब्धोर्मिणि जले सिन्धो. शीर्णपोत झपादय. ।
स्थले म्लेच्छाश्च वाधन्ते यत्तद् दुःकृतज फलम् ।।५९।२४

५८३. मत्तैर्गिरिनिभैर्नागैर्योधैर्वहुविधायुधै. ।
सुवेगैर्वाजिभिर्दृप्तैर्भृत्यैश्च कवचावृतैः ।।५९।२५

५८४. विग्रहेऽविग्रहे वापि नि प्रमादस्य सन्ततम् ।
जन्तो. स्वपुण्यहीनस्य रक्षा नैवोपजायते ।।५९।२६

५८५. निरस्तमपि निर्यन्त यत्र तत्र स्थित परम् ।
तपोदानानि रक्षन्ति न देवा न च वान्धवा. ।।५९।२७

५८६. दृश्यते बन्धुमध्यस्थ पित्राप्यालिङ्गितो धनी।
म्रियमाणोऽतिशूरश्च कोऽन्य शक्तोऽभिरक्षितुम् ॥५६।१८

५८७ पात्रदानै व्रतै. शीलै सम्यक्त्वपरितोषितै ।
विग्रहेऽविग्रहे वापि रक्ष्यते रक्षितैर्नर ॥५६।२६

५८८ दयादानादिना येन धर्मो नोपार्जित पुरा।
जीवितं चेष्यते दीर्घं वाञ्छा तस्यातिनि फला ॥५६।३०

५८६. न विनश्यन्ति कर्माणि जनाना तपसा विना।
इति ज्ञात्वा क्षमा कार्या विपश्चिद्भिररिष्वपि ॥५६।३१

५६० एष ममोपकरोति सुचेता दुष्टतरोऽपकरोति ममायम्।
बुद्धिरियं निपुणा न जनाना कारणमत्र निजार्जितकर्म ॥५६।३५

५६१ इत्यधिगम्य विचक्षणमुख्यैर्बाह्यसुखासुखगौणनिमित्तै ।
रागतर कलुष च निमित्त कृत्यमयोज्झितकुत्सित चेष्टै ॥५६।३३

५६२ भूविवरेषु निपातमुपैति ग्रावणि सज्जनि गच्छति सर्पम्।
सन्तमसा पिहिते पथि नेत्री नो रविणा जनितप्रकटत्वे ॥५६।३४

५६३ नखच्छेद्ये तृणे किं वा परशोरुचिता गति. ? ६०।६८

५६४ विना हि प्रतिदानेन महती जायते त्रपा ॥६०।८७

५६५. पुण्यानुकूलितानां हि नैरन्तर्यं न जायते ॥६०।६०

५६६ धर्मस्यैतद्विधियुतकृतस्यानवद्यस्य धीरै-
र्ज्ञेय स्तुत्यं फलमनुपम युक्तकालोपजातम्।
यत्सम्प्राप्य प्रमदकलिता. दूरमुक्तोपसर्गा.
सञ्जायन्ते स्वपरकुशल कर्त्तुमुद्भूतवीर्या. ॥६०।१४२

५६७ आस्ता तावन्मनुजजनिता. सम्पदः काङ्क्षिताना
यच्छन्तीष्टादधिकमतुल वस्तु नाकश्रितोऽपि।
तस्मात्पुण्य कुरुत सततं हे जना सौख्यकाङ्क्षा ।
येनानेक रविसमरुच. प्राप्नुताश्चर्ययोगम् ॥६०।१४३

५६८ इहैवलोके विकट पर यशो, मतिप्रगल्भत्वमुदारचेष्टितम्।
अवाप्यते पुण्यविधिश्च निर्मलो नरेण भक्त्यार्पितसाधुसेवया ॥६१।२०

५६६ तथा न माता न पिता न वा सुहृत् सहोदरो वा कुरुते नृणा प्रियम्।
प्रदाय धर्मे मतिमुत्तमा यथा हित पर साधुजनः शुभोदयाम् ॥२१।२१

६००. उपात्तपुण्यो जननान्तरे जनः करोति योग परमैरिहोत्सवैः।
न केवल स्वस्य परस्य भूयसा रविर्यथा सर्वपदार्थदर्शनात् ॥६१।२४

६०१ मोहस्य दुस्तर किं वा बलिनो बलिनामपि ? ६२।२७

६०२ इति निजचरितस्यानेकरूपस्य हेतो–
व्यंतिगतभवजस्यावश्यलभ्योदयस्य ।
इह जनुषु विचित्र कर्मणो भावयन्ते
फलमविरतयोगाज्जन्तवो भूरिभावा ॥६२।९९

६०३ व्रजति विधिनियोगात्कश्चिदेवेह नाश
हृतरिपुरपरश्च स्वं पद याति धीर ।
विफलितपृथुशक्तिर्बन्धन सेवतेऽन्यो
रविरुचितपदार्थोद्‌भासने हि प्रवीण. ॥६२।१००

६०४. कामार्था सुलभा सर्वे पुरुषस्यागमास्तथा ।
विविधाश्चैव सम्बन्धा विष्टपेऽस्मिन् यथा तथा ॥१३।१३
पर्यट्य पृथिवी सर्वा स्थान पश्यामि तन्ननु ।
यस्मिन्नवाप्यते भ्राता जननी जनकोऽपि वा ॥६३।१४

६०५ उत्तमा उपकुर्वन्ति पूर्व पश्चात्तु मध्यमा ।
पश्चादपि न ये तेषामधमत्व हृतात्मनाम् ॥६३।१८

६०६. भवन्तीह प्रतीकारा· प्रायो विपदमीयुषाम् ॥६३।२३

६०७ भवन्ति च प्रतीकाराश्चित्र हि जगतीहितम् ॥६४।१६

६०८. भवन्ति हि बलीयासो बलिनामपि विष्टपे ॥६४।१११

६०९. इति स्थितानामपि मृत्युमार्गे जनैरशेषैरपि निश्चितानाम् ।
महात्मना पुण्यफलोदयेन भवत्युपायो विदितोऽसुदाया ॥६४।११४

६१०. अहो महान्त. परमा जनास्ते येषा महापत्तिसमागतानाम् ।
जनो वदत्युद्‌भवनाभ्युपाय रवे समस्तत्वनिवेदनेन ॥६४।११५

६११ नीतिज्ञै. सतत भाव्यमप्रमत्तै सुपण्डितै. ॥६५।१६

६१२. एतावतैव ससार. सुसार प्रतिभाति मे ।
ईदृशानि प्रसाध्यन्ते यत्तपासीह जन्तुभि. ॥६५।५१

६१३. प्राप्यते येन निर्वाण किमन्यन्तस्य दुष्करम् ॥६५।५५

६१४ इति विहितसुचेष्टा पूर्वजन्मन्युदारा
परमपि परिजित्य प्राप्तमायुर्विनाशम् ।
द्रुतमुपगतचारुद्रव्यसम्बन्धभाजो
विधुरविगुणतुल्या स्वामवस्था भजन्ते ॥६५।८१

६१५ परमार्थो हि निर्भीकैरुपदेशोऽनुजीविभि. ॥६६।३

६१६. प्रीत्यैव शोभना सिद्धिर्युद्धतस्तु जनक्षय. ।
असिद्धिश्च महान् दोष सापवादाश्च सिद्धयः ॥६६।२४

६१७ ननु सिंहो गुहा प्राप्य महाद्रेर्जायते सुखी ।।६६।२६

६१८ नरेण सर्वथा स्वस्य कर्त्तव्य बुद्धिशालिना ।
रक्षणं सतत यत्नाद्दारैरपि धनैरपि ।।६६।४०

६१९ नाखौ सक्षोभमायाति सिह. प्रचलकेसर: ।।६६।५३

६२० प्रतिशब्देषु क. कोप· छायापुरुषकेऽपि वा ।
तिर्यक्षु वा शुकाद्येषु यन्त्रविम्बेपु वा सताम् ।।६६।५४

६२१ न पद्मवातेन सुमेरुरुह्यते न सागर शुष्यति सूर्यरश्मिभि: ।
गवेन्द्रशृङ्गैर्धरणी न कम्पते न साध्यते त्वत्सदृशैर्दशानन. ।।६६।८७

६२२ न जम्बुके कोपमुपैति सिंह· ।
गजेन्द्र कुम्भस्थलदारणेन क्रीडा स मुक्तानिकरै: करोति ।।६६।८६

६२३ नरेश्वरा अजितशौर्यचेष्टा न भीतिभाजा प्रहरन्ति जातु ।
न ब्राह्मण न श्रमण न शून्य स्त्रिय न वाल न पशु न दूतम् ।।६६।६०

६२४ वहु विदितमत सुशास्त्रजाल नयविपयेपु मुमन्त्रिणोऽभियुक्ता ।
अखिलमिदमुपैति मोहभाव पुरुपरवौ घनमोहमेघरुद्धे ।।६६।६५

६२५. धन्या· सद्युति कारयन्ति परम लोके जिनाना गृहम् ।।६७।२७

६२६. वित्तस्य जातस्य फल विशाल वदन्ति सुज्ञा. सुकृतोपलभ्यम् ।
धर्मश्च जैन परमोऽखिलेऽस्मिञ्जगत्यभीप्टस्य रविप्रकाशो ।।६७।२८

६२७ समुचितविभवयुताना जिनेन्द्रचन्द्रान् सुभक्तिभारधराणाम् ।
पूजयता पुरुपाणा क. शक्तः पुण्यसञ्चयान् प्रचोदयितुम् ।।६८।२३

६२८ भुक्त्वा देवविभूर्ति लब्ध्वा चक्राङ्कभोगसंयोगम् ।
रवितोऽपि तपस्तीव्र कृत्वा जैन व्रजन्ति मुक्ति परमाम् ।।६८।२४

६२९ भीतादिष्वपि नो तावत् कर्तुं युक्त विहिंसनम् ।
किं पुनर्नियमावस्थे जने जिनगृहस्थिते ।।७०।६

६३० यो यस्य हरते द्रव्यं प्रयत्नेन समर्जितम् ।
स तस्य हरते प्राणान् वाह्यमेतद्धि जीवितम् ।।७०।८३

६३१. तावद् भवति जनानामधिका प्रीति. समाश्रयासन्ना ।
यावन्निर्दोषत्व रविमिच्छति क सहोत्पातम् ।।७०।१०१

६३२ प्रमादाद्विकृति प्राप्तं मन· समुपदेशतः ।
प्राय. पुण्यवता पुसा वशीभावेऽवतिप्ठते ।। ७२।६२

६३३ योद्धव्य करुणा चेति द्वयमेतद्विरुध्यते । ७२।६४

६३४. यत् किञ्चित्करणोन्मुक्त. सुख जीवति निर्घृण. ।
जीवत्यस्मद्विधो दु ख करुणामृदुमानस· ।। ७२।६६

६३५ क्षीणेष्वात्मीयपुण्येषु याति शक्रोऽपि विच्युतिम् ।
जनता कर्मतन्त्रेय गुणभूत हि पौरुषम् ॥ ७२।८६

६३६. लभ्यते खलु लब्धव्य नात शक्य पलायितुम् ।
न काचिच्छूरता दैवे प्राणिना स्वकृताशिनाम् ॥ ७२।८७

६३७. मरणात्परम दु ख न लोके विद्यते परम् । ७२।९०

६३८. निकाचित कर्म नरेण येन यत्तस्य भुक्ते स फल नियोगात् ।
कस्यान्यथा शास्त्ररवौ सुदीप्ते तमो भवेन्मानुषकौशिकस्य ॥ ६२।९७

६३९ या काचिद्भविता बुद्धिर्नृणा कर्मानुवर्त्तिनाम् ।
अशक्या साऽन्यथाकर्त्तुं सेन्द्रैः सुरगणैरपि ॥ ७३।२७

६४०. अर्थसाराणि शास्त्राणि नयमौशनस परम् ।
जानन्नपि त्रिकूटेन्द्र.पश्य मोहेन बाध्यते ॥ ७३।२८

६४१. महापूरकृतोत्पीड पयोवाहसमागमे ।
दुष्करो हि नदो धर्तुं जीवो वा कर्मचोदितः ॥ ७३।३०

६४२. अविरुद्ध स्वभावस्थ परिणामसुखावहम् ।
वचोऽप्रियमपि ग्राह्यं सुहृदामौषध यथा ॥ ७३।४८

६४३. कज्जलोपमकारीषु परनारीषु लोलुप. ।
मेरुगौरवयुक्तोऽपि तृणलाघवमेति ना ॥ ७३।५९

६४४. देवैरनुगृहीतोऽपि चक्रवर्त्तिसुतोऽपि वा ।
परस्त्रीसङ्गपङ्केन दिग्धोऽकीर्त्ति व्रजेत्पराम् ॥ ७३।६०

६४५ योऽन्यप्रमदया सार्कं कुरुते मूढको रतिम् ।
आशीविषभुजङ्ग्याऽसौ रमते पापमानस ॥ ७३।६१

६४६. न कश्चित्स्वयमात्मान शसन्नाप्नोति गौरवम् ।
गुणा हि गुणता याति गुण्यमाना. पराननै ॥ ७३।७४

६४७. विषयाऽऽमिषसक्तात्मन् पापभाजन चञ्चल ।
धिगस्तु हृदयत्व ते हृदय क्षुद्रचेष्टिता ॥ ७३।८४

६४८. अय पुमानिय स्त्रीति विकल्पोऽयममेधसाम् ।
सर्वतो वचन साधु समीहन्ते सुमेधस. ॥ ७३।९१

६४९. किं भूरिजनहिंसया ॥ ७३।९४

६५०. तदेव वस्तु ससर्गाद्धत्ते परमचारुताम् । ७३।१३९

६५१. धर्मो रक्षति मर्माणि धर्मो जयति दुर्जयम् ।
धर्म. सञ्जायते पक्ष. धर्म. पश्यति सर्वत. ॥ ७४।५६

६५२. न गजस्योचिता घण्टा सारमेयस्य शोभते ॥ ७४।९३

६५३ कर्मण्युपेतेऽभ्युदय पुराणे सम्प्रेरके सत्यतिदारुणाङ्गे ।
तस्योचित प्राप्तफल मनुष्या. क्रियापवर्गप्रकृत भजन्ते ॥ ७४।११५

६५४. उदारसरभवश प्रपन्नाः प्रारब्धकार्यार्थिनियुक्तचित्ता ।
नरा न तीव्र गणयन्ति शस्त्र न पावक नैव रविं न वायुम् ॥ ७४।११६

६५५ धिगिमा नृपतेर्लक्ष्मी कुलटासमचेष्टिताम् ।
भोक्तुमेकपदे पापान् त्यजन्ती चिरसस्तुतान् ॥ ७६।१२

६५६ किम्पाकफलवद्भोगा विपाकविरसा भृशम् ।
अनन्तदु खसम्बन्धकारिण साधुगर्हिता. ॥ ७६।१३

६५७ क्षुद्रजन्तूना खलेनाऽपि महोत्सवम् ॥ ७६।२६

६५८ धिगीदृशी श्रियमतिचञ्चलात्मिका विवर्जिता सुकृतसमागमाशया ।
इति स्फुट मनसि निवाय भो जनास्तपोधना भवत रवेर्जितौजस ॥७६।४३

६५९ योनिं यामश्नुते जन्तुस्तत्रैव रतिमेति स ॥ ७७।६८

६६०. ननु स्वकृतसम्प्राप्तिप्रवणा. सर्वदेहिन ॥ ७७।६९

६६१. मरणान्तानि वैराणि जायन्ते हि विपश्चिताम् ॥ ७८।१

६६२ पर कृतापकारोऽपि मानी निर्व्यूढभापित ।
अत्युन्नतगुण शत्रु श्लाघनीयो विपश्चिताम् ॥ ७८।२९

६६३ अमूर्तत्व यथा व्योम्नश्चलत्वमनिलस्य च ।
महामुनेर्निसर्गेण लोकस्याह्लादन तथा । ७८।५७

६६४ पञ्चानामर्थयुक्तत्वमिन्द्रियाणा तदैव हि ।
यदाभीष्टसमायोगे जायते कृतनिर्वृति· ॥८०।८०

६६५ विपय स्वर्गतुल्योऽपि विरहे नरकायते ।
स्वर्गायते महारण्यमपि प्रियसमागमे ॥८०।८२

६६६ एकेन व्रतरत्नेन पुरुपान्तरवर्जिना ।
स्वर्गारोहणसामर्थ्य योपितामपि विद्यते ॥८०।१४७

६६७ वीरुदश्वेभलोहानामुपलद्रुमवाससाम् ।
योपिता पुरुषाणा च विशेपोऽस्ति महान् नृप ! ॥८०।१५३

६६८ नहि चित्रभृत वल्ल्या वल्ल्या कूष्माण्डमेव वा ।
एव न सर्वनारीपु सद्वृत्त नृप विद्यते ॥८०।१५४

६६९. पूर्वभाग्योदयाद्राजन् ससारे चित्रकर्मणि ।
राज्य कश्चिदवाप्नोति प्राप्त नश्यति कस्यचित् ॥८०।२०३

६७०. अप्येकस्माद् गुरो. प्राप्य जन्तूना धर्मसङ्गतिम् ।
निदाननिर्निदानाभ्या मरणाभ्या पृथग्गतिः ॥८०।२०४

६७१. उत्तरन्त्युदधिं केचिद्रत्नपूर्णा· सुखान्विताः ।
मध्ये केचिद्विशीर्यन्ते तटे केचिद्धनाधिपा. ॥८०।२०५

६७२. पुण्यवान् स नरो लोके यो मातुर्विनये स्थितः ।
कुरुते परिशुश्रूषा किंकरत्वमुपागत. ॥८१।०९

६७३. एकोऽपि कृतो नियमः प्राप्तोऽभ्युदय जनस्य सद्बुद्धेः ।
कुरुते प्रकाशमुच्चै रविरिव तस्मादिम कुरुत ॥८२६६

६७४. कृतानि कर्माण्यशुभानि पूर्वं सन्तापमुग्र जनयन्ति पश्चात् ।
तस्माज्जना कर्म शुभ कुरुध्व रवौ सति प्रस्खलन न युक्तम् ॥८३।१३४

६७५. चिर ससारकान्तारे भ्राम्यता पुण्यकर्मतः ।
मानुष्यकमिद कृच्छ्रात् प्राप्यते प्राणधारिणा ॥८५।१०९

६७६. जानानः को जन. कूपे क्षिपति स्व महाशयः ।
विष वा क. पिबेत् को वा भृगौ निद्रा निषेवते ॥८५।१११

६७७. को वा रत्नेप्सया नागमस्तक पाणिना स्पृशेत् ।
विनाशकेषु कामेषु धृतिजयित कस्य वा ॥८५।१११

६७८. सुकृतासक्तिरेकैव श्लाघ्या मुक्तिसुखावहा ।
जनाना चञ्चलेऽत्यन्त जीविते निस्पृहात्मनाम् ॥८५।११२

६७९. ईदृशी कर्मणा शक्तिर्यज्जीवा. सर्वयोनिषु ।
वस्तुतो दु खयुक्तासु प्राप्नुवन्ति परा रतिम् ॥ ८५।१६५

६८०. कर्मारण्यमिद विहाय विषम धर्मे रमध्व बुधा. ॥८५।१७४

६८१. समुद्गते भव्यजनस्य कस्य रवौ प्रकाशेन न युक्तिरस्ति ॥ ८६।२७

६८२ तस्यैकस्य मति. शुद्धा तस्य जन्मार्थसगतम् ।
विषान्नमिव यस्त्यक्त्वा राज्य प्राव्रज्यमास्थित· ॥ ८८।१६

६८३. पूज्यता वर्ण्यता तस्य कथ परमयोगिन. ।
देवेन्द्रा अपि नो शक्ता यस्य वक्तु गुणाकरम् ॥ ८८।१७

६८४. स्वेच्छाविधानमात्र हि ननु राज्यमुदाहृतम् ॥ ८८।२४

६८५. तावदेव प्रपद्यन्ते भङ्ग भीत्यानुगामिन. ।
यावत्स्वामिनमीक्षन्ते न पुरो विकचाननम् ॥ ८९।८५

६८६. प्रदीप्ते भवने कीदृक् तडागखननादर. ।
को वा भुजङ्गदष्टस्य कालो मन्त्रस्य साधने ॥ ८९।१०२

६८७. नियताचारयुक्ताना प्रभवन्ति मनीषिणाम् ।
भावा निरतिचाराणा श्लाघ्या पूर्वकपुण्यजा. ॥ ९०।१०

६८८. सुरासुरपिशाचाद्या बिभ्यति व्रतचारिणाम् ।
तावद् यावन्न ते तीक्ष्ण निश्चयासि जहत्यहो ॥ ९०।१२

६८९ मद्यामिषनिवृत्तस्य तावद्ध्वस्तशतान्तरम् ।
लङ्घयन्ति न दु.सत्त्वा यावत् सालोऽस्य नैयम ॥ ९०।१३

६९०. प्रवीरः कातरै. शूरसहस्रेण च पण्डित· ।
सेव्य. किञ्चिद्भजेन्मूर्खमकृतज्ञ परित्यजेत् ॥ ९०।१९

६९१. स्वप्न इव भवति चारुसयोगः प्राणिना यदा तनुकालः ।
जनयति परम ताप निदाघरविरश्मिजनिताधिकम् ॥ ९०।२९

६९२ गृहस्थ शाखिनो वाऽपि यस्य च्छायां समाश्रयेत् ।
स्थीयते दिनमप्येकं प्रीतिस्तत्रापि जायते ॥ ९१।४५

६९३. किं पुनर्यत्र भूयोऽपि जन्मभिः सगति कृता ।
ससारभावयुक्ताना जीवानामीदृशी गतिः ॥ ९१।४६

६९४ धर्मेण रहितैर्लभ्य न हि किञ्चित्सुखावहम् ॥९१।४८

६९५ अनेकमपि सञ्चित्य जन्तुर्दु खमलक्षये ।
धर्मतीर्थे श्रुते (श्रयेत्) शुद्धि जलतीर्थमनर्थकम् ॥९१।४९

६९६. श्रुत्वा परम धर्म न भवति येषा सदीहिते प्रीति. ।
शुभनेत्राणा तेषां रविरुदितोऽनर्थकीभवति ॥९१।५१

६९७ साधुरूप समालोक्य न मुञ्चत्यासन तु य· ।
दृष्ट्वाऽपमन्यते यश्च स मिथ्यादृष्टिरुच्यते ॥९२।३४

६९८ बीजं शिलातले न्यस्त सिच्यमान सदापि हि ।
अनर्थक यथा दानं तथा शीलेषु गेहिनाम् ॥९२।६६

६९९ साधुसमागमसक्ता· पुरुषाः सर्वमनीषित सेवन्ते ॥९२।९२

७०० पूर्वं जनितपुण्याना प्राणिना शुभचेतसाम् ।
आरम्य जन्मत. सर्व जायते सुमनोहरम् ॥९४।३८

७०१ निर्मिताना स्वय शश्वत् कर्मणामुचित फलन् ।
ध्रुव प्राणिभिराप्तव्य न तच्छक्यनिवारणम् ॥९६।५

७०२. अथवा वेत्ति नारीणां चेतस. को विचेष्टितम् ।
दोषाणा प्रभवो यासु साक्षाद्वसति मन्मथ. ॥९६।६१

७०३. धिक् स्त्रिय सर्वदोषाणामाकर तापकारणम् ।
विशुद्धकुलजाताना पुसां पङ्कं सुदुस्त्यजम् ॥९६।६२

७०४ अभिहन्त्री समस्ताना बलाना रागसंश्रयाम् ।
स्मृतीना परम भ्र श सत्यस्खलनखातिकाम् ॥९६।६३

७०५. विघ्नं निर्वाणसौख्यस्य ज्ञानप्रभवसूदनीम् ।
भस्मच्छन्नाग्निसङ्काशा दर्भसूचीसमानिकाम् ॥९६।६४
७०६ अकीर्त्ति. परमल्पापि याति वृद्धिमुपेक्षिता ।
कीर्त्तिरल्पापि देवानामपि नार्थै. प्रयुज्यते ॥९७।१६
७०७. पश्याम्भोजवनानन्दकारिणस्तिग्मतेजस ।
अस्त यातस्य को रात्रौ सत्यामस्ति निवर्तक ॥९७।१९
७०८. असत्त्व वक्तु दुर्लोक प्राणिना शीलधारिणाम् ।
न हि तद्वचनात्तेपा परमार्थत्वमश्नुते ॥९७।२७
७०९ गृह्यमाणोऽतिकृष्णोऽपि विपदूपितलोचनै. ।
सितत्व परमार्थेन न विमुञ्चति चन्द्रमा ॥९७।२८
७१० आत्मा शीलसमृद्धस्य जन्तोर्व्रजति साक्षिताम् ।
परमार्थाय पर्याप्त वस्तुतत्त्व न बाह्यत ॥९७।२९
७११. नो पृथग्जनवादेन सक्षोभ यान्ति कोविदा ।
न शुनो भपणाद्दन्ती वैलक्ष्य प्रतिपद्यते ॥९७।३०
७१२. शिलामुत्पाट्य शीताशु जिघासुर्मोहवत्सल ।
स्वयमेव नरो नाशमसन्दिग्ध प्रपद्यते ॥९७।३२
७१३. किमनर्थकृतार्थेन सविषेणौषधेन किम् ।
किं वीर्येण न रक्ष्यन्ते प्राणिनो येन भीगता ॥९७।३७
७१४. चारित्रेण न तेनार्थो येन नात्मा हितोद्भवः ।
ज्ञानेन तेन किं येन ज्ञातो नाध्यात्मगोचर ॥९०।३८
७१५. प्रशस्तं जन्म नो तस्य यस्य कीर्त्तिवधू वराम् ।
वली हरति दुर्वादस्ततस्तु मरण वरम् ॥९७।३९
७१६. दर्शनं चिरसौख्यदम् ॥९७।१२१
७१७. रत्न पाणितल प्राप्त परिभ्रष्ट महोदधौ ।
उपायेन पुन ,केन सङ्गतिं प्रतिपद्यते ॥९७।१२३
७१८. क्षिप्त्वामृतफल कूपे महाऽऽपत्तिभयङ्करे ।
पर प्रपद्यते दु ख पश्चात्तापहत शिशु' ॥९७।१२४
७१९. यस्य यत्सदृश तस्य प्रवदत्वनिवारित ।
को ह्यस्य जगत. कर्त्तुं शक्नोति मुखबन्धनम् ॥९७।१२५
७२०. धिग् भृत्यता जगन्निद्या यत्किञ्चनविधायिनीम् ।
परायत्तीकृतात्मान क्षुद्रमानवसेविताम् ॥९७।१४०

७२१. यन्त्रचेष्टिततुल्यस्य दु खैकनिहितात्मन ।
भृत्यस्य जीविताद् दूर वर कुक्कुरजीवितम् ॥६७।१४१

७२२ नरेन्द्रशक्तिवश्य सन् निन्द्यनामा पिशाचवत् ।
विदधाति न किं भृत्य. किं वा न परिभाषते ॥६७।१४२

७२३. चित्रचापसमानस्य नि कृत्यगुणधारिण ।
नित्यनम्रशरीरस्य निन्द्य भृत्यस्य जीवितम् ॥६७।१४३

७२४ सङ्कारकूटकस्येव पश्चान्निर्वृत्तचेतस ।
निर्माल्यवाहिनो धिग्धिग्भृत्यनाम्नोऽसुधारणम् ॥६७।१४४

७२५. उन्नत्या त्रपया दीप्त्या वर्जितस्य निजेच्छया ।
मा स्म भूज्जन्म भृत्यस्य पुस्तकर्मसमात्मन ॥६७।१४६

७२६ विमानस्यापि मुक्तस्य गत्या गुरुतया समम् ।
अधस्ताद् गच्छतो नित्य धिग्भृत्यस्यासुधारणम् ॥६७।१४७

७२७. नि.सत्त्वस्य महामासविक्रय कुर्वत सदा ।
निर्मदस्यास्वतन्त्रस्य धिग्भृत्यस्यासुधारणम् ॥६७।१४८

७२८ तिर्यगूर्ध्वमधस्ताद्वा स्थान तन्नास्ति विष्टपे ।
जीवेन यत्र न प्राप्ता जन्ममृत्युजरादय. ॥६८।८६

७२९. परिभ्रष्ट प्रमादेन महार्घगुणमुज्ज्वलम् ।
रत्नं को न पुनर्विद्वानन्विष्यति महादर ॥६८।१००

७३० चरित सत्पुरुपस्य व्यपगतदोप परोपकारनिर्युक्तम् ।
क्षपयति कस्य न शोक जिनमतनिरतप्रगाढचेतस्य ॥६८।१०४

७३१ प्राप्तव्य येन यल्लोके दु ख कल्याणमेव वा ।
स त स्वयमवाप्नोति कुतश्चिद्व्यपदेशत ॥६९।८६

७३२. आकाशमपि नीत सन् वन वा श्वापदाकुलम् ।
मूर्धान वा महीध्रस्य पुण्येन स्वेन रक्ष्यते ॥६९।८७

७३३ भास्करेण विना का द्यौ का निशा शशिना विना ? ६९।९५

७३४. नोपाय. पश्चात्तापो मनीषिते ॥६९।१०३

७३५ उपदेश ददत्पात्रे गुरुर्याति कृतार्थताम् ।
अनर्थक समुद्योतो रवे कौशिकगोचर ॥१००।५२

७३६. ईदृगेव हि धीराणा कुलशीलनिवेदनम् ।
शस्यते न तु भारत्या तद्धि सन्देहभाजनम् ॥१०१।६०

७३७ प्रणाममात्रत प्रीता जायन्ते मानशालिन. ।
नोन्मूलयन्ति नद्योघा वेतसान् प्रणतात्मकान् ॥१०१।६५

७३८. रणे पृष्ठ न दीयते ॥१०३।२२

७३९. अनाथानामबन्धूना दरिद्राणा सुदु खिनम् ।
जिनशासनमेतद्धि शरण परमं मतम् ॥१०४।७०

७४०. वर हि मरण श्लाघ्य न वियोग सुदु सह ।
द्युतिस्मृतिहरोऽसौ हि परम कोऽपि निन्दित ॥१०५।११

७४१. यावज्जीव हि विरहस्ताप यच्छति चेतस ।
मृतेति छिद्यते स्वैर कथाकाक्षा च तद्गता ॥१०५।१२

७४२ रसनस्पर्शनासक्ता जीवास्तत्कर्म कुर्वते ।
गरिष्ठा नरके येन पतन्त्यायसपिण्डवत् ॥१०५।११६

७४३ हिंसावितथचौर्यान्यस्त्रीसङ्गादनिवर्तना ।
नरकेषूपजायन्ते पापभारगुरूकृता ॥१०५।११७

७४४. मनुष्यजन्म सम्प्राप्य सतत भोगसङ्गता ।
जना प्रचण्डकर्माणो गच्छन्ति नरकावनिम् ॥१०५।११८

७४५. विधाय कारयित्वा च पाप समनुमोद्य च ।
रौद्रार्त्तप्रवणा जीवा यान्ति नारकबीजताम् ॥१०५।११९

७४६ तस्मात्फलमधर्मस्य ज्ञात्वेदमतिदु सहम ।
प्रशान्तहृदया सन्त सेवध्व जिनशासनम् ॥१०५।१३९

७४७. यथा सुवर्णपिण्डस्य वेष्टितस्यायसा भृशम् ।
आत्मीया नश्यति च्छाया तथा जीवस्य कर्मण ॥१०५।१७८

७४८. मृत्युजन्मजराव्याधिसहस्रै सतत जना ।
मानसैश्च महादु खै पीड्यन्ते सुखमत्र किम् ॥१०५।१७९

७४९. असिधारामधुस्वादसम विषयज सुखम् ।
दग्धे चन्दनवह्निव्य चक्रिणा सविपान्नवत् ॥१०५।१८०

७५०. ध्रुव परमनाबाधमुपमानविवर्जितम् ।
आत्मस्वाभाविक सौख्य सिद्धाना परिकीर्त्तितम् ॥१०५।१८१

७५१. सुप्त्या किं ध्वस्तनिद्राणा नीरोगाणा किमौषधै. ?
सर्वज्ञाना कृतार्थाना किं दीपतपनादिना ? १०५।१८२

७५२. आयुधै. किमभीताना निर्मुक्तानामरातिभि ।
पश्यता विपुल सर्वसिद्धार्थाना किमीहया ॥१०५।१८३

७५३. महात्मसुखतृप्ताना किं कृत्य भोजनादिना ।
देवेन्द्रा अपि यत्सौख्य वाञ्छन्ति सततोन्मुखा. ॥१०५।१८४,

७५४. सुख नापरमुत्कृष्ट विद्यते सिद्धसौख्यत. ॥१०५।१९०

७५५ गत्यागतिविमुक्ताना प्रक्षीणक्लेशसम्पदाम् ।
लोकशेखरभूतानां सिद्धानामसम सुखम् ॥१०५।१९४

७५६ जिनेन्द्रशासनादन्यशासने रघुनन्दन ।
न सर्वयत्नयोगेऽपि विद्यते कर्मणा क्षय ॥१०५।२०४

७५७ भार्यावाटीप्रविष्ट सन् मनुष्यो वनवारण. ।
विषयामिषसक्तश्च मत्स्यो बन्ध समश्नुते ॥१०५।२५७

७५८ मोक्षो निगडवद्धस्य भवेदन्धाच्च कूपत ।
निवद्ध स्नेहपाशैस्तु तत कृच्छ्रेण मुच्यते ॥१०५।२५९

७५९ वोधि मनुष्यलोकेऽपि जैनेन्द्री सुष्ठु दुर्लभाम् ।
प्राप्नुमर्हत्यभव्यस्तु नैव मार्ग जिनोदितम् ॥१०५।२६०

७६० घनकर्मकलङ्काक्ता अभव्या नित्यमेव हि ।
ससारचक्रमारूढा भ्राम्यन्ति क्लेशवाहिता ॥१०५।२६१

७६१ सन्यावतोऽस्य ससारे कर्मयोगेन देहिन ।
कृच्छ्रेण महता प्राप्तिर्मुक्तिमार्गस्य जायते ॥१०६।९४

७६२ सन्ध्याबुद्बुदफेनोर्मिविद्युदिन्द्रधनु सम ।
भङ्गुरत्वेन लोकोऽय न किञ्चिदिह सारकम् ॥१०६।९५

७६३ नरके दु खमेकान्तादेति तिर्यक्षु वाऽसुमान् ।
मनुष्यत्रिदशाना च सुखेनैवैष तृप्यति ॥ १०६।९६

७६४ माहेन्द्रभोगसम्पद्भिर्यो न तृप्तिमुपागत ।
स कथ क्षुद्रकैस्तृप्ति व्रजेन्मनुजभोगकै ॥ १०६।९७

७६५ कथञ्चिद् दुर्लभ लब्ध्वा निधानमधनो यथा ।
नरत्व मुह्यति व्यर्थ विषयास्वादलोभत ॥ १०६।९८

७६६ कानने शुष्केन्धनैस्तृप्ति काम्बुधेरापगाजलै. ।
विषयास्वादसौख्यै का तृप्तिरस्य शरीरिण ॥ १०६।९९

७६७. मज्जन्निव जले खिन्नो विषयामिषमोहित. ।
दक्षोऽपि मन्दतामेति तमोऽन्धीकृतमानस ॥ १०६।१००

७६८ दिवा तपति तिग्मांशुर्मदनस्तु दिवानिशम् ।
समस्ति वारण भानोर्मदनस्य न विद्यते ॥ १०६।१०१

७६९ जन्ममृत्युजरादु.खं ससारे स्मृतिभीतिदम् ।
अरहट्टघटीयन्त्रसन्तत कर्मसम्भवम् ॥ १०६।१०२

७७० अजङ्गम यथाऽन्येन यन्त्र कृतपरिभ्रमम् ।
शरीरमध्रुव पूति तथा स्नेहोऽत्र मोहत ॥ १०६।१०३

७७१. जलबुद्बुदनि.सारं ज्ञात्वा मनुजसम्भवम् ।
निर्विण्णा कुलजा मार्गं प्रपद्यन्ते जिनोदितम् ।। १०६।१०४

७७२. उत्साहकवचच्छन्ना निश्चयाश्वस्थसादिन. ।
ध्यानखड्गधरा धीरा प्रस्थिता सुगतिं प्रति ।। १०६।१०५

७७३. अन्यच्छरीरमन्योऽहमिति सञ्चिन्त्य निश्चिता. ।
त्यक्त्वा शरीरके स्नेह धर्मं कुरुत मानवा· ।। १०६।१०६

७७४ सुखदु खादयस्तुल्या स्वजनेतरयो समा ।
रागद्वेषविनिर्मुक्ता श्रमणा पुरुपोत्तमा ।। १०६।१०७

७७५. भारत्यपि न वक्तव्या दुरितादानकारिणी ।। १०६।२२४

७७६. धारयन्ति न निर्यांत वह्निज्वालाकुलालयात् ।
दयावन्तो यथा तद्वद् दु खतप्ताद् भवादपि ।। १०७।१०

७७७ कदाचिच्चलति प्रेम न्यस्त भर्त्तरि योषिताम् ।
स्वस्तन्यकृतपोषेपु जातेषु न तु जातुचित् ।। १०७।६२

७७८. एव विदित्वा सुलभौ नितान्त जीवस्य लोके पितरौ सदैव ।
कर्त्तव्यमेतद् विदुषा प्रयत्नाद्विमुच्यते येन शरीरदु.खात् ।। १०८।५१

७७९. विमुच्य सर्व भववृद्धिहेतु कर्मोरुदु.खप्रभव जुगुप्सम् ।
कृत्वा तपो जैनमतोपदिष्ट रविं तिरस्कृत्य शिव प्रयात ।। १०८।५२

७८०. ससारस्य स्वभावोऽयं रङ्गमध्ये यथा नर. ।
राजा भूत्वा भवेद्भृत्य प्रेष्यश्च प्रभुता व्रजेत् ।। १०९।६७

७८१. एव पिताऽपि तोकत्वमेति तोकश्च तातताम् ।
माता पत्नीत्वमायाति पत्नी चायाति मातृताम् ।। १०९।६८

७८२. उद्घाटनघटीयन्त्रसदृशेऽस्मिन् भवात्मनि ।
उपर्यधरता यान्ति जीवा कर्मवश गता ।। १०९।६९

७८३ साधून्वीक्ष्य जुगुप्सन्ते सद्योऽनर्थं प्रयान्ति ते ।
न पश्यन्त्यात्मनो दौष्ट्य दोष कुर्वन्ति साधुपु ।। १०९।११२

७८४ यथाऽऽदर्शतले कश्चिदात्मानमवलोकयन् ।
यादृश कुरुते वक्त्र तादृश पश्यति ध्रुवम् ।।
तद्वत्साधु समालोक्य प्रस्थानादिक्रियोद्यत ।
यादृश कुरुते भाव तादृक्ष लभते फलम् ।। १०९।११३-११४

७८५. प्ररोदन प्रहासेन कलह परुषोक्तित ।
वधेन मरण प्रोक्त विद्वेषेण च पातकम् ।। १०९।११५

७८६ साधोर्नियुक्तेन परिनिन्द्येन वस्तुना ।
फलेन तादृशेनैव कर्त्ता योगमुपाश्नुते ॥ १०६।११६

७८६ (अ) को दोषोऽन्यप्रियारतौ ? १०६।१५३

७८७ ये पारदारिका दुष्टा निग्राह्यास्ते न सशय. ॥ १०६।१५४

७८८. दण्ड्या. पञ्चकदण्डेन निर्वास्या पुरुषाधमा ।
स्पृशन्तोऽप्यवलामन्या भाषयन्तोऽपि दुर्मता ॥
सन्मूढा परदारेषु ये पापादनिर्वर्त्तिन ।
अध प्रपतन येषा ते पूज्या कथमीदृशा ॥ १०६।१५५-१५६

७८६ यथा राजा तथा प्रजा ॥ १०६।१५६

७६० येन वीजा प्ररोहन्ति जगतो यच्च जीवनम् ।
जातस्ततो जलाद्वह्नि किमिहापरमुच्यताम् ॥ १०६।११६

७६१. भोगसवर्तनो (येन) कर्मणा नावमुच्यते ॥ १०६।१६३

७६२ सता हि साधुसम्वन्धाच्चित्तमानन्दमीयते ॥ ११०।२५

७६३. स्वभावाद्वनिता जिह्मा विशेषादन्यचेतस. ।
तत सुहृदयस्तासामर्थे को विकृर्ति भजेत् ॥ ११०।३१

७६४. अथवा विस्मय कोऽत्र किमपीद जगद्गतम् ।
कर्मवैचित्र्ययोगेन विचित्रं यच्चराचरम् ॥ ११०।३६

७६५. प्रागेव यदवाप्तव्य येन यत्र यथा यत. ।
तत्परिप्राप्यतेऽवश्य तेन तत्र तथा तत ॥ ११०।४०

७६६. रम्भास्तम्भसमानाना नि.साराणा हतात्मनाम् ।
कामाना वशगा शोक हास्य नो कर्त्तुमर्हथ ॥ ११०।४४

७६७ सर्वे शरीरिण· कर्मवशे वृत्तिमुपाश्रिता ।
न तत्कुरुथ किं येन तत्कर्म परिणश्यति ॥ ११०।४५

७६८ गहने भवकान्तारे प्रणष्टा प्राणधारिण. ।
ईदृक्षि यान्ति दु खानि निरस्यत ततस्तकम् ॥ ११०।४६

७६६. भवाना किल सर्वेषा दुर्लभो मानुषो भव ।
प्राप्य त स्वहित यो न कुरुते स तु वञ्चित. ॥ ११०।४६

८०० ऐश्वर्यं पात्रदानेन तपसा लभते दिवम् ।
ज्ञानेन च शिव जीवो दु.खदा गतिमहसा ॥ ११०।५०

८०१ विद्युदाकालिक ह्येतज्जगत्सारविवर्जितम् ॥ ११०।५५

८०२. नास्य माता पिता भ्राता वान्धवा सुहृदोऽपि वा ।
सहाया. कर्मतन्त्रस्य परित्राण शरीरिण ॥ ११०।५८

८०३ अतृप्त एव भोगेषु जीवो दुर्मित्रविभ्रम ।
इमं विमोक्ष्यते देह किं प्राप्त जायते तदा ।। ११०।६१

८०४. मातर पितरोऽन्ये च ससारेऽनन्तशो गताः ।
स्नेहबन्धनमेतानामेतद्धि चारक गृहम् ।। ११०।७२

८०५ पापस्य परमारम्भ नानादु.खाभिवर्द्धनम् ।
गृहपञ्जरक मूढा. सेवन्ते न प्रवोधिन ।। ११०।७३

८०६ शारीर मानस दु ख मा भूद् भूयोऽपि नो यथा ।
तथा सुनिश्चिता कुर्म किं वय स्वस्य वैरिणः ।। ११०।७४

८०७ निर्दोपोऽह न मे पापमस्तीत्यपि विचिन्तयन् ।
मलिनत्व गृही याति शुक्लाशुकमिव स्थितम् ।। ११०।७५

८०९ उत्थायोत्थाय यन्नृणा गृहाश्रमनिवासिनाम् ।
पापे रतिस्ततस्त्यक्तो गृहिधर्मो महात्मभिः ।।११०।७६

८१०. पिबन्त मृगक यद्वद् व्याधो हन्ति तृपा जलम् ।
तथैव पुरुप मृत्युर्हन्ति भोगैरतृप्तकम् ।।११०।७८

८११. विषयप्राप्तिससक्तमस्वतन्त्रमिद जगत् ।
कामैराशीविषैः साक क्रीडत्यज्ञानमौषधम् ।।११०।७९

८१२. जगत्स्वकर्मणा वश्यम् ।११०।८१

८१३. ध्रुव यदा समासाद्यो विरहो बन्धुभिः समम् ।
असमञ्जसरूपेऽस्मिन्ससारे का रतिस्तदा ।।११०।८३

८१४ अय मे प्रिय इत्याऽऽस्था व्यामोहोपनिबन्धना ।
एक एव यतो जन्तुर्गत्यागमनदु खभाक् ।।११०।८४

८१५ नानायोनिषु सभ्रम्य कृच्छ्रात्प्राप्ता मनुष्यताम् ।
कुर्मस्तथा यथा भूयो मज्जामो नात्र सागरे ।।११०।८६

८१६. सर्वारम्भविरहिता विहरन्ति नित्य निरम्बरा विधियुक्तम् ।
क्षान्ता दान्ता मुक्ता निरपेक्षाः परमयोगिनो ध्यानरता. ।।११०९३

८१७. तृष्णाविपादहन्तॄणा क्षणमप्यस्ति नो शम ।
मूर्धोपकण्ठदत्ताङ्घ्रिर्मृत्यु कालमुदीक्षते ।।१११।१४

८१८. अस्य दग्धशरीरस्य कृते क्षणविनाशिन ।
हताश कुरुते किं न जीवो विषयदासक. ।।१११।१५

८१९. ज्ञात्वा जीवितमानाय्य त्यक्त्वा सर्वपरिग्रहम् ।
स्वहिते वर्त्तते यो न स नश्यत्यकृतार्थक ।।१११।१६

८२०. सहस्रेणापि शास्त्राणा किं येनात्मा न शाम्यति ।
तृप्तमेकपदेनापि येनात्मा शममश्नुते ॥१११।१७

८२१. कर्त्तुमिच्छति सद्धर्म न करोति यथाप्ययम् ।
दिव यियासुर्विच्छिन्नपक्षकाक इव श्रमम् ॥१११।१८

८२२ विमुक्तो व्यवसायेन लभते चेत्समीहितम् ।
न लोके विरही कश्चिद्भवेदद्रविणोऽपि वा ॥१११।१९

८२३ अतिथिं द्वार्गत साधु गुरुवाक्य प्रतिक्रियाम् ।
प्रतीक्ष्य सुकृतं चाशु नावसीदति मानवः ।१११।२०

८२४. नानाव्यापारशतैराकुलहृदयस्य दुःखिन प्रतिदिवसम् ।
रत्नमिव करतलस्थ भ्रश्यत्यायु प्रमादतः प्राणभृत ॥१११।२१

८२६. जिनचन्द्रार्चनन्यस्तविकासिनयना जनाः ।
नियमावहितात्मान शिव निदधते करे ॥११२।६३

८२६ न तेषा दुर्लभ किञ्चित् कल्याण शुद्धचेतसाम् ।
ये जिनेन्द्रार्चनासक्ता जना मगलदर्शना ः ॥११२।६४

८२७ श्रावकान्वयसम्भूतिर्भक्तिर्जिनवरे दृढा ।
समाधिनावसान च पर्याप्त जन्मन.फलम् ॥११२।६५

८२८. हा कष्टं ससारे नास्ति तत्पदम् ।
यत्र न क्रीडति स्वेच्छ मृत्युः सुरगणेष्वपि ॥११२।७७

८२९ तडिदुल्कातरङ्गातिभङ्गुर जन्म सर्वतः ।
देवानामपि यत्र स्यात् प्राणिनां तत्र का कथा ॥११२।७८

८३०. अनन्तशो न भुक्त यत्ससारे चेतनावता ।
न तदास्ति सुख नाम दु ख वा भुवनत्रये ॥११२।७९

८३१ अहो मोहस्य माहात्म्य परमेतद्बलान्वितम् ।
एतावन्त यत काल दु खपर्यटित भवेत् ॥११२।८०

८३२. उत्सर्पिण्यवसर्पिण्यौ भ्रान्त्वा कृच्छ्रात्सहस्रशः ।
अवाप्यते मनुष्यत्व कष्ट नष्टमनाप्तवत् ॥११२।८१

८३३ विनश्वरसुखासक्ता· सौहित्यपरिवर्जिता· ।
परिणाम प्रपद्यन्ते प्राणिनस्तापसङ्कटम् ॥१११।८२

८३४. चलान्युत्पथवृत्तानि दु.खदानि पराणि च ।
इन्द्रियाणि न शाम्यन्ति विना जिनपथाश्रयात् ॥११२।८३

८३५ आनायेन यथा दीना वध्यन्ते मृगपक्षिणः ।
तथा विषयजालेन वध्यन्ते मोहिनो जना. ॥११२।८४

८३६ आशीविषसमानैर्यो रमते विषयै सभम् ।
परिणामे स मूढात्मा दह्यते दु खवह्निना ॥११२।८५

८३७. को ह्येकदिवसं राज्य वर्षमन्विष्य यातनाम् ।
प्रार्थयेत विमूढात्मा तद्वद्विषयसौख्यभाक् ॥११२।८६

८३८. कदाचिद् बुद्ध्यमानोऽपि मोहतस्करवञ्चित ।
न करोति जन. स्वार्थं किमत कष्टमुत्तमम् ॥११२।८७

८३९ मुक्त्वा त्रिविष्टपे धर्मं मनुष्यभवसञ्चितम् ।
पश्चान्मुषितवद्दीनो दुःखी भवति चेतनः ॥११२।८८

८४० भुक्त्वापि त्रैदशान् भोगान् सुकृते क्षयमागते ।
शेषकर्मसहाय· सन् चेतन क्वापि गच्छति ॥११२।८९

८४१. जन्तोर्निज कर्म बान्धव शत्रुरेव वा ॥११२।९०

८४२ तदल निन्दितैरेभिर्भोगै परमदारुणै ।
विप्रयोग सहामीभिरवश्य येन जायते ॥११२।९१

८४३ श्रीमत्यो हरिणीनेत्रा योषिद्गुणसमन्विता ।
अत्यन्तदुस्त्यजा मुग्धा ॥११२।९३

८४४. दीर्घ काल रन्त्वा नाके गुणयुवतीभिः सुविभूतिभि ।
मर्त्यक्षेत्रेऽप्यसम भूय प्रमदवरललितवनिताजनै परिललितः ।
को वा यातस्तृप्ति जन्तुर्विविधविषयसुखरतिभिर्नदीभिरिवोदधिः ।
नानाजन्मभ्रान्त श्रान्त व्रज हृदय !
शममपि किमाकुलित भवेत् ॥११२।९५-९६

८४५ किं न श्रुता नरकभीमविरोध रौद्र-
स्तीव्रासिपत्रवनसङ्कटदुर्गमार्गा ॥११२।९७

८४६ उत्तरन्त भवाम्भोधि तत्रैव प्रक्षिपन्ति ये ।
हितास्ते कथमुच्यन्ते वैरिणः परमार्थत ॥११३।७

८४७ माता पिता सुहृद्भ्राता न तदागात्सहायताम् ।
यदा नरकवासेपु प्राप्त दु खमनुत्तमम् ॥११३।८

८४८. मानुष्यं दुर्लभ प्राप्य बोधि च जिनशासने ।
प्रमादो नोचित कर्त्तुं निमेषमपि धीमत. ॥११३।९

८४९. देवासुरमनुष्येन्द्रा स्वकर्मवशवर्तिनः ।
कालदावानलालीढा के वा न प्रलय गताः ॥११३।११

८५०. गताऽगमविधेर्दातृ मत्तोऽपि सुमहाबलम् ।
अपर नाम कर्मास्ति ॥११३।१३

८५१. महामहाजन प्रायो रतिवद्विरतौ भृशम् ॥११३।४२

८५२ सन्तं सन्त्यज्य ये भोग प्रव्रजन्त्यायतेक्षणाः ।
नून ग्रहगृहीतास्ते वायुना वा वशीकृता ॥११४।२

८५३ भुज्यमानाऽल्पसौख्येन ससारपदमीयुषाम् ।
प्रायो विस्मयते सौख्य श्रुतमप्यतिसंसृति ॥

८५४. सर्वेषां बन्धनाना तु स्नेहबन्धो महादृढः ॥११४।४६

८५५ हस्तपादागवद्धस्य मोक्षः स्यादसुधारिण ।
स्नेहबन्धनवद्धस्य कुतो मुक्तिर्विधीयते ॥११४।५०

८५६. योजनाना सहस्राणि निगडैः पूरितो व्रजेत् ।
शक्तो नागुलमप्येक वद्ध स्नेहेन मानवः ॥११४।५१

८५७ कर्मणामिदमीदृशमीहित वुद्धिमानपि यदेति विमूढताम् ।
अन्यथा श्रुतसर्वनिजायति. क' करोति न हित सचेतन ॥११४।५४

८५८. कृत्यमत्र भवारिविनाशन यत्नमेत्य परम सुचेतसा ॥११४।५५

८५९. अप्रेक्ष्यकारिणां पापमानसाना हतात्मनाम् ।
अनुष्ठित स्वय कर्म जायते तापकारणम् ॥११५।१७

८६०. धिगसार मनुष्यत्व नाऽतोऽस्त्यन्यन्महाधमम् ।
मृत्युर्यच्छत्यवस्कन्द यदज्ञातो निमेपत' ॥११५।५५

८६१. यो न निर्व्यूहितु शक्य. सुरविद्याधरैरपि ।
नारायणोऽप्यसौ नीत कालपाशेन वश्यताम् ॥११५।५६

८६२ आनाय्येन शरीरेण किमनेन धनेन च ? ११५।५७

८६३ कर्मनियोगेनैव प्राप्तेऽवस्थामशोभनामाप्तजने ।
सशोक वैराग्य च प्रतिपद्यन्ते विचित्रचित्ता पुरुषा ॥११५।६३

८६४. काल प्राप्य जनाना किञ्चिच्च निमित्त मात्रक परभावम् ।
सम्बोधरविरुदेति स्वकृतविपाकेऽन्तरंगहेतौ जाते ॥११५।६४

८६५ न कृशानुर्दहत्येवं नैव शोषयते विषम् ।
उपमानविनिर्मुक्तं यथा भ्रातु परायणम् ॥११६।१८

८६६. जातेनावश्यमर्त्तव्यमत्र संसारपञ्जरे ।
प्रतिक्रियास्ति नो मृत्योरुपायैर्विविधैरपि ॥११७।८

८६७. आनाय्ये नियत देहे शोकस्यालम्बनं मुधा ।
उपायैर्हि प्रवर्त्तन्ते स्वार्थस्य कृतबुद्धय. ॥११७।९

८६८ आक्रन्दितेन नो कश्चित्परलोकगतो गिरम् ।
प्रयच्छति ॥११७।१०

८६९. नारीपुरुषसंयोगाच्छरीराणि शरीरिणाम् ।
उत्पद्यन्ते व्ययन्ते च प्राप्तसाम्यानि बुद्बुदैः ॥११७।११

८७०. लोकपालसमेतानामिन्द्राणामपि नाकतः ।
नष्टा योनिजदेहानां प्रच्युतिः पुण्यसंक्षये ॥११७।१२

८७१. गर्भाक्लिष्टे रुजाकीर्णे तृणबिन्दुचलाचले ।
क्लेदकैकतसङ्घाते काऽऽस्था मर्त्यशरीरके ॥११७।१३

८७२. अजरामरणंमन्यः किं शोचति जनो मृतम् ।
मृत्युदंष्ट्रान्तरक्लिष्टमात्मानं किं न शोचति ॥ ११७।१४

८७३. यदैव हि जनो जातो मृत्युनाधिष्ठितस्तदा ।
तत्र साधारणे धर्मे ध्रुवे किमिति शोच्यते ॥ ११७।१६

८७४ अभीप्टसङ्गमाकांक्षो मुधा शुष्यति शोकवान् ।
शबरार्त्त इवारण्ये चमरः केशलोभतः ॥ ११७।१७

८७५. लोकस्य साहसं पश्य निर्भीस्तिष्ठति यत्पुरः ।
मृत्योर्वज्राग्रदण्डस्य सिंहस्येव कुरङ्गक ॥ ११७।१९

८७६. संसारमण्डलापन्नं दह्यमानं सुगन्धिना ।
सदा च विन्ध्यदावाभं भुवनं किं न वीक्षसे ॥ ११७।२१

८७७. पर्यट्य भवकान्तारं प्राप्य कामभुजिष्यताम् ।
मत्तद्विपा इवाऽऽयान्ति कालपाशस्य वश्यताम् ॥ ११७।२२

८७८. धर्ममार्गं समासाद्य गतोऽपि त्रिदशालयम् ।
अगाढवततया नद्या पात्यते तटवृक्षवत् ॥ ११७।२३

८७९. सुरमानवनाथानां चयाः शतसहस्रशः ।
निधनं समुपानीताः कालमेघेन वह्नयः ॥ ११७।२४

८८०. दूरमम्बरमुल्लङ्घ्य समापत्य रसातलम् ।
स्थान तन्न प्रपश्यामि यत्र मृत्योरगोचरः ॥ ११७।२५

८८१. षष्ठकालक्षये सर्वं क्षीयते भारतं जगत् ।
धराधरा विशीर्यन्ते मर्त्यकाये तु का कथा ॥

८८२. वज्रर्षभवपुर्बद्धा अप्यवध्याः सुरासुरैः ।
नन्वनित्यतया लब्धा रम्भागर्भोपमैस्तु किम् ॥ ११७।२७

८८३. जनन्यापि समाश्लिष्टं मृत्युर्हरति देहिनम् ।
पातालान्तर्गतं यद्वत् काद्रवेयं द्विजोत्तमः ॥ ११७।२८

८८४. हा भ्रातर्दयितं पुत्रेत्येवं क्रन्दन् सुदुःखितः ।
कालाहिना जगद्व्यङ्गो ग्रासतामुपनीयते ॥ ११७।३०

८८५ करोम्येतत्करिष्यामि वदत्येवमनिष्टधी ।
जनो विशति कालास्य भीम पोत इवार्णवम् ॥ ११६।३०

८८६ जन भवान्तरं प्राप्तमनुगच्छेज्जनो यदि ।
द्विष्टैरिष्टैश्च नो जातु जायेत विरहस्तत ॥ ११७।३१

८८७ परे स्वजनमानी य कुरुते स्नेहसस्मतिम् ।
विशति क्लेशवह्नि स मनुष्यकलभो ध्रुवम् ॥ ११७।३२

८८८ स्वजनौघा परिप्राप्ता. ससारे येऽसुधारिणाम् ।
सिन्धुसैकतसङ्घाता अपि सन्ति न तत्समा ॥ ११७।३३

८८९ य एव लालितोऽन्यत्र विविधप्रियकारिणा ।
स एव रिपुता प्राप्तो हन्यते तु महारुषा ॥ ११७।३४

८९० पीतौ पयोधरौ यस्य जीवस्य जननान्तरे ।
त्रस्ताहतस्य तस्यैव खाद्यते मासमत्र धिक् ॥ ११७।३५

८९१. स्वामीति पूजित. पूर्वं य शिरोनमनादिभि. ।
स एव दासता प्राप्तो हन्यते पादताडनै. ॥ ११७।३६

८९२. विभो. पश्यत मोहस्य शक्ति येन वशीकृत ।
जनोऽन्विष्यति सयोग हस्तेनेव महोरगम् ॥ ११७।३७

८९३ प्रदेशस्तिलमात्रोऽपि विष्टपे न स विद्यते ।
यत्र जीव· परिप्राप्तो न मृत्यु जन्म एव वा ॥ ११७।३८

८९४ ताम्रादिकलिल पीत जीवेन नरकेषु यत् ।
स्वयम्भूरमणे तावत्सलिल नहि विद्यते ॥ ११७।३९

८९५ वराहभवयुक्तेन यो नीहारोऽशनीकृत ।
मन्ये विन्ध्यसहस्रेभ्यो बहुशो-त्यन्तदूरत ॥ ११७।४०

८९६ परस्परस्वनाशेन कृता या मूर्द्धसहति ।
ज्योतिपा मार्गमुल्लङ्घ्य यायात्सा यदि रुध्यते ॥ ११७।४१

८९७ शर्कराधरणीयातैर्दु ख प्राप्तमनुत्तमम् ।
श्रुत्वा तत्कस्य रोचेत मोहेन सह मित्रता ॥ ११७।४२

८९८ विरुद्धा अपि हसस्य खद्योता किं नु कुर्वते ?
यस्याभीषुसहस्राप्त परिजाज्वल्यते जगत् ॥ ११८।५७

८९९ महान्न मरणेऽप्यस्ति गुणो जीवन् हि मानव ।
कदाचिदेति कल्याण स्वकर्मपरिपाकत ॥ ११८।५९

९०० परेत सिञ्चसे मूढ कस्मादेनमनोकहम् ?
कलेवरे हल ग्राणि बीज हारयसे कुत. ? ११८।७८

९०१. नीरनिर्मथने लब्धिर्नवनीतस्य किं कृता ।
बालुकापीडनाद् बालस्नेह. सञ्जायतेऽथ किम् ।। ११८।७९

९०२. बालाग्रमात्रक दोष परस्य क्षिप्रमीक्षसे ।
मेरुकूटप्रमाणान् स्वान् कथ दोषान्न पश्यसि ।। ११८।८७

९०३. सदृश सदृशेष्वेव रज्यन्ति ।। ११८।८८

९०४. अहो तृणाग्रसंसक्तजलबिन्दुचलाचलम् ।
मनुष्यजीवित यद्वत्क्षणान्नाशमुपागतम् ।।११८।१०३

९०५. कस्येष्टानि कलत्राणि कस्यार्था कस्य बान्धवा· ।
ससारे सुलभ ह्येतद् बोधिरेका सुदुर्लभा ।।११८।१०५

९०६. तेषा सर्वसुखान्येव ये श्रामण्यमुपागता: ।।११८।११०

९०७. कामोपभोगेषु मनोहरेषु सुहृत्सु सम्बन्धिषु बान्धवेषु ।
वस्तुष्वभीष्टेषु च जीवितेषु कस्यास्ति तृप्तिर्नृ रवे भवेऽस्मिन् ।।११८।१२७

९०८. किमनेन समस्तेन विनाशित्वावसादिना ? ११९।२१

९०९. सनातननिराबाधपरातिशयसौख्यदम् ।
मनीषितं पर युक्तं जिनधर्मं वगाहितुम् ।।११९।२२

९१०. जैने शक्त्या च भक्त्या च शासने सङ्गतत्परा· ।
जना बिभ्रति लभ्यार्थं जन्म मुक्तिपदान्तिकम् ।।११९।५६

९११. जिनाक्षरमहारत्ननिधान प्राप्य भो जना: ।
कुलिङ्गसमय सर्वं परित्यजत दु.खदम् ।।११९।५७

९१२ कुग्रन्थैर्मोहितात्मान: सदम्भकलुषक्रिया. ।
जात्यन्धा इव गच्छन्ति त्यक्त्वा कल्याणमन्यत: ।।११९।५८

९१३. नानोपकरणं दृष्ट्वा साधन शक्तिवर्जिता ।
निर्दोषमिति भाषित्वा गृह्णते मुखरा. परे ।।११९।५९

९१४. व्यर्थमेव कुलिङ्गास्ते मूढैरन्यै पुरस्कृता. ।
प्रखिन्नतनवो भार वहन्ति मृतका इव ।।११९।५०

९१५. ऋषयस्ते खलु येषा परिग्रहे नास्ति याचने वा बुद्धि: ।।११९।५१

९१६. कर्मण पश्यताधान ही शुभाशुभयो· पृथक् ।
विचित्र जन्म लोकस्य ।।१२२।१७

९१७. कुर्वन्तु वाञ्छित वाह्या. क्रियाजालमनेकधा ।
प्रच्यवन्ते न तु स्वार्थात्परमार्थविचक्षणा: ।।१२२।६३

९१८. किमनेनाभिमानेन परमानर्थहेतुना ।।१२३।१९

९१९ अदृष्टलोकपर्यन्ता हिंसानृतपरस्विनः ।
रौद्रध्यानपरा. प्राप्ता नरकस्थं प्रतिद्विषः ॥१२३।२८

९२०. भोगाधिकारससक्तास्तीव्रक्रोधादिरञ्जिता ।
विकर्मनिरता नित्य सम्प्राप्ता दु.खमीदृशम् ॥ १२३।२९

९२१ अहो मोहस्य माहात्म्य यत्स्वार्थादपि हीयते ॥ १२३।३४

९२२. विषयामिपलुब्धाना प्राप्तानां नरकासुखम् ।
स्वकृतप्राप्तिवश्यानां किं करिष्यन्ति देवता. ॥ १२३।४०

९२३. एतत्स्वोपचित कर्म भोक्तव्यम् । १२३।४१

९२४. कर्मप्रमथन शुद्धं पवित्र परमार्थदम् ।
अप्राप्तपूर्वमाप्त वा दुर्गृहीत प्रमादिनाम् ॥ १२३।४४

९२५ दुर्विज्ञेयमभव्याना बृहद्भवभयानकम् ।
कल्याण दुर्लभं सुष्ठु सम्यग्दर्शनमूर्जितम् ॥ १२३।४५

९२६ अर्हद्भिर्गदिता भावा भगवद्भिर्महोत्तमै. ।
तथैवेति दृढं भक्त्या सम्यग्दर्शनमिष्यते ॥ १२३।४८

९२७. मुक्तिर्वैराग्यनिष्ठस्य रागिणो भवमज्जनम् ॥ १२३।७४

९२८ अवलम्ब्य शिला कण्ठे दोर्भ्यां तर्त्तुं न शक्यते ।
नदी तद्वन्न रागाद्यैस्तरितुं संसृतिः क्षमा ॥ १२३।७५

९२९ ज्ञानशीलगुणासङ्गैस्तीर्यते भवसागर. ।
ज्ञानानुगतचित्तेन गुरुवाक्यानुवर्त्तिना ॥ १२३।७६

९३० आदिमध्यावसानेषु वेदितव्यमिदं बुधै. ।
सर्वेषां यन्महातेजा· केवली ग्रसते गुणान् ॥ १२३।७७

९३१ पात्रभूतान्नदानाच्च शक्त्याढ्यास्तर्पयन्ति ये ।
ते भोगभूमिमासाद्य प्राप्नुवन्ति पर पदम् ॥ १२३।१०६

९३२ स्वर्गे भोग प्रभुञ्जन्ति भोगभूमेश्च्युता नराः ।
तत्रस्थाना स्वभावोऽय दानैर्भोगस्य सम्पदः ॥ १२३।१०७

९३३ दानतो सातप्राप्तिश्च स्वर्गमोक्षैककारणम् । १२३।१०८

९३४ अपि नाम शिव गुणानुबन्धि व्यसनस्फातिकर शिवेनरम् ।
तद्विषयस्पृहया तदेति मैत्रीमशिव तेन न शान्तये कदाचित् ॥ १२३।१७१

९३५ स्वकलत्रसुख हित रहित्वा परकान्ताभिरतिं करोति पापः ।
व्यसनार्णवमत्युदारमेप प्रविशत्येव विशुष्कदारुकल्पः ॥ १२३।१७४

९३६ सुकृतस्य फलेन जन्तुरुच्चैः पदमाप्नोति सुसम्पदा निधानम् ।
दुरितस्य फलेन तत्तु दुःखं कुगतिस्थ समुपैत्यय स्वभाव. ॥ १२३।१७६

परिशिष्ट—२

पद्मपुराण की प्रमुख वंशावलियाँ

राक्षस-वंश

जिन भास्कर, सम्परिकीर्ति, सुग्रीव, हरिग्रीव, श्रीग्रीव, सुमुख, सुव्यक्त, अमृतवेग, भानुगति, चिन्तागति, इन्द्र, इन्द्रप्रभ, मेघ, मृगारिदमन, पवि, इन्द्रजित्, भानुवर्मा, भानु, भानुप्रभ, सुरारि, त्रिजट, भीम, मोहन, उद्धारक, रवि, चकार, वज्रमध्य, प्रमोद, सिंहविक्रम, चामुण्ड, मारण, भीष्म, द्वीपवाह, अरिमर्दन, निर्वाण-भक्ति, उग्रश्री, अर्हद्भक्ति, अनुत्तर, गतभ्रम, अनिल, चण्ड, लकाशोक, मयूरवान् महाबाहु, मनोरम्य. भास्कराभ, बृहद्गति, बृहत्कान्त, अरिसन्त्रास, चन्द्रावर्त,

महारव, मेघध्वान, गृहक्षोभ, नक्षत्रदमन आदि करोड़ो विद्याधर इस वंश मे हुए। चिरकाल बाद लंकाधिपति घनप्रभ (जिसकी रानी पद्मा थी) इस वंश मे हुआ जिसका पुत्र कीर्तिधवल हुआ (जिसकी रानी अतीन्द्र की सुता देवी थी।) भगवान् मुनि सुव्रत के तीर्थ मे इसी वंश मे वानरवंशी महोदधि का समकालीन राजा हुआ—

इक्ष्वाकु-वंश
(रामपर्यन्त)

महाबल
अतिबल
अमृतबल
समुद्रसागर
भद्र
रवितेजा
शशी
प्रभूततेजा
तेजस्वी
तपन
प्रतापवान्
अतिवीर्य
सुवीर्य
उदितपराक्रम
महेन्द्रविक्रम
सूर्य
इन्द्रद्युम्न
महेन्द्रजित्
प्रभु
विभु
अतिध्वंस
वीतभी
वृषभध्वज
गरुडाङ्क
मृगाङ्क
अन्य बहुत से राजा। भगवान् आदिनाथ का युग समाप्त होने पर, अनेको राजाओ के व्यतीत होने पर अयोध्या मे हुआ—
धरणीधर+श्रीदेवी
त्रिदशञ्जय+इन्दुरेखा
जितशत्रु+विजया
अजितनाथ+सुनयना, नन्दा आदि अनेक रानियाँ।
विजयसागर+सुमङ्गला
सगर चक्रवर्ती+९६ हजार रानियाँ
जह्नु आदि ६० हजार पुत्र
भगीरथ
चिरकालोपरान्त इसी इक्ष्वाकुवश मे अयोध्यानगरी मे हुआ—
विजय+हेमचूला
सुरेन्द्रमन्यु+कीर्तिसमा
वज्रबाहु+मनोदया
(दीक्षित)
पुरन्दर+पृथिवीमती
(अगले पृष्ठ पर सम्बद्ध)

वानर-वंश

अतीन्द्र + श्रीमती

श्रीकण्ठ + पद्माभा (रत्नपुराधीश-पुष्पोत्तरसुता)
(पुत्र)

देवी + कीर्तिधवल
(पुत्री)

(अगले पृष्ठ पर सम्बद्ध)

वज्रकण्ठ+चारुणी
वज्रप्रभ
इन्द्रमत
मेरु
मन्दर
समीरणगति
रविप्रभ+गुणवती
कपिकेतु+श्रीप्रभा
प्रतिबल
गगनानन्द
खेचरानन्द
गिरिनन्दन
अनेक सख्यातीत राजा जिन्होने स्वर्ग और मोक्ष प्राप्त किया :
मुनि सुव्रत के तीर्थकाल में
महोदधि+विद्युत्प्रकाशा
१०८ पुत्र जिनमे अन्यतम प्रतिचन्द्र
किष्कन्ध+श्रीमाला
अन्धक (-रूढ़ि)
सूर्यरजा+चन्द्रमालिनी
ऋक्षरजा+हरिकान्ता
सूर्यकमला+मृगारिदमन
(पुत्री) (मेरु-मघोनी-सुत)
नल
नील
वाली+ध्रुवा
सुग्रीव+सुतारा
श्रीप्रभा+रावण
(पुत्री)
अग
अगद

परिशिष्ट—३

संकेतित-ग्रन्थ-सूची

१ अकवरनामा · अवुलफजल

२ अथर्ववेद

३. अध्यात्मरामायण : व्यास

४. अनर्घराघव : मुरारि

५ अनामक जातकम्

६ अमरुशतक · अमरुक

७. अष्टमहाश्रीचैत्यस्तोत्र हर्ष

८. आश्चर्यचूडामणि . शक्तिभद्र

९ आदिपुराण जिनसेन

१० उत्तरपुराण जिनसेन

११ उत्तररामचरित भवभूति

१२. उदात्तराघव : मायुराज

१३ उदारराघव · साकल्यमल्ल

१४ उन्मत्तराघव : भास्करभट्ट

१५. उल्लासराघव सोमेश्वर

१६ ऐहोल शिलालेख

१७ कथाकोषप्रकरण · जिनविजय

१८ कवितावली : तुलसी

१९. कल्याण (मानसाक)

२०. कहावली : भद्रेश्वर

२१ कात्यायनश्रौतसूत्र

२२ कादम्बरी . वाणभट्ट

२३ काव्यप्रकाश · मम्मट

२४. काव्यादर्श : दण्डी

२५. काव्यालंकार · रुद्रट

२६. काशिका

२७. किरातार्जुनीय · भारवि

२८. कुन्दमाला · दिङ्नाग

२९ कुवलयमाला · उद्योतनसूरि

३०. कृष्णगीतावली · तुलसी

३१. कुमारसम्भव · कालिदास

३२ गीतावली : तुलसी

३३ चउपन्नमहापुरिसचरिय : शीलाचार्य

३४ चण्डीशतक : वाण

३५. चारित्तपाहुड . कुन्दकुन्द

३६ चित्रबन्धरामायण · वेकटेश

३७. छक्कम्मोवएस : अमरकीर्ति

३८ छन्दमाला : कुलशेखर

३९ जानकीपरिणय चक्रकवि

४० जानकीहरण : कुमारदास

४१ जिनरामायण : चंद्रसागर वर्णी

४२. जीवनसम्बोधन वन्धुवर्मा

४३ जैनसाहित्य और इतिहास : नाथूराम प्रेमी

४४ डेवलपमेण्ट ऑफ ट्रेड एण्ड इण्डस्ट्री अण्डर दी मुगल्स : एस. एस. कुलश्रेष्ठ

४५ तत्त्वार्थसूत्र उमास्वाति

४६. तुलसी · डा० उदयभानुसिंह

४७. तुलसीदास डॉ० माताप्रसाद गुप्त

४८ तुलसीदास और उनका युग डॉ० राजपति दीक्षित

४९. तुलसी और उनका काव्य . डॉ० रामनरेश त्रिपाठी
५०. तुलसी रसायन : डॉ० भगीरथ मिश्र
५१. तुलसी-ग्रन्थावली स० रामचन्द्र शुक्ल, भगवानदीन, ब्रजरत्नदास
५२ तिलोयपण्णत्ति . यतिवृषभ
५३ तिसठ्ठीमहापुरिसगुणालकारु : पुष्पदन्त
५४. त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित हेमचद्र
५५. त्रिषष्टिशलाकापुरुषपुराण : चामुण्डराय
५६. दशकुमारचरित : दण्डी
५७. दी हिस्ट्री एण्ड कल्चर ऑफ दी इण्डियन पीपिल-दी क्लैसिकल एज : आर. सी. माजूमदार आदि ।
५८. दी कलेक्टेड वर्क्स ऑफ भन्डारकर, वाल्यूम-३
५९. दूतागद सुभट्ट
६०. दोहावली . तुलसी
६१ धर्मपरीक्षा
६२. धूर्तायानम् हरिभद्र
६३. नीतिशतक . भर्तृहरि
६४. पम्परामायण : अभिनव पम्प
६५. पउमचरिउ · स्वयभू
६६ पउमचरिय : विमलसूरि
६७. पद्मचरित (पद्मपुराण) : रविषेण
६८. पचतंत्र : विष्णु शर्मा
६९. पचसग्रह (सस्कृतानुवाद : अमितगतिसूरि
७०. पार्वतीमगल . तुलसी
७१. पुण्याश्रवकथाकोष : रामचन्द्र मुमुक्षु
७२. पुण्याश्रवकथासार . नागराज
७३. पुराणविमर्श : बलदेव उपाध्याय
७४. पुराणविषयानुक्रमणी (राजनीतिक) · डा० राजबली पाण्डेय
७५. पुरुषसूक्त (ऋग्वेद)
७६. पृथ्वीराज रासो : चन्दबरदाई
७७. पचास्तिकाय कुन्दकुन्द
७८. प्रतिमानाटक : भास
७९. प्रवचनसार कुन्दकुन्द
८०. प्रसन्नराघव . जयदेव
८१. प्राचीन भारत का इतिहास . रमाशकर त्रिपाठी
८२. प्राचीन भारत का इतिहास : वी० डी० महाजन
८३. प्राचीन भारतीय साहित्य की सास्कृतिक भूमिका : डा० रामजी उपाध्याय
८४. बरवै रामायण : तुलसी
८५. बालरामायण : राजशेखर
८६. भक्तामरस्तोत्र . मानतुग
८७ भगवती आराधना
८८. भारत का प्राचीन इतिहास : एन० एन० घोष
८९. भारतीय दर्शन : डॉ. राधाकृष्णन्
९०. भारतीय सस्कृति : डा० बलदेव-प्रसाद मिश्र

९१ भावसग्रह् देवसेन ९२. भावार्थरामायण एकनाथ
९३ मध्ययुगीन वैष्णव सस्कृति और तुलसीदास . डा० रामरतन भटनागर
९४ मनुस्मृति ९५. महाभारत
९६ महावीरचरित · भवभूति ९७. मानस का कथाशिल्प : श्रीधरसिंह
९८ मालतीमाधव भवभूति ९९ मिडिल मिस्टीसिज्म ऑफ इण्डिया
१०० मिडीवल इण्डिया अण्डर मुहमडन रूल · डा० स्टेनली लेनपूल
१०१ मुगल्स एडमिनिस्ट्रेशन सर यदुनाथ सरकार
१०२ मेघदूत . कालिदास १०३. मैथिलीकल्याण हस्तिमल्ल
१०४ याज्ञवल्क्यस्मृति १०५. रघुवश : कालिदास
१०६ राघवनैषधीय हरदत्तसूरि १०७. राघवपाण्डवीय : धनजय
१०८ राघवपाण्डवीय : माधवभट्ट १०९. रामकथा . कामिल बुल्के
११० रामकथावतार · देवचन्द्र १११ रामचरित : अभिनन्द
११२ रामचरित पद्मदेवविजयगणि ११३. रामचरित : सन्ध्याकरनन्दि
११४ रामचरित (रामपुराण) सोमसेन
११५ रामचरितमानस : तुलसी ११६. रामचरित रामायण : भूपति
११७. रामचरितमानस मे लोकवार्ता : चन्द्रभान
११८. रामदेवपुराण (रामायण) : जिनदास
११९ रामलक्खणचरिय : भुवनतुगसूरि
१२०. रामलला नहछू . तुलसी १२१ रामलीलामृत : कृष्णमोहन
१२२ रामविजय : देवप्प १२३. रामविवाह : भालण
१२४. रामायण : कुमुदेन्दु १२५. रामायण · कृत्तिवास
१२६ रामायणमंजरी : क्षेमेन्द्र १२७ रामार्चनपद्धति . रामानन्द
१२८ रामाज्ञाप्रश्न . तुलसी १२९. रावणवध (भट्टिकाव्य) · भट्टि
१३० लघुत्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित . सोमप्रभ
१३१ लघुत्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित : मेघविजय गणिवर
१३२ लोकविभाग : सर्वनन्दि १३३. वरागचरित : जटिलमुनि
१३४. वाल्मीकिरामायण : वाल्मीकि
१३५. वासवदत्ता सुवन्धु १३६. विनयपत्रिका : तुलसी
१३७. विपापहारस्तोत्र : धनंजय १३८. वैराग्यशतक : भर्तृहरि
१३९ शिशुपालवध : माघ १४०. शृंगारशतक : भर्तृहरि
१४१. श्रीमद्भागवत · व्यास १४२. श्रीमद्भगवद्गीता : व्यास
१४३. समयसार : कुन्दकुन्द १४४. साकेत. एक अध्ययन · डा० नगेन्द्र

१४५. साहित्यदर्पण : विश्वनाथ

१४६ साहित्य, शिक्षा और संस्कृति : डा० राजेन्द्र प्रसाद

१४७. सीयाचरिय · भुवनतुंगसूरि

१४८. सूर्यशतक : बाणभट्ट

१४९. संस्कृत-कवि-दर्शन . डॉ० भोलाशंकर व्यास

१५०. संस्कृत साहित्य का इतिहास : कन्हैयालाल पोद्दार

१५१ संस्कृत साहित्य का इतिहास : वाचस्पति गैरोला

१५२ संस्कृत साहित्य की रूपरेखा . चन्द्रशेखर पाण्डेय

१५३ हर्षचरित . बाणभट्ट

१५४. हर्षचरित एक सांस्कृतिक अध्ययन : डा० वासुदेवशरण अग्रवाल

१५५ हरिवंशपुराण जिनसेन

१५६. हंससन्देश (हंसदूत) . वेंकटेश

१५७. हिन्दी महाकाव्य का स्वरूप-विकास डा० शम्भुनाथसिंह

१५८. हिन्दी साहित्य का इतिहास आचार्य रामचन्द्र शुक्ल

१५९ हिन्दी-साहित्य-कोश, भाग १ · सं० धीरेन्द्र वर्मा

१६० हिस्ट्री ऑफ इण्डिया एज़ टोल्ड बाइ इट्स ओन हिस्टोरियन्स . इलियट एण्ड डौसन

१६१. हिस्ट्री ऑफ संस्कृत लिटरेचर . ए ए. मैक्डानल

●

जो सीधी या प्रत्यक्ष ज्ञान है उसे अवधि कहते है। यह ज्ञान असाधारण दृष्टि द्वारा अतीन्द्रिय विपयो का ज्ञान है। (४) मनःपर्यय, अन्य व्यक्तियो के वर्धमान एव भूत विचारो साक्षात् ज्ञान, जैसे टेलीपैथी द्वारा दूसरो के मन मे प्रवेश किया जाता है। (५) केवल अथवा पूर्णज्ञान, सब पदार्थो एव उनके परिवर्तनो का पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर लेना।[६७७] यह देश, काल एव विपय की सीमा से रहित सर्वज्ञता है। पूर्ण चेतना के लिए सम्पूर्ण यथार्थता प्रत्यक्ष रूप मे प्रकट है। यह ज्ञान जो इन्द्रियो के ऊपर निर्भर नही है और जो केवल अनुभवगम्य ही है एव वाणी द्वारा जिसका वर्णन नही किया जा सकता, केवल ऐसे पवित्रात्माओ के लिए ही सम्भव है जो बन्धनो से मुक्त हो चुके है। पहले तीन प्रकार के ज्ञानो मे भ्रान्ति की सम्भा- है, किन्तु पिछले दोनो मे कोई दोप नही हो सकता।[६७८]

पुन ज्ञान दो प्रकार का है **प्रमाण** अर्थात् पदार्थ को उसी रूप मे जानना जिस रूप मे वह है, और **नय** अर्थात् पदार्थ का किसी सम्बन्ध-विशेष के साथ ज्ञान। नयो को कई प्रकार से विभक्त किया गया है यथा—नैगमनय, सग्रहनय, व्यव- हारनय, ऋजुसूत्रनय, शब्दनय, समभिरूढनय और सर्वभूतनय।[६७९] नयो के और भी भेद किये गये है, यथा द्रव्यार्थिक एव पर्यायार्थिक। इन नयो का सबसे महत्त्व- पूर्ण उपयोग निश्चय ही 'स्याद्वाद' पर 'सप्तभगी' मे होता है। 'सप्तभगी' का अर्थ है किसी वस्तु अथवा उसके गुणो के विपय मे कथन करने के, दृष्टिकोण के रूप से, सात भिन्न-भिन्न प्रकार, जो ये है—(१) स्याद् अस्ति, (२) स्याद् नास्ति, (३) स्याद् अस्ति नास्ति (४) स्याद् अवक्तव्यम्, (५) स्याद् अस्ति च अवक्तव्यम्। (६) स्याद् नास्ति अवक्तव्यम्, (७) स्याद् अस्ति च नास्ति च अवक्तव्यम्। यह 'सप्तभङ्गी' जैन तर्कशास्त्र का बहुचर्चित पारिभापिक शब्द है।

सम्यक्चारित्र कर्म जिन कारणो से जीव के साथ बन्ध में आते है वे कारण **आस्रव** हैं और उनका निरोध **संवर** है।[६८०] जीव की मुक्त होने की साधना, विरति आदि—सवर है और केवल विरति आदि से सन्तुष्ट न होकर जीव की कर्म से छूटने के लिए तपश्चर्या आदि कठोर अनुष्ठान आदि निर्जरा-आशिक छुटकारा है, अन्त मे मोक्ष की प्राप्ति होती है। इस प्रकार सवर और निर्जरा सम्यक् चारित्र के अन्तर्गत आते है। पूज्यपाद ने सम्यक्चारित्र की परिभाषा देते हुए लिखा है कि ससार के कारणो की निवृत्ति के प्रति समुद्यत ज्ञानवान् का कर्मादाननिमित्तक्रियोपरम

---

६७७ सर्वद्रव्यपर्यायेषु केवलस्य।—तत्त्वार्थसूत्र १।२९

६७८ डा० राधाकृष्णन् 'भारतीय दर्शन', पृष्ठ २७०-२७१

६७९ नैगमसग्रहव्यवहारर्जुसूत्रशब्दसमभिरूढैवम्भूता नयाः :—तत्त्वार्थसूत्र १।३३

६८० अस्रवनिरोध सवर।—तत्त्वार्थसूत्र ९।१

सम्यक्चारित्र है।[६८१] इस चारित्र के अन्तर्गत सागार तथा अनागारो का धर्म आता है। महाव्रत, अणुव्रत, गुप्तियाँ, समितियाँ, शिक्षाव्रत, गुणव्रत एव अनेक नियम इस चारित्र के अन्तर्गत आते है। मोटे तौर से इन्हे अहिंसा-दर्शन का क्रियात्मक पक्ष कहा जा सकता है।

'पद्मपुराण' मे जैन-धर्म के इन तीन स्तम्भो—सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान एव सम्यक्चारित्र का यथावसर पर्याप्त विवेचन मिलता है। दिगम्बर और श्वेताम्बर—जैन धर्म के दोनो सम्प्रदायो मे पद्मपुराण का समान सम्मान है। इसका कारण यह है कि रविषेण ने अपने पूर्ववर्ती ग्रन्थो—जिन्हे आज दिगम्बर या श्वेताम्बर सम्प्रदाय के महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ कहा जाता है—का गहन अध्ययन किया था और उनकी मान्यताओ को अपने ग्रन्थ मे स्थान दिया। यही कारण है कि 'पद्मपुराण' मे कुछ बाते ऐसी आ गयी है जो दिगम्बर-सम्प्रदाय मे मान्य है कुछ ऐसी भी जो श्वेताम्बर-सम्प्रदाय मे मान्य है। उमास्वाति भी रविषेण को मान्य है और कुन्दकुन्द भी। सम्यक् दर्शन, ज्ञान और चारित्र का विवेचन वर्धमान, गौतमस्वामी, सर्वभूषण केवली, अनन्तबल, मुनिराज आदि के उपदेशो मे मुखरित हुआ है। जैन तर्कशास्त्र की मान्यताओ का उपयोग एकादश पर्व मे नारद-पर्वतक के शास्त्रार्थ के समय किया गया है। 'पद्मपुराण' मे तत्त्वो का विवेचन प्रायः उमास्वाति के सूत्रो के आधार पर किया है।[६८२] क्षेत्र तथा काल के वर्णन उमास्वाति के सूत्रो और यतिवृषभ की 'तिलोयपण्णत्ति' से पर्याप्त प्रभावित हैं। 'ज्ञान' के सिद्धान्त के प्रकाशन मे 'अनेकान्तवाद', 'स्याद्वाद', 'सप्तभङ्गी' आदि शब्दो का प्रयोग रविषेण ने किया है। चारित्र का विस्तृत विवेचन उसने विविध उपदेशो के समय किया है। यह स्मरणीय है कि रविषेण ने धर्म का प्रयोग कही पूरे मोक्ष मार्ग (दर्शन-ज्ञान-चारित्र) के लिए, कही चारित्र के लिए और कही केवल

---

६८१ ससारकारणनिवृत्ति प्रत्यागूर्णस्य ज्ञानवत कर्मादाननिमित्तक्रियोपरम सम्यक्चारित्रम्॥ तत्त्वार्थसूत्र १।१ पर सर्वार्थसिद्धि टीका।

६८२ तिलोयपण्णत्ति (त्रिलोकप्रज्ञप्ति)' की रचना रविषेण से पूर्व हो चुकी थी। प्राकृत भाषा मे रचित इस ग्रन्थ का विषय मुख्यत विश्वरचना—लोकस्वरूप है तथा प्रसगवश इसमे धर्म और सस्कृति से सम्बन्ध रखने वाली अनेक अन्य बातो की भी चर्चा आयी है। समस्त ग्रन्थ नौ महाधिकारो मे विभाजित है—(१) सामान्य लोक का स्वरूप, (२) नारक लोक, (३) भवनवासी लोक, (४) मनुष्य लोक, (५) तिर्यग्लोक, (६) व्यन्तरलोक, (७) ज्योतिलोक, (८) देवलोक और (९) सिद्धलोक।

इसका प्रथम भाग (चतुर्थ महाधिकार तक) १९४३ ई० मे और दूसरा भाग १९५१ ई० मे प्रो० हीरालाल जैन, आदिनाथ उपाध्ये एव प० बालचन्द्र सिद्धान्तशास्त्री के सम्पादकत्व मे जैन सस्कृति-सरक्षक-सघ शोलापुर से प्रकाशित हुआ है।

धार्मिक अनुष्ठानादि के लिए किया है, । कही जिनेन्द्र-शासन का अर्थ धर्म है और कही 'धारयति' के अर्थ में। इसीलिए 'पद्मपुराण' में 'धर्म' शब्द से धर्म और दर्शन दोनो की सम्मिश्रित अर्थावगति होती है।

'पद्मपुराण' के अनुसार जैनधर्म ही एक ऐसा धर्म है जो निष्कलुष एवं आदर्श है। यद्यपि मिथ्यादृष्टियो (ब्राह्मणो) के कुशासन मे भी कही थोड़ा बहुत धर्म का लेश मिल सकता है तथापि सम्यग्दर्शन के बिना वह निर्मूल ही है।[६८३]

'पद्मपुराण' के अनुसार—धर्म का मूल है दया और उसका मूल—अहिंसा[६८४] धर्म दो प्रकार का है—महाव्रत और अणुव्रत। इनमे महाव्रत गृहत्यागियो (अनागारो) का है और अणुव्रत गृहस्थो का।

मुनियो को पंच महाव्रतो का पालन करना पड़ता है। अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह का ऐकान्तिक और आत्यन्तिक पालन करना पंचमहाव्रत-पालन है। अनागारो को तीन गुप्तियो, पच समितियो एव नाना तपो को वश मे करना होता है।[६८५]

गृहस्थो का धर्म मुख्यत. इन द्वादश भागो में विभक्त है—पाँच अणुव्रत, चार शिक्षाव्रत एवं तीन गुणव्रत।[६८६] इनके अतिरिक्त यथाशक्ति उन्हे अनेक नियम धारण करने होते हैं। स्थूल हिंसा, स्थूल झूठ, स्थूल पर-द्रव्य-ग्रहण, पर-स्त्री-समागम और अनन्ततृष्णा से विरत होना—ये गृहस्थो के पाँच अणुव्रत है।[६८७] इन व्रतों की रक्षा के लिए अहिंसा, सत्य, अस्तेय, परस्त्रीविरक्ति तथा इच्छा का परिमाण परम आवश्यक है।[६८८]

अणुव्रतो के साथ ये तीन गुणव्रत भी लेने पडते है.—अनर्थदण्डों का त्याग करना, दिशाओ और विदिशाओ में आवागमन की सीमा निर्धारित करना एव भोगोपभोगो का परिमाण करना।[६८९]

चार शिक्षाव्रत ये हैं—प्रयत्नपूर्वक सामायिक करना, प्रोषधोपवास धारण करना, अतिथि-सविभाग और आयु का क्षय होने पर सल्लेखना धारण करना।[६९०] सामायिक व्रत मे गृहस्थ को प्रात., मध्याह्न और सायकाल मे नित्य कुछ समय तक आध्यात्मिक तत्त्वानुशीलन करना होता है। प्रोषधोपवास के अनुसार गृहस्थ को दोनो पक्षों की अष्टमी और चतुर्दशी को भोजन से विरत रहने का व्रत लेना होता है। अतिथि-सविभाग के द्वारा उसे अथितियो का स्वागत करना होता है एव उन्हे भोजन देकर स्वयं भोजन करना होता है। जिसने अपने आगमन के

---

६८३ पद्म०, ६।२८२। ६८४ वही, ६।२८६। ५८५. वही, ६।२८९-२९२, १४। १६४-१८१। ६८६ वही, १४।१८३। ६८७ वही, १४।१८४-१८५। ६८८ वही, १४।१८६-१९४। ६८९ वही, १४।१९८। ६९० वही, १४।१९९।

विषय मे किसी तिथि का सकेत नही किया है, जो परिग्रह से रहित है और सम्यग्दर्शनादि गुणो से युक्त होकर घर आता है ऐसा मुनि अतिथि कहलाता है। ऐसे अतिथि के लिए अपने वैभव के अनुसार आदरपूर्वक लोभरहित हो भिक्षा तथा उपकरण आदि देना चाहिए।[६९१] सल्लेखना के अनुसार शुद्धमन होकर, सभी मनोविकारो से मुक्त होकर और सकी लोगो को क्षमा प्रदान करके अपने सभी पापो की आलोचना की जाती है और अन्त मे महाव्रतो को अपना कर शोक-भय-विषाद-अरति आदि से चित्त को विमुक्त करके भोजन और पेय का सर्वथा त्याग करके समाधि-मरण अपना लिया जाता है। इन व्रतो मे से सामायिक प्रोषधोपवास और अतिथिसविभाग क्रमश वैदिक सस्कृति के ब्रह्मचर्य, व्रतोपवास और अतिथि-यज्ञ के समकक्ष पडते है।[६९२]

इनके अतिरिक्त गृहस्थ के लिए पालनीय ये नियम है—मधुत्याग, मद्य-त्याग, मास-त्याग, द्यूत-त्याग, रात्रिभोजन-त्याग और वेश्यागमन-त्याग आदि।[६९३]

इस प्रकार धर्माचरण करने से गृहस्थ मरकर देव-पर्याय को प्राप्त होता है और वहाँ से च्युत होकर उत्तम मनुष्यत्व प्राप्त करता है। ऐसा जीव अधिक से अधिक आठ भवो मे रत्नत्रय का पालन कर अन्त मे निर्ग्रन्थ होकर सिद्धिपद को प्राप्त हो जाता है।[६९४]

'पदमपुराण' के अनुसार जो भी व्यक्ति जिनेद्र की वन्दना करता है अथवा उनका भावपूर्वक स्मरण करता है, उसके पाप क्षीण हो जाते है।[६९५] जिनेन्द्र की स्तुति से, जिनेन्द्र की प्रतिमा बनवाने से और जिनेन्द्र की पूजा करने से कुछ भी दुर्लभ नही रह जाता।[६९६] जो भी प्राणी धर्म से युक्त होता है वही समस्त संसार मे पूज्य होता है और स्वर्ग मे अपार सौख्य प्राप्त करता है।[६९७]

इस मुनिधर्म और गृहस्थ धर्म के विपरीत जो भी आचरण अथवा ज्ञान है वह 'अधर्म' है[६९८]—जिससे परलोक और पुनर्जन्म मे अनेक कष्ट उठाने पडते है।[६९९] अधर्मी प्राणी अनेक नरको मे जाता है[७००]—ऐसी 'पद्मपुराण' की मान्यता है।

'पद्मपुराण' के अनुसार, यज्ञ करना (विशेषत: हिंसायज्ञ) पातक है और

---

६९१. वही २४।२००-२०१।

६९२ रामजी उपाध्याय प्राचीन भारतीय साहित्य की सास्कृतिक भूमिका।

६९३ पद्म० १४।२०२।

६९४ पद्म० १४।२०३-२०४

६९५ वही, १२।२०८

६९६ वही, १४।२१३

६९७ वही, १४।२१४

६९८ वही, ६।३०४

६९९ वही, १४।२६६-२८५

७०० वही, ६।३०५-३११

दिन भर व्रत करके रात्रि मे व्रत की पारणा करना भी अधर्म है।[७०१]

'पद्मपुराण' के अनुसार, जैनधर्म मे सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्-चारित्र—इनकी एकता ही मोक्ष का मार्ग है।[७०२] इनमे से तत्त्वो का श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन कहलाता है।[७०३] अनन्त गुण और अनन्त पर्यायो को धारण करने वाला तत्त्व चेतन-अचेतन के भेद से दो प्रकार का है।[७०४] स्वभाव अथवा परोपदेश के द्वारा भक्तिपूर्वक जो तत्त्व को ग्रहण करता है, वह जिनमत का श्रद्धालु सम्यग्दृष्टि जीव कहा गया है।[७०५] शका, काक्षा, विचिकित्सा, अन्यदृष्टिप्रशसा और प्रत्यक्ष ही उदार मनुष्यो मे दोष लगाना—उनकी निन्दा करना—ये पाँच अतिचार है।[७०६] परिणामो की स्थिरता रखना, जिनायतन आदि क्षेत्रो में रमण करना—स्वभाव से उनका अच्छा लगना, उत्तम भावनाएँ भाना तथा शकादि दोषो से रहित होना—ये सब सम्यग्दर्शन को शुद्ध रखने के उपाय हैं।[७०७] सम्यग्ज्ञानपूर्वक जितेन्द्रिय मनुष्य के द्वारा जो आचरण किया जाता है वह सम्यक्चारित्र कहलाता है।[७०८] सम्यक्चारित्र मे, इन्द्रियो का वशीकरण, वचन तथा मन का नियन्त्रण, न्यायपूर्ण प्रवृत्ति करने वाले त्रस-स्थावर जीवो पर अहिंसा, मन और कानो को आनन्दित करने वाले, स्नेहपूर्ण, मधुर, सार्थक और कल्याण-कारी वचनो का कथन, अदत्त वस्तु के ग्रहण में मन-वचन-काय से निवृत्ति, न्यायपूर्वक दी गयी वस्तु का ग्रहण, ब्रह्मचर्य-धारण, मोक्ष-मार्ग मे महाविघ्नकारी मूर्च्छा के त्याग के साथ परिग्रह का त्याग, मुनियो के लिए दान एव विनय-नियम-शील-ज्ञान-दया-दम-मोक्ष के लिए ध्यान-धारण आदि करने होते हैं।[७०९] कल्याण-प्राप्ति के लिए जिन-शासनोक्त सम्यक्चारित्र का अवश्य पालन करना चाहिए।[७१०] इनके विरुद्ध मिथ्या दर्शन, मिथ्याज्ञान और मिथ्याचारित्र है जिनसे प्राणी ससार से नही निकल पाता।[७११]

किन्तु इस विवेचन से पद्मपुराण की काव्यात्मकता अत्यन्त बोझिल प्रतीत होने लगती है। यदि जैन धर्म और दर्शन के सिद्धान्तो का सार प्रस्तुत किया जाता तो अधिक सरसता बनी रह सकती थी। किन्तु रविषेण, मानो कच्चे माल की भरती करने के आदी हैं। जिस तत्परता से वे बाण के हर्षचरित के वाक्य के वाक्य

७०१ वही, पर्व १४
७०२ वही, १०५।३-२१०
७०३ वही, १०५।२११
७०४ वही, १०५।२११
७०५. वही, १०५।२१२
७०६ वही, १०५।२१३
७०७ वही, १०५।२१४
७०८ वही, १०५।२१५
७०९ वही, १०५।२१६-२२३
७१० वही, १०५।२२४
७११ वही, १०५।२२६-२६१

पद्मीकृत करके राजगृह नगर का अथवा श्रेणिक राजा का वर्णन करते है उसी तत्परता से वे कुन्दकुन्द के 'पचास्तिकायसार' उमास्वाति के 'तत्त्वार्थसूत्र' एव यतिवृषभ की 'तिलोयपण्णत्ति' की सामग्री को अनुष्टुप्-बद्ध करके पाठको के सम्मुख रखते हैं, चाहे उनका पाठक उसे सरलता मे पचा सके या न पचा सके[७१२]। कुछ तुलनात्मक उद्धरण प्रस्तुत है—

उमास्वाति और रविषेण

१. उमास्वाति	:	सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्ग.।[७१३]
रविषेण	.	उवाच भगवान् सम्यग्दर्शनज्ञानचेष्टितम्। मोक्षवर्त्म समुद्दिष्टमिद जैनेन्द्रशासने ॥[७१४]
२ उमा०	:	तत्त्वार्थश्रद्धान सम्यग्दर्शनम्।[७१५]
रवि०	:	तत्त्वश्रद्धानमेतस्मिन् सम्यग्दर्शनमुच्यते।[७१६]
३ उमा०	:	तन्निसर्गादधिगमाद्वा।[७१७]
रवि०	:	निसर्गाधिगमद्वाराद्भूतत्या तत्त्वमुपाददत्।[७१८]
४. उमा०	:	शङ्काकाक्षाविचिकित्साऽन्यदृष्टिप्रशसासस्तवा· सम्यग्दृष्टे-रतीचारा:।[७१९]
रवि०	:	शङ्काकाक्षा चिकित्सा च परशासनसस्तव। प्रत्यक्षोदारदोपाद्या एते सम्यक्त्वदूपणा: ॥[७२०]
५ उमा०	:	तत्स्थैर्यार्थं भावना पञ्च पञ्च।[७२१]
रवि०	:	स्थैर्य जिनवरागारे रमण भावना परा.। शङ्कादिरहितत्त्व च सम्यग्दर्शनशोधनम् ॥[७२२]

---

७१२ आगे चलकर जिनसेन ने भी अपने 'हरिवशपुराण' (८४० वि० स०) के ५८वे सर्ग मे जैन धर्म के तत्त्वो का उसी प्रकार विस्तृत विवेचन किया है। दे० 'हरिवशपुराण', (सम्पादक, प० पन्नालाल जैन साहित्याचार्य, भारतीय ज्ञानपीठ काशी, सस्क० १९६२ ई०) पृ० ६६०-६९३। क्षेत्र, काल तथा श्रुत-मति-केवल ज्ञानो का विवेचन भी रविषेण की रीति से 'हरिवशपुराण' के चतुर्थ, पचम, सप्तम तथा दशम सर्ग मे हुआ है।

७१३ तत्त्वार्थसूत्र, १।१ — ७१४ पद्म०, १०५।२१०

७१५ तत्त्वार्थ०, १।२ — ७१६. पद्म०, १०५।२११

७१७ तत्त्वार्थ०, १।३ — ७१८ पद्म०, १०५।२१२

७१९ तत्त्वार्थ०, ७।२३ — ७२० पद्म०, १०५।२१३

७२१ तत्त्वार्थ०, ७।३ — ७२२ पद्म०, १०५।२१४

६. उमा०	:	कायवाङ्मन.कर्म योग.।[723]
		स आस्रवः।[724]
रवि०	:	गोपायितहृषीकत्वं वचोमानसयन्त्रणम्।
		विद्यते यत्र निष्पाप सुचारित्र तदुच्यते।।[725]
७. उमा०	:	हिंसाऽनृतस्तेयाब्रह्मपरिग्रहेभ्यो विरतिर्व्रतम्।[726]
रवि०	:	अहिंसा यत्र भूतेषु त्रसेषु स्थावरेषु च।
		क्रियते न्याययोगेषु सुचारित्र तदुच्यते।।
		मन.श्रोत्रपरिह्लादं स्निग्धं मधुरमर्थवत्।
		शिवं यत्र वच. सत्यं सुचारित्रं तदुच्यते।।
		अदत्तग्रहणे यत्र निवृत्तिः क्रियते त्रिधा।
		दत्तं च गृह्यते न्याय्यं सुचारित्रं तदुच्यते।।
		सुराणामपि सम्पूज्य दुर्धरं महतामपि।
		ब्रह्मचर्यं शुभं यत्र सुचारित्र तदुच्यते।।
		शिवमार्गमहाविघ्नमूर्च्छात्यजनपूर्वक. ।
		परिग्रहपरित्याग. सुचारित्र तदुच्यते।।[727]
८. उमा०	:	बन्धवधच्छेदातिभारारोपणान्नपाननिरोधाः।[728]
		क्षेत्रवास्तुहिरण्यसुवर्णधनधान्यदासीदासकुप्यप्रमाणाति-
		क्रमाः।[729]
रवि०	:	वधताडनबन्धाङ्कदोहनादिविधायिनः।
		ग्रामक्षेत्रादिसक्तस्य प्रव्रज्या का हतात्मनः।।
		क्रयविक्रयसक्तस्य पक्तियाचनकारिणः।
		सहिरण्यस्य का मुक्तिर्दीक्षितस्य दुरात्मन.।।[730]
९. उमा०	:	रत्नशर्करावालुकापङ्कधूमतमोमहातम प्रभाभूमयो घनाम्बु-
		वाताकाशप्रतिष्ठा. सप्ताधोऽध।[731]
रवि०	:	रत्नाभा प्रथमा तत्र यस्यां भवनजा. सुरा.।
		पञ्चवस्ता तत. क्षोण्यो महाभयसमावहाः।।

---

७२३ तत्त्वार्थ०, ६।१
७२४ वही, ६।२
७२५ पद्म०, १०५।२१६
७२६ तत्त्वार्थ०, ७।१
७२७ पद्म० १०५।२१७-२२२,
७२८ तत्त्वार्थ०, ७।२५
७२९ वही, ७।२९
७३० पद्म०, १०५।२३१-२३२
७३१. तत्त्वार्थ०, ३।१

शर्करावालुकापङ्कधूमध्वान्ततमोनिभाः ।
सुमहादु खदायिन्यो नित्यान्धध्वान्तसकुला ।।[७३२]

अधस्तान्महीरत्नप्रभाशर्करावालुकापङ्कधूमप्रभाऽध्वान्त-भातिप्रकृष्टान्धकाराभिधास्ताश्च नित्य महाध्वान्त-युक्ता ।[७३३]

१०. उमा० : नारका नित्याशुभतरलेश्यापरिणामदेहवेदनाविक्रिया. ।[७३४]

रवि० : चक्षुष पुटसङ्कोचो यावन्मात्रेण जायते ।
तावन्तमपि नो काल नारकाणा सुखासनम् ।।[७३५]

११ उमा० : जम्बूद्वीपलवणोदयादय शुभनामानो द्वीपसमुद्रा. ।।[७३६] द्विर्द्विविष्कम्भा. पूर्वपूर्वपरिक्षेपिणो वलयाकृतयः ।।[७३७] तन्मध्ये मेरुनाभिर्वृत्तो योजनशतसहस्रविष्कम्भो जम्बूद्वीप ।।[७३८] भरतहैमवतहरिविदेहरम्यकहैरण्यवतैरावतवर्षा क्षेत्राणि ।।[७३९] तद्विभाजिनः पूर्वापरायता हिमवन्महाहिमवन्निषधनीलरुक्मिशिखरिणो वर्षधरपर्वता. ।।[७४०] हेमार्जुनतपनीयवैडूर्यरजतहेममया· ।।[७४१] मणिविचित्रपार्श्वा उपरि मूले च तुल्यविस्तारा ।।[७४२] पद्ममहापद्मतिगिछकेसरिमहापुण्डरीकपुण्डरीका ह्रदास्तेषामुपरि ।।[७४३] प्रथमो योजनसहस्रायामस्तदर्द्धविष्कम्भो ह्रदः ।।[७४४] दशयोजनावगाह. ।।[७४५] तन्मध्ये योजनं पुष्करम् ।।[७४६] तद्द्विगुणाद्विगुणा ह्रदा. पुष्कराणि च ।।[७४७] तन्निवासिन्यो देव्यः श्रीह्रीधृतिकीर्तिबुद्धिलक्ष्म्य· पल्योपमस्थितयः ससामानिकपरिषत्काः ।।[७४८] गङ्गासिन्धुरोहिद्रोहितास्याहरिद्धरिकान्तासीतासीतोदानारीनरकान्तासुवर्णरूप्यकूला-

---

७३२ पद्म०, १०५।१११-११२
७३३ वही, ७८।६२ के बाद का गद्य ।
६३४ तत्त्वार्थ०, ३।३
७३५. पद्म०, २।१८२
७३६ तत्त्वार्थ, ३।७
७३७ तत्त्वार्थ०, ३।८
७३८ वही, ३।९
७३९ वही, ३।१०
७४० वही, ३।११
७४१ वही, ३।१२
७४२ वही, ३।१३
७४३ वही, ३।१४
७४४ वही, ३।१५
७४५ वही, ३।१६
७४६. वही, ३।१७
७४७ वही, ३।१८
७४८. वही, ३।१६

रक्तारक्तोदा· सरितस्तन्मध्यगाः ।।[७४९] द्वयोर्द्वयोः पूर्वा पूर्वगा ।।[७५०] शेषास्त्वपरगा ।।[७५१] चतुर्दश नदी सहस्रपरिवृता गङ्गासिन्ध्वादयो नद्य ।।[७५२] विदेहेषु सख्येयकाला ।।[७५३] द्विर्धातकीखण्डे ।।[७५४] पुष्करार्द्धे च ।।[७५५] प्राङ्-मानुषोत्तरान्मनुष्या ।।[७५६] आर्या म्लेच्छाश्च ।।[७५७] भरतैरावतविदेहा कर्मभूमयोऽन्यत्र देवकुरूत्तरकुरुभ्य ।।[७५८] नृस्थिती परापरे त्रिपल्योपमान्तर्मुहूर्ते ।।[७५९] तिर्यग्योनिजनाना च ।।[७६०]

रवि० : जम्बूद्वीपमुखा द्वीपा लवणाद्याश्च सागरा. ।
प्रकीर्त्तिता शुभा नाम सख्यानपरिवर्जिता. ।।
पूर्वाद् द्विगुणविष्कम्भा पूर्वविक्षेपवर्तिन ।
वलयाकृतयो मध्ये जम्बूद्वीप. प्रकीर्त्तित. ।।
मेरुनाभिरसौ वृत्तो लक्षयोजनमानभृत् ।
त्रिगुण तत्परिक्षेपादधिक परिकीर्तितम् ।।
पूर्वापरायतास्तत्र विज्ञेया कुलपर्वताः ।
हिमवाश्च महाज्ञेयो निषधो नील एव च ।।
रुक्मी च शिखरी चेति समुद्रजलसङ्गता· ।
वास्यान्येभिर्विभक्तानि जम्बूद्वीपगतानि च ।।
भरताख्यमिद क्षेत्र ततो हैमवत हरि ।
विदेहो रम्यकाख्य च हैरण्यवतमेव च ।।
ऐरावत च विज्ञेय गङ्गाद्याश्चापि निम्नगा ।
प्रोक्त द्विर्धातकीखण्डे पुष्करार्द्धे च पूर्वकम् ।।
आर्या म्लेच्छा मनुष्याश्च मानुषाचलतोऽपरे ।
विज्ञेयास्तत्प्रभेदाश्च सख्यानपरिवर्जिता ।।
विदेहे कर्मणो भूमिर्भरतैरावते तथा ।
देवोत्तरकुरुर्भोगक्षेत्र शेषाश्च भूमय ।।

---

७४९ वही, ३।२०
७५० वही, ३।२१
७५१ वही, ३।२२
७५२ वही, ३।२३
७५३ वही, ३।३१
७५४ वही, ३।३३
७५५ अही, ३।३४
७५६ वही, ३।३५
७५७ वही, ३।३६
७५८ वही, ३।३७
७५९ वही, ३।३८
७६० वही, ३।३९

त्रिपल्यान्तर्मुहूर्त्तं तु स्थिती नृणां परावरे ।
मनुष्याणामिव ज्ञेया तिर्यग्योनिमुपेयुषाम् ॥[७६१]

१२ उमा० : देवाश्चतुर्णिकाया. ॥[७६२] दशाष्टपञ्चद्वादशविकल्पा: कल्पोपपन्नपर्यन्ता ॥[७६३] भवनवासिनोऽसुरनागविद्युत्सुपर्णाग्निवातस्तनितोदधिद्वीपदिक्कुमारा. ॥[७६४] व्यन्तरा किन्नरकिम्पुरुषमहोरगगन्धर्वयक्षराक्षसभूतपिशाचा· ॥[७६५] ज्योतिष्का: सूर्याचन्द्रमसौ ग्रहनक्षत्रप्रकीर्णकतारकाश्च ॥[७६६] मेरुप्रदक्षिणा नित्यगतयो नृलोके ॥[७६७] सौधर्मैशानसानत्कुमारमाहेन्द्रब्रह्मब्रह्मान्तरलान्तवकापिष्ठशुक्रमहाशुक्रशतारसहस्रारेष्वानतप्राणतयोरारणाच्युतयोर्नवसु ग्रैवेयकेषु विजयवैजयन्तजयन्तापराजितेषु सर्वार्थसिद्धौ च ॥[७६८]

रवि० : अष्टभेदजुषो वेद्या व्यन्तरा. किन्नरादय ।
तेषा क्रीडनकावासा यथायोग्यमुदाहृता. ॥
ऊर्ध्वं व्यन्तरदेवाना ज्योतिषा चक्रमुज्ज्वलम् ।
मेरुप्रदक्षिण नित्यङ्गतिश्चन्द्रार्कराजकम् ॥
सख्येयानि सहस्राणि योजनाना व्यतीत्य च ।
तत ऊर्ध्वं महालोको विज्ञेय· कल्पवासिनाम् ॥
सौधर्माख्यस्तथैशान. कल्पस्तत्र प्रकीर्त्तित ।
ज्ञेय· सानत्कुमारश्च तथा माहेन्द्रसञ्ज्ञक ॥
ब्रह्म ब्रह्मोत्तरो लोको लान्तवश्च प्रकीर्त्तित ।
कापिष्ठश्च तथा शुक्रो महाशुक्राभिधस्तथा ॥
शतारोऽथ सहस्रार. कल्पश्चानतशब्दित ।
प्राणतश्च परिज्ञेयस्तत्परावारणच्युतौ ॥
नव ग्रैवेयकास्ताभ्यामुपरिष्टात्प्रकीर्त्तिता. ।
अहमिन्द्रतया येषु परमास्त्रिदशा. स्थिता ॥

---

७६१ पद्म०, १०५।१५४-१६३ इसके अतिरिक्त पद्म० ३।३९-४० भी देखें ।
७६२ तत्त्वार्थ०, ४।१
७६३ तत्त्वार्थ, ४।३
७६४ वही, ४।१०
७६५ वही, ४।११
७६६ वही, ४।१२
७६७ वही, ४।१३
७६८ वही, ४।१९

विजयो वैजययन्तश्च जयन्तोऽथापराजित.।
सर्वार्थसिद्धिनामा च पञ्चैतेऽनुत्तरा. स्मृता ॥[७६९]

१३. उमा० : भरतैरावतयोर्वृद्धिह्रासौ षट्समयाभ्यामुत्सर्पिण्यवसर्पिणीभ्याम् ॥[७७०]

रवि० उत्सर्पिण्यवसर्पिण्योरेव क्रमसमुद्भवः ॥[७७१]

१४. उमा० : पृथिव्यप्तेजोवायुवनस्पतयः स्थावराः ।[७७२]
ससारिणस्त्रसस्थावराः ॥[७७३]

रवि० : पृथिव्यापश्च तेजश्च मातरिश्वा वनस्पति·।
शेषास्त्रसाश्च जीवाना निकाया· षट् प्रकीर्त्तिता. ॥[७७४]

१५ उमा० : अजीवकाया धर्माधर्माकाशपुद्गला. ॥[७७५] द्रव्यानि ॥[७७६]
जीवाश्च ॥[७७७] आ आकाशादेकद्रव्यानि ॥[७७८]

रवि० धर्माधर्मवियत्कालजीवपुद्गलभेदत ।
षोढा द्रव्य समुद्दिष्ट सरहस्य जिनेश्वरैः ॥[७७९]

१६. उमा० : तत्त्वार्थश्रद्धान सम्यग्दर्शनम् ॥[७८०] तन्निसर्गादधिगमाद्वा ॥[७८१] नामस्थापनाद्रव्यभावतस्तन्न्यास ॥[७८२] प्रमाणनयैरधिगम. ॥[७८३] सत्सख्याक्षेत्रस्पर्शनकालान्तरभावाल्पवहुत्वैश्च ॥[७८४] नैगमसग्रहव्यवहारर्जुसूत्रशब्दसमभिरूढैवम्भूता नया. ॥[७८५] जीवभव्याभव्यत्वानि च ॥[७८६] उपयोगो लक्षणम् ॥[७८७] स द्विविधोऽष्टचतुर्भेद ॥[७८८] ससारिणो मुक्ताश्च ॥[७८९] समनस्कामनस्का ॥[७९०] ससारिणस्त्रसस्थावरा ॥[७९१] पृथिव्यप्तेजोवायुवनस्पतय. स्थावरा ॥[७९२]

---

७६९ पद्म०, १०५।१६४-१७१
७७० तत्त्वार्थसूत्र ३।२७
७७१ पद्म०, ३।७३
७७२. तत्त्वार्थसूत्र २।१३
७७३ वही, २।१२
७७४. पद्म०, १०५।१४१
७७५ तत्त्वार्थसूत्र, ५।१
७७६ वही, ५।२
७७७ वही, ५।३
७७८ वही, ५।६
७७९ पद्म० १०५।१४२
७८० तत्त्वार्थसूत्र १।२
७८१ वही १।३
७८२ वही, १।५
७८३ वही १।६
७८४. वही, १।८
७८५ वही १।३३
७८६. वही, २।७
७८७ वही २।८
७८८ वही, २।९
७८९ वही२।१०
७९० वही, २।११
७९१. वही २।१२
७९२ वही, २।१३

द्वीन्द्रियादयस्त्रसा. ।।[793] पञ्चेन्द्रियाणि ।।[794] स्पर्शनरसन-घ्राणचक्षु.श्रोत्राणि ।।[795]

रवि० सप्तभगीवचोमार्ग. सम्यक्प्रतिपद मत ।
प्रमाण सकलादेशो नयोऽवयवसाधनम् ।।
एकद्वित्रिचतु पञ्चहृषीकेष्वविरोधत: ।
सत्त्व जीवेषु विज्ञेय प्रतिपक्षसमन्वितम् ।।

० ० ०

भव्याभव्यादिभेद च जीवद्रव्यमुदाहृतम् ।
ससारे तद्द्वयोन्मुक्ता सिद्धास्तु परिकीर्तिता ।।
ज्ञेयदृश्यस्वभावेषु परिणाम स्वशक्तित ।
उपयोगश्च तद्रूप ज्ञानदर्शनतो द्विधा ।।
ज्ञानमष्टविध ज्ञेय चतुर्धा दर्शन मतम् ।
ससारिणो विमुक्ताश्च ते सचित्तविचेतस ।।
वनस्पतिपृथिव्याद्या स्थावरा शेषकास्त्रसा. ।
पञ्चेन्द्रिया श्रुतिघ्राणचक्षुस्त्वग्रसनान्विता ।।[796]

१७ उमा० : सम्मूर्च्छनगर्भोपपादा जन्म ।।[797] सचित्तशीतसवृता सेतरा मिश्राश्चैकशस्तद्योनय. ।।[798] जरायुजाण्डजपोताना गर्भ: ।।[799] देवनारकाणामुपपाद: ।।[800] शेषाणा सम्मूर्च्छनम् ।।[801]

रवि० पोताण्डजजरायूनामुदितो गर्भसम्भव ।
देवानामुपपादस्तु नारकाणाञ्च कीर्त्तित ।।
सम्मूर्च्छन समस्ताना शेषाणां जन्मकारणम् ।
योन्यस्तु विविधा प्रोक्ता महादु खसमन्विता. ।।[802]

१८. उमा० औदारिकवैक्रियिकाहारकतैजसकार्मणानि शरीराणि।।[803] परम्पर सूक्ष्मम् ।।[804]

---

७९३ वही, २।१४
७९४ वही, २।१५
७९५ वही, २।१९
७९६ पद्म०, १०५।१४३-१४९
७९७ तत्त्वार्थसूत्र, २।६१
७९८ वही, २।३२
७९९ वही, २।३३
८००. वही, २।३४
८०१ वही, २।३५
८०२ पद्म०, १०५।१५०-१५१
८०३. तत्त्वार्थसूत्र, २।३६
८०४. वही, २।३७

रवि० औदारिकं शरीरं तु वैक्रियाऽऽहारके तथा।
तैजस कार्मण चैव विद्धि सूक्ष्म पर परम् ।।[805]

१९. उमा० · प्रदेशतोऽसख्येयगुण प्राक्तैजसात् ।।[806] अनन्तगुणे परे।।[807] तदादीनि भाज्यानि युगपदेकस्मिन्ना चतुर्भ्य.।।[808]

रवि० असख्येय प्रदेशेन गुणतोऽनन्तके परे।
आदिसम्वन्धमुक्ते च चतुर्णामेककालता ।।[809]

२० उमा० · देवाश्चतुर्णिकाया.।।[810] भवनवासिनोऽसुरनागविद्युत्सुपर्णाग्निवातस्तनितोदधिद्वीपदिक्कुमारा. ।।[811] व्यन्तरा किन्नरकिम्पुरुषमहोरगगन्धर्वयक्षराक्षसभूतपिशाचा ।।[812] ज्योतिष्का सूर्याचन्द्रमसौ ग्रहनक्षत्रप्रकीर्णकतारकाश्च ।।[813] वैमानिका ।।[814] कल्पोपपन्ना. कल्पातीताश्च ।।[815]

रवि० ज्योतिषा. भावना. कल्पा व्यन्तराश्च चतुर्विधा ।
देवा भवन्ति योग्येन कर्मणा जन्तवो भवे ।।[816]

२१. उमा० . ईर्याभाषैषणादाननिक्षेपोत्सर्गाः समितय.।।[817]

रवि० : ईर्यावाक्यैषणादाननिक्षेपोत्सर्गरूपिका ।
समिति· पालन तस्या. कार्य यत्नेन साधुना ।।[818]

२२ उमा० . सम्यग्योगनिग्रहो गुप्ति ।।[819] कायवाङ्मन.कर्म योग.।।[820]

रवि० . वाङ्मन कायवृत्तीनामभावो ऽथवा।
गुप्तिराचरण तस्या विधेय परमादरात् ।।[821]

२३ उमा० . दिग्देशानर्थदण्डविरतिसामायिकप्रोपधोपवासोपभोगपरिभोगपरिमाणातिथिसविभागव्रतसम्पन्नश्च ।[822] मार-

८०५ पद्मपुराण, १०५।१५२
८०६ तत्त्वार्थसूत्र, २।३८
८०७ वही, २।३९
८०८ वही, २।४३
८०९ पद्मपुराण, १०५।१५३
८१० तत्त्वार्थसूत्र, ४।१
८११ वही, ४।१०
८१२ वही, ४।११
८१३ वही, ४।१२
८१४ वही, ४।१६
८१५ वही, ४।१७
८१६ पद्मपुराण, ३।८२
८१७ तत्त्वार्थसूत्र, ९।५
८१८ पद्म०, १४।१०८
८१९ तत्त्वार्थ०, ९।४
८२० वही, ६।१
८२१ पद्म०, १४।१०९
८२२ तत्त्वार्थ०, ७।२१

णान्तिकी सल्लेखनां जोषिता।[823]

रवि० · पद्मपुराण (१४।१८३-१९९)। किन्तु रविषेण ने 'सल्लेखना' को चार शिक्षाव्रतो मे चौथा माना है जो कि 'कुन्दकुन्द' की स्पष्ट मान्यता है। उमास्वाति ने सल्लेखना को चार शिक्षाव्रतो मे परिगणित नही किया है।

कुन्दकुन्द और रविषेण

२४ कुन्दकुन्द . पचेवणुव्वयाइ गुणव्वयाइ हवति तह तिण्णि।
सिक्खावय चत्तारि य सजमचरण च सायार ॥
थूले तसकायवहे थूले मोसे अदत्तथूले य।
परिहारो परमहिला परिग्गहारभ परिमाण ॥
दिसविदिसमाणपढम अणत्थदण्डस्स वज्जण विदिय।
भोगोपभोगपरिमा इयमेव गुणव्वया तिण्णि ॥
सामाइय च पढम विदिय च तहेव पोसह भणिय।
तइय च अतिहिपुज्ज चउत्थ सल्लेहणा अंते ॥[824]

रविषेण : व्रतान्यणूनि पञ्चैषा शिक्षा चोक्ता चतुर्विधा।
गुणास्त्रयो यथाम्नात नियमास्तु सहस्रशः ॥
प्राणातिपातत. स्थूलाद्विरतिर्विततात्तथा।
ग्रहणात्परवित्तस्य परदारसमागमात् ॥
अनन्तायाश्च गर्द्धाया पञ्चसङ्ख्यमिद व्रतम्।
भावना चेयमेतेषा कथिता जिनपुङ्गवैः ॥
× × ×
विगमोऽनर्थदण्डेभ्यो दिग्विदिक्परिवर्जनम्।
भोगोपभोगसङ्ख्यान त्रयमेतद्गुणत्रम् ॥
सामायिक प्रयत्नेन प्रोषधानशन तथा।
सविभागोऽतिथीनां च सल्लेखश्चायुष. क्षये ॥[825]

यतिवृषभ और रविषेण

२५. 'तिलोयपण्णत्ति' के नरलोक महाधिकार मे मनुष्यलोक का निर्देश, जम्बुद्वीप, लवणसमुद्र, धातकी खण्ड, कालोदक समुद्र, पुष्करार्ध

---

८२३ वही, ७।२२ ८२४. चारित्तपाहुड २३-२६
८२५ पद्म० १४।१८३-१९९

द्वीप, इन अढ़ाई द्वीपसमुद्रो मे स्थित मनुष्यो के भेद, सख्या, अल्पबहुत्व, गुणस्थानादि, आयुबन्धक, परिणाम, योनि, सुख, दु ख, सम्यक्त्वग्रहण के कारण और मोक्ष जाने वाले जीवो का प्रमाण, इस प्रकार १६ अधिकार हैं। इसके २६६१ पद्यो और एक गद्यभाग मे वेदिका, भरतादि क्षेत्रो और कुलपर्वतो का विन्यास, भरत क्षेत्र, उसमे प्रवर्तमान छः काल, हिमवान्, हैमवत महाहिमवान्, हरिवर्ष, निषध, विदेह क्षेत्र, नील पर्वत, रम्यक क्षेत्र, रुक्मि पर्वत, हैरण्यवत क्षेत्र, शिखरी पर्वत और ऐरावत क्षेत्र—इन १६ अन्तराधिकारो द्वारा जम्बूद्वीप का वर्णन, बहुत विस्तार पूर्वक किया गया है।

यहाँ प्रसंगवश २४ तीर्थंकरो का वर्णन ५२२ से गाथाओ मे विस्तार के साथ किया गया है।

चक्रवर्तिप्ररूपणा मे (गाथा १२८१ से १४१० तक) भरतादिक चक्रवर्तियो का उत्सेध, आयु, कुमारकाल, मण्डलीककाल, दिग्विजय, राज्य और संयमकाल का वर्णन हैं।

गा० १४११ से १४-७३ मं वलदेव, नारायण, प्रति-नारायण, रुद्र, नारद और कामदेव की सक्षिप्त प्ररूपणा की गयी है।

रविषेण ने पद्मपुराण के तीसरे, बीसवें और एक सौ पाँचवें पर्व मे मुख्यत इस धार्मिक सामग्री का प्रयोग किया है। उदाहरण के लिए एक सकेत दिया जा रहा है।

यतिवृषभ ने तीर्थंकरो की ऊँचाई (उत्सेध) इस प्रकार निरूपित किया है—

"पचसयधणुपमाणो उसहजिणिंदस्स होदि उच्छेहो।
तत्तो पण्णासूणा णियमेण य पुप्फदतपेरते॥
एत्तो जाव अणतं दस दस कोदडमेत्तपरिहीणो।
तत्तो णेमि जिणत पणपणचावेहिं परिहीणो॥
णव हत्था पासजिणे सग हत्था वड्ढमाणणामम्मि।
एत्तो त्तित्थयराण सरीरवण्ण परूवेमो॥"[८२६]

---

८२६ तिलोयपण्णत्ति, चतुर्थ महाधिकार

रविषेण ने भी इसी रूप मे तीर्थंकरो के उत्सेध का उल्लेख किया है—

"शतानि पञ्च चापाना प्रथमस्य महात्मनः।
उत्सेधो जिननाथस्य वपुष· परिकीर्तित.॥
पञ्चाशच्चापहान्यात. प्रत्येक परिकीर्तितम्।
शीतलात् प्राग् जिनेन्द्राणा नवतिः शीतलस्य च॥
ततो धर्मजिनात्पूर्व दशचापपरिक्षय।
प्रत्येक धर्मनाथस्य चत्वारिंशत्सपञ्चिका॥
तत. पार्श्वजिनात्पूर्वं प्रत्येक पञ्चभि क्षय.।
नवारत्निमित पार्श्वो महावीरो द्विवर्जित॥[८२७]

•

---

८२७ पद्म०, २०।११२-११५

नवम अध्याय

पद्मपुराण में संस्कृति

'सस्कृति वह प्रक्रिया है जिससे किसी देश के सर्वसाधारण का व्यक्तित्व निष्पन्न होता है। इस निष्पन्न व्यक्तित्व के द्वारा लोगो को जीवन और जगत् के प्रति एक अभिनव दृष्टिकोण मिलता है। कवि इस अभिनव दृष्टिकोण के साथ अपनी नैसर्गिक प्रतिभा का सामजस्य करके सास्कृतिक मान्यताओं का मूल्याकन करते हुए उनकी उपादेयता और हेयता प्रतिपादित करता है।[८२८] साहित्य और सस्कृति के निर्भेद्य सम्बन्ध का पोषण करते हुए डा० राजेन्द्रप्रसाद ने कहा है कि 'साहित्य की ओट मे कालविशेष की विशेषता छिपी रहती है।[८२९] जब हम किसी ग्रन्थ मे छिपी कालविशेष की इस विशेषता का अध्ययन करते है तो उसे उस ग्रन्थ का सास्कृतिक अध्ययन कहा जाता है। यहाँ हमे अपने आलोच्य ग्रन्थ का सास्कृतिक अध्ययन करना है जिसे हम इन शीर्षकों के माध्यम से प्रस्तुत करेंगे.—

राजनीतिक रहन-सहन: राज-दरबार, राजघरानो की परम्पराएँ, अन्त.पुरो की व्यवस्था, राजघरानो के उत्सव, आमोद-प्रमोद, राजवैभव, राज्य-व्यवस्था, राज्यापराध और दण्ड। **युद्ध :** कारण, स्वरूप, शस्त्रास्त्र, नियम, व्यवस्था आदि। **समाज-व्यवस्था एवं रहन-सहन :** वर्णाश्रम, जातियो के पारस्परिक सम्बन्ध, विवाह और यौन-नैतिकता, धार्मिक-सम्प्रदाय एव उनके आचार-विचार, पर्व, भोजन, वेशभूषा प्रस्थानकालिक मगल, शकुन-अपशकुन, जादू-टोने आदि। **आर्थिक और व्यावसायिक जीवन :** विविध व्यापार एव व्यवसाय। भवन-मदिर-मूर्ति-निर्माण-कला। **विविध कलाएँ :** यन्त्र विज्ञान। **भौगोलिक उल्लेख :** पर्वत, नदी, नगर, जनपथ, ग्राम, राष्ट्र आदि।

'पद्मपुराण' सप्तम श० ई० का ग्रन्थ है। सप्तम श० ई० मे ही बाण ने 'हर्षचरित' और 'कादम्बरी' लिखे थे। बाण के ग्रन्थ तत्कालीन सस्कृति के परम

---

८२८ रामजी उपाध्याय. प्राचीन भारतीय साहित्य की सास्कृतिक भूमिका, पृ० १।

८२९ डा० राजेन्द्रप्रसाद साहित्य, शिक्षा और सस्कृति की भूमिका, पृष्ठ ५।

परिचायक है। डा० वासुदेवशरण अग्रवाल के शब्दो मे 'वाणभट्ट का समय सातवी शती का पूर्वार्द्ध है। उस समय गुप्तकालीन सस्कृति पूर्ण रूप से विकसित हो चुकी थी। एक प्रकार से स्वर्णयुग की वह सस्कृति उत्तर गुप्तकाल मे अपनी सध्यावेला मे आ गयी थी और सातवी शती मे भी उसका वाह्य रूप भली-भाँति पुष्पित फलित और प्रतिमडित था। कला, धर्म, दर्शन, राजनीति, आचार-विचार आदि की दृष्टि से वाण के क्षधिकाग उल्लेख गुप्तकालीन सस्कृति पर भी प्रकाश डालते है।'[८३०] वाण के ग्रन्थो का 'पद्मपुराण' पर पर्याप्त प्रभाव है, अत उसका भी सास्कृतिक दृष्टि से प्राय उतना ही महत्त्व है। विशेप वात इतनी है कि जहाँ वाण के ग्रन्थो मे गुप्तकालीन ब्राह्मण सस्कृति प्रधानत वर्णित है वहाँ, 'पद्म-पुराण' मे जैन-सस्कृति। इस दृष्टि से 'पद्मपुराण' मे वर्णित सस्कृति को द्विधा विभक्त किया जा सकता है —कवि के मत से आदर्श सस्कृति—जैन-सस्कृति तथा यथार्थ सस्कृति—जैनेतर सस्कृति। विविध स्थलो पर जैन धर्म की मान्यताओ, परम्पराओ तथा कार्यकलापो के वर्णन से कवि ने 'जैन-सस्कृति' का परिचय दिया है और अनेक स्थलो पर पूर्वपक्ष के रूप मे जैनेतर सस्कृति का। सास्कृतिक महत्त्व की दृष्टि से 'पद्मपुराण' के वर्णन तथा उपाख्यान विशेपत दर्शनीय है। इन स्थलो के अध्ययन से तत्कालीन संस्कृति का विशद परिचय हमे मिल जाता है। यही एक वात कह देनी भी आवश्यक है कि 'पद्मपुराण' मे निवद्ध सस्कृति का विवेचन करते समय यह ध्यान रखना चाहिए कि इसकी 'तत्कालीनता' अभिधा-वृत्ति से ही सर्वत्र प्रतिपादित नही की जानी चाहिए। अनेक स्थलो पर वर्णित सस्कृति पौरा-णिक सस्कृति है जिसमे यथार्थता अत्यल्प है। साथ ही वहुत से ऐसे वर्णन है जिसमे परम्परा-निर्वाह मात्र किया गया है (उदाहरणार्थ युद्ध आदि के वर्णन)। ऐसे स्थलो की भी 'तत्कालीनता' याथार्थिक दृष्टिकोण से प्रतिज्ञात नही की जा सकती। तथापि 'पद्मपुराण' मे निवद्ध होने के कारण इन सवका भी विवेचन हमे करना है। हमे यह नही देखना कि रविषेण के काल मे क्या था, हमे यह देखना है कि 'पद्मपुराण' मे क्या है? रविषेण के काल की परिस्थितियो का विवेचन तृतीय अध्याय मे हो चुका है, यहाँ अन्त साक्ष्य के आधार पर 'पद्मपुराण' मे निवद्ध सस्कृति का विवेचन हमे करना है। 'पद्मपुराण' मे निवद्ध अयथार्थ वर्णनो से भी कुछ न कुछ निष्कर्ष निकलता अवश्य है, उदाहरणार्थ वारुणास्त्र आदि के वर्णनो से उनके प्रति विश्वास की भावना व्यक्त होती है। अस्तु, 'पद्म-पुराण' मे वर्णित सास्कृतिक सामग्री प्रस्तुत की जा रही है।

---

८३० हर्षचरित एक सास्कृतिक अध्ययन, पृ० ३।

राजनीतिक रहन-सहन : राजघरानों की परम्पराओ, उत्सवो, आमोद-प्रमोदो तथा वैभवादि के वर्णनो से यह ध्वनित होता है कि 'पद्मपुराण' मे वर्णित राजनीतिक रहन-सहन पर्याप्त उच्चस्तरीय है।

राजाओ मे वहुपत्नीत्व-प्रथा खूब प्रचलित थी, अन्त.पुर भरे रहते थे—ऐसा प्रतीत होता है। राजा श्रेणिक के अन्त पुर मे सहस्रो महिषियो का उल्लेख है।[८३१] राजाओ की दिनचर्या प्रात काल से रात्रि तक अत्यन्त व्यस्त थी। उनके शयनीय-गृह मे अत्यन्त शोभा होती थी। शय्या पर रत्न एवं पुष्प जडे होते थे।[८३२] शैय्या के पास बैठकर वेश्याएँ गान करती थी।[८३३] राजा स्त्रियो के द्वारा मगल किये जाने पर (स्वस्त्रीभि· कृतमगल.) शयनीय मे उठता था।[८३४] वन्दीजन तुरहीवादन एव मागलिक शब्द करते थे।[८३५] वेश्याएँ उसका जयकार करती थी।[८३६] जागकर राजा भद्रविष्टर (सिंहासन) पर कृतागोपतनुस्थिति एव सर्वालंकारसम्पन्न होकर बैठता था।[८३७] तनुस्थिति का प्रधान अग था—स्नान। गन्ध और उद्वर्तन के साथ स्नान का अनेक वार उल्लेख हुआ है।[८३८] राजाओ और युवराजो की स्नानविधि वडी उपचारपूर्ण थी। सुन्दर वनिताएँ उन्हे स्नान कराती थी। रत्न-जटित और स्वर्णनिर्मित चौकियो पर बैठकर वे स्नान करते थे। सौवर्ण और राजत कलशो से उनका अभिषेक किया जाता था। इन कलशों के मुख पर नव-पल्लव रखे रहते थे और ये हारो से सुशोभित रहते थे। इनमें सुवासित जल रहता था। कलशो मे एक या अथवा अनेक मुख होते थे। स्नान के समय गन्धलेपन और उद्वर्तन होता था एव कुलागनाएँ मंगलाचार करती थी। तूर्यनाद होता था। स्नानोपरात वस्त्राभूषण धारण किये जाते थे, राजकुमार गुरुजनो की वन्दना भी करते थे।[८३९]

प्रतीहारदत्तद्वार सामन्त प्रात काल आकर राजा को प्रणाम करते थे।[८४०] जब राजा किसी धार्मिक स्थान पर जाता था तो सामन्त उसके साथ चलते थे।[८४१] वह कुथा (झूल) से युक्त हाथी पर चढकर चलता था।[८४२] आगे-आगे पैदल

८३१ पद्मपुराण, २।३४
८३२ वही, २।२१९-२२०
८३३ वही, २।२२०
८३४ वही, २।२५३
८३५ वही, १०।५७
८३६ वही, २।२५६
८३७ वही, ३।१
८३८ वही, ३।१८५।७२।१२।१७ तथा ८३।१०७-१०८ आदि।
८३९ वही, ७।३५९-३६७। वाण ने भी कादम्बरी मे शूद्रक के स्नान का ऐसा ही वर्णन किया है।
८४०. वही, ३।२-४
८४१ वही, ३।५
८४२. वही, ३।३५

सिपाही भीड़ को हटाते चलते थे[८४३] तथा वन्दीजन सुभापित पढ़ते चलते थे।[८४४] किसी वडे मुनि के पास जाकर राजा हाथी से उतरकर पैदल ही जाता था और उनकी तीन प्रदक्षिणाएँ करके कृताजलि होकर उन्हें प्रणाम करता था।[८४५] हाथी से उतरना अपार शिष्टाचार का द्योतक था।[८४६] राजा आदि के सामने आकर तथा अनुग्रहकामना सूचित करने के लिए पृथ्वी पर घुटने टेकने तथा सिर पर अजलि रखने की प्रथा थी।[८४७] उच्च मुनियो तथा महर्षियो का राजकुलों मे विशेष आदर होता था।[८४८] राजा और रानियाँ मन्दिरो मे धार्मिक पूजा के लिए आज्ञा प्रसारित करते थे।[८४९]

राजकुलो मे अन्तःपुर की व्यवस्था के लिए कचुकी रखे जाते थे।[८५०] कन्याओ के अन्त पुरों मे द्वारपालियाँ भी रखी जाती थी।[८५१] रानियो की शय्याओ पर गल्लक (गद्दे), उपधान (तकिये) तथा चारो ओर सशस्त्र स्त्रियाँ पहरे के लिए खड़ी रहती थी।[८५२] शखो एव तूर्यो के मधुर शब्दो और चारणो की रम्य वाणी से रानियाँ जागती थी।[८५३] रानी की गर्भावस्था मे उसकी परिचर्या पर विशेष ध्यान दिया जाता था। इस परिचर्या की झलक रानी मरुदेवी की गर्भावस्था के वर्णन में मिलती है। परिचारिकाएँ रानी की स्तुति करती थी।[८५४] वीणा वजाकर उसका गुणगान करती थी,[८५५] उसे गीत सुनाती थी,[८५६] उसके पैर पलोटती थी,[८५७] कोई ताम्बूल देती थी कोई आसन,[८५८] कोई तलवार हाथ मे लेकर उसकी रक्षा करती थी,[८५९] कोई महल के भीतरी द्वार पर और कोई महल के बाहरी द्वार पर माला, सुवर्ण की छड़ी, दण्ड और तलवार आदि हथियार लेकर पहरा देती थी,[८६०] कोई चमर डोलती थी, कोई वस्त्र लाकर देती थी, कोई आभूषण लाकर उपस्थित करती थी,[८६१] कोई शय्या विछाने के कार्य मे रत रहती थी, कोई झाड़ू लगाती थी। कोई पुष्प विखेरने मे लीन रहती थी, कोई सुगन्धित द्रव्य का लेप करती थी, कोई भोजन-पान के कार्य मे व्यग्र रहती थी और कोई आह्वान-कर्म में लीन रहती

८४३ वही, ३।८
८४४ वही, ३।९
८४५. वही, ३।१३-१५
८४६ वही, ३६।८८
८४७ वही, २९।४२
८४८ वही, १०।१४२, २९।८७
८४९ वही, ६९।११
८५०. वही, २९।४१
८५१ वही, २८।८
८५२. वही, ७।१७२-१७३
८५३. वही, ७।१७
८५४ वही, ३।११४
८५५. वही, ३।११४
८५६ वही, ३।११५
८५७. वही, ३।११५
८५८. वही, ३।११६
८५९. वही, ३।११६
८६०. वही, ३।११७
८६१ वही, ३।११८

थी।[८६२] प्रमोद के अवसर पर राजा लोग भी नृत्य करते थे।[८६३]

'पद्मपुराण' के अनेक वर्णनो मे राजाओ के आमोद-प्रमोदो का भी परिचय मिल जाता है। राजा लोग रानियो के साथ प्रमदोद्यान मे क्रीडा और वापिकाओ में जलक्रीडा किया करते थे। प्रमदोद्यान में सरोवर, दोला (झूले) कृत्रिम क्रीडा-पर्वत (जिस पर सीढियाँ बनी होती थी) एव वृक्षो के झुरमुट बनाये जाते थे।[८६४] राजाओ के द्वारा रात्रि मे उत्तुग भवन के शिखर पर बैठकर चारुगोष्ठीसुधास्वाद ग्रहण करने का भी उल्लेख आया है।[८६५] इसके अतिरिक्त नृत्य, वाद्य एव सगीत द्वारा भी राजाओ का मनोविनोद होता था। वेश्या, नृत्यकार(लासक), वन्दीजन, गीतशास्त्रकौशलकोविद वार्तिक (पेशेवर कहानी सुनाने वाले), चारण तथा विटो का मनोरजन के साधन के रूप मे उल्लेख हुआ है।[८६६] पानगोष्ठी भी प्रचलित थी। स्त्रियाँ भी मदिरापान करती थी।[८६७]

'पद्मपुराण' के राजवैभव-वर्णनो से निष्कर्ष निकलता है कि खजाने, खान, गौएँ, हल, उत्तम हाथी, घोडे, अनेक वशवद राजा, अनेक सुन्दर स्त्रियाँ एव रत्न राजा के वैभव के प्रतीक थे।[८६८] अनेक यन्त्रो का भी उल्लेख हुआ है।[८६९] राज-भवनो को विविध रगो से सजाया जाता था। सम्पन्न महलों तथा भवनो मे हाथी-घोडे आदि रखे जाते थे। विमान, उज्ज्वल छत्र, चामर आदि राजाओ की विभूति के परिचायक थे। वीणा-तूर्य, बाँसुरी और शख आदि के मागलिक शब्द राज-भवनो मे होते रहते थे।[८७०] राजभवनो में अनेक द्वार तथा गोपुर होते थे। विभिन्न भवनो तथा शालाओ के नाम अलग-अलग रखे जाते थे। कोट और सभाएँ होती थी। प्रेक्षागृहो, कार्यालयो एव गर्भगृहो का व्यवस्थित रूप से निर्माण होता था। रानियो के महलो की पक्तियाँ एक तरफ होती थी। सुसज्जित शय्यागृह होते थे। अनर्घ्य वस्त्र, दिव्य आभूषण, दुर्भेद्य कवच, आभूपण तथा शस्त्रास्त्र, ऊँचे कोट, वाहन, मणिमय फर्शो, छज्जो, खम्भो तथा स्नानभूमि आदि से समन्वित, क्षुद्र-घण्टिका-रेशमी वस्त्र-पट्टलम्बूष (फन्नूस)-चामर-उत्तमोत्तमप्राकार-तोरण-गोपुरादि से अलकृत अनेक मजिलो वाले ससगीत विशाल प्रासाद राजाओ के वैभव मे परिगणित थे।[८७१] ग्रीष्म-वर्षा और शीत मे ऋतु के अनुसार राजाओ का

---

८६२ वही, ३।११९-१२०
८६३ वही, ३८।३१५
८६४. वही, ५।२९७-३०४, ६।२२७-३१
८६५ वही, ६।३३५-१३६
८६६. वही, २।३९-४३
८६७. वही, २।३८
८६८ वही. ४।६१।६६
८६९. वही, ८।२५८-२५९
८७० वही, ८।५११-५१८।
८७१ वही, ८३।४-१४, १०२।११८, ११०।६३-६७, ११२।४४-४८

वैभव-विलास होता था। गर्मियो मे वे चन्दन का लेप लगवाते थे, जलयन्त्रो (फव्वारो) मे स्नान करते थे, ठण्डे उपवनो, चामर, जलकणो से युक्त पखो, स्फटिक की स्वच्छ मणियो, इलायची, लौग, कर्पूरचूर्ण युक्त शीतल स्वादिष्ट मनोहर जल एव कथासक्त स्त्रियो का सेवन करतेथे।[८७२] वर्षा मे वे उत्तम महलो एव महाविलासिनी स्त्रियो का सेवन करते थे।[८७३] शीतकाल मे तरुणी-स्तनो का सेवन करके वे शीतापनोदन करते थे।[८७४]

राजव्यवस्था और राजा के कर्त्तव्य का भी परिचय 'पद्मपुराण' हमे देता है। राजा सभी भीषित, दरिद्र और दु खियो का शरण समझा जाता था एवं उनका कष्ट दूर करना उसका कर्त्तव्य था।[८७५] इसके लिए वह अन्याय का दमन तथा न्याय की उन्नति करके राज्य व्यवस्था को सुदृढ करता था। अनेक सामन्तो, गुप्तचरो, लेखवाहक दूतः तथा अन्य प्रशासको तथा नौकरो के द्वारा वह राज्य की स्थिति से अवगत होता रहता था तथा व्यवहार-निर्णय किया करता था।[८७६] अत्यन्त गोपनीय समाचारो को वह बिल्कुल एकान्त मे सुनता था।[८७७]

राज्यापराध और दण्ड का भी 'पद्मपुराण' परिचय देता है। उपद्रव, लूट, राजद्रोह, विषदान, हत्या, षड्यन्त्र तथा और भी अनेक अपराध राजनीतिक क्षेत्र मे होते थे एव उनके कर्ताओ को कठोर दण्ड दिया जाता था।[८७८] कन्या, वेश्या तथा रत्नादि को लूट मे झपटा जा सकता था।[८७९] नगर का ध्वस करना, बाग उजाडना, रक्षको को विह्वल करना, प्याऊ आदि नष्ट करना, अन्त पुर मे उपद्रव करना, रात्रि मे वीरो की हत्या, हाथी-घोडो की चोरी आदि राज्यापराध पद्म-पुराण मे उल्लिखित है।[८८०] अपराधी को साँकलो मे बाँधकर नगी तलवार के पहरे मे लाया जाता था।[८८१] उसे नगर मे भी घुमाया जा सकता था जहाँ कि जनता उसे धिक्कारती थी।[८८२] अपराधी के गर्दन, हाथ तथा पैरो को साँकलो मे जकडा जाता था, उस पर धूल फेकी जाती थी। राजदण्ड मे, अपराधी को तलवार से दो टुकड़े करा देना, मुद्गरो की मार से प्राण घुटाकर मरवा देना, लकडियो के

---

८७२. वही, ११२।३-८ ८७३. वही, ११२।१०-१२

८७४. वही, ११२।१३-१८ ८७५ वही, २६।२२

८७६ वही, ६।५३८, १२।७९-८१, १०।२०-२२

८७७. वही, १२।११८-११९

८७८. वही, ५।१०५, ८।१६१-१६३, ८।४४२, १०।१५८-१६१, २७।८१-८५, ५३।२५०-२५१, ५३।२५७-२६१, ५३।२२१-२२६, ५३।२४१ ७२।५२-७७, ७२।७१-७६, १०६।२७-३४।

८७९ वही, ८।१६२।

८८०. वही, ३७।८१-८५ ८८१. वही. १०।१५८ ८८२. वही. ५३।२१९-२२१

शिकजे मे कसकर अत्यन्त तीक्ष्ण धार वाली करोत से चिरवा देना एव अन्यान्य शस्त्रों से चूर-चूर करा देना, पानी मे विप मिलवाकर पिलवा देना आदि आते थे।[८८३] राहजनी और जगलो में रहकर आभूषण आदि लूटना भी राज्य-अपराध थे।[८८४]

युद्ध के विषय मे प्रभूत सूचनाएँ पद्मपुराण मे मिलती है। युद्ध का प्रधान कारण दिग्विजय की भावना थी। राजा अपनी सर्वोच्चता का परिचय देने के लिए नरसंहारकारी दिग्विजय का आयोजन करते थे। दिग्विजय ही नवाभिषिक्त राजा के प्रतापारोपण का एकमात्र साधन था। युद्ध का कारण स्वयंवर मे कन्या द्वारा किसी राजा को वरा जाना भी था। चुने गये राजा को प्रतिपक्षी ललकारते थे और दोनो की सेनाओ मे युद्ध हो जाता था।[८८५] कन्याओ का हरण आम बात थी।[८८६] इसे वश के लिए अपमान समझा जाता था और कन्यापक्षीय व्यक्ति अपहरणकर्त्ता को मारने तक के लिए तैयार हो जाते थे।[८८७] यदि अपहृत कन्या को अपहर्त्ता से छुड़ा लिया जाता था तो उसका विवाह करने को सुविधा से कोई तैयार नही होता था और उसे आजीवन विधवा के समान भी रहना पड़ सकता था।[८८८]

बलवान राजा दूसरे राजाओ को झुकाने के लिए पहले दूत-प्रेषण करता था। दूत अपने राजा की बडाई करता हुआ दूसरे राजा को पहले नीति से समझाता था और फिर राजा को पाखण्ड-भरे अपमानजनक वाक्य भी कह देता था।[८८९] दूत को मारना, नीति-विरुद्ध समझा जाता था किन्तु उसका तिरस्कार खूब किया जा सकता था।[८९०] दूत के साथ सेना भी चल सकनी थी।[८९१] दूत अपने सैनिको को डेरे के बाहर ही ठहराकर द्वारपाल के द्वारा राजा की अनुज्ञा पाकर कुछ आप्तजनो के साथ भीतर पहुँचता था जहाँ कि वह शिष्टतापूर्वक सन्ध्यादि का प्रस्ताव राजा के सम्मुख रखता था।[८९२] दूत की कभी-कभी दुर्गति भी हो जाती थी। स्वामी के प्रधान सामन्त की आज्ञा से क्रुद्ध भट्ट दूत के पैर पकड़कर उसे घसीटते थे तथा नगरी के मध्य तक घसीटकर उसे छोड देते थे जहाँ से वह धूलि-धूसरित होकर भाग जाता था।[८९३] दूत की दुर्गति देखकर उसका स्वामी राजा कुपित होकर प्रतिपक्षी से प्रतिशोध लेने के लिए सन्नद्ध हो सकता था।[८९४]

८८३ वही, ७२।७३-७६
८८४ वही, ९८।१३
८८५. वही, ६।६२७-४३३
८८६. वही, ९।१५-१६
८८७ वही, ९।२९
८८८ वही, ९।३६।
८८९ वही, ९।१५-६५
८९०. वही, ९।६८, ६६।५१-५९
८९१ वही, ६६।१७
८९२ वही, ६६।२०-३२
८९३ वही, २७।३७-४८
८९४ वही, २७।५३-५४

रण के विषय मे राजा अपने लोगो से सलाह लेता था।[८९५] युद्ध की तैयारी के लिए रणभेरी, तूर्य एव शख बजाये जाते थे जिससे योद्धा तैयार होकर राजा के सम्मुख आ जाते थे।[८९६] मित्र राजा युद्ध के लिए आते थे एव राजा उनका अस्त्र, वाहन तथा कवच आदि से सत्कार करता था।[८९७]

युद्ध-यात्रा बडे जोर-शोर से होती थी।[८९८] बडे-बड़े राजाओ के पास चतुरगिणी सेना होती थी।[८९९] लवणाकुश की अयोध्या पर चढाई के वर्णन से ज्ञात होता है कि युद्ध-यात्रा के मार्ग को साफ करने के लिए अनेक पुरुष बडे-बडे कुल्हाड़े तथा कुदाल लेकर चलते थे। उनसे वे वृक्ष आदि को काटते जाते थे तथा उच्चावच भूमि को समतल करते थे। सेना मे सबसे पहले खजाने के भार को धारण करने वाले भैसे, ऊँट तथा बडे-बडे बैल चलते थे, फिर गाडियो के सेवक चलते थे, तदनन्तर पैदल सैनिको के समूह और उनके बाद घोड़े चलते थे। उनके पीछे चतुर हाथी, घुडसवार एव सशस्त्र पदाति चलते थे। सेना मे सभी के लिए शयन, आसन, ताम्बूल, गन्ध, माल्य, वस्त्र, आहार, विलेपनादि का प्रबन्ध रहता था। राजा की आज्ञा (राजवाक्य) से मार्ग मे स्थान-स्थान पर नियुक्त पुरुष समस्त युद्ध यात्रियो के लिए मधु, शीधु, घृत, जल तथा विविध रसवत् व्यजन प्रस्तुत करते थे। यात्रा मे सजी हुई स्त्रियाँ भी चलती थी। प्राय नदी के किनारे पडाव डाल दिया जाता था।[९००]

युद्ध-यात्रा मे विविध वादित्र, घोडो की हिन-हिनाहट, गजो की गर्जना, पदातियो को बुलाने के शब्द (आकारित), योद्धाओ के सिहनाद, वन्दियों के जय शब्द एव कुशीलवो के गीत हलचल किये रहते थे।[९०१]

आगत शत्रु का आक्रमण होने पर प्रतिपक्षी राजा आयुधशाला (सन्नाह-मण्डप) मे जाकर युद्ध की तैयारी के लिये तूर्य बजवाता था, वहाँ हाथी तैयार होते थे, घोडो पर पलान कसे जाते थे, तलवार, कवच, धनुष, शिरस्त्राण, अर्धवाहुलिका, सायकपुत्रिका आदि से सैनिक लैस होते थे।[९०२] वे असि, तोमर, पाश, ध्वज, छत्र, शरासनो, अर्धबाहुलिका, अर्धसन्नाह, सन्नाहकण्ठसूत्र, शिरस्त्राण आदि से युक्त होकर और किरीट एव सिर पर माणिक्य-शकल आदि धारण करके युद्ध के लिए सन्नद्ध हो जाते थे।[९०३] युद्ध के आरम्भ मे सेनाओ मे योद्धाओ को

---

८९५ वही, ५५।२
८९६ वही, ५५।३-५
८९७ वही, ५५।८३-८९
८९८. वही, १०।३५-५१
८९९ वही, ८।४६७-४६८
९०० वही, १०२।९०-१२२
९०१ वही, ७३।१७५-१७६
९०२ वही, १२।१८१-१८४
९०३ वही, १२।१८८, ४४।५६, १०।११६, ५७।३०, ५७।३२, ५७।३३

उत्तेजित करने के लिए शख, तूर्य, भम्मा, भेरी, मृदग, लम्पाक, घुन्धु, मंडुक, झम्ला, अम्लातक, हक्का, हुकार, दुन्दुकाणक, झर्झर, हेकगुजा, काहल और दर्दुर आदि वजाकर तुमुल-नाद किया जाता था।[९०४]

तूर्यनाद के सकेन पर आक्रमण करने वाली सेना पहले शत्रु-सेना का 'मुख-भग' करती थी।[९०५] इस पर दूसरी सेना बचाव के लिए अपनी सर्वाधिक शक्ति मुख पर ही लगाती थी। सेना की मुख-रक्षा दोनो सेनाओ का साध्य होता था।[९०६] युद्ध मे प्रयुक्त होने वाले अनेक शस्त्रास्त्रो का उल्लेख मिलता है। असि, प्रास, कनक, भिण्डीमाल, अर्धचन्द्राकार वाण, गदा, शक्ति, कुन्त, मुसल, शर, परिघ, चक्र, करवाली, अहिप, शूल, पास, भुशुण्डी, कुठार, मुद्गर, घन, ग्रावा, लांगल, दण्ड, कौण, सायक, वेणु, शिलीमुख, परशु, शतघ्नी, उल्का, लागूल, शिला, यष्टि, आर्ष्टि (वज्र) और पाँच प्रकार के शस्त्र आदि का युद्ध मे खुलकर प्रयोग होता था।[९०७] विभिन्न दिव्यास्त्रो का भी उल्लेख मिलता है यथा—आग्नेयास्त्र,[९०८] वारुणास्त्र,[९०९] तामसास्त्र[९१०] प्रभास्त्र[९११] नागास्त्र,[९१२] गरुडास्त्र[९१३] आदि। निद्रा[९१४] एवं प्रतिवोधिनी[९१५] विद्याओ के प्रयोग का भी उल्लेख है। पर यह पौराणिक प्रभाव प्रतीत होता है।

वीर परस्पर ध्वजा-छेद, धनुर्भंग एव कवच-विदारण करते थे। योद्धा एक कवच छिन्न हो जाने पर दूसरा तत्काल पहन लेते थे।[९१६] घनघोर युद्ध मे सेना के चारो अंगो का परस्पर घात-प्रतिघात होता था।[९१७] शस्त्र लिये ही मर जाना सम्मान की वात थी।[९१८] शस्त्र के गिर जाने पर घूँसो से भी शत्रु को मारा जा सकता था।[९१९] शत्रु को पीठ दिखाना वुरा माना जाता था।[९२०] न्याय-संग्राम-तत्पर योद्धा त्यक्त-युद्ध प्रतिपक्षी को देखकर अपना भी शस्त्र छोड देता था।[९२१] योग्य शत्रु के साथ युद्ध करना शोभनीय था। पुत्र के रहते पिता का युद्ध करना

---

९०४ वही, ५८।२६-२८
९०५ वही, १२।१९४
९०६ वही, १२।१९७-१९९
९०७ वही, १०।११२, १२।१३४, १२।२३६, १२।२१२, १२।२५७-२५८, ५०।३२, ५०।३७, ५२।४०, ६२।७, ७३।१७४
९०८ वही, १२।३२४
९०९ वही, १२।३२५
९१० वही, १२।३२८
९११ वही, १२।२३०
९१२ वही, १२।३३२
९१३ वही, १२।३३६
९१४ वही, ६०।६०
९१५ वही, ६०।६२
९१६ वही, ३३।३५
९१७ वही, ३२।२६४-२६५
९१८ वही, १२।२७७
९१९ वही, १२।२७९
९२०. वही, १२।२८२
९२१ वही, १२।२९०
९२२ वही, १२।२३१

पुत्र के लिए लज्जाजनक था।[९२३] मानी राजा असमान सामन्तो पर प्रहार नही करते थे।[९२४]

अधिक सकट आने पर हाथी पर चढकर युद्ध किया जाता था।[९२५] हाथी पर युद्ध करते समय प्रवल राजा दूसरे राजा के हाथी पर पैर रखकर महावत को नीचे गिराकर उसे बाँधकर भी पकड सकता था।[९२६] जीवित प्रतिपक्षी को पकड लेना चातुर्य और वीरता का द्योतक था।[९२७] योद्धा एक-दूसरे को वातो से नीचा दिखाते थे,[९२८] बाणो से कवचच्छेद, छत्रपात, धनुषछेद, रथाश्वो का वध, शक्ति-छेद[९२९] आदि करते थे। रथ पर उछलकर प्रतिपक्षी को पकडा भी जा सकता था।[९३०] वाहन के साथ योद्धा का छेद करना वीरता का प्रतीक था।[९३१]

युद्ध के समय कभी-कभी सामन्त अवसर देखकर बिना प्रधान राजा की आज्ञा के भी (अनापृच्छ) लाभकारी युद्ध कर बैठते थे।[९३२] ऐसे अवसर पर बिना आज्ञा के युद्ध करना भी ठीक ही समझा जाता था। मध्य रात्रि मे भी भयकर युद्ध हो सकता था।[९३३] रण-सज्जा के लिए रात या दिन कभी भी रणभेरी बज सकती थी।[९३४] स्त्रियो के युद्ध करने तथा बाण से प्रतिपक्षी के पास सन्देश-प्रेषण का भी उल्लेख हुआ है।[९३५] दृष्टि-युद्ध, जल-युद्ध एव बाहु-युद्ध की भी चर्चा है।[९३६]

कवच और शस्त्र का त्याग युद्ध-विराम का द्योतक था।[९३७] शत्रु-सेना के नायक को मारकर शखनाद किया जाता था और नायक के मरने पर सेना प्राय. भाग जाती थी।[९३८] भागी हुई सेना को कोई नायक तुरन्त सँभालकर उत्साहित कर सकता था।[९३९] स्वामिभक्ति से प्रेरित होकर सैनिक अत्यधिक युद्ध करते थे।[९४०] चूँकि नायक-रहित सेना मे लडने की हिम्मत नही रहती थी अत नायक-रक्षा पर विशेष वल दिया जाता था।[९४१] सेना के क्षय हो जाने पर राजा स्वय आकर लडता था।[९४२]

प्रतीत होता है कि शत्रु की प्रार्थना पर कुछ देर के लिए युद्ध-विराम भी हो

---

९२३ वही, १२।२२३-२५५
९२४ वही, १२।३०६
९२५ वही, ६०।६९
९२६ वही, ८।४५१
९२७ वही, ८।४५१
९२८ वही, ५०।२९
९२९ वही, ४६।१२५, ५२।३८, ५०।१८, ५०।१९, ५२।२९
९३० वही, ५०।३५-३६
९३१ वही, ४४।५८
९३२ वही, ५७।४४
९३३ वही, ८।४४४
९३४ वही, ६५।८
९३५ वही, ५२।३१, ५८
९३६ वही, ४।७१, ७२
९३७ वही, १०३।४४
९३८ वही, १२।२४२
९३९ वही, १२।२४३-२४४
९४० वही, १२।२५६
९४१ वही, ६०।१११-११५
९४२ वही, ८।४४६, १०।११५

सकता था।[९४३]

सेना के नायक को गृहीत कर लेने पर प्राय सेना को ध्वस्त नही किया जाता था।[९४४] गृहीतनायक सेना प्राय विशीर्ण हो जाती थी।[९४५] सामन्तो की स्थिति पूर्ववत् भी रह सकती थी।[९४६] मूर्छित प्रधान योद्धाओ को कैद कर लिया जाता था।[९४७] जीवित शत्रुओं को पकडकर बाँध लिया जाता था और अपने डेरे पर लाया जाता था।[९४८] वन्दी राजा को विजयी राजा के सामने नगी तलवार के पहरे में लाया जाता था।[९४९] वन्दी राजा को कभी-कभी किसी महापुरुष की प्रार्थना पत्र छोडा भी जा सकता था एव उसका सम्मान भी किया जा सकता था।[९५०] वन्दी योद्धाओ को मारा भी जा सकता था।[९५१] दूसरे द्वीपो के राजाओ को जीतकर उन्हे वही का अधिकारी भी वना दिया जाता था।[९५२] दिग्विजयी राजा को विजित राजा भेंट ले-लेकर तथा हाथो को जोड़कर तथा उन्हे मस्तक से लगाकर नमस्कार करते थे।[९५३] दिग्विजय बहुत वड़ी वीरता की द्योतक थी।[९५४] 'पराभिभवमात्रेण क्षत्रियाणा कृतार्थता' की भावना को ऊँचा स्थान प्राप्त था।[९५५]

विजयी राजा वड़ी शान से अपनी राजधानी को लौटता था जहाँ उसका परम स्वागत होता था।[९५६] उसका पटह, शख, झर्झर एव वन्दीजनो के जयनाद द्वारा अभिनन्दन होता था।[९५७]

आदर्श युद्ध मे पीडितो की सहायता का उल्लेख इस प्रकार आया है —

'युद्ध की यह विधि है कि दोनो पक्षो के खेद-खिन्न तथा महाप्यास से पीडित मनुष्यो के लिए मधुर तथा शीतल जल दिया जाता है, क्षुधा से दु खी मनुष्यो के लिए अमृत-तुल्य भोजन दिया जाता है, पसीने से युक्त मनुष्यो के लिए आह्लाद का कारण गोशीर्षचन्दन दिया जाता है, तालवृक्ष आदि से हवा की जाती है। वर्फ के जल के छीटे दिये जाते है। इनके अतिरिक्त जो कार्य आवश्यक होता है उसकी पूर्ति भी समीपस्थ लोग तत्परता से करते है। युद्ध की यह विधि जिस प्रकार अपने पक्ष के लोगो के लिए है उसी प्रकार दूसरे पक्ष के लोगो के लिए भी। युद्ध मे निज और पर का भेद नही होता। ऐसा करने से ही कर्त्तव्य की समग्र सिद्धि

---

९४३ वही, ६२।६४-९५
९४४ वही, १२।३५०
९४५ वही, १२।३५४
९४६ वही, १२।३५१
९४७ वही, ६०।११२
९४८ वही, १०।१३०-१३२
९४९ वही, १०।१५८
९५० वही, १०।१५६-१६१, १३।१-२२
९५१ वही, ६६।६
९५२ वही, १०।२०
९५३ वही, १०।२४-२५
९५४ वही, १०।१९
९५५ वही, १०।१४७
९५६ वही, १२।३५७-३७४
९५७ वही, १२।३५५

होती है।[९५८] मूर्छित हो जाने पर वस्त्र के छोर से हवा करने, उसे आत्मीय जनो के द्वारा सुरक्षित स्थान पर ले जाकर चन्दन-मिश्रित शीतल जल से उसकी मूर्च्छा दूर करने तथा घायलो के घाव ठीक करने का भी विधान था।[९५९] युद्धभूमि मे घायल सेनानायक की चिकित्सा के लिए विशिष्ट शिविर बनाया जाता था। लक्ष्मण-शक्ति के प्रसग मे सप्तकक्षाट्टसम्पन्न विशिष्ट शिविर का उल्लेख हुआ है जहाँ पर कठोर पहरा लगा हुआ था।[९६०]

पराङ्मुख क्लीवसम शत्रु को मारना वीरता का द्योतक नही था।[९६१]

कपोत, शुक, काम्बोज, मकन आदि म्लेच्छो के आर्य देश पर आक्रमण का भी उल्लेख मिलता है। वे युद्ध करने मे बहुत बर्बर थे। वे कारुण्य-विवर्जित होकर बडे वेग से टिड्डियो के समान आक्रमण करते थे।[९६२] वे आदिदेश मे उपद्रव करते थे।[९६३] युयुत्सु म्लेच्छो की वेषभूषा एव स्वभाव का उल्लेख इस प्रकार हुआ है.—वे चापासिचक्रबहुल, कृतसघातपक्ति, रक्तवस्त्रशिरस्त्राण, बर्बर-धारी, असिधेनुकर, क्रूर, नानावर्णागधारी, भिन्नाजनच्छाय, शुष्कपत्रत्विष, कटि-सूत्रमणिप्राय, पत्रचीवरधारी, नानाधातुविलिप्तांग, मजरीकृतशेखर वराटकाभ-दशन, विशालपिठरोदर, भीषणायुधपाणि, पीनजघाभुजस्कन्ध, निर्दय, पशुमास-भक्षी, प्राणिवधोद्यत, सहसारम्भकारी, वराहमहिषव्याघ्रवृककाकारिकेतु, नानायान-च्छदच्छत्र होते थे।[९६४] अर्धबर्बरक दुष्ट म्लेच्छो के द्वारा धन, धान्य, गौ, भैस, एव रत्नादिपूर्ण नगरी का लुण्ठन, प्रजापीडन एव धर्मध्वस का भी सकेत मिलता है।[९६५] युद्ध के समय धन और रत्नादि के साथ स्त्रियो को लूटना नैतिकता की दृष्टि से नही देखा जाता था।[९६६]

लका के उपद्रव के समय यक्षेन्द्रो का सुग्रीव की खुशामद एव स्वर्ण से अर्घ-दान प्राप्त कर प्रसन्न होना और उपद्रव करने की अनुमति देना इस बात का द्योतक है कि कुछ राज्याधिकारी इस प्रकार चाटुकारिता एव उत्कोच के लोभ से विद्रोहियो की सहायता भी कर देते होगे।[९६७]

समाजव्यवस्था एवं रहन-सहन का भी पद्मपुराण पर्याप्त परिचय देता है पद्मपुराण मे चार वर्णो—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र—का उल्लेख आत

---

९५८ वही, ७५।१-४
९५९. वही, ८।४८७, ४५३, ४४९
९६० वही, ६३।२८-३९
९६१ वही, २७।८६
९६२ वही, २७।१०-११
९६३ वही, २७।१२-२२
९६४. वही, २७।६७-७३
९६५. वही, २७।१२७-१२८
९६६ वही, १९।७०-९१
९६७ वही, पर्व ७०।

है। क्षत्रियो का कार्य क्षतत्राण था, वाणिज्य-कृषि-गोरक्षा आदि करना वैश्यों का कार्य था और नीचकर्म करना शूद्रों का कार्य था।[९६८] जैनी लोग ब्राह्मणो के विरोधी थे, सम्भवत इसीलिए उनकी निन्दा करते थे। उनके यज्ञादि कर्म जैनमतावलम्बियो के लिए गर्हित थे।[९६९] प्रतीत होता है कि ब्राह्मणो का फिर भी समाज मे वोल-वाला था और प्रजा प्राय. उनकी अनुगामिनी थी। इससे जैनियो को वडी कुढन थी।[९७०] जैन धर्मानुयायियो के अनुसार ये ब्राह्मण पाखण्डी माने जाते थे। उनके लिए ये मदोद्धत, प्राणिहिसक, महाकपायसयुक्त, पापक्रियोद्यत, हिंसाभाषण-तत्पर वेदसज्ञक कुग्रन्थ को अकर्तृक वताकर प्रजा को वरगलाने वाले, महारम्भ-ससक्त, प्रतिग्रहपरायण, जिनभापित शासन की निन्दा करने वाले, निर्ग्रन्थमुनि को आगे देखकर क्रोध करने वाले तथा लोक के उपद्रव के लिए विपवृक्षाकुर-से थे।[९७१] ब्राह्मण राजाओ के पुरोहित होते थे।[९७२] हितकर वैश्य की कथा से पुरोहितो के छिप कर अकार्य करने का सकेत भी मिलता है।[९७३] ब्राह्मण चोरी आदि भी कर लेते होगे। चोर ब्राह्मण को तिरस्कृत कर नगर से वाहर निकाल दिया जाता था। श्रीवर्द्धन ने वह्निशिख द्विज को नियमदत्त के धन की चोरी करने पर खलीकारपूर्वक नगर से निर्वासित किया था। जैनियों की खिल्ली भी खूव उडा दी जाती थी। अन्तिक ग्राम से गुजरते हुए चतुर्विध सघ की एक कुम्भकार को छोडकर सभी ने मजाक वनाई थी।[९७४] कुछ ब्राह्मण अत्यन्त क्रोधी और स्वय को उत्कृष्ट मानने वाले होते थे। वे हाथ मे कमण्डलु, सिर पर वडी चोटी, लम्बी चौडी दाढी और कन्धे पर यज्ञोपवीत धारण करते थे। उनके उछवृत्ति से जीविकायापन करने की भी चर्चा हुई है।[९७५] क्षत्रिय राजा होते थे तथा सैनिक होते थे। धन कमाने की इच्छा से वणिको की पोत द्वारा देशान्तर की यात्रा का उल्लेख हुआ है।[९७६] वणिक् नख-श्मश्रु और जटा रखते थे।[९७७] समाज मे दास-वृत्ति भी विद्यमान थी।[९७८] दासो को जिनमन्दिरो में भी नियुक्त किया जा सकता था।[९७९] सैरिक (हलवाहक) का काम भी ये करते थे।[९८०] म्लेच्छ लोग बैल का

---

९६८. वही, ३।२५६-९५८
९६९ वही, ४।११६-१२०
९७०. वही, ५।२१९-२२०
९७१ वही, ५।२१९
९७२. वही, ५।३९
९७३ वही, ५।३९-४०
९७४ वही, ५।२८६-२८७
९७५ वही, ३५।११-१५
९७६. वही, ५।९६-९९
९७७ वही, ५।१०६
९७८ वही, ५।१२२
९७९ वही, ५।१२३
९८० वही, ५।१२५।

मास भी खाते थे।[९८१] म्लेच्छ लोग अत्यन्तवर्वर और दारुणकर्मा होते थे। स्त्रियों पर अत्याचार करने मे वे परम पटु थे।[९८२] समाज में अनेक जातियाँ थी।

विवाह के विषय में, पद्मपुराण हमे वताता है कि विवाह के लिए वर के उत्तम अभिजन, सम्पन्नता एव सौरूप्य को देखा जाता था।[९८३] वित्तवान् विनयोपेत, कान्त तथा सर्वकलान्वित वर प्रशस्य समझा जाता था।[९८४] यदि स्वय कन्या ही किसी वर को पसन्द कर लेती थी तो उसके बीच मे रोडा अटकाना ठीक नही समझा जाता था।[९८५] विवाह की वेदी के पास चित्र रचना होती थी। अमरप्रभ के विवाह मे विवाह-वेदी के पास अनेक चित्र वनाये गये थे।[९८६] मामा-फूफी के लड़के-लडकियो मे परस्पर विवाह की प्रथा का भी उल्लेख है।[९८७] विवाह मे दान-दहेज खूव दिया जाता था।[९८८]

जहाँ तक यौन-नैतिकता का प्रश्न है—समाज मे वासना वडी प्रचण्ड-सी प्रतीत होती है। सम्भोग करने के लिए नर-नारी अधिक वन्धनो को स्वीकार नही करते थे। वेश्या-सेवन, द्यूत और सुरापान समाज मे प्रचलित थे।[९८९] स्त्रियो का हरण आम वात थी।[९९०] नैतिक दृष्टि से परपुरुष और परनारी का परिहार ही श्लाघ्य था।[९९१] दूसरे की स्त्री के स्तनो का स्पर्श अत्यन्त खतरनाक समझा जाता था।[९९२] अज्ञात रूप से गर्भ-धारण करने पर स्त्री को परिवार के सदस्य घर मे नही रखना चाहते थे। ऐसी स्त्री के निर्वासित होने के उदाहरण मिलते हैं।[९९३] अजना के सास-श्वसुर ने उसे अज्ञात रूप से गर्भवती जानकर घर से वाहर निकाल दिया था।[९९४] इसी से यह भी व्यक्त होता है कि घर मे सास-श्वसुर की उपस्थिति मे वहू के साथ उसका पति सम्भोग करने के लिए स्वतत्र नही था। वह चोरी से अवसर पाकर उसके साथ सम्भोग कर लेता था और इस सम्भोग को प्रकाशित करने मे लज्जा का अनुभव करता होगा। इसी गोपन का यह परिणाम होता था कि वधू को कलकित मानकर निराकृत कर दिया जाता था। ऐसी विवश वधुएँ पिता के घर की राह लेती थी किन्तु समाज के भय से अपना कुलाभिमान के कारण उनके पिता भी प्राय. उन्हे दुत्कार देते थे। अजना को इसी प्रकार दुत्कार दिया गया था। राजघरानो मे धार्मिक सन्यासियो के गुप्त

९८१ वही, ५।११९
९८२ वही, ७।२९१-३०३
९८३. वही, ६।११
९८४ वही, ६।४१
९८५ वही, ६।७०, ६६।९१-७४
९८६ वही, ६।१६३-११६
९८७ वही, ८।३७३, ६५।३१
९८८ वही, ३८।९-१०
९८९ वही, ५।९०-१०१
९९० वही, ८७।२७२
९९१ वपी, ५३।१४६-१४७
९९२. वही, ४५।१७
९९३ वही, ४८।४५

यौन-सम्बन्ध के भी उदाहरण मिलते है।[९९५] मित्र की पत्नी में आसक्ति के भी उल्लेख हैं।[९९६] एक ही कन्या के एकाधिक प्रेमियो के कलह के भी उदाहरण कम नही है।[९९७] परपुरुषो से छिप कर मिलना भी प्रचलित था।[९९८] तपोवन की नारियाँ भी कामावेग मे आ जाती थी।[९९९] स्त्रियो के कारण कामुक बडे से बडा साहस कर सकते थे।[१०००] कन्याओ का हरण होता तो खूव था किन्तु माना जाता था यह अपराध ही।[१००१]

समाज मे नारी का स्थान उदात्त और निकृष्ट दोनो ही प्रकार का मान्य था। कुछ लोग उसे ऊँचा स्थान देते थे और दूसरे उसे नरक का द्वार मानते थे।[१००२]

पद्मपुराण से धर्म एवं धार्मिक सम्प्रदायो का भी परिचय मिल जाता है।[१००३] ब्राह्मण, जैन एव बुद्धमत पद्मपुराणकालीन प्रधान धर्म थे।[१००४] ब्राह्मण-जैन-विरोध पर्याप्त मात्रा मे था।[१००५] ब्राह्मण यज्ञ पर वल देते थे और जैनी उसका विरोध करते थे।[१००६] जनमतानुयायी जिनविम्वनमस्कार, विविधव्रतो का धारण तथा फाल्गुन शुक्लपक्ष एव आषाढ शुक्लपक्ष मे आष्टाह्लिक उत्सव आदि का समारोह करते थे।

पद्मपुराण मे ये पौराणिक उल्लेख आये है—हरि का वृषाघात, पिनाकी का दक्ष-वर्ग-शाप, इन्द्र का गोत्र-भेद, भरत की कथा, सगर की कथा आदि।[१००७] इनसे यह सिद्ध होता हैं कि ये कथाएँ समाज मे प्रसिद्ध थी।

'पद्मपुराण मे जैन पर्वो एवं उत्सवों का भी उल्लेख हुआ है। आषाढ शुक्ल अष्टमी से आष्टाह्लिक महापर्व एव फाल्गुन मास के शुक्लपक्ष की अष्टमी से लेकर पौर्णमासी तक नन्दीश्वर आष्टाह्लिक महोत्सव का उल्लेख हुआ है। इन पर्वो को जैन समाज मे वडी भक्ति से मनाया जाता था।[१००८] इन उत्सवो पर कोई मण्डल बनाने के लिए वडे आदर से पाँच रग के चूर्ण पीसता था, कोई माला गूँथता था,

९९५. वही, ४१।७२-७६
९९६ वही, ३९।८८-९४
९९७ वही ३९।१५३-१७४
९९८ वही, ३२।३-१२
९९९ वही, ३३।१५-१७
१००० वही, ३३।१४८-१४९
१००१ वही, ३०।३५-४५
१००२ वही, ९६।६१-६४
१००३ पद्मपुराण के आदर्श धर्म पर अष्टम अध्याय में विस्तृत विचार किया जा चुका है।
१००४ पद्म०, ५।२८६ २।६४
१००५ दे० प्रस्तुत शोधप्रबन्ध के षष्ठ अध्याय के अन्तर्गत 'विचारतत्त्व'।
१००६ दे० 'पद्मपुराण' का ११ वाँ पर्व तथा ४।८७
१००७. दे० 'पद्मपुराण' २।६१-६४, ५।२६९, ५।१४७-२९५
१००८ वही, २९।१-६, ६८।१-२२

कोई जल को सुगधित करता था, कोई सीचता था, कोई नाना प्रकार के उत्कृष्ट सुगधित पदार्थ पीसता था, कोई अत्यन्त सुन्दर वस्त्रो से जिन-मन्दिर के द्वार की शोभा करता था और कोई नाना धातुओ के रस से दीवालो को अलकृत करता था। जिनेन्द्र-बिम्ब का अभिषेक बडी धूमधाम से किया जाता था।

समाज मे सामिष और निरामिष दोनो प्रकार का भोजन प्रचलित था किन्तु निरामिष को जैनी दृष्टिकोण से प्रशस्य माना जाता था। एकपात्र मे भोजन करना परम मित्रता का उपलक्षक था।[१००९]

स्त्री-पुरुषो की वेशभूषा के भी पर्याप्त सकेत 'पद्मपुराण' मे मिलते है। उत्तरीय और अधोवस्त्र पुरुषो के प्रधान वस्त्र थे।[१०१०] स्त्रियाँ कचुकी धारण करती थी।[१०११] उच्चवर्ग के पुरुष और स्त्री दोनो ही आभूषण धारण करते थे। पुरुषो की वेशभूषा मे शुक्लवस्त्र का बड़ा महत्त्व था। रावण ने स्नान करने के अनन्तर शुक्लवस्त्र धारण किये थे। मौलि पर भी वस्त्र बाँधा जाता था।[१०१२] वस्त्रो के अतिरिक्त वक्ष स्थल पर हार, शरीर पर अगराग का अनुलेपन, कानो मे कुण्डल, शिर पर माणिक्य-शकल तथा अन्यान्य अगों पर अन्यान्य अलकार धारण किये जाते थे।[१०१३] सामन्त केयूर, प्रवराशुक, मौलिमालावतंस तथा कटक धारण करते थे।[१०१४] राजकुमारो के कानो को सूची से वीधकर उनमे कुण्डल पहनाये जाते थे।[१०१५] चूडा पर मणि धारण की जाती थी।[१०१६] चन्दन से अर्धचन्द्राकार ललाटिका बनायी जाती थी।[१०१७] बाहुमूलो पर केयूर पहनाये जाते थे।[१०१८] स्त्रियो के मस्तक पर नीलोत्पलदाम,[१०१९] भालान्त पर तमालदल,[१०२०] कानो मे रत्नकनककुण्डल,[१०२१] शरीर पर सुगधित चूर्ण,[१०२२] पैरो मे नूपुर,[१०२३] कुचो पर हार,[१०२४] धारण किये जाने का उल्लेख है। जल के समान स्वच्छ और पारदर्शक वस्त्रो का भी उल्लेख है।[१०२५]

समाज मे प्रस्थानकालिक मंगलो के विषय मे भी विश्वास था। व्यक्ति के प्रदेश जाते समय कुलवृद्धाएँ उसका मगलाचार करती थीं।[१०२६] अपने इष्टदेव को

१००९ वही, १९१।४२
१०१० वही, ४५।६७
१०११ वही, २।३८
१०१२ वही, ७।२६२
१०१३ वही, ७३।४, ४५।६७, ४४।५६
१०१४ वही, २।२-४
१०१५ वही, ३।१८८
१०१६ वही, ३।१८९
१०१७ वही, ३।१९०
१०१८ वही, ३।९०
१०१९ वही, ३।१००
१०२० वही, ३।१०१
१०२१ वही, ३।१०२
१०२२ वही, ३।१०४
१०२३ वही, ३।११०
१०२४ वही, ३।१०८, ८१।४२-४३
१०२५ वही, ३६।३५
१०२६ वही, १६।७९

प्रणाम करके व्यक्ति परदेश के लिए चलता था।[१०२७] आशीर्वाद देते हुए माता-पिता उसका मस्तक चूमते थे। यियासु व्यक्ति सभी बान्धवो से अनुमति लेता था, बडो का अभिवादन करता था, प्रणत लोगो से प्रेम पूर्वक सभाषण करता था।[१०२८] पहले दाहिने पैर को उठाना अच्छा समझा जाता था।[१०२९] जाने वाले व्यक्ति के मगल के लिए सपल्लवमुख पूर्णकुम्भ सामने रखा जाता था। दक्षिण-भुजा का फड़कना कार्यसिद्धि का द्योतक।[१०३०] पवनजय के रावण के पास प्रस्थान करते समय इन सभी की चर्चा हुई है।

शकुन-अपशकुनों के विषय मे भी समाज में विश्वास था। प्रयाणकालिक शुभ शकुन ये माने जाते थे—निर्धूम अग्नि की ज्वाला का दक्षिणावर्त से प्रज्वलित होना, मयूर का रम्य स्वर से बोलना, अलकृत नारी का साक्षात्कार, सुगन्ध फैलाने वाली वायु का वहना, निर्ग्रंथ मुनिराज का सामने से आना, छत्र दिखना, घोडो की गभीर हिनहिनाहट, प्रिय घण्टानाद, दधिपूर्ण कलश, वायी ओर नवीन गोबर को वार-बार विखेरते हुए तथा पखो को फैलाते हुए कौए का मधुर शब्द करना, भेरी-शखो का शब्द होना, 'सिद्ध हो,' 'जय हो,' 'समृद्धिमान्त हो' तथा 'निर्विघ्न प्रस्थान करो'—आदि मगलशब्दो का होना।[१०३१]

प्रयाणकालिक अपशकुन ये माने जाते थे—सूखे वृक्ष के अग्रभाग पर वैठकर एक पैर सकुचित कर कौए का पख फड़फडाना एव व्याकुल मन से सूखा काठ चोच मे दवाकर क्रूर शब्द करना,[१०३२] दाहिने हाथ पर रोमाच धारण कर शृगाली का घोर शब्द करना,[१०३३] सूर्यविम्ब के परिवेप मे कवन्ध का दिखाई देना।[१०३४] पर्वत-कम्पी निर्घातो का पतन,[१०३५] मुक्तकेशी वनिताओ का नभस्तल मे दिखाई देना,[१०३६] दाहिनी ओर गधे का मुँह ऊपर उठाकर वोलना तथा पृथ्वी को खुरो से खोदना,[१०३७] महाभयकर शब्द करते भालुओ का मण्डल बाँधकर दक्षिण दिशा मे दिखाई देना[१०३८] पखा से गाढ अधकार करते एव विकृत स्वर करते गृद्धो का आकाश मे उडना,[१०३९] अनेक भौम तथा वैहायस पक्षियो (शकुनो) का क्रन्दन करना,[१०४०] पीछे की ओर क्षुत (छीक) होना,[१०४१] महानाग के द्वारा मार्ग काट दिया जाना,[१०४२] वातूल से

१०२७ वही, १६।९९
१०२८ वही, १६।८०-८१
१०२९ वही, १६।८२
१०३० वही, १६।८२-८३
१०३१ वही, ५४।४८-५३
१०३२ वही, ७।४३-४४
१०३३ वही, ७।४५
१०३४ वही, ७।४६
१०३५ वही, ७।४७
१०३६ वही, ७।४७
१०३७ वही, ७।४८
१०३८ वही, ७७।६९
१०३९ वही, ५७।७०
१०४० वही, ५७।७१
१०४१ वही, ७३।१९
१०४२ वही, ७६।१८

प्रेरित होकर छत्र का भग्न हो जाना,[1043] उत्तरीय वस्त्र का नीचे गिर जाना,[1044] कौए का दक्षिण दिशा मे रटना[1045] और सामने महाशोकसन्तप्त वाल फकेरे हुए नारी का परिदेवन तथा रुदन करना।[1046]

समाज मे टोने आदि का भी प्रचलन था। वच्चो के सिर पर रक्षार्थ सरसो के दाने डाले जाते थे, गोरोचना का लेप होता था और व्याघ्रनख का भी उपयोग होता था।[1047]

इसके अतिरिक्त सामाजिक रहन-सहन सम्वन्धी ये सूचनाएँ मिलती है — प्रतिज्ञा करने के लिए 'चूडाविमोक्षण' कर दिया जाता था।[1048] स्वप्नोके विषय मे विश्वास था। रात्रि के चरम याम मे देखे स्वप्न अमोघ माने जाते थे।[1049] कन्याएँ गुरुजनो के घर शिक्षा ग्रहण करती थी और इसी के फलस्वरूप यौनचेतना के जागृत होने से विद्याग्रहण मे हानि होती थी।[1050] युवावस्था मे सर्वसाधनसम्पन्न सुन्दरी स्त्री का तपश्चरण अच्छा नही समझा जाता था, जीवन का अन्तिम पक्ष ही इसके लिए उपयुक्त समझा जाता था।[1051] सदाचारी तथा सात्त्विक गुरु के प्रभाव से व्यक्ति दीक्षा धारण कर लेते थे। गृहत्याग वैराग्य का प्रमाण था।[1052] भाई और वहिन का स्नेह परम श्लाघ्य माना जाता था।[1053] समाज के एक कोने मे गरीवी भी थी। गरीबी और अमीरी को पाप-पुण्य का प्रभाव कहकर सन्तोष कर लिया जाता था।[1054] अतिथि-सत्कार की भावना प्राय समाज मे प्राप्त थी।[1055] वहू जेठ-जेठानी के सामने लज्जा करती थी तथा अपने को वस्त्रावृत रखती थी।[1056] देवर और भाभी मे मजाक चलती थी। यह भाई के सामने भी चल सकती थी।[1057] यौन अनैतिकता मुनियो मे भी सम्भव थी।[958] धनी लोग निर्धनो की अवज्ञा करते थे।[1059] द्वीपान्तर मे मरण अच्छा नही माना जाता था।[1060] अनेक वहिनो का एक वर से विवाह सम्भव था।[1061] शुभ अवसरो पर अश्रुपात अपशकुन समझा जाता था।[962] मिष्टान्न-पक्वान्न उत्तम भोजन थे।[1063] भूमि मे तलगृह (तहखाने) होते थे जहाँ रत्न और मणिभाण्ड छिपाये जा सकते थे।[1064] धन वाह्य प्राण माना जाता

१०४३ वही, ७३।११
१०४४ वही, ७३।१२
१०४५ वही, ७३।१९, ९७।७५
१०४६ वही, ७९।७८
१०४७ वही, १००।२२-२७
१०४८ वही, ।६।५४७
१०४९ वही, ७।१७९-१९७
१०५० वही, २६।५-१८
१०५१ वही, २६।२६
१०५२ वही, २६।४२
१०५३ वही, ३०।१३८-१३९
१०५४ वही, ३०।६६-७६
१०५५ वही, ३३।१९९-२००
१०५६ वही, ३६।५५-५६
१०५७ वही, ३९।२३
१०५८ वही, ४१।१३५-१३६
१०५९ वही, ४७।६१
१०६० वही, ४८।७९
१०६१ वही, ५१।४८-४९
१०६२ वही, ५७।३४
१०६३ वही, ६३।४३
१०६४ वही, ६५।१७-१८

था।[१०६५] पति के मरण पर नारियाँ चूडियाँ तोड लेती थी।[१०६६] मुनि किसी भी राजा की उपेक्षा कर सकते थे।[१०६७] समाज मे रोग-दु ख फैलने पर व्यक्ति अपने ग्राम नगर को छोडकर भाग जाते थे।[१०६८] उरोघात, महादाहज्वर, लालापरिस्राव, श्वयथु, स्फोटक, अरुचि, छर्दि और सर्वशूल फैलने वाले रोग थे।[१०६९] भयभीत, ब्राह्मण, मुनि, निहत्थे व्यक्ति, स्त्री बालक, पशु और दूत अवध्य समझे जाते थे।[१०७०] राजा के अधिकार मे बडे-बडे सेठ होते थे जो गाँवो और शहरो के मालिक होते थे और मन्दिर आदि का निर्माण कराते थे।[१०७१] मंत्र आदि में विश्वास था, डाकिनी मन्त्रभीत मानी जाती थी।[१०७२] चन्दन-पुष्प-फल आदि सत्कार के साधन थे।[१०७३] प्रसन्नता का समाचार देने वालो का माला-पान-सुगन्ध से समादर होता था।[१०७४] प्रसन्नता के अवसर पर दान दिया जाता था।[१०७५] खाद्य-पदार्थों मे लड्डू, माडे, पूरियाँ, शालि (धान) का भात, दाल, घृत, पुए, घनवन्ध (घेवर), नाना प्रकार के व्यजन, दूध, दही, अनेक प्रकार के पानक, खाँड के लड्डू और शष्कुली (कचौरी), आदि थे।[१०७६] स्त्रियाँ पुरुष-वेष मे भी घूमती थी।[१०७७] भुजा ऊपर उठाकर छाती पीटना और चिल्लाना हृदय के अत्यन्त दु:ख का सूचक था।[१०७८] भूत बायु आदि की बीमारी मे भी विश्वास था।[१०७९]

पद्मपुराण मे आर्थिक जीवन और व्यवसाय के भी सकेत मिलते है। धन कमाने की इच्छा से वणिको की पोतो से जलयात्रा की कई जगह चर्चा आई है।[१०८०] गौओ का व्यापार किया जाता था।[१०८१] कुछ ब्राह्मण गणितशास्त्री (साख्यिक) होते थे।[१०८२] कुम्भकार मिट्टी के पात्र बनाकर अपनी जीविका चलाते थे।[१०८३] पुस्तकर्म (मिट्टी के खिलौने आदि बनाना) भी एक प्रसिद्ध व्यवसाय था।[१०८४] भस्त्रा-निर्माण करना भी जीविकोपार्जन का साधन था। भस्त्रा (धौकनी या मशक) गीदड आदि की खाल से बनायी जाती थी।[१०८५] व्यापार के लिए सार्थ बाँधकर यात्रा भी की जाती थी।[१०८६] 'अतो यथात्र सूत्रार्थं कश्चित्सचूर्णयेन्मणीन्'

१०६५ वही, ७०।८३
१०६६ वही, ७८।६
१०६७ वही, ७८।६५-६६
१०६८ वही, ८०।१५९
१०६९ वही, ६४।३५
१०७० वही, ६६।९०
१०७१ वही, ६७।११
१०७२ वही, ७४।५१
१०७३ वही, ८०।८५
१०७४ वही, ८१।१००
१०७५ वही, ८१।१०८-१०९
१०७६ वही, ८७।५, २४।१३-१४
१०७७. वही, पर्व ३४
१०७८ वही, १०९।१२०
१०७९ वही, ११३।२-३
१०८० वही, ५।९६-९९, ४८।६९, ४८।४४
१०८१ वही, ५।११७
१०८२ वही, ५।११४
१०८३ वही, ५।२८७
१०८४ वही, ७।२८३
१०८५ वही, ४८।४६
१०८६ वही, १४।२२६

से यह भी प्रतीत होता है कि उस समय मणि पीसकर पक्का माँझा तैयार किया जाता था।[1087]

'पद्मपुराण' के काल तक भवन, मन्दिर और मूर्तियों के निर्माण की कला पूर्ण उत्कर्ष को प्राप्त हो चुकी थी।

नगरों के वर्णनों मे ऊँचे-ऊँचे मकानों का उल्लेख है।[1088] भवनों की भित्तियों पर सालभजिकाएँ (पुतलियाँ) उकेरी जाती थी।[1089] राजमहलों के द्वार पर विविध प्रकार के बेल-बूटे (भक्तिकर्म) बने रहते थे।[1090] ऊँचे-ऊँचे तोरण होते थे।[1091] अनेक कक्ष होते थे। सोपान होते थे।[1092] कुछ महलों मे स्फटिक और शीशे का बहुत प्रयोग होता था।[1093] प्रग्रीवक (वरांडे) और कपोतपालिका भी होती थी।[1094] द्वारपाल भी बने होते थे।[1095] नौमजिले महलों का भी उल्लेख है।[1096] नानाकुट्टिमभूभाग चारुनिर्व्यूहसगत, सर्वोपकरणान्वित, स्नानादिविधि-सम्पत्तियोग्यनिर्मलभूमि एव कल्पप्रासादसन्निभ महलों के वर्णन से तत्कालीन महल-निर्माण-कला की उन्नति द्योतित होती है।[1097]

जिन-मन्दिरों की पर्याप्त चर्चा है।[1098] मन्दिरों के गवाक्षों मे मोतियों की झालरें लटकती थी और उनके खम्भे रत्नजटित एव स्वर्ण-निर्मित होते थे।[1099] मन्दिरों मे रत्न जड़े रहते थे, अनेक प्रकार का मणि-भक्ति-कर्म (मणियों के बेल-बूटों का काम) रहता था, हेमपीठ होते थे, मनोहारी तोरणों पर मालाएँ लटकती रहती थी, भूमियों पर विस्तृत वेदिकाएँ बनी होती थी, वैदूर्यमणि-निर्मित दीवारों पर सिंह-हाथी आदि के चित्र बने होते थे और संगीत करने वाली स्त्रियों के लिए कुक्षियाँ होती थी। इनकी ऊँचाई बहुत होती थी तथा इनमे भव्य जिन-प्रतिमाएँ स्थापित रहती थी।[1100] कुछ मन्दिरों के तीन द्वार होते थे।[1101] गोपुर, प्राकार, तोरण, वलभियाँ, हर्म्य, शालाएँ तथा परिखाएँ उन्हे सौन्दर्य और सुरक्षा प्रदान

१०८७ वही, १४।२२६ | १०८८ वही, ७।३३७
१०८९ वही, १६।८५ | १०९० वही, ३८।८३
१०९१ वही, ३८।८३ | १०९२ वही, ७१।२७
१०९३ वही, ७१।२४-३८ | १०९४ वही, ६१।२८-१२५
१०९५ वही, ७१।३५ | १०९६ वही, १००।३९
१०९७ वही, ११०।६४-६५

१०९८ वही, ७।३३८, २८।८८-९६, ३१।२२८-२३०, ४०।२७-३२, ६७।११-२०, ८०।७-१०, ८०।७०-७५, ११२।२५-४८

१०९९ 'जैन-स्थापत्य मे स्तम्भों के निर्माण की विशेषता रही है।'—डा० रामजी उपाध्याय प्राचीन भारतीय साहित्य की सांस्कृतिक भूमिका, पृ० १०६३।

११०० पद्म० २३।१२-१९ | ११०१ वही, ३१।२२४

करती थी।[1102] मन्दिरो पर पताकाएँ फहराती थी तथा विविध घण्टादि के शब्द होते थे।[1103] छोटी-छोटी किंकिणियाँ, पट्टलम्बूष (फन्नूस), प्रकीर्णक (चमर), बुद्बुदादर्श (गोल शीशे) आदि मन्दिरो मे होते थे।[1104]

मूर्ति-निर्माण बडी उच्च कोटि का था। जिनेन्द्र-प्रतिमाओ के वर्णन से ज्ञात होता है कि धातुओ को मिलाकर पचवर्ण की मूर्तियाँ वनती थी।[1105]

पद्मपुराण मे कलाओं का भी पर्याप्त उल्लेख मिलता है।[1106] पद्मपुराण के अनुसार नृत्त के तीन भेद होते है—अगहाराश्रय, अभिनयाश्रय तथा व्यायामिक, फिर इनके और भी प्रभेद होते है। इसका ज्ञान 'नृत्तकला' है।[1107] सगीत कण्ठ, सिर और उर स्थल से अभिव्यक्त होता है तथा षड्ज ऋषभ, गान्धार, मध्यम, पचम, धैवत और निषाद—इस सात स्वरो मे विभक्त रहता है। वह द्रुत-मध्य-विलम्बित नामक लयो से सहित होता है, अस्र और चतुरस्र तालकी इन दो योनियो को धारण करता है एव स्थायी-सचारी-आरोही-अवरोही-नामक चार वर्णों के कारण चार प्रकार का माना गया है।[1108] संगीत मे प्रातिपदिक, तिङन्त, उपसर्ग और निपातो से सस्कार को प्राप्त हुई सस्कृत, प्राकृत और शौरसेनी भाषा प्रयुक्त होती है।[1109] सगीत की आठ या दस जातियाँ एव तेरह अलकार मान्य है। आठ जातियाँ ये है—धैवती, आर्षभी, षड्ज-षड्जा, उदीच्या, निषादिनी, गान्धारी, षड्जकैकशी और षड्जमध्यमा।[1110] दश जातियाँ ये हैं—गान्धारोदीच्या, मध्यमपचमी, गान्धारपचमी, रक्तगान्धारी, मध्यमा, आन्ध्री, मध्यमोदीच्या, कर्मारवी, नन्दिनी और कैशिकी।[1111] तेरह अलकार ये हैं—प्रसन्नादि, प्रसन्नान्त, मध्यप्रसाद और प्रसन्नाद्यवसान ये चार स्थायी पद के अलकार है।[1112] निर्वृत्त, प्रस्थित, विन्दु, प्रेखोलित, तार और प्रसन्नमन्द्र—ये छ. सचारी पद के अलकार हैं।[1113] आरोही पद का प्रसन्नान्त नामक एक ही अलकार है।[1114] अवरोही पद के प्रसन्नान्त एव कुहर नामक दो अलकार है। इन सभी लक्षणो से अन्वित सगीत का ज्ञान 'सगीतकला' कहलाती है।[1115] वाद्य के इन चार भेदो का उल्लेख है—तन्त्री से उत्पन्न तत, मृदग से उत्पन्न अनवद्य, वशी से उत्पन्न सुषिर

११०२ वही, ४०। २७-२९, ११२।४६
११०३ वही, ४०।२९-३९
११०४ वही, १११।४५-४६
११०५ वही, ४०।३२
११०६ वही, २४वाँ पर्व
११०७ वही, २४।६
११०८ वही, २४।६-१०
११०९ वही, २४।११
१११० वही, २४।१२
११११ वही, २४।१३-१४
१११२ वही, २४।१६
१११३ वही, २४।१७
१११४. वही, २४।१८।
१११५ वही, २४।१९

एव ताल से उत्पन्न घन। फिर इस वाद्य के अनेक अवान्तर भेद हो सकते है।[1116] इसके ज्ञान का नाम ही 'वाद्यकला' है। नृत्त, गीत और वाद्य का एकीकरण नाट्य कहा जाता था जिसमे शृगार, हास्य, करुण, वीर, अद्भुत, भयानक, रौद्र, वीभत्स और शान्त नामक नौ रस होते थे। नाट्य का ज्ञान 'नाट्यकला' है।[1117]

लिपियो का ज्ञान भी एक कला है। जो लिपि अपने देश मे सामान्यत. चलती थी उसे 'अनुवृत्त' कहा गया है, लोग अपने-अपने सकेतानुसार जिसकी कल्पना कर लेते थे उसे 'विकृत' कहा गया है, प्रत्यग आदि वर्णो मे जिसका प्रयोग होता था उसे 'सामयिक' कहा गया है एव वर्णो के वदले पुष्पादि द्रव्य रखकर जो लिपि का ज्ञान किया जाता था उसे नैमित्तिक' कहा गया है। इस लिपि के प्राच्य, मध्यम, यौधेय और समाद्र आदि देशो की अपेक्षा अनेक अवान्तर भेद स्वीकार किये गये है।[1118]

'पद्मपुराण' के अनुसार 'उक्तिकौशल' नामक भी एक कला स्वीकार की गयी है।[1119] इसके स्थान आदि अनेक भेदो का उल्लेख है यथा स्थान, स्वर, सस्कार, विन्यास, काकु, समुदाय, विराम, सामान्याभिहित, समानार्थता, भाषा और जातियाँ।[1120] उर स्थल, कण्ठ और मूर्द्धा के भेद से 'स्थान' तीन प्रकार का है। 'स्वर' षड्जादि के भेद से सात प्रकार का है। लक्षण और उद्देश अथवा लक्षण और अभिधा की अपेक्षा 'सस्कार' दो प्रकार का है। पदवाक्य और महावाक्य आदि के विभाग सहित कथन 'विन्यास' कहलाता है। 'काकु' के दो भेद है—सापेक्ष और निरपेक्ष। गद्य, पद्य, और मिश्र (चम्पू) की अपेक्षा 'समुदाय' तीन प्रकार का है। सक्षिप्तता को 'विराम कहते है। एकार्थक शब्दो का प्रयोग 'सामान्याभिहित' कहा गया है। एक शब्द के द्वारा वहुत अर्थ का प्रतिपादन करना 'समानार्थता' है। आर्य, लक्षण और म्लेच्छ के नियम से 'भाषा' तीन प्रकार की कही गयी है। पत्रव्यवहार-रूप लेख तथा व्यक्तवाक्-लोकवाक्-मार्गव्यवहारादि-रूप मातृकाएँ जातियाँ है। उक्तिकौशल के इन भेदो के और भी भेद हो सकते हैं।[1121]

चित्र के ज्ञान को 'चित्रकला' कहा गया है। चित्र दो प्रकार का माना गया है—शुष्कचित्र और आर्द्र चित्र। शुष्कचित्र के भी दो भेद है—नानाशुष्क और वर्जित। चन्दनादि के द्रव से उत्पन्न होने वाला आर्द्र चित्र नाना प्रकार का है। कृत्रिम और अकृत्रिम रगो के द्वारा पृथ्वी, जल तथा वस्त्र आदि के ऊपर इसकी

१११६ वही, २४.२०-२१
१११७ वही, २४।२२-२३
१११८ वही, २४।२४-२६
१११९ वही, २४।२७
११२० वही, २४।२७-२८
११२१ वही, २४।२९-३५

रचना होती है। यह अनेक रगो के सम्बन्ध से सयुक्त होता है।[1122]

'पुस्तकर्म' एक दुर्लभ कला है। क्षय, उपचय और सक्रम के भेद से पुस्तकर्म तीन प्रकार का कहा गया है। लकडी आदि को छील-छालकर (तक्षण करके) खिलौने आदि बनाना क्षयजन्य पुस्तकर्म है, ऊपर से मिट्टी आदि लगाकर खिलौने आदि बनाना उपचयजन्य पुस्तकर्म है एव प्रतिबिम्ब अर्थात् साँचे आदि गडाकर खिलौने आदि बनाना सक्रमजन्य पुस्तकर्म है।[1023] यह पुस्तकर्म यन्त्र, निर्यन्त्र, सच्छिद्र तथा निश्छिद्र आदि भेदो वाला है अर्थात् कोई खिलौना यन्त्रचालित होता है तो कोई बिना यत्र के ही एव कोई छिद्रसहित होता है तो कोई छिद्ररहित।[1024] दशरथ का पुतला समुद्रहृदय मन्त्री ने बनवाया था। इसे 'लेप्य वपु.' कहा गया है।[1025] इसके भीतर लाक्षादि का रस भर कर रुधिर की रचना हुई थी और स्वाभाविक शरीर जैसी कोमलता भी उसमे उत्पादित की गयी थी।[1026] इसे 'लेप्यकार' ने बनाया था।[1027]

'पत्रच्छेद्य' की कला भी महत्त्वपूर्ण कही गयी है। 'पद्मपुराण' के अनुसार उसके तीन भेद है—बुष्किम, छिन्न और अच्छिन्न। सुई अथवा दन्त आदि के द्वारा जो बनाया जाता है उसे 'बुष्किम' कहते है। जो कर्तरी (कैंची) से काटकर बनाया जाता है तथा जो अन्य अवयवो के सम्बन्ध से युक्त होता है उसे 'छिन्न' कहते है। जो कैंची आदि से काट कर बनाया जाता है तथा अन्य अवयवो के सम्बन्ध से रहित होता है उसे 'अच्छिन्न' कहते है। यह पत्रच्छेद्यक्रिया पत्र, वस्त्र तथा सुवर्णादि के ऊपर की जाती है तथा स्थिर और चवल दोनो प्रकार की

११२२ वही, २४।३६-३७। ११२३ वही, २४।३८-३९। ११२४ वही, २४।४०। ११२५ वही, २४।४१। ११२६ वही २४।४२।

११२७ रविषेण के समकालीन बाण के 'हर्षचरित' मे भी पुस्तकर्म का उल्लेख आया है—पुस्तकर्मणा पार्थिवविग्रहा । 'बाण की मित्रमण्डली मे कुमारदत्त पुस्तकर्म मे उस्ताद था। पुस्त का शब्दार्थ लेप्य था और ज्ञात होता है कि पुस्तकृत् ही लेप्यकार भी कहा जाता था, जैसा राज्यश्री के विवाह के अवसर पर मिट्टी की मछली, कछुए, मगर, फल, वृक्ष आदि बनाने के लिये 'लेप्यकार' बुलाये गये थे (लेप्यकारक्रियमाणमृण्मयमीनकूर्ममकरनारिकेल-कदलीपूगवृक्षकम्)। गुप्त-युग मे मृण्मय कला के द्वारा ही सौदर्य की अनुभूति समाज के सभी स्तरो मे इतनी व्यापक बनाई जा सकी थी। मिट्टी के खिलौने घर-घर मे भर गये थे और फूल-पत्तो की सजवाली ईंटो से ही भीतो की चुनाई होने लगी थी। गुप्त-युग की यह सामग्री इतनी अधिक मिली है कि उसे मृण्मय प्रतिमाओ का युग ही कहा जाय तो अत्युक्ति न होगी। अतएव पुस्तक-व्यापार (पुस्त एव पुस्तक व्यापारकर्म) या पुस्तककार्य सभ्रान्त कुलपुत्रो की शिक्षा का आवश्यक अंग समझा जाता हो इसमे कोई आश्चर्य नही।' डा० वासुदेवशरण अग्रवाल कादम्बरी एक सास्कृतिक अध्ययन, पृ० ८६।

होती है।[1128]

आर्द्र, शुष्क, तदुन्मुक्त और मिश्र के भेद से 'माल्यनिर्माण' की कला चार प्रकार की कही गयी है। इनमे से गीले अर्थात् ताजे पुष्पादि से जो माला वनायी जाती है उसे आर्द्र कहते है, सूखे पत्रादि से जो वनाई जाती है उसे शुष्क कहते है। चावलो के सिक्थक (सीथ अथवा जवा) आदि से जो वनायी जाती है उसे 'तदुज्झित' कहते है और जो उक्त तीनो चीजो के मेल से वनायी जाती है उसे 'मिश्र' कहते हैं।[1129] यह माल्यकर्म रणप्रवोधन, व्यूहसयोग आदि भेदो से सहित होता है।[1130]

पद्मपुराण के अनुसार योनिद्रव्य, अधिष्ठान, रस, वीर्य, कल्पना, परिकर्म, गुणदोषविज्ञान तथा कौशल—ये गन्धयोजना अर्थात् 'सुगन्धितपदार्थ-निर्माण-कला' के अग है। जिनसे सुगन्धित पदार्थो का निर्माणो हता है, ऐसे तगर आदि 'योनिद्रव्य' है। जो धूपवत्ती आदि का आश्रय है उसे 'अधिष्ठान' कहते है। कषाय, मधुर, तिक्त, कटु, अम्ल,—पाँच प्रकार का 'रस' कहा गया है जिसका सुगन्धित द्रव्य मे विशेषत. निश्चय करना पडता है। पदार्थो की जो शीतता अथवा उष्णता है वह दो प्रकार का 'वीर्य' है। अनुकूल तथा प्रतिकूल पदार्थो का मिलाना कल्पना है। तैल आदि पदार्थो का शोधना तथा धोना आदि 'परिकर्म' कहलाता है। गुण अथवा दोष को जान लेना 'गुणदोष-विज्ञान' है। परकीय तथा स्वकीय वस्तु की विशिष्टता जानना कौशल है। इस गन्धयोजना की कला के स्वतन्त्र और अनुगत भेद होते है।[1131]

स्वादिष्ट पदार्थ तैयार करने की कला का नाम 'आस्वाद्यविज्ञान' है। इसमे भक्ष्य, भोज्य, पेय, लेह्य और चूष्य—इन भोजन सम्वन्धी पदार्थो के निर्माण का ज्ञान आता है। इनमे से जो स्वाद के लिए खाया जाता है उसे 'भक्ष्य' कहते है, इसके कृत्रिम तथा अनुकृत्रिम दो भेद हैं। जो क्षुधा की निर्वृति के लिए खाया जाता है उसे 'भोज्य' कहते है इसके भी दो भेद है—मुख्य और साधक। ओदन-रोटी आदि मुख्य भोज्य है और यवागू (लपसी) दाल-शाक अदि साधक भोज्य है। 'पेय' के तीन भेद हैं—शीतयोग (शर्वत), जल और मद्य। 'लेह्य' के भी तीन भेद है—राग, खाण्डव और लेह्य। 'चूष्य' के दो भेद हैं—कृत्रिम और अकृत्रिम। इन सव का ज्ञानस्वरूप 'आस्वाद्यविज्ञान' पाचन, छेदन, उष्णत्वकरण तथा शीतत्व-

---

११२८ वाण ने सभवत 'पत्रभग' शब्द का इसी अर्थ मे प्रयोग किया है यथा—पत्रभंग-मकरिका', पत्रभगपुत्रिका, उत्किरता पत्रभगान् आदि। डा० अग्रवाल ने पत्रभग का अर्थ 'पत्रलता का अलकरण' किया है।—वही, पृष्ठ ३९१।

११२९ पद्म०, २४।४४-४५। ११३० वही, २४।४६। ११३१ वही, २४।४७-५२।

करणादि भेदो से युक्त है।[११३२]

वज्र (हीरा), मौक्तिक, वैडूर्य, सुवर्ण, रजतायुध तथा वस्त्र-शंख आदि रत्नों का सलक्षण ज्ञान भी एक कला है।[११३३]

'पद्मपुराण' के अनुसार वस्त्र पर धागे से कढाई का काम करना (तन्तु-सन्तानयोग) तथा वस्त्र को अनेक रगों मे रँगना (बहुवर्णक-रागाधान) भी एक कला है।[११३४] इनके अतिरिक्त और भी अनेक कलाएँ उल्लखित है, यथा—लोहा, दन्त, लाख, क्षार, पत्थर तथा सूत आदि से बनने वाले नाना उपकरणो का बनाना।[११३५] मेय-देश-तुला-काल-मान का ज्ञान भी एक कला है। 'प्रस्थ आदि' जिस के अनेक भेद है उसे मेय कहते है, वितस्ति आदि देशमान है, पल आदि तुलामान है और समय (घडी, घण्टा) आदि कालमान है। यह मान, आरोह, परीणाह, तिर्यग्गौरव और क्रिया से उत्पन्न होता है।[११३६] मूर्तिकर्म. अर्थात् बेल-बूटा खीचना,[११३७] निधिज्ञान अर्थात् गडे हुए धन का ज्ञान होना,[११३८] रूपज्ञान,[११३९] वणिग्विधि अर्थात् व्यापारकला,[११४०] जीव-विज्ञान,[११४१], मनुष्य-हाथी-गो-अश्व आदि की चिकित्सा का निदानादि के साथ ज्ञान,[११४२] मायाकृत, पीड़ा या इन्द्रजालकृत एव मन्त्रौषधादिकृत विमोहन का ज्ञान,[११४३] साख्य आदि मतो का, उनमें वर्णित चारित्र तथा नाना प्रकार के पदार्थो के साथ ज्ञान[११४४] आदि।

११३२ वही, २४।५३-५६
११३३ वही, २४।५७
११३४ वही, २४।५८
११३५ वही, २४।५९
११३६ वही, २४।६०-६२
११३७ वही, २४।६३
११३८ वही, २४।६३
११३९ वही, २४।६३
११४० वही, २४।६५
११४१ वही, २४।६३
११४२ वही, २४।६४
११४३ वही, २४।६५
११४४ वही, २४।६६

"समय च समीक्ष्यादि पाखण्डपरिकल्पितम्। चारित्रेण पदार्थैश्च विवेद विविधैर्युतम्॥" कहकर रविषेण ने केकया की जैनमत के अतिरिक्त ब्राह्मण दर्शनो एव मतो की पारगामिता द्योतित की है। सातवी शताब्दी की यह प्रवृत्ति थी कि अपने दर्शन से अतिरिक्त दर्शनो का भी अध्ययन किया जाता था। बाण ने भी 'हर्षचरित' मे 'शमितसमस्तशाखान्तरसशीति' और 'उद्घाटितसमग्रग्रन्थार्थग्रन्थय' शब्दो से इस प्रवृत्ति का परिचय दिया है। इस विषय पर डा० वासुदेवशरण अग्रवाल का वक्तव्य अवलोकनीय है—'बाण ने तत्कालीन ज्ञान साधन की दो विशेषताओ की ओर भी यहाँ इशारा किया है। अपने दर्शन के अतिरिक्त अन्य दर्शनो मे भी जो शकाएँ उठाई जाती थी उनका समाधान भी वे (बाण की बिरादरी के ब्राह्मण) जानते थे शमितसमस्तशाखान्तरसशीति। गुप्तकाल से बाण के समय तक के युग मे बौद्ध, ब्राह्मण तथा जैन दार्शनिक अनेक दृष्टिकोणो से तत्त्वचिन्तन करते रहते थे। उस समय के दार्शनिक मन्थन की यह शैली थी कि वे विद्वान् एक-दूसरे से उद्भावित नयी-नयी युक्तियो और कोटियो से अपने

'पद्मपुराण' के अनुसार चेष्टा, उपकरण, वाणी तथा कला-व्यत्यसन भेद से क्रीडा चार प्रकार की है। शरीर से उत्पन्न होने वाली क्रीडा 'चेष्टा' है, कन्दुक आदि की क्रीडा 'उपकरण' है, नाना प्रकार के सुभाषित कहना 'वाणी-क्रीडा' है और जुआ (दुरोदर) आदि खेलना 'कलाव्यत्यसन' है।[११४५]

'पद्मपुराण' मे 'लोक का ज्ञान' भी कला के रूप मे स्वीकृत है। आश्रित और आश्रय भेद से लोक दो प्रकार है। जीव और अजीव तो आश्रित है और पृथ्वी आदि उनके आश्रय है। इसी लोक मे जीव की नाना पयार्यो मे उत्पत्ति हुई है और इसी मे उसकी नश्वरता है—यह सब जानना लोकज्ञता है। इस लोकज्ञता का प्राप्त होना अत्यन्त कठिन है। पूर्वापर पर्वत, पृथ्वी द्वीप, देश आदि भेदो में यह लोक स्वभाव से ही अवस्थित है।[११४६]

'सवाहन-कला' दो प्रकार की है—कर्मसश्रया और शय्योपचारिका। त्वचा, मास, अस्थि और मन—इन चार को सुख पहुँचाने के कारण कर्मसश्रया के चा भेद है अर्थात् किसी सवाहन से केवल त्वचा को सुख मिलता है, किसी से त्वचा और मास को, किसी से त्वचा, मास और हड्डी को एव किसी से त्वचा, मास, हड्डियो और मन को। इसके अतिरिक्त इस कला के सस्पृष्ट गृहीत, भुक्तित, चलित, आहत, भगित, विद्ध, पीडित और भिन्न पीडित—ये भेद भी है। फिर

आपको परिचित रखते और अपने ग्रन्थो मे उनका विचार और समाधान करते थे। प्रमुख आचार्य अन्य मतो मे प्रवृद्ध रुचि रखते थे, उपेक्षा का भाव न था। इस प्रकार की जागरूकता के वातावरण मे ही वसुबन्धु, धर्मकीर्ति, सिद्धसेन दिवाकर, उद्योतकर, कुमारिल और शकर जैसे अनेक प्रचण्ड मस्तिष्को ने एक-दूसरे से टकरा-टकराकर दार्शनिक क्षेत्र मे अभूतपूर्व तेज उत्पन्न किया। इस पृष्ठभूमि मे बाण का 'शमितसमस्तशाखान्तरसशीति' विशेषण साभिप्राय है और ज्ञान-साधन की तत्कालीन प्रवृत्ति का परिचय देता है। इस प्रसग मे दूसरी बात यह कही गयी है कि वे विद्वान् समग्र ग्रन्थो मे जो अर्थ की ग्रन्थियाँ थी, उनको उद्घाटित करते थे : 'उद्घाटित-समग्रग्रन्थार्थग्रन्थय।' इसमे भी तत्कालीन विद्यासाधन की झलक है। समग्र ग्रन्थो से तात्पर्य भिन्न-भिन्न दर्शनो, जैसे—न्यायवैशेषिक, साख्ययोग, वेदान्त, मीमासा, पाशुपत-बौद्ध, आर्हत आदि के ग्रन्थो से है। उस समय के पठन-पाठन मे ऐसी प्रथा थी कि लोग केवल अपने ही दार्शनिक ग्रन्थो के अध्ययन से सन्तुष्ट न रहकर दूसरे सम्प्रदायों के ग्रन्थो का भी अध्ययन करते थे और उसमे जो अर्थ की कठिनाइयाँ थी, उन्हे स्पष्ट करते थे। इसी प्रणाली के कारण नालन्दा के बौद्ध विश्वविद्यालय मे वेद-शास्त्र आदि ब्राह्मणो के ग्रन्थो का पठन-पाठन भी खूब चलता था जैसा कि ह्यु आन-चुआग् ने लिखा है। अध्ययन, अध्यापन और ग्रन्थ-प्रणयन, दोनो क्षेत्रो मे ही सकल शास्त्रो मे रुचि उस युग के विद्वानो की विशेषता थी। स्वय बाण ने दिवाकरमित्र के आश्रम का वर्णन करते हुए इस प्रवृत्ति का आँखो देखा सच्चा चित्र खीचा है।'

—डा० वासुदेवशरण अग्रवाल, 'हर्षचरित एक सास्कृतिक अध्ययन', पृ० २५।२६।

११४५ पद्म०, २४।६७-६९ ११४६ वही, २४।७०-७२

इसके मृदु, मध्य और प्रकृष्ट के भेद से तीन भेद और भी होते है। जिस सवाहन से केवल त्वचा को सुख होता है वह मृदु अथवा सुकुमार कहा जाता है। जो त्वचा और मास को सुख पहुँचाता है वह मध्यम कहा जाता है एव जो त्वचा, मास तथा हड्डी को सुख देता है वह प्रकृष्ट कहलाता है। सवाहन के साथ जब कोमल सगीत भी होता है तब वह मन सुख-सवाहन कहलाता है। इस सवाहन कला के ये दोष होते है—शरीर के रोगो का उल्टा उद्वर्तन करना, जिस स्थान मे मास नही है वहाँ अधिक दबाना, केशाकर्षण, भ्रष्टप्राप्त, अमार्गप्रयात, अतिभुग्नक, अदेशाहत, अत्यर्थ और अवसुप्त प्रतीचक। जो इन दोषो से निर्मुक्त है,योग्यदेश में प्रयुक्त है और अभिप्राय को जानकर किया गया है, ऐसा सवाहन अत्यन्त शोभास्पद होता है। जो सवाहन-क्रिया अनेक कारण अर्थात् आसनो से की जाती है वह चित्त को सुख देने वाली शय्योपचारिका नाम की क्रिया जाननी चाहिए। यह सवाहन-कला अग-प्रत्यगो से सम्बन्ध रखने वाली है।[११४७]

इसके अतिरिक्त शरीर-वेष-सस्कार-कौशल, स्नान करना, सिर के बाल गूँथना तथा उन्हे सुगधित करना भी कलाओ मे परिगणित है।[११४८]

यन्त्र–विज्ञान के भी पद्मपुराण मे सकेत मिलते है। एक स्थान पर किले मे लगे ऐसे यन्त्रोका वर्णन है जो कि गगनागण मे विहार करते विमानस्थ प्राणियो को खीच लेते थे।[११४९] यदि आजकल के लोग इसे कोरी कल्पना ही समझे तो भी कम से कम इतना तो मानना चाहिए कि राडार और एण्टी एयरक्राफट गनो जैसे यन्त्रो की कल्पना उस युग मे हो चुकी थी। विमानो का पर्याप्त उल्लेख हुआ है।[१०५०] युद्ध के समय महाघोर यन्त्रो के प्रसारण की भी चर्चा हुई है।[११५१] यन्त्र नगर की रक्षा के साधन समझे जाते थे।[११५२] वैज्ञानिक यन्त्रो के सहारे बहुत बडी सेना को रोका जा सकता था।[११५३] जलयन्त्रो से पानी छोडा और रोका जा सकता था।

'पद्मपुराण' मे भौगोलिक उल्लेख भी पर्याप्त मात्रा मे हुए है। नदियों, पर्वतो नगरो, ग्रामो, राष्ट्रो, द्वीपो तथा वन आदि के अनेक वर्णन और सकेत 'पद्मपुराण' मे आये है। यद्यपि नगर आदि के बहुत से नाम रविषेण के कल्पना–वैभव का ही प्रदर्शन करते है तथापि बहुतसे नगर आदि के नाम वास्तविक भी है। यहाँ हम इनकी

११४७ वही, २४।७३-८१
११४८ वही, २४।८२
११४९. वही, ६।५४१
११५० वही, ४७।७८ आदि
११५१ वही, ४६।२१५, २३०
११५२ वही, ४८।२४५
११५३. वही, ५२।२-५

एक सूची प्रस्तुत कर रहे है[११५४]—

नदी-समुद्र : कर्णकुण्डल (५३), कर्णरवा (४०, ४१), क्रौंचरवा (४३), गगा (२, ४६ १०१), नर्मदा (१०, ३८), पुण्यभागा (८६), यमुना (५५), रेवा (३५), लवणसमुद्र (८२), वैतरणी (८), शर्वरी (२२), हंसावली (१३),।

पर्वत : अष्टापद (८), अजनगिरि (३७), उदय (३), कुशाग्र (१), कैलास (१, ६, २०, ८४), किष्कु (६), किष्किन्धागिरि (६, ८८), कर्ण (६), कलिन्द (२७), गन्धमादन (१३), गिरिनार (२०), जलवीचि (१६), त्रिकूट (५, ६, ४३), सुमेरु (३३), दक्षिण श्रेणी (८), दन्ती (१५), दण्डक (४२), दुर्गगिरि (८५), धरणीमौलि (६), नारद (११), नन्दी (२७), निकुज (२७), नगोत्तर, बलाहक (८, ३०), भूत (१), मधु, (१, ६), मेरु (४, २६, ३१) मानुपोत्तर (६), मेघरव (८), मणिकान्त (६), महेन्द्र (१५), मलयाचल (८), मन्दर (८२), रथावर्त (१३), रामगिरि (४०), विपुल (१, २७), विजयार्द्ध (१, ६, २७), विन्ध्य (१०), वशधर (३६, ४०), वंशगिरि (४०), वशस्थविल (६१), सुमेरु (१, ३, ६, ७२, ११२), सन्ध्यावर्त (८), सम्मेद (८, ६, २०), सस्थली (८), सध्याभ्र (१८), श्रीशैल (४६), हिमालय (२, १०२),

वन : चारणप्रिय (४६) जनानन्द (४६), तिलक (६१), दण्डक (४०, ४२, ५६), देवारण्य (४६), नन्दन (६, २३), निकुज (१०६), निर्जल (१८), निवोध (४६), प्रमद (६, ४६), परियात्रा (३२), पाण्डुक (६, ११२), पृथ्वी कर्णतटाटवी (६), प्रकीर्णक (४६), भद्रशालिवन (६), भीमवन (८), मन्दारुण (८), मन्दारण्य (३१), महावन (१७, ४१), महेन्द्रोदय वन (८५), मेखला (८), विन्ध्याटवी (३४), श्वापद (६३, ६४), सौमनसवन (६, ४२), सुखसेव्य (४६), समुच्चय (४६), सहस्राभ (१०६)।

नगर, ग्राम, राष्ट्र, देश, द्वीप और राज्यो के नाम[११५५] · अरुण (१), अमल (६), असुर (७), अलका (५८), अम्बष्ठ (३८) अग (३८), अर्धवर्बर (२७), अलक्षपुर (२०), अश्वपुर (५५), अमृतपुर (५५), अक्षपुर (७७), अपराजित (२०), अम्भोद (५), अयोध्या (३, २०, २१, २२, २५, ३७ आदि), अलकारपुर (६, ७, १६, ४५ आदि), असुरसगीत (८), अलकारोदय (८, ६,

---

११५४ कोष्ठक मे पर्वसख्या है। कोष्ठाकित सख्या के अतिरिक्त भी उपर्युक्त नामो का उल्लेख हुआ है।

११५५ इस सूची मे पद्मपुराण मे समागत स्वर्गों के नाम भी आ गये हैं जो पद्मपुराण का पौराणिक अध्ययन करने मे सहायक सिद्ध हो सकते हैं।

४३), अरिंजयपुर (१३), अरिष्टपुर (२०, २९), अन्तिक (५), अर्धस्वर्गोत्कट (६), अतिशाखमृगद्वीप (६), आवर्त (५, ६), आवली (५), आदित्यपुर (६, १५), आलोक (११, ८५), आरण (२०), आनत (२०), आन्ध्र (१०१), ईशावती (२०), उत्तरकुरु (३, १०८), उत्कट (५), ऊर्ध्वग्रैवेयक (२०), उज्जयिनी (३३), उशीनर (१०१), ऐरावृत्त (३), कर्णकुण्डल (६, १९, ४१, ११२), कनकाभ (६), कनकपुर (१५), कमलसंकुल (२२), कम्बर (४१), कलिंग (३७, १०१), कपनपुर (५५), कक्ष (१०१), काचन (५, ६, ११०), कान्त (६), काम्पिल्यनगर (८), कापिष्ठ (२०), काकन्दी (२०, १०८), कालजर (५९), काश्मीर (१०१), काल (१०१), काशीपुर (१०८), किन्नरगीत (५, १९), किष्किन्धापुर (१, ४, ५, १९, ४७), किष्कुपुर (६, ७, १९, ४६), किन्नर (७), किंकुनगर (८), किष्कुप्रमोद (९), किन्नरगीतपुर (५५), कुमुदावली (५), कुम्भपुर (८), कुशाग्रनगर (२०, २१, ९८), कुण्डपुर (२०, २८), कुरुक्षेत्र (३१), कुसुमपुर (४८), कुशस्थल (५९) कूर्म्मपुर (४८), केलीकिल (५५), केरल (१०१), कौबेर (१०१), कोसल (१०१), कौतुकमगल (७, २४), कौशाम्बी (२०, २१ ३४, ७८), कौमुदी (३९), क्रौचपुर (४८), क्षेम (६, १०६), क्षेमा (२०), क्षेमांजलिपुर (३८), गन्धर्वगीत (५), गवीधुपद (२८), गन्धवती (४१), गगनतिलक (५५), गगनवल्लभपुर (५५), गजपुर (६३), गन्धर्वगीतपुर (५५), गान्धारी (३१), गान्धार (९४), ग्रैवेयक (२०), गोपुर (३३), गोशील (१०१), घोष (२१), चक्रवाल (५), चक्रपुर (२०, २६, ५५, ९४), चन्द्रपुर (५, ६), चम्पानगरी (८, २०, ९८), चन्द्रादित्य (८५), चारु (१०१), छत्राकारपुर (२०), ज्योतिपुर (१०, ९४), ज्योतिप्रभ (८), ज्योतिर्दण्डपुर (५५), जम्बूद्वीप (५, १७, ४३), जलधिध्वान (६), जाम्बूनद (४८), तट (५), ताम्रचूडपुर (१३२), तिलकपुर (९४), तोम (५), तोयावली (६), त्रिपुर (२, ५५), त्रिजट (१०१), त्रिशिर (१०१), दरी (१०१), दधिमुख (५१, ५५), दशागपुर (३३), दशारण्यपुर (३३), दर्भस्थल (२२), दारु (३०) द्वारिका (१०९), द्वापुरी (२०), दुर्ग्रह (५), दुर्लध्यपुर (१२), देवकुरु (३, ५३, १२३), देवोपगीत (४८, ८८), देवगीतपुर (६६), धन्यपुर (२०), नन्दन (३७), नभस्तिलक (६), नन्दीश्वर द्वीप (६), नन्द्यावर्तपुर (३७), नभोभानु (६), नाग (८५), नागपुर (२०), नित्यालोक (९); नैपाल (१०१), नैषिक (५५), नृत्यगीतपुर (५५), पद्मक (५), पद्मिनी (३९), पराजयपुर (५५), परिक्षोदरपुर (५५), पचसगम (७),

पाण्डुक (१२), पांचाल (३७), पुण्डरीक (१६, ६३), पुष्पोत्तर (२०), पुण्डरीकिणी (२०, २३), पुष्पान्तक (१, ७), पुष्कलावती (५, ३७), पृथुस्थान (४८), पृथ्वीपुर (५, २०), पोदनपुर (४, २०, २६, ८६), पौण्ड्र (३७), प्रतिष्ठपुर (६३, ६४), प्राणत (५, २०), प्रीतिकूर्मपुर (६), वंग (३७, १०१), वहुरव (६४), वहुनादपुर (५५), भरत (३, ७), भद्रिका (२०, ६८), भीरु (१०१), भूतरव (१८), मथुरा (१, २०, ८६), मगध (२, २८, ३७, ४३), मनोह्लाद (५, ६), मनोहर (५, ३०, ५५), मन्दरकुज (६), मन्दर (१७), महेन्द्रनगर (१७), महापुरी (२०), महाशुक्र (२०), महाशैलपुर (५५), महेन्द्रोदय (६६), मलय (६४), मलयानन्दपुर (५५), महाविदेह (१३), मध्यमलोक (२८), मध्यमग्रैवेयक (२०), मयूरमाल (२७), माहिष्मती (६, २२), माहेन्द्र (२०), मालव (१०१), मार्तण्डाभपुर (५५), मिथिला (२०, २१, २३, २८, ३७), मुनिभद्र (३७), मृगांकनगर (१७), मृत्तिकावती (४८), मृणालकुण्डल (१०६), मेघपुर (६, ७), मेखल (१०१), यवन (१०१), यक्षपुर (७, ६४), यक्षगीत (७), यक्षस्थान (३६), योध (५), योघन (६), रम्यक (३), रजोवली (५), रथनूपुर (१, ६, ७, १६, २८, ८८, ६४), रत्नपुर (६, १३, ५५, ६३), रत्नद्वीप (५, ६, ५५), रत्नसंचय (५, १३), रत्नस्थलपुर (१२३), रन्ध्रपुर (२८), रामपुरी (१), राजगृह (२, २०, २५, ८६) राजपुर (११), राक्षस द्वीप (४३), रिपुजयपुर (५५), रोधन (६), लका (५, ६, ७, १०, २०, ४३), लक्ष्मीगीतपुर (५५), लान्तक (२०), वत्सनगरी (२०), वर्वर (१०१), वसततिलक (३६), वज्र-पजर (६), वाह्लिक (१०१), वाराणसी (२०, ४१, ६८), विजय (२०), विजयनगर (३७), विजयावती (१२३), विदेह (३, ५, २३), विघट (५, ६), विश्रवस (७), विशाखापद (१३), विनीता (२०, ८५), विदग्ध (२६, ३०), विशालपुर (५५), वीतशोकज्ञ (२०), वेणुतट (४८), वेलन्धर (५४), वेध (१०१). वैजयन्त (२०), वैजयन्तपुर (३६), वंशस्थपुर (४०), वशस्थश्रुति (३६), वंशस्थविलपुर (४०), शकट (५), शतार (५), शर्वर (१०१), शक (१०१), शतद्वार (१२), शशिपुर (३१), शशिस्थानपुर (५५), शतमन्यु (१२३), शशाक (८५), शशिच्छाय (६४), शाल्मली (१०८), शिवमन्दिरपुर (५५), शूरसेन (१०१), शोभापुर (५५), स्फुटतट (६), स्वयप्रभ (७, ८), सर (६), समुद्र (५), सन्ध्या (५५), सन्ध्याकार सहस्रार (२०), सनत्कुमार (२०), सर्वारिपुर (३०), सर्वार्थसिद्धि (२०), साकेत (२०, ८३), साधुभद्र (३७), सांकाश्यपुर (२८), सिन्धुनद (८),

सिंहपुर (२०, ३१, ५५, ६४), सिद्धार्थ (३६), सद्भ्रतु (५), सुवेल (५, ६), सुसीमा (२०), सुमाद्रिका (२०), सुमहानगर (२०), सुरपुर (२८), सुभद्र (३७), सुवीर (३७), सूर्योदय (८, ५५), सूर्यपुर (२०), सूर्याभपुर (५५) सुखपुर (५५), सौधर्म (२०), हरि (३, ५, ६), हरिक्षेम (१२३), हरिपुर (२०, २१, ५६), हनुरुह द्वीप (१, १७), हस्तिनापुर (४, २०, २१, ३१, ८६), हिडिम्ब (१०१), हैहय (५५), हेमपुर (६, १५, ५६), हैमवत (३) हिरण्यवृत (३), हंसद्वीप (५, ६), श्रावस्ती (६, २०, ६२), श्रीगृह (६४), श्रीगुप्तपुर (५५), श्रीपुर (४६, ८८), श्रीमन्तपुर (५५), श्रीमनोहरपुर (५५), श्रीविजयपुर (६४), श्रेयस्कर (६४)।

इन नगर-जनपद-ग्राम राष्ट्रों में बहुतों का अस्तित्व इतिहास-सिद्ध है—यथा——माहिष्मती, मथुरा आदि।[११५६]

●

११५६ उपर्युक्त नदियों, पर्वतों और नगरादि के परिचय के लिए देखें——बलदेव उपाध्याय : 'पुराण-विमर्श' और डा० राजवली पाण्डेय · पुराण-विषयानुक्रमणी, प्रथम भाग।

दशम अध्याय

पद्मपुराण का जैन-रामकाव्य-परम्परा में स्थान

जैन रामकथा-परम्परा की चर्चा पहले की जा चुकी है। उसमे जैनाचार्य रविषेण के 'पद्मचरित' का महत्त्वपूर्ण स्थान है। साहित्यिक सौंदर्य, धर्मप्रचार, दार्शनिक पृष्ठभूमि एव सास्कृतिक परिचय आदि सभी दृष्टियो से इसे महनीय ग्रन्थ माना जा सकता है। यह एक सफल पौराणिक-चरित-महाकाव्य है।

पद्मपुराण को देखकर इसके रचयिता के अगाध-पाण्डित्य, उर्वर मस्तिष्क और मर्मस्पर्शी चिन्तन के प्रति बरबस आश्चर्यान्वित हो जाना पड़ता है। भाषा पर कवि का अद्भुत अधिकार है। वेगवती धारा की भाँति अजस्र गति से वह पाठक को अपने साथ बहाए ले चलती है। उसमे पौराणिक आख्यान-रूपी आवर्त हैं, वक्रोक्ति-रूपी तरंग है, दीर्घसमास-रूपी नक्र है और सबसे बढकर है भावरूपी चटुल शफरो का नर्तन। शब्द और अर्थ की इतनी सुन्दर योजना भाग्यशाली कवियो की कृतियो मे भी सम्भव है।

भाषा के साथ उसको गति देने वाला छन्दोविधान भी कम रमणीय नही है। विविध छन्दो को कवि ने चुना है और सफलता पूर्वक उनका प्रयोग किया है।

अलकारो के प्रयोग मे तो कवि सिद्ध-हस्त ही है। श्लेष, उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक समासोक्ति, विरोधाभास आदि अलकार 'अपृथग्यत्ननिर्वर्त्य,' रूप मे इस महनीय कृति मे विराजमान है। 'अयोनि' और 'अन्यच्छायायोनि' उत्प्रेक्षाएँ, साग-रूपक और उपमाएँ शताधिक सख्या मे सहृदयो का मन मोह लेती है। भाव यह है कि कलापक्ष के अन्तर्गत आने वाले सभी तत्त्वो का पूर्ण पारिपाक इस कृति मे दिखलाई देता है।

पद्मपुराण की रस-भाव-योजना भी बडी हृद्य है। अगी होते हुए भी शान्त-रस शृगार, वीर, रौद्र तथा अन्य रसो से पुष्ट होता हुआ सहृदयो के हृदयो को आवर्जित करता है। सम्वादो की गतिशीलता, प्रत्युत्पन्नमतिता, मार्मिकता, विषयसम्बद्धता, सुरुचिपूर्णता आदि विशेषताएँ इस ग्रन्थ को और भी रोचक बना देती है। प्रकृति-वर्णन बड़ी मनोरमता के साथ इस ग्रन्थ मे हुआ है। यो प्रकृति का

वर्णन उदीपन रूप मे ही अधिक है परन्तु जहाँ कही कवि ने तल्लीन होकर वर्णन किया है वहाँ उसका आलम्वन रूप भी वडी मनोहरता से व्यक्त हुआ है।

पद्मपुराण के कवि की वर्णना-शक्ति वडी अद्भुत है। अप्रतिहत गति से उसकी प्रतिभा सभी वर्णनीय विपयो को वास्तविक रूप मे प्रकाशित करती चली गयी है। एक वात को अनेक ढग से कहने का जितना वडा कौशल इस कवि को प्राप्त है उतना वहुत कम कवियो मे देखने को मिलता है। ढाई सौ से अधिक वर्णन पद्मपुराण के सौन्दर्य को और भी कलान्वित किये हुए है।

पद्मपुराण का जैन धर्म के तत्त्वो के निरूपण एव जैनधर्म के प्रचार के दृष्टि-कोण से भी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान है। दिगम्वर जैन सम्प्रदाय का यह धर्मग्रथ है। भगवत्कुन्दकुन्द, उमास्वाति यतिवृषभ आदि जितने भी रविपेण के पूर्ववर्ती आचार्य हुए है उन सभी के ग्रन्थो का उपयोग करते हुए कृति ने जैनधर्म के सिद्धान्तो को विविध प्रसगो मे प्रस्तुत किया है।

पद्मपुराण मे जैन-धर्म का दार्शनिक पक्ष भी उजागर हुआ है। इस ग्रन्थ की दार्शनिक पृष्ठभूमि पर एक स्वतन्त्र ग्रन्थ अपेक्षित है। एकादश पर्व के शास्त्रार्थ को समझने के लिए समग्र जैन-दर्शन का मनन अपेक्षित हो जाता है।

पद्मपुराण मे हमे वौद्धिक दृष्टिकोण सर्वत्र दिखाई पडता है। सभी असभव या अतिमानुप घटनाओ की वौद्धिक व्याख्या इसमे प्रस्तुत की गयी है। रावण के कण्ठहार मे उसके मुख का प्रतिविम्व पडने से उसका दशाननत्व, लागूल नामक हनूमान् का शस्त्र होना एव राक्षस-वानरों का राक्षस एव वन्दर न होकर विद्या-धरवशी राजा होना आदि कवि के तर्कसगत व्याख्या-दृष्टिकोण का परिचय प्रस्तुत करते है।

पद्मपुराण का तुलनात्मक अध्ययन की दृष्टि से भी वहुत महत्त्व है। जैन एव जैनेतर ग्रन्थो के सिद्धान्तो के प्रतिपादन मे कवि ने किस प्रकार अन्यान्य ग्रन्थ-कारो को अपनी भाषा मे प्रस्तुत किया है यह तुलना का एक रोचक एव महत्त्व-पूर्ण विषय है।[११५७]

सुभाषितो और सूक्तियो का तो यह पुराण मानो भण्डार ही है। कवि का ज्ञान कितना व्यापक था, उसका अनुभव कितना विशाल था और उस अनुभव को अभिव्यक्त करने का उसका सामर्थ्य कितना अलोकसामान्य था यह योग्य है। परिशिष्ट (अ) मे हम रविषेण की सूक्तियो की एक सूची देगे।

'पद्मपुराण' का सर्वाधिक महत्त्व उसकीसास्कृतिक पृष्ठभूमि मे सन्निहित है।

११५७ देखिए प्रस्तुत शोध प्रवन्ध के द्वितीय अध्याय मे 'रविषेण का लोकशास्त्र काव्या-द्य वेक्षण।'

तत्कालीन समाज, रीति-नीति, आचार-विचार, परम्पराओ और दृष्टिकोण को समझने के लिए यह पुराण जिस विपुल सास्कृतिक अध्ययन की सामग्री को प्रस्तुत करता है वह इसकी महत्त्वपूर्ण देन है। इस सामग्री काउपयोग करने की आवश्य-कता है। जिस प्रकार बाण की कादम्बरी और हर्षचरित सास्कृतिक अध्ययन की दृष्टि से अत्ययन की दृष्टि से अध्यन्त महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है उसी प्रकार रविषेण का 'पद्मपुराण' भी।

'पद्मपुराण' के अन्धकारपक्ष को भी प्रकाशित कर देना अनुचित न होगा। जहाँ धार्मिक उपदेशो एव साम्प्रदायिक प्रचार की अति हो गयी है वहाँ सहृदय ऊबने लगता है। ऐसे स्थलो को साहित्यिक दृष्टि से अच्छा नही कहा जा सकता। अस्तु ।

सक्षेप मे पद्मपुराण का जैन-रामकथा-साहित्य मे वही स्थान है जो ब्राह्मण-सस्कृत-साहित्य मे वाल्मीकि-रामायण का और हिन्दी-वैष्णव-रामकथा-साहित्य मे तुलसीकृत 'रामचरित मानस' क ●

एकादश अध्याय

पद्मपुराण और रामचरितमानस

आचार्य रविषेणकृत पद्मपुराण या पद्मचरित और गोस्वामी तुलसीदासकृत रामचरितमानस 'महाकाव्य के पौराणिक चरितकाव्य' भेद के उदाहरण है। पद्मपुराण और उसके कर्त्ता के विषय मे विगत दस अध्यायो मे लिखा जा चुका है। प्रस्तुत अध्याय मे तुलसी के रामचरितमानस के साथ पद्मपुराण की विविध दृष्टियो से तुलना करने का प्रयत्न होगा। तुलसीदास के वैयक्तिक परिचय—जिसमे उनकी जन्म तिथि, जन्मस्थान, माता-पिता, जाति-पाँति, बाल्यकाल, गुरु, वैवाहिक जीवन तथा वैराग्य और देह-त्याग आदि का विवेचन हो—हमारी दृष्टि से प्रस्तुत तुलना मे अनपेक्षित है। तुलसी की रचनाओ का परिचयात्मक विवरण देना भी सुधी पाठको का उपहास करना है। नागरी-प्रचारिणी-सभा की खोज रिपोर्ट (१९०३, १९०४, १९०६, १९०७, १९०८, १९०९, १९१०, १९-११, १९१७, १९१८, १९२०, १९२१ तथा १९२२) तथा कुछ और प्रमाणो से तुलसी की अनेक रचनाओ का उल्लेख मिलने पर भी उनके प्रमाणिक ग्रन्थ १२ ही माने जाते है जिनका नामग्राह इस प्रकार किया जा सकता है—(क) प्रारम्भिक रचनाएँ (स० १६१६-२५) १. रामललानहछू, २ रामाज्ञा प्रश्न, (ख) मध्य-कालीन रचनाएँ (स० १६२६-१६४५) ३ जानकीमगल, ४ रामचरितमानस, ५ पार्वतीमगल, (ग) उत्तरकालीन रचनाएँ (स० १६४६-६०) ६ गीतावली, ७ विनयपत्रिका, ८ कृष्णगीतावली (घ) अन्तिम और अपूर्ण रचनाएँ (१६६१-८०) ९. बरवै, १० सतसई दोहावली, ११ कवितावली एव १२ बाहुक। इन सभी रचनाओ मे 'रामचरितमानस' बहुचर्चित एव महत्त्वपूर्ण है जो तुलसी की काव्य-प्रतिभा और लोकनायकता का चिरस्थायी कीर्तिस्तम्भ है।

तुलसीदास के पूर्व सस्कृत तथा अन्य भारतीय भाषाओ मे पर्याप्त राम-साहित्य लिखा जा चुका था। वाल्मीकि ने जिस राम-कथा का प्रणयन किया था उसमे कुछ परिवर्तन-परिवर्धन करके अनेक कवियो ने सस्कृत तथा अन्य भाषाओ

मे काव्य, नाटक, चम्पू तथा गद्यकाव्य आदि की रचना की। इन रचनाओ का परिचय डा० कामिल बुल्के ने अपने शो र ग्रन्थ 'रामकथा' मे दिया है। इसके अतिरिक्त बौद्धो और जैनो ने भी रामकथा-सम्बन्धी कृतियाँ भारतीय साहित्य को समर्पित की है। जैन-रामकाव्य-परम्परा का परिचय प्रस्तुत ग्रन्थ के द्वितीय अध्याय मे दे दिया गया है।[११५८] बौद्धो ने ईस्वी सन् के कई शताब्दियो पूर्व राम को बोधिसत्त्व मानकर 'दशरथ जातकम्', अनामक जातकम्', तथा 'दशरथकथानकम्' आदि की रचना की। किन्तु तुलसी पर बौद्ध एव जैन रामकाव्य-परम्परा का प्रभाव नही के बराबर पडा। वाल्मीकि की परम्परा ने ही उन्हे प्रधानतया प्रभावित किया है। इस परम्परा मे कालिदास कृत रघुवंश प्रवरसेन द्वारा महाराष्ट्री प्राकृत में लिखित 'रावणवह' अथवा ''सेतुबन्ध', भट्टि द्वारा रचित 'रावणवध' अथवा 'भट्टिकाव्य', कुमारदासकृत 'जानकीहरण' अभिनन्द कृत 'रामचरित', क्षेमेन्द्रकृत 'रामायणमजरी' साकल्यमल्ल द्वारा रचित 'उदार-राघव' आदि महाकाव्य, भासकृत 'प्रतिमानाटक' और 'अभिषेकनाटक', भव-भूतिकृत 'महावीरचरित' और 'उत्तररामचरित', दिङ्नागकृत 'कुन्दमाला', मुरारिकृत 'अनर्घराघव', राजशेखरकृत 'बालरामायण', मधुसूदन अथवा दामोदर मिश्र से सम्बद्ध 'महानाटक', मायुराजकृत 'उदात्तराघव', शक्तिभद्र कृत 'आश्चर्यचूडामणि', जयदेवकृत 'प्रसन्नराघव', हस्तिमल्लकृत 'मैथिली-कल्याण', सोमेश्वरकृत 'उल्लास राघव', सुभट्टकृत 'दूतांगद', एव भास्कर-भट्टरचित 'उन्मत्तराघव' आदि नाटक, सन्ध्याकरनन्दिकृत 'रामचरित', धनजयकृत 'राघव पाण्डवीय', माधवभट्टकृत 'राघवपाण्डवीय' तथा हरदत्त सूरिकृत 'राघवनैषधीय' आदि श्लेषकाव्य, सूर्यदेवकृत 'रामकृष्णविलोमकाव्य' एव इसके अनन्तर रचे गये दो 'यादवराघवीय' आदि विलोमकाव्य, कृष्णमोहनकृत 'रामलीलामृत', तथा वेकटेशकृत 'चित्रबन्धरामायण' आदि चित्रकाव्य, वेकटेश कृत 'हससन्देश' अथवा 'हसदूत', रुद्रवाचस्पतिकृत 'भ्रमरदूत', वासुदेवकृत 'भ्रमरसन्देश', आदि दूतकाव्य तथा गीतगोविन्द के अनुकरण पर रचित 'गीत-राघव', 'जानकीगीता' एव 'संगीत-रघुनन्दन' आदि श्रृंगारिक खण्डकाव्य एव इनके अतिरिक्त और अनेक रचनाएँ आती है जो साहित्यिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण कही जा सकती है। द्रविड भाषाओ मे भी तुलसी से पूर्व रामकथा सम्बन्धी काव्य रचे जा चुके थे जिनमे कम्बनकृत 'तमिलरामायण', (तमिल) 'रगनाथरामायण', 'भास्कररामायण', (तेलुगु), 'रामचरित' (मलयालम), आदि प्रमुख है। आधु-

---

११५८. देखिये प्रस्तुत ग्रन्थ, पृ० ५३-५८।

निक आर्य भाषाओ में भी तुलसी से पूर्व कुछ राम काव्यो की रचना हो चुकी थी जिनमे कृत्तिवास की **'रामायण'**, (बगला) माधवकन्दलीकृत **वाल्मीकि रामायण का पद्यानुवाद** (असमिया) एव भालण का **'सीतास्वयंवर'** अथवा **'राम-विवाह'**, एकनाथ कृत **'भावार्थरामायण'**, (मराठी) आदि महत्त्वपूर्ण हैं। विदेशो मे भी तुलसी से पूर्व राम-कथा से सम्बद्ध कुछ कृतियाँ रची जा चुकी थी।

भाव यह है कि आदिकवि वाल्मीकि की रामायण का प्रभाव न केवल सस्कृत की रचनाओ पर अपितु सस्कृतेतर भारतीय भाषाओ की रचनाओं पर भी पडा एव अनेक ग्रन्थ-रत्नो की रचना होती रही जो तुलसी से पूर्व भी हुई एव तुलसी के बाद भी। तुलसी के बाद के हिन्दी रामकाव्य का परिचय देना हमारे लिए प्रासगिक नही है। हिन्दी मे तुलसी से पूर्व रामकाव्य अधिक समृद्ध नही है। चन्दवरदाई कृत **'पृथ्वीराजरासो'** के दूसरे **'समय'** मे दशावतार-कथा के अन्तर्गत रामकथा विषयक लगभग सौ छन्द, सम्वत् १३४२ मे भूपति द्वारा लिखित **'रामचरितरामायण'**, सम्वत् १३७५ के लगभग स्वामी रामानन्द द्वारा रचित **'रामार्चनपद्धति'**, सम्वत् १५३५ मे उत्पन्न सूरदास द्वारा रचित 'सूरसागर' के नवम स्कन्ध मे आये रामकथा-विषयक लगभग १५० पद आदि इस हिन्दी रामसाहित्य के अन्तर्गत आते है।

तुलसी ने यथासम्भव उपलब्ध राम-साहित्य का अध्ययन-मनन करके उसमे अपनी प्रतिभा का योगदान करते हुए रामचरितमानस की रचना की। रामचरितमानस की दशाधिक प्राचीन प्रतियो की चर्चा लेखको ने की है।

इन प्राचीन प्रतियो मे लिखावट भेद और पाठभेद बराबर मिलते है। गोस्वामी जी ने अपनी मृत्यु से ४६ वर्ष पूर्व 'मानस' की रचना कर डाली थी। सम्भव है कि उन्होने अपने जीवनकाल मे ही इस ग्रन्थ मे कुछ परिवर्तन या सशोधन किये हो। यद्यपि इस सम्बन्ध मे निश्चित रूप से कुछ नही कहा जा सकता फिर भी मानस की ऐसी प्रतियाँ भी उपलब्ध हैं जिनके विषय मे हमे मौलिकता का विश्वास करना चाहिए। उन प्रतियो मे नागरी प्रचारिणी सभा, काशी द्वारा सम्पादित प्रति, रामदास गौड द्वारा सम्पादित प्रति, प० विजयानन्द त्रिपाठी और डा० माताप्रसाद गुप्त द्वारा सम्पादित प्रतियाँ अधिक विश्वसनीय कही जा सकती है। गीता प्रेस, गोरखपुर ने भी मानस की लाखो प्रतियाँ मुद्रित की हैं। हमने गीता प्रेस के पाठ को ही अध्ययन का आधार बनाया है।

इससे पूर्व कि रविषेण और तुलसी के काल की परिस्थितियो का तुलनात्मक अध्ययन किया जाय और 'पद्मपुराण' और 'रामचरितमानस' विषयवस्तु, पात्र तथा चरित्र-चित्रण, भावसम्पदा, कला-कौशल, धर्म और सस्कृति की दृष्टि से

तुलनात्मक समीक्षा प्रस्तुत की जाय, रामचरितमानस का सक्षिप्त परिचय देना प्रासगिक समझा जा रहा है।

रामचरितमानस · संक्षिप्त विवेचन

रामकाव्य-परम्परा मे तुलसी के रामचरितमानस का स्थान अत्यन्त महत्त्व-पूर्ण है। 'मानस' की गम्भीरता के अनुसार ही गोस्वामी जी ने ग्रन्थ के प्रारम्भ मे उसकी विशद भूमिका बाँधी है। इस रचना के उपक्रम मे सती-मोह है और उप-सहार मे गरुड-मोह है। पार्वती और गरुड की शकाओ का समाधान ही एक प्रकार से इस ग्रन्थ का प्रतिपाद्य है। शिव और काकभुशुण्डि—दोनों ही क्रमश. पार्वती और गरुड के समक्ष नरावतार मे राम की ब्रह्मता का प्रतिपादन करते हैं और दोनो ही ज्ञान के आचार्य होकर भी भक्ति का प्रतिपादन करते है।

कथा कहने से पूर्व कवि ने अनेक प्रकार की वन्दनाओ का क्रम बाँधा है। वाणी-विनायक, भवानी-शकर, कवीश्वर-कपीश्वर और सीता-राम की वन्दना के बाद गणेश, विष्णु, शिव और गुरु की वन्दना है। फिर ब्राह्मणो, वैष्णवो तथा खलो की भी वन्दना की है। इसके पश्चात् देव, दनुज, नर, नाग, खग, प्रेत, पितर, गन्धर्व, किन्नर और रजनीचरो की वन्दना है। साथ ही ८४ लाख योनियो के जीवो की भी वन्दना की है। इस विस्तृत वन्दना का कारण बताते हुए कवि कहता है—'निज बुधि बल भरोस मोहि नाही। ताते विनय करहुँ सब पाही॥'[११५१] इसी प्रसग मे कवि ने राम-चरित का विशदता और अपनी बुद्धि की क्षुद्रता की ओर भी सकेत किया है। फिर रामकाव्य के कवियो को प्रणाम किया है। साथ ही वाल्मीकि, देव, ब्रह्मा, विबुध विप्र, बुध, ग्रह, शारदा, सुरसरिता, महेश-भवानी, अवधपुरी के नर-नारी, कौशल्या, दशरथ, परिजनसहित विदेह, राम-भरत, लक्ष्मण-शत्रुघ्न, हनुमान् जी तथा वन्दर-समाज आदि सभी को प्रणाम किया है। फिर राम-नाम की महिमा का वर्णन है।

राम-कथा के अनेक वक्ता-श्रोताओ मे गोस्वामी जी ने अपने पूर्व के तीन वक्ता-श्रोताओ का उल्लेख किया है—शिव-पार्वती, काकभुशुण्डि-गरुड, याज्ञवल्य-भरद्वाज। ये ही वक्ता-श्रोता पूर्व मे रहे है। चौथे वक्ता गोस्वामी जी स्वय हैं और श्रोता सन्त लोग। रामावतार के प्रसग के लिए ही उन्होने जय-विजय कथा तथा नारद-शाप की कथा प्रस्तुत की है। प्रतापभानु-प्रसग भी रामावतार का एक हेतु ही है। दानवो के अत्याचार और देवो की उत्पत्ति के साथ ही कवि राम

११५१ मानस, बालकाण्ड

जन्म पर आ जाता है।

मानस का कथासार · 'रामचरितमानस' में वर्णित रामकथा का अत्यन्त संक्षिप्त सार इस प्रकार है—"अयोध्यापति महाराज दशरथ की तीन रानियाँ थी किन्तु किसी भी रानी से कोई सन्तान न थी। वृद्धावस्था मे कौशल्या, सुमित्रा और कैकेयी-रानियो से राम, भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्न नामक चार पुत्र हुए। राम ज्येष्ठ पुत्र थे। उनका विवाह विदेहराज जनक की पुत्री सीता से हुआ था। कुछ समय पश्चात् राजा दशरथ ने अयोध्या के राजसिंहासन पर राम को अभिषिक्त करना चाहा परन्तु ठीक समय पर कैकेयी ने वरदान माँगकर विघ्न कर दिया। राम वन को चले गये। सीता और लक्ष्मण भी उनके साथ ही अयोध्या छोड़कर चल पड़े। कैकेयी राम के स्थान पर भरत का अभिषेक करना चाहती थी परन्तु भरत ने ही यह बात स्वीकार नही की। कुछ समय बाद राम द्वारा समझाये जाने पर भरत ने राज्य-कार्य सँभाल लिया। दुर्भाग्यवश लका का राजा रावण वन से सीता को चुराकर ले गया। राम-लक्ष्मण उसकी खोज करने निकले। इसी बीच सुग्रीव और हनुमान आदि से उनका परिचय हुआ। इन्ही की सहायता लेकर राम ने लका पर चढाई कर दी। अन्त में राम ने राक्षसो का सहार करके सीता को प्राप्त किया। अन्त मे अयोध्या लौटकर राम सिंहासन पर अभिषेक हुए और प्रजा की रक्षा करते हुए शासन कार्य करने लगे।

सात सोपान कवि ने उपर्युक्त कथा को सात सोपानो द्वारा प्रस्तुत किया है। मानस-रूपक का वर्णन करते हुए कवि ने **'सप्त प्रबंध सुभग सोपाना'** कहा है। 'आदिरामायण' मे 'सोपान' न होकर 'काण्ड' ही है। सम्भव है प्रारम्भ मे ये 'काण्ड' भी न रहे हो एव बाद मे राम के अयन (पर्यटन) के स्थानो को आधार मानकर इनकी कल्पना की गयी हो। पहले तो स्थानपरक ये पाँच ही 'काण्ड' बने—अयोध्या-काण्ड, अरण्य-काण्ड, किष्किन्धाकाण्ड और लकाकाण्ड। बाद मे सम्पूर्ण चरित को ही काण्डान्तर्गत विभक्त करने के हेतु 'बालकाण्ड' नामक दो काण्ड और जोड दिये गये। आजकल तो ये सात काण्ड सर्वमान्य बन गये है। नागरी-प्रचारिणी सभा द्वारा सम्पादित रामचरितमानस मे प्रथम दो सोपानो का कोई नाम नही लिखा गया है, तृतीय सोपान का नाम **'विमल-वैराग्य-सम्पादन'**, चतुर्थ का **'विशुद्ध-सतोष-सम्पादन'**, पाँचवे का **'ज्ञान-सम्पादन'**, छठे का **'विमल-विज्ञान-सम्पादन'** और सातवे का **'अविरल-हरिभक्ति-सम्पादन'** नाम लिखा गया है। श्री रामदास गौड द्वारा सम्पादित प्रति में प्रथम सोपान को **विमल-संतोष-सम्पादन'** और द्वितीय को **'विरल-विज्ञान-वैराग्य-सम्पादन'** नाम दिये गये है। इन्ही सात सोपानो मे कवि ने रामकथा का सम्पूर्ण रूप प्रस्तुत किया है। इन

सोपानों मे आध्यात्मिक दृष्टि से कथाक्रम के साथ भगवान् राम के चरणों तक पहुँचने का एक क्रम भी बराबर चलता दिखाई देता है।

कथारोहण: प्रथम सोपान मे, कवि ने विविध विनतियो के बाद याज्ञवल्क्य-भरद्वाज-सवाद से राम-जन्म की ओर सकेत कराया है। रावण के जन्म के साथ ही उसके लकाधिपति होने का वर्णन किया है। यथासमय राज कुमारो के नाम-करण, चूडाकरण, उपनयन और विद्यारभ आदि सस्कारो का वर्णन किया है। फिर विश्वामित्र आगमन, ताडका-वध, धनुप-यज्ञ और चारो भाइयो के विवाह का वर्णन किया है। अन्त मे उनके अयोध्या लौटकर आनन्दपूर्वक रहने के वर्णन के साथ ही प्रथम सोपान की समाप्ति होती है।

द्वितीय सोपान का आरभ राम के राज्याभिपेक की धूमधाम से होता है। कैकेयी के वर माँगने पर राम के राज्याभिषेक मे विघ्न होता है। राम वनगमन अत्यन्त मार्मिक रूप से चित्रित किया गया है। इसके पश्चात् भरत का ननिहाल से आगमन होता है। वे सिंहासन को अस्वीकृत कर राम से चित्रकूट मे मिलने जाते है। राम वापिस आने को तैयार नही होते। तब भरत नन्दिग्राम मे राम के एक प्रतिनिधि के रूप मे राजकार्य का सचालन करते है तथा अपना मन राम के चरणो मे अर्पित किये रहते है।

तृतीय सोपान मे—राम शरभग के आश्रम मे जाते है। विराध का वध होता हैं। ऋषि-अस्थियो को देखकर राम 'निसिचर हीन करौं महि'—आदि प्रतिज्ञा करते है। पर्णकुटी-निर्माण, जटायु-मिलन, शूर्पनखा की आसक्ति, एव विरूपी-करण, खरदूषण-वध, रावण द्वारा राम से विरोध का निश्चय, सीताहरण, मारीच-वध, जटायु सस्कार आदि इसी सोपान के अन्तर्गत आते है। राम के पम्पा सरोवर पहुँचने पर वह सोपान समाप्त हो जाता है।

चतुर्थ सोपान मे, पम्पा सरोवर से राम ऋष्यमूक पर्वत पर पहुँच जाते है। हनुमान के माध्यम से सुग्रीव से उनकी मित्रता होती है। वालि-सुग्रीव का युद्ध, वालि-वध, सुग्रीव का राज्याभिषेक, प्रवर्पणगिरि पर वर्पाकाल मे निवास, शरदा-गम पर हनुमान आदि द्वारा सीतान्वेपण-प्रस्थान, सम्पाति द्वारा सीता के लका मे होने की सूचना आदि वर्णनो के साथ आगे बढता हुआ यह सोपान जाम्बवान् द्वारा प्रेरणा प्राप्त करके लका जाने को प्रस्तुत हनुमान को जाम्बवान के परामर्श के साथ समाप्त हो जाता है।

पचम सोपान मे, हनुमान सुरसा का आशी प्राप्त करते और सिन्धुवासिनी निशिचरी (सिंहिका) का वध करते हुए लका मे प्रविष्ट होते हैं। उनकी विभीषण से भेट होती है। उसी की बतायी हुई युक्ति से उन्हे सीता का दर्शन होता है।

हनुमान द्वारा वृक्ष पर बैठकर रावण की धमकियाँ देखना, त्रिजटा द्वारा सीता का आश्वासन, हनुमान द्वारा मुद्रिका गिराना, राम का सन्देश देना, वन उजाडना, अक्षकुमार का वध करना, वन्दी होना, रावण द्वारा पूँछ मे आग लगवा देना, हनुमान द्वारा लका-दहन एवसीता की चूडामणि लेकर राम को सन्देश देना, राम की लका पर चढाई, विभीषण-राम-मिलन, राम द्वारा विभीषण को 'लंकेश' कह-कर उसका अभिषेक करना, समुद्र द्वारा मार्ग-दान आदि विस्तृत एव मार्मिक प्रसगो के वर्णन के साथ यह सोपान समाप्त हो जाता है।

षष्ठ सोपान मे, राम सेतु से अपनी सेना उस पार लका मे उतार देते हैं। रावण को क्षणिक भय होता है। मन्दोदरी और प्रहस्त आदि उसे समझाते हैं। राम सुवेल-शिखर पर शिविर लगा देते है। रावण के छत्र और मन्दोदरी के ताटको को वे अपने बाण से वही बैठे-बैठे गिरा देते है। फिर अगद का दौत्य, रावण-अपमान, राम-रावण-सेनाओ मे युद्ध, लक्ष्मण-मूर्च्छा, सुषेण वैद्य द्वारा उपचार, कुम्भकर्ण-वध, मेघनाद-वध, रावण-वध, सीता-मिलन, अमृत-वर्षा और मृत वानर-भालुओ का जीवित होना, विभीषण का राज-तिलक होना, पुष्पक विमान द्वारा राम-लक्ष्मण और सीता का अयोध्या लौटना, हनुमान के द्वारा भरत को उनके आगमन की सूचना आदि के साथ यह सोपान समाप्त हो जाता है।

सप्तम और अन्तिम सोपान मे, अयोध्या की जनता राम-लक्ष्मण और सीता आदि का स्वागत करती है। राम का राज्याभिषेक होता है। कुछ दिनों के पश्चात् राम अन्य सेवको को विदा करके हनुमान को अपने पास रहने देते है। फिर राम-राज्य का वर्णन है। इसके पश्चात् कवि ने शिव के द्वारा पार्वती को, काक भुशुण्डि और गरुड का प्रसग कहलाया है। इसी प्रसग मे कलि-धर्म-निरूपण, ज्ञान भक्ति का अन्तर और समन्वय एव बाद मे सभी सवादो का उपसहार है। गरुड ने काक-भुशुण्डि को और पार्वती ने शिव को अपने राम-सम्बन्धी सन्देहनाश की सूचना दी है। फिर कवि के मानसिक विश्राम का उल्लेख है। अन्त में कवि ने राम से अज्ञान-शान्ति की प्रार्थना की है और संस्कृत के दो श्लोको मे रामचरितमानस मे भक्तिपूर्वक अवगाहन करने का फल बताया है। इस प्रकार रामचरित की पूर्ति पर सप्तम सोपान समाप्त हो जाता है।

मानस का आधार : रामकथा का आधार लेकर केवल भारत में ही नही, अपितु विश्व-भर मे विपुल साहित्य की सृष्टि हुई है, परन्तु सम्पूर्ण राम-साहित्य मे गोस्वामी तुलसीदास के 'रामचरितमानस' का स्थान सर्वश्रेष्ठ माना जाता है। इस ग्रथ मे वर्णित विषय के प्रधान रूप से दो ही ग्रन्थ आधार माने जाते है:— 'वाल्मीकिरामायण' और 'अध्यात्मरामायण'। कवि ने ग्रन्थारम्भ में ही अपने

ग्रंथ के आधार की सूचना निम्नलिखित श्लोक के द्वारा दे दी है.—

"नानापुराणनिगमागमसम्मतं य—
द्रामायणे निगदितं क्वचिदन्यतोऽपि।
स्वांतः सुखाय तुलसी रघुनाथगाथा—
भाषानिबन्धमतिमंजुलमातनोति।।"[१२६०]

यहाँ 'क्वचिदन्यतोऽपि' ध्यान देने योग्य है। नाना-पुराण, निगम, आगम, रामायण आदि तो इसके आधार है ही, साथ ही कुछ और भी—अनेक काव्यादि-इसके आधार रूप मे अवस्थित है। 'मानस' के कुछ प्रकरणो को सामने रखकर यह आधार देखा जा सकता है, यथा —

'शिव ने अपने मानस मे रामकथा को रचकर रख छोड़ा और समय पाकर पार्वती को सुनाया—यह कथा 'महारामायण' और 'रामायणमाला', के समान हैं। शील निधि राजा के यहाँ स्वयम्वर की कथा 'रामायणचम्पू' के समान, नारद-मोह-वर्णन 'शिवमहापुराण' के सृष्टि-खण्ड (अध्याय ३-४) के समान, रावण-कुम्भकर्ण-अवतार' 'भागवतमहापुराण', 'शिवमहापुराण', और 'आनन्दरामायण' के समान उल्लिखित है। प्रतापभानु, अरिमर्दन और धर्मरुचि के रावण, कुम्भकर्ण और विभीषण होने की कथा 'अगस्त्यरामायण' और 'मंजुलरामायण' के अनुसार वर्णित है। मनु-शतरूपा की तपस्या, पूर्णब्रह्म से पुत्र रूप मे अवतरित होने का वरदान 'संवृतरामायण' के अनुसार, पुत्रेष्टि यज्ञ, देवताओ की विष्णु से अवतार की प्रार्थना, पायस प्राप्तकर रानियो को वितरण, देवताओ का वानर आदि योनियो मे जन्म, राम का अपनी माता को विराट् रूप दिखलाना तथा उनकी बाल-लीला का कुछ वर्णन, विश्वामित्र-आगमन तथा राम-लक्ष्मण की यज्ञ रक्षा के लिए याचना का वर्णन, 'अध्यात्मरामायण' के अनुसार गोस्वामी जी ने किया है। अहल्योद्धार वर्णन, 'नृसिहपुराण,' स्कन्दपुराण,' 'पद्मपुराण', 'आनन्दरामायण' और 'रघुवंश' के अनुसार, गिरिजा-पूजन, सीताराम के पारस्परक आकर्षण का वर्णन, जानकी विवाह और जानकीहरण 'स्वयंभू रामायण' के अनुसार, परशुराम-प्रकरण 'महावीरचरित', 'बालरामायण', 'प्रसन्नराघव' और महानाटक के अनुसार वर्णित है। रामराज्याभिषेक की तैयारी, वसिष्ठराम-वार्तालाप, राज्याभिषेक के विघ्न आदि और राम-वन-गमन 'अध्यात्मरामायण' के अनुसार, कैकेयी का दोष सरस्वती के के ऊपर होने का वर्णन, 'आनन्दरामायण' के अनुसार, रामवनगमन के प्रसग मे केवट-संवाद 'चान्द्ररामायण', 'अध्यात्मरामायण' और 'आनन्दरामायण' के अनुसार, राम के चरण धोने का वर्णन 'सूरसागर' के अनुसार, प्रयाग-माहात्म्य, भर-

१२६० मानस, बालकाण्ड, मगलाचरण, ७।

द्वाज-पहुनाई 'सुब्रह्मरामायण' के अनुसार, ग्रामवधूटियों का स्नेह-कथन और उनका पश्चात्ताप-वर्णन 'सौपद्मरामायण' के अनुसार, वाल्मीकि-मिलन और चित्रकूट-निवास-वर्णन 'रामायणमणिरत्न' और 'अध्यात्मरामायण' के अनुसार, सुमन्त्र के अयोध्या लौटने का वर्णन उनका विलाप एव दशरथ-मरण, अध्यात्मरामायण' के अनुसार, भरत-शपथ, भरत-विलाप, राम को लौटाने की तत्परता, निषाद-रोष, निषाद-भरत-सवाद और लक्ष्मण-रोष, आदि कथाएँ 'दुरन्तरामायण' के अनुसार है। भरत-चित्रकूट-यात्रा' 'अध्यात्मरायायण' के अनुसार, जनक-चित्रकूट-आगमन 'श्रवणरामायण' के अनुसार, जयन्त की कथा 'देवरामायण' के अनुसार, अत्रि-राम-मिलन, अनसूया-सीता-सवाद एव नारी-धर्म-निरूपण, 'रामायणमणिरत्न' के अनुसार, विराधवध, शरभग का शरीरत्याग, सुतीक्ष्ण का प्रेम एव राम-अगस्त्य-मिलन, अध्यात्मरामायण' के अनुसार, दण्डकारण्य पवित्र करते हुए राम के पंचवटी आगमन और निवास की कथा 'वाल्मीकिरामायण' के अनुसार, गृध्रराज जटायु की मित्रता, लक्ष्मण को उपदेश, शूपनखा को दण्ड, खरदूषण-वध, शूर्पनखा का रावण के पास आगमन, राम का मर्म समझना, रावण-मारीच-सम्वाद, सीता का अग्नि-प्रवेश, मायामयी सीता की रचना, रावण द्वारा सीता-हरण और मारीच-वध, 'अध्यात्मरामायण' के अनुमार है। सीता-विलाप, जटायु-सहायता, उसकी मुक्ति का वर्णन, कवन्ध-वध, रामशबरी-भेट, नवधा-भक्ति-वर्णन, 'मृडुलरामायण' के अनुसार, शबरी की मुक्ति और पम्पासर-गमन की कथा 'अध्यात्मरामायण' के अनुसार, राम-नारद-सवाद, 'सौपद्मरामायण' के अनुसार, राम-हनुमान-मिलन, सुग्रीव-मैत्री, वालि-वध, सुग्रीव-राज्याभिषेक, राम-लक्ष्मण का प्रवर्षण-निवास, सुग्रीव द्वारा वानरो को सीता की खोज के लिये भेजा जाना, विवर-प्रवेश और सम्पाति-मिलन, 'अध्यात्मरामायण' के अनुसार, समुद्र-तीर पर अगद-विलाप एव वानरो का सम्भाषण, 'दुरन्तरामायण' के अनुसार, समुद्र-सन्तरण, लका-प्रवेश, सीता-धैर्य-प्रदान, वन उजाडना, लका-विध्वस एव वहाँ से वापस लौटकर सीता-सदेश का राम से कथन, 'अध्यात्मरायायण' के अनुसार, सेना सहित राम का समुद्र के किनारे आगमन, सेतु-बन्धन, विभीषण-मिलन, और उसका अभिषेक 'अध्यात्मरामायण' के अनुसार, मन्दोदरी का समझाना, 'सुवर्चसरामायण' के अनुसार अगद का दूतकार्य 'वाल्मीकिरामायण' के अनुसार, राक्षस-वानर-सग्राम, कुम्भकर्ण-वध मेघनाद-लक्ष्मण-युद्ध, लक्ष्मण का शक्ति-निहत होना, हनुमान द्वारा सजीवनी लाना, उपचार से लक्ष्मण का स्वस्थ होना, 'अध्यात्मरामायण' और 'सुवर्चसरामायण', के अनुसार, मेघनाद-वध, रावण-यज्ञ-विध्वंस, राम-रावण-युद्ध, रावण के नाभि-प्रदेश मे अमृत, रावण-वध, विभीषण का राज्याभिषेक,

सीता की अग्नि-परीक्षा, 'अध्यात्मरामायण' के अनुसार, वेद-शिव-इन्द्र-ब्रह्मा द्वारा राम की स्तुति, 'रामायणमणिरत्न' के अनुसार, पुष्पकारूढ राम का लक्ष्मण-सीता सहित, प्रमुख वानरो के साथ अयोध्यागमन, राज्याभिषेक, अनेक प्रकार नृपनीति का वर्णन, 'अध्यात्मरामायण' के अनुसार, काकभुशुण्डि-कथा, 'भुशुण्डि-चरित', 'भुशुण्डिरामायण' और 'सत्योपाख्यान' के अनुसार एव शिव के मराल वेश मे नीलगिरि पर रामकथाश्रवण का वृत्तान्त 'रामायणमहामाला' के अनुसार वर्णित है।'

कथावस्तु योजना में कवि-कौशल : उपर्युक्त विवेचन से गोस्वामीजी की मधुकरी वृत्ति और गम्भीर अध्ययन का एक साथ परिचय मिलता है। घटनाओ क्रमबद्ध सजाने और उन्हे मौलिक रूप प्रदान करने की गोस्वामी जी मे अद्भुत क्षमता दिखाई देती है।' 'अध्यात्मरामायण' और 'आदिरामायण' आदि ग्रन्थो से कथासूत्र लेकर भी उन्होने यथासमय उसमे परिवर्तन किया है और इस प्रकार कथाक्रम में एक आकर्षक विशेषता आ जाती है। कुछ घटनाओ के हेर-फेर से आने वाली नवीनता का सकेत इस प्रकार किया जा सकता है:—

(१) कवि ने रामसीता का साक्षात्कार विवाह से पूर्व पुष्पवाटिका मे ही कराया है। यह उन्होंने 'प्रसन्नराघव' के अनुसार ही किया है। इससे कवि को पूर्वानुराग चित्रण करने का पर्याप्त अवसर मिल गया है। इस मिलन मे गोस्वामी जी ने मर्यादा का कितना ध्यान रखा है कि मिलन एकान्त मे न दिखाकर सखियो के साथ रखा है। राम के साथ लक्ष्मण भी है। इसका भी कवि ने ध्यान रखा है। यहाँ प्रेम अकुरित हुआ है, छलका नही है।

(२) धनुर्भंग की घटना भी कवि ने राजसभा मे ही दिखाई है। इससे नाटकीयता का वातावरण उत्पन्न करने मे पर्याप्त सहायता मिली है। वन्दीजनो द्वारा जनक की प्रतिज्ञा की घोषणा, राजाओ की असफलता, जनक की निराशा, लक्ष्मण का आवेश और धनुर्भंग से पूर्व उनके द्वारा शेष तथा कच्छप को सावधान करने मे नाटकीय आनन्द आ जाता है। इससे कवि को वातावरण की सृष्टि और उसका वर्णन करने का अवकाश मिल सका है।

(३) परशुराम को धनुर्भंग के पश्चात् राजसभा मे ही बुलाया है, लौटती बार बीच मार्ग मे नही। इससे राम-परशुराम-सवाद और विशेषरूपेण लक्ष्मण-परशुराम-सवाद को अवकाश मिल गया है। इस घटना से कवि ने एक ओर तो मनोविज्ञान के चित्रण का अवसर ढूँढ निकाला है। दूसरी ओर लक्ष्मण और परशुराम के सवाद द्वारा एक दर्पपूर्ण ऋषि को विजित दिखाकर उपस्थित राजाओ को लक्ष्मण-राम के प्रति विशिष्ट भावना बनाने के लिए विवश भी किया है।

(४) भरत के राम से मिलने के लिए चित्रकूट जाते हुए निषादराज के भिड़ जाने की तैयारी का वर्णन तो तुलसीदास का एकदम मौलिक प्रकरण है। अवसर की अनुकूलता तथा मनोविज्ञान——दोनो ही इस घटना की स्वाभाविकता का प्रमाण देते हैं। इस घटना का निर्वाह अत्यन्त कुशलता से किया गया है।

(५) राम के चित्रकूट में निवास के समय कवि ने वहाँ जनक को भी पहुँचाया है। भला राम और सीता वनवास का कष्ट भोगें और पिता जनक पर इसका कुछ भी प्रभाव न हो——यह कैसे सम्भव था? कवि ने इसका अवसर निकाल कर जनक को चित्रकूट के सारे कार्यक्रम में उपस्थित दिखाया है। इससे जनक के मन मे पुत्री सीता के चरित्र की एक सन्तोषजनक तस्वीर खिचती है। यह गृहस्थ-जीवन का एक मार्मिक चित्र है।

(६) पम्पासर पर नारद को राम के समीप पहुँचाकर कवि ने ग्रन्थारम्भ मे वर्णित नारद-मोह की कड़ी को जोड़ दिया है। यह कवि की प्रबन्ध-कुशलता ही है।

(७) लका जाने पर हनुमान से विभीषण की भेट का वर्णन करना भी विभीषण की रामभक्ति के परिचय के लिए अत्यन्त आवश्यक था। कवि ने भविष्य की योजनाओ का श्रीगणेश हनुमान्-विभीषण-मिलन के द्वारा कर दिखाया है।

(८) हनुमान के समक्ष सीता-त्रिजटा-सवाद कराकर कवि ने सीता की प्रेम-विह्वलता का सुन्दर परिचय कराया है। हनुमान को इस परिस्थिति का पूर्ण परिचय देने के लिए यह बुद्धिमत्तापूर्ण आयोजन कहा जा सकता है।

(९) मनोवैज्ञानिक आधार पर कवि ने युद्ध से पूर्व सुवेल-शिखर, चन्द्रोदय, रावण के अखाडे आदि के मनमोहक चित्र उपस्थित किये हैं। ये विरोधी भावनाएँ भी हमारी कल्पना को आनन्द प्रदान किया करती हैं। साथ ही इनसे परिस्थितियो मे गम्भीरता भी आ जाती है।

(१०) शिष्ट-परम्परा के अनुसार तथा राजनीति के नियमो के अनुसार अंगद को युद्ध से पूर्व दूत बनाकर रावण के पास भेजा गया है। यह भी एक महत्त्वपूर्ण आयोजन है। परन्तु अंगद के व्यवहार मे कुछ मर्यादा का उल्लंघन दिखाई देता है। सम्भवत. इसका कारण कवि के मन की यह भावना है कि रावण राम का शत्रु था। फिर भी राज-दरबार की मर्यादा का ध्यान रखना आवश्यक था (जैसा कि केशव ने रखा है।)।

(११) कवि ने लक्ष्मण को रावण के प्रहार से मूर्च्छित न कराकर मेघनाद की शक्ति से मूर्च्छित दिखाया है। इस प्रकार कवि ने शक्ति और वीरता का एक प्रकार से बँटवारा दिखाया है। केवल रावण ही वीर नही था, मेघनाद और

कुम्भकर्ण आदि भी महाबली थे। साथ ही राम से रावण और लक्ष्मण से मेघनाद की वैर-भावना दिखाने के प्रकरण मे आकर्षण आता है।

(१२) रावण द्वारा प्रेरित शक्ति—जिसे उसने विभीषण को मारने के लिये छोडा था—लक्ष्मण की छाती पर नही राम की छाती पर जाकर लगती है। उसे राम ने अपने भक्त की रक्षा के लिए अपने वक्ष पर झेला है। इससे कथा-नायक राम का चरित्र और भी ऊँचा उठ जाता है। उनकी शरणागतवत्सलता प्रकट हो जाती है।

(१३) राम को नागपाश मे वन्दी दिखाकर कवि ने उत्तरकाण्ड के काक-भुशुण्डि-गरुड-सवाद के लिए कारण वना लिया है। उसी के सहारे ज्ञानभक्ति-विवेचन जैसे महत्त्वपूर्ण प्रकरण सामने आये हैं।

(१४) सीता-वनवास और लवकुश-जन्म आदि की कथा को कवि ने जान-बूझकर छोड दिया है। इससे काव्य सुखान्त वन सका है। भारतीय परम्परा का कवि ने खूब पालन किया है। अन्य ग्रन्थो मे यह कथाश बराबर आता है परन्तु तुलसीदासजी ने उनके साथ कथा का उपसहार करना उचित नही समझा है।

कवि की मौलिकता : कई नये मोड देकर और कुछ नवीन प्रसगो की उद्भावना करके तुलसी ने युग-युगान्तर से चली आती रामकथा को अत्यन्त आकर्षक, मनोवैज्ञानिक एव प्रभावपूर्ण वना दिया है। 'रामचरितमानस' के कथानक को सुव्यवस्थित, मर्यादित, गरिमापूर्ण और साहित्यिक रूप प्रदान करना गोस्वामी जी का प्रशसनीय कार्य है। कुछ प्रसग तो उन्होने कथा को सर्वांगपूर्ण वनाने के लिए ही जोडे है। दो-चार प्रसगो का यहाँ उल्लेख किया जाता है—

(१) राम-लक्ष्मण के सीता-स्वयंवर के अवसर पर मिथिला जाने के समय वहाँ की स्त्रियाँ उनके रूप-सौन्दर्य को लेकर परस्पर खूब बातें करती है। यह स्त्रियो के स्वभावानुसार ही है। आजकल भी किसी वर को देखने के लिए स्त्रियाँ एकत्र हो जाती है। इस वार्तालाप के द्वारा भावी सीता-पति के लिए कवि ने एक अवसर की भी सृष्टि की है।

(२) वनगमन के समय ग्रामवधूटियो का समागम और सीता के साथ उनका वार्तालाप गोस्वामी जी की नयी उद्भावना है। इससे स्त्रियो के सहज स्वभाव और मर्यादित शृगार के चित्रण को अवकाश मिला है। साथ ही मार्मिकता भी आती है। भोली स्त्रियाँ अयोध्या की राजवधू की दशा को देखकर पानी-पानी हो जाती है।

(३) प्रारभ की विस्तृत वन्दना, मानस-रूपक और बालकाण्ड का अधिकाश भाग कवि की मौलिकता का ही परिचायक है। वन्दनाओं से एक साथ सास्कृतिक

वातावरण और विनय-शीलता का प्रभाव प्रकट होते है।

(४) चार प्रसिद्ध सवादो की अवतारणा भी मौलिक ही है। इससे प्रबन्ध-सौष्ठव सम्पन्न होता है। साथ ही कवि की महाकाव्य लिखने की क्षमता का परिचय भी मिलता है।

(५) उत्तरकाण्ड का ज्ञान-भक्ति-विवेचन कवि की नयी देन ही कही जा सकती है। यह तत्कालीन धार्मिक परिस्थिति के फलस्वरूप लिखा गया है।

(६) अनेक स्थलो पर कथानक को गोस्वामीजी ने एकदम मौलिक रूप मे उपस्थित कर दिखाया है। उनकी कलात्मकता सचमुच प्रशसनीय है। उन्होने कथा के आधारभूत नये सिद्धान्त समक्ष रखे है। व्यापक रूप से सारे काव्य को राम-भक्ति मे डुबोकर रख दिया है। यह भी नवीनता ही है।

(७) सभी चरित्र पूर्ववर्ती रामकथा के चरित्रो से विलक्षण बना दिये हैं।

(८) अयोध्याकाण्ड तो मौलिकता का प्रमुख उदाहरण माना जा सकता है। इसके पूर्वार्द्ध के प्रसगो मे तुलसी की मौलिकता स्पष्ट है। भरत का आदर्श चरित्र तो एकदम गोस्वामी जी की लेखनी की ही देन है। उसकी भ्रातृवत्सलता अनुपम है। श्रीराम के प्रति वे अनन्य भक्ति-भावना से परिप्लुत है और अपनी माता तक को खरी-खरी सुनाते है।

'रामायण' और 'मानस' के कुछ प्रसंग राम के चरित पर सर्व प्रथम लिखा गया काव्य आदिकवि वाल्मीकि का **'रामायण'** ही है। उसीके पीछे राम काव्यो की परम्परा चलती है। गोस्वामीजी ने जहाँ अनेक स्थलो पर रामकथा को ज्यो का त्यो रहने दिया है वहाँ अधिकाश स्थल ऐसे है जिनमे नवीनता के लिये आवश्यक परिवर्तन कर दिये है। इसका कारण यह है कि आदि कवि वाल्मीकि को तो केवल चरित-काव्य लिखना था, उनके नायक भी साधारण मनुष्य थे परन्तु गोस्वामी जी को तो रामभक्ति की स्थापना के लिये ग्रन्थ रचना करनी थी। इसी कारण उनके नायक परब्रह्म राम है। वे तो **'बिधि हरि सभु नचावनहारे'** है। इसके अतिरिक्त दोनो कवियो ने रामजन्म के प्रकरण का भी अपने ढग से ही वर्णन किया है। राम लक्ष्मण को लिवा जाने के लिए जब विश्वामित्र दशरथ के पास आते है तो वाल्मीकि के विश्वामित्र क्रोधित हो उठते है परन्तु तुलसी के विश्वामित्र यहाँ हर्षित होते है। रामायण मे, आश्रम की ओर राम-लक्ष्मण के साथ जाते हुए कवि उन्हे अनेक कथा सुनाते है परन्तु तुलसी के 'मानस' मे उस समय केवल गगा की ही कथा का उल्लेख आता है। वाल्मीकि ने विश्वामित्र और राम-लक्ष्मण के जनकपुरी-प्रवेश का वर्णन नही के बराबर ही किया है वे सीधे स्वम्बर मे पहुँचा दिये गये है। गोस्वामीजी ने मनोवैज्ञानिक एव मर्यादित ढग से सभी मत्रियो, पुरोहित और

श्रेष्ठ लोगो के सहित जनक द्वारा उनकी अगवानी कराई है। वाल्मीकि ने मन्थरा का विशद एवं सुन्दर वर्णन किया है, वहाँ मानस की भाँति केवल **'गई गिरा मति फेरि'** कहकर ही प्रसग समाप्त नही किया गया है। कैकेयी की धाय होने के कारण ही मन्थरा का भरत के राज्याभिषेक के प्रति पक्षपात दिखाया गया है। वह अधिक मनोवैज्ञानिक है। तुलसीकृत मानस के अरण्यकाण्ड की कितनी ही कथाएँ वाल्मीकिरामायण के अयोध्याकाण्ड मे आ जाती है। कुछ कथाएँ वाल्मीकि मे हैं किन्तु तुलसी मे नही और कुछ तुलसी मे है पर वाल्मीकि मे नही। कुलपति तपस्वियो के राक्षस-भय से आश्रम त्याग की कथा 'मानस' मे नही है, इधर इन्द्र पुत्र की कथा रामायण मे नही है। वाल्मीकि ने अत्रि द्वारा राम की पूजा का प्रसग भी नही दिया है। हाँ, अनसूया द्वारा सीता को उपदेश दोनो ही कवियो ने दिलाया है। शरभग की कथा वाल्मीकि ने विस्तार से दी है जब कि तुलसी ने इस प्रसग को अत्यन्त सक्षेप मे ही कहकर समाप्त कर दिया है। वाल्मीकि मे ऋषिगण राम को अस्थियो का ढेर दिखाते है। परन्तु तुलसी अपने राम को स्वय ही अस्थि-कूट देखकर 'निसिचर हीन करौ' आदि प्रतिज्ञा करने का अवसर देते है। राम सुतीक्ष्ण-मिलन की कथा मानस मे जहाँ अत्यन्त भावपूर्ण है वहाँ रामायण मे उसका उल्लेख भी नही है। मारीच-रावण-सलाप रामायण मे विस्तृत है किन्तु मानस मे इसका सकेतमात्र ही किया गया है। वाल्मीकि ने सीता द्वारा लक्ष्मण को अपशब्द कहलाये है परन्तु तुलसी ने केवल **'मरम बचन सीता तब बोला'** कहकर ही इसका सकेत कर दिया है। इस प्रकार कथा के प्राय सभी प्रसगो पर दोनो कवियो के विचार और शैली अलग-अलग दिखाई देते हैं। पात्रो के चरित्रो मे भी पर्याप्त अन्तर दिखाई देता है। राम का चरित्र तो स्पष्टतया अन्तरयुक्त है ही रामायण मे लक्ष्मण अत्यन्त तेजस्वी, उग्र स्वभाव, भ्रातृ-सेवक और अनुपम योद्धा है, मानस मे वे उक्त गुणो के अतिरिक्त विचारशील-भक्त और दार्शनिक रूप मे भी उपस्थित होते हैं। भरत के चरित्र को तो मानसकार ने तराशकर एकदम चमकीला हीरा ही बना दिया है। वाल्मीकि के भरत भाई राम के चरित्र पर सन्देह करते है परन्तु तुलसी के भरत ऐसा स्वप्न मे भी नही सोच सकते। वाल्मीकि के दशरथ स्पष्टत कामी है परन्तु तुलसी के दशरथ पुत्र-वत्सल पिता है। रानियो के चरित्रो मे भी इसी प्रकार अन्तर मिलता है। स्पष्ट है कि वाल्मीकि के कथानक से तुलसी का कथानक कही अधिक प्रभावशाली है।

मानस के प्रतीक : कुछ विद्वानो ने मानस की कथा और पात्रो को प्रतीक मानकर इसके अन्य अर्थ भी प्रस्तुत किये है। डा० बलदेव प्रसाद मिश्र ने अपने **'भारतीय संस्कृति'** नामक ग्रन्थ मे सीता को समृद्धि और राम तथा रावण को

क्रमश. रमणीयता और भयानकता का प्रतीक माना है। समृद्धि तो रमणीयता के साथ ही कल्याणकारिणी हो सकती है। उसका भयानक प्रकृति से सम्बन्ध क्षणिक हो सकता है, स्थायी नही। इस प्रकार सीताहरण की कथा को उन्होने सस्कृति और सभ्यता के सघर्ष का इतीक माना है।

इसके अतिरिक्त यह कथा अभ्युदय और नि श्रेयस की सिद्धि का भी प्रतीक है क्योंकि कथा दो मुनियो के सकेतो पर केन्द्रित है। एक तो विश्वामित्र के और एक अगस्त्य के। विश्वामित्र यदि अभ्युदय के प्रतीक है तो अगस्त्य नि श्रेयस के क्योंकि इन्ही के आदर्शो से राम ने क्रमशः सीता को प्राप्त किया और विश्वकल्याण के लिए राक्षसो का सहार किया है।

ताडका, मन्थरा और शूर्पणखा के चारो ओर घूमने के कारण यह कथा एक प्रकार से क्रोध (ताडका), लोभ (मन्थरा) और काम (शूर्पणखा) आदि की ही कथा है। गीता मे कहा भी गया है—

'त्रिविधं नरकस्येदं द्वार नाशनमात्मनः।
कामः क्रोधश्च लोभश्च तस्मादेतत्त्रयं त्यजेत्॥'

इस प्रकार कथा स्पष्ट रूप से क्रोध, लोभ और काम पर विजय प्राप्त करने की साधना की प्रतीक बन जाती है।

पौराणिक-चरित-महाकाव्यत्व · 'रामचरितमानस' हिन्दी का अत्यन्त गरिमापूर्ण अनुपम, **पौराणिक-चरित-महाकाव्य** है। प्रथम अध्याय में उक्त महाकाव्य चरितकाव्य एव पौराणिक काव्य के समस्त उदात्त लक्षणो का इसमें दर्शन दिया जा सकता है।

आचार्य दण्डी के काव्यलक्षण का हम पीछे उल्लेख कर चुके है।[११६१] वही हमने यह भी बताया है कि साहित्यदर्पणकार विश्वनाथ प्राय उनके मत के ही अनुयायी है। उन्होने कुछ और नवीन बातो का उल्लेख कर दिया है, यथा—'सर्गा अष्टाधिका इह' आदि। यदि सर्गो की सख्या वाली बात को उपेक्षित कर दिया जाय तो मानस हिन्दी का ही नही भारतीय साहित्य का सर्वश्रेष्ठ महाकाव्य ठहरता है। यह सर्गबद्ध रचना है, इसके प्रारम्भ में लम्बा मगलाचरण है, इतिहास प्रसिद्ध रामकथा का उसमें अपने दृष्टिकोण से प्रतिपादन है, चतुर्वर्ग की प्राप्ति-विशेषत. मोक्ष के साधन भक्ति की सिद्धि उससे होती है, इसके नायक मर्यादा-पुरुषोत्तम भगवान् राम परम उदात्त है, नगर आदि के समुचित कथानकोपयोगी वर्णन है, इसमे अलकारो का सुन्दर गुम्फन है, विस्तृत कथानक है, सर्गान्त मे छन्द बदले हुए है।

११६१. दे० प्रस्तुत ग्रन्थ पृ० ४७

जहाँ तक आधुनिक आलोचकों द्वारा मान्य महाकाव्य के लक्षणों का प्रश्न है[११६२] वे भी समुचित रूप मे 'मानस' मे घटित होते है। उसका उद्देश्य महान् हैं, एक आदर्श राम-राज्य की स्थापना उसका लक्ष्य है, उसकी प्रेरणा अधर्म पर धर्म की विजय है, उसकी कलापूर्णता असन्दिग्ध है जिसका हम आगे सकेत देंगे। उसका गुरुत्व, गाम्भीर्य और महत्त्व अनेक मनीषियो द्वारा मौलिमालाओ से लालित है। युग-जीवन का समग्र चित्रण उसके 'कलिधर्म-निरूपण' आदि मे प्राप्त होता है। उसका कथानक सुसम्बद्ध, व्यायत एव सजीवनी शक्ति से परिपूर्ण है। यह काव्य आज भी भारत को चेतन बनाने वाला है। इसके नायक महत्त्वपूर्ण तथा आदर्श है, अन्य पात्र भी महाकाव्योचित गरिमा से परिपूर्ण है। इसकी शैली वेजोड़ तथा रसव्यजना मार्मिक हैं।

यह महाकाव्य के **'पौराणिक चरितकाव्य'** भेद का प्रतिनिधित्व करता है। मानस के अतिरिक्त हिन्दी मे दूसरा पौराणिक चरितमहाकाव्य नही दिखाई देता। प्रथम अध्यायोक्त लक्षणो के अनुसार पौराणिक काव्य के लक्षण मानस मे पूर्णतया मिलते है। इसमे काव्यात्मकता और धार्मिकता का सामजस्य है। जहाँ एक ओर वैष्णवभक्ति का प्रचार है (यथा **'नाथ भगति अति सुखदायनी' 'भक्ति प्रयच्छ रघुपुंगव! निर्भरां मे आदि)** वहाँ दूसरी ओर काव्यप्रतिभा का प्रदर्शन भी। **'वर्णानामर्थसङ्घानां रसानां छन्दसामपि। मंगलानां च कर्तारौ वन्दे वाणी-विनायकौ।'** —कहने वाले भक्त कवि की काव्य-प्रतिभा असदिग्ध मानी जानी चाहिए। इसमे चार वक्ता-श्रोताओ की सुसवद्ध योजना है। शिव-पार्वती, काकभुशुडि-गरुड, याज्ञवल्क्य-भरद्वाज तथा तुलसी-सन्तगण इसके चार वक्ता-श्रोता है। इसका प्रधान रस शान्त (या भक्ति) है, शेष रस अंग है। इसकी आधिकारिक कथा मे अवतार मर्यादा-पुरुषोत्तम भगवान् श्रीराम का चरित्र निवद्ध है, साथ ही समयानुसार अनेक उपाख्यान भी सक्षिप्त रूप मे निवद्ध है यथा—सुतीक्ष्णादि के उपाख्यान। समुद्र-लघनादि अलौकिक, अतिप्राकृत और अतिमानवीय शक्तियो, कार्यो तथा घटनाओं का समावेश हैं क्योकि राम तो 'विधि हरि संभु नचावनहारे' है। हनुमान के शब्दो मे उनकी सर्वसाधकता का कथन इस प्रकार किया गया है.—

> **"ता कहँ प्रभु कछु अगम नहिं जा पर तुम अनुकूल।**
> **प्रभु प्रताह बड़वानलहिं जारि सकै खलु तूल॥"(सुन्दरकाण्ड)**

अपने धर्म की प्रशसा उत्तरकाण्ड तथा अन्य स्थलो पर भी देखी जा सकती हैं। सूक्तियो का भी प्राचुर्य है। काव्य का माहात्म्य-कथन हैं। वंशोत्पत्ति, वंशावलि और

११६२. दे० हिन्दी-साहित्य-कोश, भाग—१, पृ० ६२७

स्तुति आदि की योजना है। संक्षेपतः यह सफल पौराणिक चरित-महाकाव्य है।

रामचरितमानस का महत्त्व : 'रामचरितमानस' जहाँ तुलसी की सबसे बडी रचना[११६३] एव हिन्दी का सर्वश्रेष्ठ महाकाव्य है[११६४] वहाँ समूची राम-काव्य-परम्परा मे अप्रतिम सजीवनदायक एक सुदृढ ग्रन्थ है। यही कारण है कि उसके अनेक अनुवाद और अनेक टीकाएँ अब तक हो चुकी है और देश-विदेश मे उस पर अनेक आलोचनाएँ लिखी गयी एव लिखी जा रही है।[११६५] उसका महत्त्व अनेक दृष्टियो से है। वह उच्चकोटि का काव्यग्रन्थ है, आदर्श सस्कृति का सदेशदाता है, दार्शनिक मनन-चिन्तन का स्रोत है, मर्यादा का परम प्रतीक है, लोकमगल की भावना का आगार है, मर्यादा और समन्वय का अभूतपूर्व निदर्शन है तथा भारतीय धर्मप्राण जनता का कण्ठहार है।

'रामचरितमानस' तुलसी की मधुकरी वृत्ति का परिणाम है। वह **'छहो शास्त्र सब ग्रन्थन को रस'** है। तुलसीदास ने नाना स्रोतो से कथा के जीवन-कणो को एकत्र करके उन्हे अपने अगाध व्यक्तित्व के सागर मे मिलाकर एकरस कर दिया। जीवन-कण अपनी लघु सीमा अथवा निश्चित परिधि का अतिक्रमण करके सागर

११६३. रामनरेश त्रिपाठी तुलसी और उनका काव्य, पृ० १०६।

११६४. डा० शभुनाथसिह हिन्दी-महाकाव्य का स्वरूप-विकास।

११६५ डा० रामनरेश त्रिपाठी ने 'तुलसी और उनका काव्य' के पृ० १६१ से १६४ तक 'रामचरितमानस' के इन अनुवादो का उल्लेख किया है —सस्कृत अनुवाद (बलभद्रप्रसाद शुक्ल द्वारा सम्पादित, स० १९६८, नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ), गोविन्दसावतेली-कृत गोविन्द-रामायण एव खरियार के राजा वीर विक्रमसिह, बाबू रामप्रसाद वोहिदार और पडित स्वप्नेश्वर दास के द्वारा किये गये उडिया अनुवाद, श्री मदनमोहन चौधरी द्वारा 'त्रिपदी' छन्द मे किया गया एव श्री सतीशचन्द्र दास गुप्त द्वारा किया गया बगला अनुवाद, प० छोटालाल चन्द्रशकर शास्त्री का गुजराती अनुवाद एव एफ० एस० ग्राउज का अग्रेजी अनुवाद। अनेक टीकाओ के परिचय के लिए देखिए, वही पृ० १६४।१६९। इन टीकाओ का नामोल्लेख मात्र किया जा रहा है—ज्ञानी सतसिह (पजाबी, श्री दरबार साहब, अमृतसर) की टीका मानस-भाव-प्रकाश, बैजनाथजी कूर्मवशी की टीका, प० शिवलाल पाठक की टीका, श्रीदेवतीर्थ (काष्ठजिह्वा) स्वामी की टीका, श्रीमन्महाराज द्विजराज काशीराज ईश्वरीप्रसादनारायणसिह बहादुर, जी० सी० आई० की टीका, परमहस प्रशसमान हसवशावतस श्रीजानकीरमणचरण-सरोरुहराजहस श्रीसीतारामाय हरिहरप्रसादजी की टीका, मुन्शी शुकदेवलाल (मैनपुर निवासी की टीका, महन्त श्रीरामचरणदासजी (अयोध्या-निवासी) की टीका, प० रामेश्वर भट्ट की टीका, श्रीरामप्रसादशरण (कनक-भवन, अयोध्या) की टीका, प० विनायकराव (जबलपुर) की टीका, स्व० बाबू श्यामसुन्दरदास, बी० ए० की टीका, प० महावीरप्रसाद मालवीय की टीका, श्रीजनकसुताशरण शीतलासहाय सावन्त की टीका। इनके अतिरिक्त मोतीलाल बनारसीदास के यहाँ से विजयानन्द त्रिपाठी की टीका भी निकली है।

की असीम गरिमा मे पर्यवसित हो गये। नाना पुष्पो से गृहीत रस मधुमक्खी के प्रभाव से मधु बन गया।[११६६] डा० राजपति दीक्षित के शब्दो मे 'तुलसी ने अपनी भक्ति को उत्तरोत्तर दृढ करने तथा रामचरित का मर्म समझने के लिए अधिक से अधिक प्राचीन राम-साहित्य-रूप रत्नाकर का भावपूर्वक शोध किया और अपनी सद्ग्राहिता के अनुसार मनोवाछित सारभूत रचनोपकरण-रत्नो को ग्रहण किया और उन्हे अपने दिव्य प्रकाश और मौलिकता की शान पर चढाकर विशेष सुसस्कृत रूप देकर अपने नूतन राम-साहित्य मे सन्निविष्ट किया।[११६७] 'मानस' तुलसी के गम्भीर अध्ययन का परिणाम है। 'वाल्मीकि-रामायण', 'अध्यात्मरामायण', 'श्रीमद्भागवत', 'प्रसन्नराघव' और 'हनुमन्नाटक' के अतिरिक्त सस्कृत के दो सौ से अधिक ग्रन्थो के श्लोको को भी चुन-चुनकर उन्होने उनका रूपान्तर करके 'मानस' मे रख दिया है।[११६८] ऐसे स्थानो पर तो तुलसीदास के मस्तिष्क की महिमा देखते ही बनती है, मानो संस्कृत के दो-ढाई सौ ग्रन्थो के लाखो श्लोको पर उनका एकच्छत्र सम्राट् की तरह अधिकार था और वे जिसे जहाँ चाहते थे, उसे वही बुला लेते थे।[११६९]

'मानस' का काव्य-शिल्प भी उच्चकोटि का है। क्या कथानक, क्या चरित्र, क्या रस-भाव और क्या कलापक्ष, सभी मे एक विचित्र संतुलन और मौलिक सयोजन है। 'रामचरितमानस' बृहदाकार रचना ही नही, वह सुचिन्तित एवं सुनियोजित रचना भी है। मन्दिर-निर्माण-कला में जिस प्रकार तोरण-द्वार, अर्द्धमण्डप, मण्डप, अन्तराल और गर्भगृह की योजना होती है और गर्भगृह के देवपीठ के ठीक ऊपर आमलक पर कलश की स्थापना रहती है, उसी प्रकार का सुयोजित वास्तु-वैभव मे मानस मे मिलेगा।[११७०] 'मानस' मे तुलसी की सन्दर्भण-कला चरमकोटि की है। डा० राजपति दीक्षित के शब्दो मे—"वे (तुलसी) ऐसे शिरमौर कविरूप

११६६ श्रीधरसिंह मानस का कथाशिल्प, पृ० २२७।

११६७ डा० राजपति दीक्षित तुलसीदास और उनका युग, पृ० ३४६।

११६८ कुछ उदाहरण 'तुलसी और उनका काव्य' के पृ० १२४-१४९ पर श्रीरामनरेश त्रिपाठी ने दिये है। पृ० १४९ पर ग्रन्थो के कुछ नाम भी दिये है यथा—अग्निपुराण, अद्भुत रामायण, अभिज्ञानशाकुन्तल, आनन्द-वृन्दावन, कथा-सरित्सागर, कामन्दकीय-नीतिसार, किरातार्जुनीय, गीतगोविन्द, चाणक्य-नीति, नलचम्पू, नाटक-पचरत्न, नैषध, पाराशर-स्मृति, पुरुष-सूक्त, वाराह-पुराण, वसिष्ठ-सहिता, ब्रह्माण्डपुराण, बालरामायण, विदग्धमुखमण्डन, मत्स्यपुराण महानिर्वाणतत्त्व, महावीरचरित, महिम्नस्तोत्र, याज्ञवल्क्यस्मृति, रुद्रयामल, वामनपुराण, शिवपुराण, शिशुपालवध, स्कन्दपुराण, श्रुतबोध, हरिवशपुराण, हारीतस्मृति आदि।

११६९ रामनरेश त्रिपाठी तुलसी और उनका काव्य, पृ० १२४।

११७०. डा० रामरतन भटनागर : मध्ययुगीन वैष्णव सस्कृति और तुलसीदास, पृ० १२९।

पटहार है जिन्होने अपने कौशल से विविध कथास्वरूप मौक्तिको का ऐसा अनूठा सग्रन्थन किया है किया है कि उनके अपूर्व सयोग से अनर्घ 'मानस' रूप हार निर्मित हो गया।[११७१] मानस के उपक्रम मे नवीनता और प्रौढि है जिसके कारण राम-साहित्य मे इसका अत्यन्त मौलिक योगदान है। इसके उपक्रम के विषय मे डा० राजपति दीक्षित के शब्द द्रष्टव्य हैं—'यद्यपि प्राचीन रामायणो का प्रभाव 'मानस' पर किसी न किसी प्रकार अवश्य पडा है तथापि 'मानस' के उपक्रम की विशेषता किसी रामायण या अन्य आर्ष ग्रन्थ मे नही मिलती। इसकी प्रमुख नवीनता इस बात मे है कि इसमे महाकाव्योचित उपक्रम के विधान के साथ भक्ति-तत्त्वो का ऐसा कलात्मक सग्रन्थन किया गया है कि उपक्रम की समाप्ति के पश्चात् पाठक अनायास ही अपने समक्ष महाकाव्य एव भक्ति दोनो का एक ही द्वार उद्घाटित देखता है।'[११७२] इसके अतिरिक्त वर्ण-अर्थ-रस-छन्द आदि का सौष्ठव तो दर्शनीय है ही।

'रामचरितमानस' के सदृश आदर्श भारतीय सस्कृति का सदेश देने वाला और कोई ग्रन्थ राम-काव्य-परम्परा मे नही दिखाई देता। मैक्फी के अनुसार 'हिन्दुओ के धार्मिक सिद्धान्तो और उनकी सस्कृति का सर्वोच्च सुन्दर चित्र जैसा रामायण मे मिलता है वैसा शायद अन्यत्र किसी ग्रन्थ मे न होगा।' प्रत्येक चरित्र आदर्श प्रस्तुत करता दिखाई देता है। एक अव्यवस्थित और कुनीतिपूर्ण समाज मे उत्पन्न होकर तुलसी ने उसे सुव्यवस्थित और सुनीतिपूर्ण बनाने के लिये मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् श्रीरामचन्द्र के चरित्र का गुणगान किया एव रामराज्य की कल्पना करके समाज के समक्ष एक उदात्त आदर्श प्रस्तुत किया। यदि कोई व्यक्ति भारतीय सस्कृति के आदर्श रूप का एक ही स्थान पर अध्ययन करना चाहता है तो उसे 'मानस' का मनन कर लेना चाहिए।

'मानस' का महत्त्व इस दृष्टि से भी है कि यह लोक-हृदय का काव्य है। इसमे लोक की भाषा है, लोक की सस्कृति है और लोक-मगल की भावना है। डा० रामनरेश त्रिपाठी के शब्दो मे—'रामचरितमानस आदि से अन्त तक माधुर्य से ओतप्रोत है। हर एक प्रकार की सुरुचि रखने वालो के लिए उसमे यथेष्ट सामग्री है। एक लम्बे मार्ग मे कोई ऐसा स्थान नही है जहाँ पथिक को दूर तक शान्ति की छाया न मिले, प्यास से व्याकुल होना पडे। रास्ते भर मधुर सोते प्रवाहित हैं, सद्विचारो की शीतल छाया वर्तमान है। 'मानस' को बार-बार पढने से भी जी नही ऊबता। जिस प्रकार हम चन्द्रमा को लाखो बरसो से देखते आ

११७१. तुलसीदास और उनका युग, पृ० ३४७

११७२. वही, पृ० ३४७-३४८।

रहे है, पर जब उसे देखते है तभी वह नवीन लगता है और कभी वासी नही लगता इसी प्रकार 'मानस' को चाहे जितनी वार पढिए, उससे जी नही उचटता। उसका कारण यह है कि तुलसीदास ने जो कुछ लिखा है, उसमे हमारे नित्य-नैमित्तिक जीवन का प्रतिविम्व है। इससे हम उसे अपना समझ कर पढते है और वार-वार उसका रस लेकर भी तृप्त नही होते।[११७३] उत्तर प्रदेश और विहार मे 'मानस' इतना लोकप्रिय काव्य है कि उसकी वहुत-सी चौपाइयाँ और दोहे कहावतो मे स्थान पा चुके है शिक्षित और अशिक्षित नागरिक और ग्रामीण सभी श्रेणियो के लोग विना किसी प्रयास के उनका प्रयोग साधारण वोलचाल मे किया करते है।[११७४] इस प्रकार की लोक-हृदय रञ्जिनी कुछ सूक्तियाँ प्रस्तुत है :

'परहित सरिस धरम नहिं भाई। पर पीडा सम नहिं अधमाई।।,'
'जहाँ सुमति तहँ सम्पति नाना। जहाँ कुमति तहँ विपति निदाना।।,'
'विनु सतोप न काम नसाही। काम अछत सुख सपनेहुँ नाही।।,'
'निज सुख बिन मन होइ कि थीरा। परस कि होई विहीन समीरा।।,'
'परद्रोही कि होई निहसका। कामी पुनि कि रहइ अकलका।।,'
'वायस पालिय अति अनुरागा। होइ निरामिप कवहुँ कि कागा।।,"
'साधु चरित सुभ सरिस कपासू। निरस विसद गुनमय फल जासू।।,'
'को न कुसगति पाइ नसाई। रहइ न नीच मते चतुराई।।,'
'वरु भल वास नरक कर ताता। दुष्ट सग जनि देहिं विधाता।।,"

'राकापति पोडश उवहिं, तारागन समुदाय।
सकल गिरिन्ह दव लाइये, रवि विन राति न जाय।।' आदि

'रामचरितमानस' का महत्त्व उसके लोकविश्रुत समन्वय की दृष्टि से भी वहुत है। पारस्परिक वैमनस्य के युग मे लड़खड़ाते हुए हिन्दू-जीवन को समन्वय भावना के द्वारा स्थायित्व प्रदान करने के हेतु तुलसी ने जो प्रयत्न किया है वह वस्तुत अविस्मरणीय है। उनकी इस समन्वय-वुद्धि के विपय मे डा० हजारी-प्रसाद द्विवेदी लिखते है—'तुलसीदास के काव्य की सफलता का एक और रहस्य उनकी अपूर्व समन्वय-शक्ति मे है। उन्हे लोक और शास्त्र दोनो का बहुत व्यापक ज्ञान प्राप्त था। उनके काव्य-ग्रन्थो मे जहाँ लोक-विधियो के सूक्ष्म अध्ययन का प्रमाण मिलता है, वही शास्त्रो के गम्भीर अध्ययन का भी परिचय मिलता है लोक और शास्त्र के इस व्यापक ज्ञान ने उन्हे अभूतपूर्व सफलता दी। उसमे केवल लोक और शास्त्र का समन्वय ही नही है, वैराग्य और गार्हस्थ्य का, भक्ति

११७३ तुलसी और उनका काव्य, पृ० १४९।
११७४ तुलसी और उनका काव्य, पृ० १५८।

और ज्ञान का, भाषा और सस्कृत का, निर्गुण और सगुण का, पुराण और काव्य का, भावावेग और अनासक्त चिन्तन का, ब्राह्मण और चाण्डाल का, पण्डित और अपण्डित का समन्वय 'रामचरितमानस' के आदि से अन्त तक दो छोरो पर जाने वाली परा-कोटियो को मिलाने का प्रयत्न है।[११७५] हिन्दी-साहित्य कोश मे मानस का महत्त्व निर्धारण करते हुए अन्वर्थ ही लिखा गया है.—" 'रामचरितमानस' की अद्वितीय लोकप्रियता तथा चिरस्थायी प्रभाव को देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि उत्तर भारत के सास्कृतिक तथा धार्मिक इतिहास मे विक्रम सवत् की सबसे महत्त्वपूर्ण घटना 'रामचरितमानस' की रचना ही है। इतना तो निश्चित है कि किसी भी देश मे ऐसा कोई भी काव्यग्रन्थ नही मिलता जो 'रामचरितमानस' की भाँति शताब्दियो तक जनता का जीवन अनुप्राणित करने मे समर्थ हुआ हो। इस सामर्थ्य का रहस्य यह है कि तुलसीदास की प्रतिभा ने 'रामचरितमानस' मे काव्य-सौन्दर्य, भक्ति तथा लोक-सग्रह का अपूर्व समन्वय किया है। मानव-हृदय को मोहित करने की शक्ति रामकथामात्र मे पहले से ही विद्यमान थी, तुलसीदास ने इस कथानक को इस कौशल से प्रस्तुत किया है कि कथा-प्रवाह, मार्मिक स्थलो की पहचान, मर्यादित शृगार, पात्रानुकूल भाषा एव चरित्र-चित्रण की दृष्टि से 'रामचरितमानस' हिन्दी का सर्वश्रेष्ठ काव्य ग्रन्थ माना जा सकता है। इसके अतिरिक्त इसमे दास्यभक्ति का दिव्य रूप प्रतिपादित किया गया है। उपास्य राम का शील, सकोच और सहृदयता मनुष्यमात्र को आकर्षित करने मे समर्थ है, किन्तु तुलसी ऐश्वर्यबोध इस प्रकार बनाये रखते है कि भक्तो मे श्रद्धा का भाव प्रधान ही रह जाता है। साथ-साथ लोक-सग्रह का ध्यान रखकर तुलसी समस्त मानव जीवन का आदर्श प्रस्तुत करते हुए पारिवारिक तथा सामाजिक कर्त्तव्यो का इतना प्रभावशाली चित्रण प्रस्तुत करते है कि 'रामचरितमानस' उत्तर भारत का नैतिक मेरुदण्ड सिद्ध हुआ है।"[११७६]

पद्मपुराण और रामचरितमानस

पद्मपुराण और रामचरितमानस——दोनो ही अनादि काल से प्रवाहित होने वाली रामकथा-मन्दाकिनी के दो सुन्दर तीर्थों के रूप मे हमारे सम्मुख प्रस्तुत होते हैं। यदि एक जैन धर्मावलम्बियो के लिए आदरणीय धर्म-ग्रन्थ है तो दूसरा प्रत्येक

११७५. डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी "सफलता का रहस्य"। राधाकृष्ण-मूल्याकन-ग्रन्थ-माला मे, डा० उदयभानुसिह द्वारा सम्पादित 'तुलसीदास' के पृष्ठ २१७ पर।

११७६ हिन्दी-साहित्य-कोश, भाग १, पृ० ९७५।

भक्तिमार्गी के लिए माननीय भक्ति-ग्रन्थ; यदि एक जैन धर्म का सर्वाधिक महत्व-पूर्ण संस्कृत काव्य-ग्रन्थ है तो दूसरा हिन्दू-धर्म का सर्वप्रधान हिन्दी-काव्य-ग्रन्थ। दोनो अपने युग की परिस्थितियो की उपज है। रविषेण ने पद्मपुराण की रचना जिन परिस्थितियो मे की थी उनका उल्लेख प्रस्तुत ग्रन्थ के तृतीय अध्याय मे किया जा चुका है। यहाँ तुलसी के समय की परिस्थितियो का उल्लेख करके दोनो की परिस्थितियो का तुलनात्मक विवेचन किया जा रहा है।

तुलसीकालीन राजनीतिक परिस्थिति अच्छी नही थी। गोस्वामी तुलसीदास जी का प्रादुर्भाव-काल १५वी श० ई० का अन्त अथवा १६वी श० ई० का प्रारम्भ था। भारतीय इतिहास के अनुसार उस समय पठानो (लोदीवश) के पैर लड़खडा चुके थे और मुगलो का भारतीय शासन-क्षेत्र मे पदार्पण हो चुका था। मुगल साम्राज्य के वीजारोपण के समय दिल्ली का साम्राज्य छिन्न-भिन्न हो चुका था; वडे-वडे सूवो मे पृथक्-पृथक् राजा थे; छोटे-छोटे जिले—यहाँ तक कि प्रत्येक शहर या किले का स्वामित्व किसी वड़े सरदार या घराने के हाथो मे था। उनके ऊपर कोई अधिकारी नही था। यह छोटे-छोटे राजाओं, मुल्क-अतवैफ या कार्य-कारी अधिकारियो (फक्शन किग्ज) का समय था।[११७७] १५२६ ई० मे वावर ने इब्राहीम लोदी को परास्त किया।[११७८] और पर्याप्त सघर्ष के फलस्वरूप १५३० ई० तक दिल्ली पर शासन किया। उसके वाद हुमायूँ का और सन् १५५६ से १६०५ तक अकवर का राज्यकाल रहा। हुमायूँ को राजपूतो से कडा लोहा लेना पडा, फिर भी उसे शान्ति न मिली। वस्तुत मुगल-साम्राज्य का स्वर्णयुग अकवर का शासन-काल ही था। अकवर को ही मुगल-साम्राज्य का वास्तविक सस्थापक एव सघटनकर्त्ता कहा जा सकता है। उसके विषय मे भी यह नही भूलना चाहिए कि उसे भी हिन्दुस्तान को अपने आधिपत्य मे लाने के लिए वीस वर्ष तक भीषण सघर्ष करना पडा। फिर भी यह नही कहा जा सकता कि उसकी मृत्यु के समय तक उसका प्रयास सव प्रकार से पूर्ण हो चुका था।[११७९] उसका अधिकाश जीवन पठानो, राजपूतो, मरहटो, दक्षिण के तेलगू और कन्नड नायको, गोडो तथा वगालियो से युद्ध करते हुए व्यतीत हुआ। किन्तु अकवर का प्रयास अधिकाश सफल रहा। कितने ही राजाओ ने उसका आधिपत्य स्वीकार कर लिया था। सन् १५६२ मे ही आमेर के राजा विहारीमल ने नवीन सम्राट् के दरवार मे पधारकर अत्यन्त हर्ष प्रकट करते हुए अपनी भेट उपस्थित की

११७७ डा० स्टेनली लेनपूल मिडीवल इण्डिया अण्डर मुहमडेन रूल', पृ० १८९।

११७८ स्मिथ अकवर—दी ग्रेट मुगल, पृ० ११।

११७९. स्टेनली लेनपूल पृ० २३८।

थी। सम्राट् ने उनका कन्यारत्न सहर्ष ग्रहण किया।[११८०] इसके पूर्व भी अकबर रुक्मा तथा सलीमा से विवाह कर चुका था। ये दोनो भी राजपूत ललनाएँ थी।[११८१] अकबर का हरम और भी कितनी ही हिन्दू नारियो से भरा था।[११८२] अकबर के ही नही, जहाँगीर के हरम मे भी राजा उदयसिंह, बीकानेर के राजा, राय रायसिंह, राजा मानसिंह के ज्येष्ठ पुत्र, जगतसिंह और रामचन्द्र बुन्देला आदि की बेटियाँ पहुँच गयी थी।[११८३] इससे स्पष्ट है कि हिन्दुओ की विवशता उस समय परिस्थितियो के कैसे चक्र मे पडी हुई थी। राजाओं मे अपवाद-स्वरूप महाराणा प्रताप जैसे देश-धर्म पर मर मिटने वाले विरल ही थे।

राजाओ का क्षत्रियत्व विलुप्त होने लगा था एव हिन्दू-राजाओ तथा प्रजा का पतन होने लगा था। अनुकरण और व्यक्तिगत सुख-विलास को ही सब कुछ मान लेने वाले अथवा शक्तिहीन होकर पराधीनता स्वीकार कर लेने वाले हिन्दू शासको मे आत्माभिमान के स्थान पर विलासिता ने घर कर लिया था। प्राचीन हिन्दू राजाओ की प्रजावत्सलता उनके आचार-विचार, उनकी धर्मनिष्ठा आदि के उदात्त सिद्धान्त लुप्त हो चले थे।

राजकीय परिवर्तनो के इस काल मे अधिकार-लिप्सा तथा प्राप्त शक्ति के दुरुपयोग के फलस्वरूप न कोई नियम रह गया था, न मान-मर्यादा का कोई मूल्य ही था। शासन को प्राप्त करने के लिए परस्पर लडाई-झगडे उस युग की विशेषता थी। क्या राजा, क्या प्रजा—सभी का जीवन स्थिरता और सुरक्षा से हीन था। उस समय कुछ भी स्थायी न था।[११८४] ऐसी अधिकार लिप्सा और मार-काट की स्थिति मे जन-कल्याण की बात भला किसे सूझती? स्वय मुगलों का शासन सैनिक-शासन के रूप मे चल रहा था। वह प्रजा के प्रति किसी प्रकार का नैतिक उत्तरदायित्व स्वीकार नही करता था। शासन का लक्ष्य सकीर्ण और भौतिक था। स्मिथ और मूरलैण्ड जैसे इतिहासकारो ने यह स्वीकार किया है कि पठानो और जहाँगीर के काल मे लोगो को कठोर दण्ड दिया जाता था और उनका सिर उतार लेना, उन्हे फाँसी चढा देना या उनकी खाल खिचवाकर उन्हे मरवा देना प्रायः साधारण बात हो गयी थी।

डा० भगीरथ मिश्र के शब्दो में तत्कालीन 'राजनीतिक परिस्थिति की

११८०. वही, पृ० २५१।
११८१. वही, पृ० २५१।
११८२. राजपति दीक्षित . तुलसीदास और उनका युग, पृ० २।
११८३. प्रो० बेनीप्रसाद : 'हिस्ट्री ऑव् जहाँगीर', पृ० ३०।
११८४. मूरलैण्ड 'जहाँगीर्स इण्डिया', पृ० ५६।

विशेषताओं का संक्षिप्त निर्देश इस प्रकार से किया जा सकता है—

(१) राजकीय परिवर्तन बड़ी शीघ्रता से चल रहे थे।

(२) इस राज्य परिवर्तन मे अधिकांश अधिकारलिप्सा और शक्ति ही प्रेरक थी। कोई नियम मर्यादा या आदर्श विद्यमान न थे। भतीजा चचा का, पिता पुत्र का और भाई भाई का वध कर या बन्दी कर राज्य पर अपना अधिकार जमा लेता था।

(३) राजा और शासक प्रायः अशिक्षित, अहम्मन्य विलासी और क्रूर थे। शासन को अपने अधिकार में रखने की ओर वे अधिक सचेत थे, जन-कल्याण की ओर नहीं।

(४) अकबर के पूर्ववर्ती राजाओं के अस्त-व्यस्त और अव्यवस्थित शासनकाल मे कोई भी सामाजिक और सांस्कृतिक उन्नति न हुई थी।[1185]

उपर्युक्त बातों का तुलसी के 'मानस' पर गहरा प्रभाव पड़ा। उनके मन में प्रतिक्रियास्वरूप भारतीय रघुवंशी राजाओं––जो अत्यन्त प्रजावत्सल, त्यागी, वीर और गुणसम्पन्न थे—का आदर्श शासन जागृत हुआ। अतः इन परस्पर लड़ते-झगड़ते और अपने सगे-सम्बन्धियो का रक्त बहाते राजाओं के सम्मुख उन्होंने राम के परिवार का आदर्श रखा, जहाँ पिता की आज्ञा-वश एक राज्य का अधिकारी पुत्र वनवास ग्रहण करता है और उसी का दूसरा भाई वंश-मर्यादा और भ्रातृप्रेम का पालन करता हुआ राज्य को ठुकरा देता है और बड़े भाई के आने तक केवल उसे धरोहर रूप में रखता है। इस आदर्श को सामने रखकर उन्होंने अपने युग में रामराज्य की स्थापना करनी चाही। रामराज्य की उच्च धारणा रखने वाले तुलसी को तत्कालीन राजाओं की अशिक्षा और क्रूरता कितनी खटकती थी, यह उनके खीझ भरे शब्दों से प्रकट है—

"नृप पाप परायण धर्म नहीं। करि दण्ड बिडम्ब प्रजा नित ही॥"

अथवा

"गोंड, गँवार नृपाल कलि, यवन महा महिपाल।
साम न दाम न भेद कलि, केवल दण्ड कराल॥" (मानस)

रविषेण और तुलसी के समय की राजनीतिक परिस्थितियों का अध्ययन करने पर यह निष्कर्ष निकलता है कि दोनों कवि ऐसे काल मे हुए हैं जिसके पहले और बाद मे अन्धकार रहा। हर्ष से पहले कोई ऐसा प्रतापी राजा रविषेण के काल मे नही था और अकबर से पहले तुलसी के काल में। हर्ष के बाद भारत में

११८५ डा० भगीरथ मिश्र : तुलसी रसायन, पृ० २१।

एक अराजकता सी फैल गयी और अकबर के बाद भी मुगल-साम्राज्य की नीव हिलने लगी। रविषेण और तुलसी दोनो ही कवियो के काल मे प्रतापी राजा हुए। हर्ष के बाद सम्राट्-पद की योग्यता धारण करने वाला अकबर ही कहा जा सकता है।

किन्तु रविषेण का काल तुलसी के काल से कही अधिक सम्पन्न था। उनके समय में भारतीय राजा शासक थे जब कि तुलसी के समय मे विदेशी राजा भारत के शासक थे। रविषेण के समय मे भारतीय राजा स्वतन्त्र थे किन्तु तुलसी के समय मे प्रायः विवश और परतन्त्र। रविषेण के काल मे अत्याचार और अव्यवस्था उतनी नही थी जितनी तुलसी के काल मे। यही कारण है कि जहाँ रविषेण पर तत्कालीन राजनीतिक परिस्थितियो का यथार्थ प्रभाव अधिक पडा है वहाँ तुलसी पर पडा प्रभाव आदर्श को जन्म देता है।

तुलसी के काल की सामाजिक स्थिति मुगल काल की सामाजिक परिस्थिति ही है। मुगल-काल मे हमारे देश मे एक महान परिवर्तन हुआ था। फलस्वरूप देश की सभी परिस्थितियाँ एकदम बदल गयी थी। उस समय समाज का ढाँचा कुछ और था तथा व्यावहारिक स्थिति कुछ भिन्न थी। वर्ण-व्यवस्था तो तुलसी के युग मे थी परन्तु प्रत्येक वर्ण अपने कर्त्तव्य भूल चुका था। ऊँच-नीच का भेद-भाव खूब चलता था। यद्यपि आश्रमो की व्यवस्था नही थी फिर भी साधु-सन्यासियो और योगियो का आदर होता था। ब्राह्मणो ने अपने मुख्य कर्त्तव्यो के अतिरिक्त अन्य पेशे मुख्य रूप से अपना लिये थे। वे पाखण्ड तक करने लगे थे। नित्य-कर्म तक नही करते थे। क्षत्रियो का भी यही हाल था। उनमें जाति-अभिमान और वीरता शेष नही थी। राजा होकर भी वे प्रजा को चूसते थे। वैश्य लोभी हो गये थे। उन्हे अपने धन के सामने देश तथा धर्म की भी चिन्ता नही रह गयी थी। शूद्रों का तो अभिमान इतना प्रबल हो चला था कि वे अकारण ब्राह्मणो की निन्दा करने लगे थे। इस प्रकार चारो वर्णो की दशा शोचनीय थी।

पारिवारिक जीवन मे भी केवल दिखावे के लिए ही मर्यादा रह गयी थी। स्त्रियो के लिए परिवार मे अनेक बन्धन थे, स्वतन्त्रता उन्हे बिल्कुल नही थी। वे पुरुष के आश्रित रहती थी। मुगलो और पठानो की कामुकता एव सौदर्यपिपासा ने स्त्रियो को एक वासनात्मक आकर्षण एव विलासात्मक महत्त्व दे रखा था। जनसाधारण में तो नही परन्तु अभिजात वर्गो मे बहुपत्नी की प्रथा भी थी। अकबर और जहाँगीर के हरमो में तो सैकड़ो और हजारो की सख्या में सुन्दरियाँ थी। अन्य अधिकारी वर्ग भी अनेक स्त्रियाँ रखने मे गौरव का अनुभव करते थे। इससे विलासिता का ही अनुमान होता है। जब शासक ही विलासी और धनप्रिय हो

तो प्रजा का क्या हाल रहा होगा ? यह सोचना कठिन नही है ।

समाज मे ऐसे व्यक्ति कम थे जो सुखपूर्वक अपना निर्वाह करते थे। उनमे केवल राजाओ या बादशाहो के कुछ कृपापात्र ही कहे जा सकते है। शेष जनता निर्धन और उत्साहहीन थी। प्राय. प्रत्येक मनुष्य का परिश्रम राजाओ अथवा अधिकारीवर्ग के विलास की सामग्री जुटाने मे ही लगता था। साधारण मनुष्य का जीवन सदैव आतक, दुर्दशा और धन के अभाव मे ही बीतता था। कृषि के साधनो की कमी थी। इसी कारण उर्वरा होते हुए भी भूमि से उपज कम होती थी। मूरलैण्ड ने 'जहाँगीर्स इण्डिया' के अनुवाद मे लिखा है कि किसानों को यदि सिचाई आदि के साधन मिल जाते तो उस समय उनकी पैदावार लगभग दुगुनी हो सकती थी। वास्तविकता यह थी कि उन दिनों बादशाहो को लूट-खसोट और बेगार आदि लेने की अधिक लालसा रहती थी। वे किसानो की दशा की ओर कम ध्यान देते थे। उधर धनिक-वर्ग भी अपना जीवन प्रमोद मे बिताता था। किसान और दूसरे साधारण मनुष्य के लिए तो केवल दु.ख और अभाव ही रह गये थे, इसी कारण समाज मे दरिद्रता, आचरणहीनता, आत्मविश्वास का अभाव, जीवन के प्रति वैराग्य और अतिशय ईश्वरोन्मुखता आदि आ गये थे।

यद्यपि पूर्ववर्ती शासन से अपेक्षाकृत अकबर का शासन अच्छा था फिर भी वह सन्तोषजनक नही था उस समय कई बार दुर्भिक्ष पड़े थे। देश मे हाहाकार मच गया था। सन् १५५६ और १५७३-७४ मे जो भयानक अकाल पडे थे उनकी स्मृति से भी हृदय कॉपने लगता है।[११८६] इस समय मनुष्य-मनुष्य तक को खाने लगा था।[११८७] चारो ओर सूना ही सूना दिखाई देता था। शासको को क्या पडी थी कि वे ऐसे अकाल या महामारी के समय अपनी प्रजा की रक्षा करते। अबुल-

---

११८६ दे० इलियट एण्ड डौसन , हिस्ट्री आफ इन्डिया एज टोल्ड बाइ इट्स ओन हिस्टोरियन्स भाग ५ मे पृ० ३८४ पर उद्धृत 'तबकात' ।

इसी प्रकार १५९८ मे ३-४ साल तक एक अकाल पडा जिसका उल्लेख अबुल-फजल ने अपनी फारसी की पुस्तक 'अकबरनामा' मे पृ० ६२५ पर मे किया है।

(डा० एम० एस० कुलश्रेष्ठ डेवलपमेण्ट आफ ट्रेड एण्ड इण्डस्ट्री अण्डर दी मुगल्स १५२६-१७०७ से उद्धृत)

११८७ दे० रैंकिंग बदायूँनी का अगरेजी अनुवाद पृ० ५४०-५५१। इलियट . वाल्यूम ५, पृ० ४९०-४९१ ।

डा० एस० एस० कुलश्रेष्ठ डेवलपमेण्ट आफ ट्रेड एण्ड इण्डस्ट्री अण्डर दी मुगल्स (१५२६ १७०७ ई०) पृ० ३२ ।

फजल ने 'आइने-अकबरी'[११८८] में इन दुर्भिक्षो का सक्षेप मे वर्णन कर दिया है। इन विपत्तियो को तो दैविक कहकर ही शासक लोग बात टाल देते थे।

समाज की मर्यादा भी एक-दम छिन्न-भिन्न हो चुकी थी। कोई किसी की नही सुनता था। किसान को खेती के साधन प्राप्त नहीं थे तो भिखारी को भीख नही मिलती थी। वणिक् के लिए व्यापार नही थे तो नौकर को नौकरी नहीं थी। सभी लोग अपनी-अपनी जीविका के लिए चिन्तित थे। एक दूसरे से यही कहते थे कि क्या करें कहाँ जाएँ ? दरिद्रता-रूपी रावण ने सभी को दबा रखा था। कुछ लोग शाही नौकरी की तलाश करने लगे थे। इस प्रकार दास-वृत्ति धीरे-धीरे अपना प्रभाव दिखाने लगी थी।

१७ वे शतक के उत्तरार्द्ध मे मुशीगिरि में हिन्दुओ की सख्या खूब बढी। टोडरमल ने ऐलान किया था कि सभी सरकारी काम फारसी मे किया जाय। फलस्वरूप सभी हिन्दू कर्मचारियो को फारसी सीखनी पडी। १७ वे शतक मे कितने ही सामन्त और राजा अपने फारसी पत्र लिखवाने के लिए हिन्दू मुशियो को रखते थे और इस प्रकार उनकी सख्या उत्तरोत्तर बढ़ती ही गयी।[११८९] हरकरन इतवारखानी (सन् १६२४ के बाद) प्रसिद्ध मुशी, जिनका उपनाम चन्द्रभान था, जाति के ब्राह्मण थे।[११९०] फारसी इन दिनो जीविकोपार्जन का उसी प्रकार साधन थी जिस प्रकार अग्रेजो के शासन काल मे अग्रेजी।

प्रत्येक सामन्त की मृत्यु पर उसकी सम्पत्ति हडप लेने की प्रथा के कारण न जाने कितने हिन्दुओ का उच्छेद हो रहा था। सरदार के मरते ही उसकी भूमि शासक की हो जाती थी और उसका फल यह होता था कि अनेकानेक परिवार अनाथ हो जाते थे। उन्हे भीख माँगने के अतिरिक्त और कोई मार्ग न सूझता था।[११९१] सरदार के जीवनकाल मे भी भूमि-अपहरण प्रणाली का समाज-घातक परिणाम होता था। सरदार लोग गुलछर्रे उडाते और नैतिक पतन के गर्त मे गिरते थे। वे यही सोचते थे कि हमारे बाद जब हमारे परिवार को कुछ मिलना ही नही है तो उसे हम ही क्यो न उडा ले। इसी धारणा के कारण इस प्रथा ने देश के अनेक परिवारो को नष्ट-भ्रष्ट कर दिया।

११८८ डा० एस० एस० कुलश्रेष्ठ ने अपने शोध-प्रबन्ध 'डेवलपमेण्ट आफ ट्रेड एड इण्डस्ट्री अण्डर दी मुगल्स (१५२६-१७०७ ई०)' के पृ० ३२ पर 'आइने अकबरी' का मूल पाठ अगरेजी अनुवाद के साथ दिया है।

११८९ सर यदुनाथ सरकार मुगल एडमिनिस्ट्रेशन, पृ० २२७।

११९० वही, पृ० २२८।

११९१. वही, पृ० १६५।

किसानो से लगान वसूल करने वाले कर्मचारी उन्हे लूटा करते थे। कितने ही अन्यायपूर्ण कर लगाये गये थे जिन्हे देते-देते किसान तग आ गये थे। उधर अकाल और महामारी भी थे। फलस्वरूप कितने ही लोग अन्न के बिना तड़प कर मर जाते थे।[११९२] जहाँगीर के काल मे सन् १६१६ से १६२४ तक महामारी का भयानक प्रकोप रहा था।[११९३] यह लाहौर से चली थी और सरहिन्द, दिल्ली आदि होती हुई अन्तर्वेद तक पहुँची थी।

इस प्रकार तुलसी के युग की सामाजिक परिस्थिति अत्यन्त भयानक एव निराशापूर्ण थी, यद्यपि वाद मे कुछ सुधार होने लगा था। हिन्दू और मुसलमान एक दूसरे के त्यौहारो को आनन्दपूर्वक मनाने लगे थे।[११९४] भारतीय भाषाओं ने अरबी-फारसी के शब्द भी अपना लिये थे। मुगल-साम्राज्य की स्थापना के पश्चात् समाज को कुछ शान्ति अवश्य मिली थी परन्तु तुलसी तो राम-राज्य चाहते थे। उसकी वहाँ झलक भी कहाँ थी ?

बहि साक्ष्य के आधार पर रविषेण और तुलसी के समय की सामाजिक परिस्थितियो का उपर्युक्त विवेचन करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि रविषेण के समय सामाजिक स्थिति अपेक्षाकृत कही अच्छी थी। न तो इस समय भारतीय समाज विदेशियो से शासित था और न यहाँ भुखमरी आदि आपत्तियाँ थी। रविषेण के काल मे चारो वर्ण ठीक काम कर रहे थे जबकि तुलसी के काल मे चारो सकट मे थे। पहले के काल मे स्त्रियो का सम्मान था, दूसरे के काल मे वे विवश और परवश थी। पहले का युग समृद्धि का युग था, दूसरे का सकट का। इसीलिए पहले ने सम्पन्न समाज को देखकर एक प्रौढ साहित्यिक ग्रन्थ की रचना की और दूसरे ने विपन्न समाज को देखकर लोक-रक्षक भगवान् का चरित गाया।

तुलसीकालीन धार्मिक परिस्थिति का परिचय प्राप्त करने के लिए यह अनिवार्य हो जाता है कि हम उससे पूर्ववर्ती परिस्थितियो को भली-भाँति समझ ले क्योंकि मुगलकालीन धार्मिक परिस्थितियो का मूल बहुत पूर्व का ठहरता है। गोस्वामी जी से पूर्व, देश के उत्तरी एव दक्षिणी भागो की धार्मिक परिस्थितियाँ भिन्न थी। इसका कारण कुछ राजनीतिक हलचलो को माना जा सकता है। दक्षिण भाग एक तो विदेशियो के आक्रमणो से मुक्त रहा है, दूसरे उस भाग की जनता को एक धार्मिक परम्परा सहज ही प्राप्त हो गयी है।

११९२ हिस्ट्री ऑव् जहाँगीर, पृ० १२३।

११९३ वही, पृ० २१५। स्मिथ. अकबर दी ग्रेट मुगल, पृ० ३९।

११९४ हिस्ट्री ऑव् जहाँगीर, पृ० १००।

वैदिक ज्ञान, उपासना और कर्मकाण्ड आदि से ही बाद की सब धार्मिक परम्पराएँ चली थी। उपनिषद् और वेदान्त ज्ञान और चिन्तन की उत्कृष्ट अवस्था के ही द्योतक हैं। इसका वास्तविक रूप हम शकराचार्य के भाष्य में देखते है। यज्ञो के बलि-विधान के विरुद्ध ही बौद्ध और जैन आदि धर्म खडे हुए थे। वर्णाश्रम-व्यवस्था के कारण अभिजात वर्ग के लोग निम्न जातियो से घृणा करने लगे थे। इसी कारण बौद्ध आदि धर्मो की ओर नीची श्रेणी के लोग अधिक आकृष्ट हुए। मनुष्य मात्र की समता का सिद्धान्त सबको अच्छा लगना ही था। इसी का प्रतिपादन शकराचार्य के वेदान्त मे भी मिलता है, परन्तु उनके इस मायावाद या अद्वैतवाद मे जन साधारण के लिए भक्ति या उपासना को अवकाश नही था। दक्षिण मे उपासना पर ही अधिक बल दिया जाता था। फलस्वरूप दक्षिण मे शकराचार्य के सिद्धान्त का विरोध खडा हुआ। शंकर के अद्वैतवाद को वहाँ नागार्जुन का शून्यवाद ही बताया गया और उन्हें एक प्रकार से 'प्रच्छन्न बौद्ध' बताया गया। यद्यपि चिन्तन के क्षेत्र मे अद्वैतवाद सर्वोपरि माना गया परन्तु भाव-क्षेत्र के लिए वह कोई सामग्री न दे सका। उसमे व्यावहारिकता और दैनिक उपयोगिता की कमी थी। अत· उसकी प्रतिक्रियास्वरूप वेदान्त-सूत्रो की व्याख्याएँ अनेक विद्वानो ने की। रामानुजाचार्य, विष्णुस्वामी, निम्बार्काचार्य, मध्वाचार्य और वल्लभाचार्य आदि दार्शनिक लोक-भक्तो ने लोक-जीवन के उपयुक्त उनकी व्याख्याएँ प्रस्तुत की जिनमे यथासम्भव प्रचलित लोक-व्यवस्था से पूरा-पूरा मेल-जोल बैठाया गया। इस प्रकार भक्ति की एक सुदृढ दार्शनिक पृष्ठभूमि बन गयी थी। दक्षिण की इस भक्ति का प्रचार आगे चलकर उत्तर भारत मे भी हुआ। उत्तर भारत के भक्ति-प्रचारको मे तुलसीदास भी एक थे।

उत्तर भारत की धार्मिक परम्पराएँ दक्षिण से कुछ भिन्न थी। दक्षिण मे न तो बौद्धधर्म का प्रभाव था और न इस्लाम की ही पहुँच थी। इस कारण वहाँ की परम्पराओ के अनुसार धर्म प्रगति कर रहा था, परन्तु उत्तर भारत मे बौद्ध-धर्म और इस्लाम की अडचने विद्यमान थी। बौद्ध-धर्म के साथ ही जैन-धर्म भी अनेक शाखाओ मे बँट गया था। दोनो मे ही साधना और सदाचार की कमियाँ आ चुकी थी। फिर भी इन दोनो मे समता का भाव एक आकर्षण की वस्तु थी। फलस्वरूप योगमार्गी साधको ने इनकी कुछ बाते लेकर अपने नये-नये सम्प्रदाय खडे कर दिये। कोई सिद्ध कहलाये और कोई नाथ। सभी ने निरजन ब्रह्म-ज्योति-दर्शन, अलख, अनहद-नाद-श्रवण, कुण्डलिनी-जागरण तथा समाधि आदि को अपनाया। इस प्रकार पतजलि द्वारा पूर्वकाल मे चलाया गया योग-मार्ग कई रूप धारण करके सामने आया। पहले तो इस मार्ग में ज्ञान की प्रधानता थी परन्तु

धीरे-धीरे साधना और क्रिया को महत्त्व दिया जाने लगा। कुछ ने तो बिलकुल तात्रिक रूप ही ले लिया। इस प्रकार हीनयान, महायान, श्वेताम्बर, दिगम्बर आदि के अतिरिक्त अनेक उपभेद भी बन गये।

इनके ही समान निर्गुण सन्त मत भी था। इसके प्रवर्त्तक कबीर माने जाते हैं। कबीर का सन्त-मत प्राय कुछ विभिन्न मतों का सम्मिश्रण ही है जिसमें सिद्ध-नाथ-सम्प्रदाय, रामानन्द का भक्ति-सम्प्रदाय, सूफीमत और इस्लामी-मत आदि सभी मिल गये हैं। तुलसी और कबीर यद्यपि दोनो ही रामानन्दजी के शिष्यों मे माने जाते हैं परन्तु इनमे से एक ने सगुण मार्ग अपनाया तो दूसरे ने निर्गुण का प्रचार किया। तुलसी और कबीर मे एक यह भी अन्तर था कि कबीर की नीति खडनात्मक थी जब कि तुलसी की नीति प्राय मडनात्मक ही मिलती है। कबीर ने तो रूढियों का खण्डन और ज्योति-दर्शन की बात बिलकुल नाथ-सम्प्रदाय और सिद्धो की भाँति कही है। साथ ही कबीर ने रामानन्द की भक्ति-पद्धति और राम नाम को प्रमुख आधार माना है। भक्ति को उन्होंने सर्वोपरि स्थान दिया है। कबीर की इस भक्ति मे सूफी प्रेम-साधना के भी दर्शन होते है। वास्तव में कबीर सूफी थे। जायसी और कबीर मे यह था अन्तर कि जायसी 'बाशरा सूफी' थे और कबीर 'बेशरा सूफी'। प्रेम की मस्ती का जो वर्णन कबीर ने किया है वह सूफी प्रभाव ही है। इस प्रकार कबीर ने मिली-जुली भक्ति-पद्धति को ही अपनी उपासना का आधार बनाया था। आगे चलकर कबीर-पंथ की दो शाखाएँ हो गयी—(१) सूरत-गोपाली और (२) धरमगोपाली। अधिकाश कबीरपथी दूसरी के ही अनुयायी थे। धरमगोपाली शाखा के प्रवर्त्तक धर्मदास थे। इन शाखाओं के अतिरिक्त अन्य गौण शाखाएँ बन गयी थी यथा—ज्ञानीपथ, ताकसारी पंथ, सत्य-कबीर, नाम-कबीर, दान-कबीर, मंगल-कबीर, हंस-कबीर और उदासिका कबीर आदि।[११९५]

तुलसी के समकालीन दादूदयाल ने दादू-पंथ चलाया था। अकबर इनसे बडा प्रभावित हुआ था। फलस्वरूप अकबर ने सिक्के पर से अपना नाम हटवाकर उसकी जगह एक ओर तो 'जल्ले जलालहू' और दूसरी ओर 'अल्ला हो अकबर' लिखाया था।[११९६] दादू के भी अनेक शिष्य थे—सुन्दरदास (बीकानेर नरेश), सुन्दरदास (कवि एवं साधक) जगजीवनदास और रज्जब आदि। १७वीं शती मे मलूकदासी पथ भी विद्यमान था।[११९७] नानक-पंथ, साधो-पंथ आदि

११९५. मिडिल मिस्टीसिज्म आफ इण्डिया, पृष्ठ ११६।

११९६. वही, पृष्ठ १११।

११९७ वही, पृष्ठ १५४।

अन्य अनेक पथ भी विद्यमान थे ।

कबीर आदि के समान ही सूफी लोग भी अपना प्रचार करते थे । पहले-पहल सूफियो का प्रभाव पंजाब और सिन्ध पर पडा था ।[११९७(अ)] ११वे शतक में लाहौर मे सूफी-धर्म का खूब प्रचार हुआ था । फिर चिश्तीवश के सूफियो का भारत मे बहुत प्रभाव बढा । मुईउद्दीन चिश्ती का नाम सूफीमत के प्रचारको मे विशेष रूप से लिया जाता है । पुष्कर इनका केन्द्र था । वहाँ तो आज तक भी कुछ ब्राह्मण ऐसे है जो अपने को 'हुसैनी' कहते है । इसी परम्परा मे शकरगज का भी नाम आता है । इन्होने 'इमामशाही पथ' चलाया था । इसके अतिरिक्त 'सुहरावर्दी-पथ' का भी कम प्रभाव नही था । चिश्तीवश की 'कादिरी शाखा' भी उल्लेखनीय थी । दाराशिकोह इसी का अनुयायी था । १६वी और १७वी शती मे इस शाखा का उल्लेखनीय प्रभाव पडा था । अकबर के दरबार मे भी सूफीमत का आदर होता था । सूफीमत का इतना प्रचार हो चला था कि १७ वे शतक के मध्य भाग में मुहम्मद शहदुल्ला नामक सूफी प्रचारक को कुछ लोग विष्णु का अवतार मानकर पूजने को प्रस्तुत थे।[११९८] निर्गुण की इस उपासना पद्धति के अतिरिक्त, दूसरी ओर सगुण शाखा भी चल रही थी ।

स्वामी वल्लभाचार्य द्वारा प्रवर्तित सगुण भक्ति की कृष्ण-भक्ति-शाखा मे अनेक पुष्टिमार्गी भक्त सामने आते हैं जिनमे सूरदास अग्रगण्य थे । इनके अन्य साथी भक्तो के अतिरिक्त मीरा का नाम भी उल्लेखनीय है । उधर रामानन्द द्वारा प्रवर्तित सगुण-मार्ग मे कृष्णदास पनहारी और अनन्तानन्द आदि सामने आये। इसी परम्परा मे अग्रदास और तुलसीदास का नाम भी आता है । कबीर ने निर्गुण पथ का आश्रय इस कारण लिया था कि मुसलमान शासको द्वारा मन्दिरो और मूर्तियो को तोड डालने के कारण जनसाधारण मे मूर्तियो के प्रति आस्था नही रह गयी थी । साथ ही अवतारवाद की भावना के लिए भी गुजाइश नही थी । क्योकि जो भगवान् अपने भक्तो के लिए अवतार लेते है वे अपनी दुर्दशा देखकर भी अवतार न ले सके ! इससे जनता की धारणा निराशामय बन चुकी थी। फिर विक्षुब्ध वातावरण को शात करने के लिए हिन्दू-मुस्लिम-ऐक्य की आवश्यकता थी । फलस्वरूप कबीर ने इस्लाम वालो की भाँति मूर्ति और अवतार का विरोध तो किया परन्तु ईश्वर की सत्ता स्वीकार की । उसने हिन्दुओ की मूर्तियो का ही नही, अपितु मुसलमानो के रोजे, नमाज और मस्जिदो तक का खण्डन किया। इसी कारण कबीर-पथ उच्च श्रेणी के लोगो को कभी स्वीकार्य नही हो सका।

११९७(अ) वही, पृष्ठ ११।

११९८. मिडिल मिस्टीसिज्म ऑफ इण्डिया पृ० ३२ ।

उसमे तो केवल निम्न श्रेणी के लोग ही पहुँचे। तुलसी के युग तक आते-आते कवीर की प्रतिभा क्षीण हो चुकी थी, साथ ही उसका पथ भी अनेक शाखा-उपशाखाओ मे बँट चुका था।

उपर्युक्त विवरण से यह ज्ञात होता है कि तुलसी के समय मे अनेक पथ चल पड़े थे। उन्होने कहा भी है : **'दंभिन्ह निज मति कल्पि कर प्रकट कीन्ह बहु पंथ।'**

मन्दिरो की भी काफी दुर्दशा हो चुकी थी। कुछ तो मुसलमान शासको ने तोड़ गिराये थे, जो शेष थे उनमे अनाचार का बोलबाला था। तीर्थों की भी इसी प्रकार दुर्दशा थी। शाहजहाँ के शासनकाल मे बर्नियर ने भारत की यात्रा की थी। उसने जगन्नाथपुरी के मन्दिर और मेले का जो वर्णन किया है उसका वर्णन कांस्टेबल एवं स्मिथ की 'बर्नियर्स ट्रेवल्स इन दी मुगल इण्डिया' के पृष्ठ ३०४ पर देखा जा सकता है। इस पुस्तक के अन्य स्थलो पर भी जगन्नाथपुरी के अन्ध-विश्वास, ढोंग और व्यभिचार के नग्न चित्र प्रस्तुत किये गये है। बर्नियर ने योगियोका भी बढा नग्न वर्णन किया है। वह लिखता है—"विचित्र मुद्रा मे आसीन, नग्न और काले लम्बी जटा और विशालनाखूनधारी योगी को देखकर जैसा भय लगता है वैसा कदाचित् नरक को भी देखकर न लगेगा।" लेखक ने ऐसे ही अन्य अनेक योगियो का वर्णन किया है। १३ वी और १४ वी शती के ऐसे ही योगियो का उल्लेख मार्कोपोलो ने भी किया है। ये खडे निष्ठुर और पाखण्डी होते थे, नग्न ही इधर उधर घूमा करते थे, शरीर पर भस्म लगाते थे। इब्नबतूता के वर्णन से जान पडता है कि लोग इन्हे सिद्ध समझते थे। इस प्रकार तुलसीकालीन विभिन्न मत और सम्प्रदाय पाखण्ड और अनाचार तक फैलाने लगे थे।

तुलसी का मार्ग न तो इन सबके खण्डन के लिए था और न किसी दार्शनिक सिद्धात के प्रतिपादन के लिए ही। उन्होने तो उदासीन और निराशापूर्ण वातावरण मे आशा और आकर्षण की आवश्यकता का अनुभव किया था। इस आकर्षण को वे धार्मिक चेतना के रूप मे उत्पन्न करना चाहते थे। फलस्वरूप वे अपने इष्ट राम का ऐसा चरित्र लेकर सामने आये जिसमे लोक—जीवन को प्रेरित करने की सारी शक्ति और विशेषताएँ विद्यमान थी। उन्होंने हमे लोकधर्मयुक्त दर्शन दिया। इस प्रकार धार्मिक पृष्ठभूमि तुलसी के दृष्टिकोण का निर्माण करती हुई एक आवश्यकता की पूर्ति करने को उन्हे प्रेरित करती है। इन परिस्थितियो के बीच रखकर ही हम तुलसी की रचनाओ का ठीक-ठीक महत्त्व आँकने मे समर्थ हो सकते है। उन्होने अपने 'रामचरितमानस' मे अपने समय की सभी कमियो की पूर्ति की चेष्टा की, विभिन्न प्रश्नो के सही उत्तर दिये और पथभ्रष्ट लोगो को सुमार्ग दिखाया।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि जहाँ रविषेण के काल मे ब्राह्मण धर्म, जैन धर्म और बौद्धधर्म ही प्रधान रूप से भारत में व्याप्त थे वहाँ तुलसी के काल मे इनके अतिरिक्त विविध सम्प्रदायो और धर्मो का भी अस्तित्व था। जहाँ रविषेण का युग हिन्दू-धर्म के चरमोत्कर्ष को धारण करने वाला था वहाँ तुलसी का युग हिन्दू-धर्म की अवनति देखकर व्याकुल था। रविषेण के काल मे भारतभूमि मे उत्पन्न धर्म ही राजधर्म थे जबकि तुलसी के काल में विदेशी धर्म भी भारत के राजधर्म थे। तुलसी के काल मे भारत मे बाहरी धर्म भी अपना प्रचार करने लगे थे एव इससे देश को पर्याप्त धक्का लगा क्योंकि धार्मिक विद्वेष का पर्याप्त सूत्रपात होने लगा था। हाँ, इतना अवश्य है कि तुलसी के युग में भक्ति-आन्दोलन खूब चला जिसका धार्मिक परिस्थितियो के निर्माण मे अद्भुत योगदान रहा। भाव यह है कि रविषेण के काल की धार्मिक परिस्थितियों की अपेक्षा तुलसी-कालीन धार्मिक परिस्थितियाँ पर्याप्त बिगडी हुई और चुनौती देने वाली थी।

तुलसीकालीन साहित्यिक परिस्थिति का विवेचन करते समय हमें ज्ञात होता है कि तुलसी से पूर्व अनेक कवि 'प्राकृतजन-गुणगान' कर चुके थे। वीरगाथाकाल के कवियो ने प्रेम और वीरता से पूर्ण रचनाएँ की थी। चन्द, नरपति-नाल्ह और जगनिक आदि कवि अपने आश्रयदाताओ की प्रशसा करके ही रह गये। जनसाधारणके लिए उनका इतना उपयोग न था। उन ग्रन्थो की अत्युक्तियाँ एवं अतिशयोक्तियाँ भी उन्हें अस्वाभाविकता की ओर अधिक ले जाती दिखाई देती हैं। 'रासो' नामक ग्रन्थो की घटनाएँ प्राय: इतिहास से मेल नही खाती। उनमे तो केवल तत्कालीन राजाओ के पारस्परिक युद्ध और शौर्य-प्रदर्शन या किसी कुमारी के अपरण का ही वर्णन मिलता है।

इन ग्रन्थो के अतिरिक्त कुछ ऐसी भी रचनाएँ होती थी जिनका उद्देश्य केवल कामुकता को जगाना ही होता था। ऐसी रचनाएँ प्राय. बादशाहो और नवाबो के दरबारो मे ही चलती थी। विजय, बधाई, विवाह, राज्यतिलक और जन्म-दिवस सम्बन्धी रचनाएँ भी दरबारो मे पढी जाती थीं। इन रचनाओं पर कवियों को इनाम मिलते थे। किसी ने चार पक्तियो की कविता पढकर हाथी प्राप्त कर लिया था तो किसी ने गाँव। एक कविता पर दस हजार रुपये के इनाम के मिलने का उल्लेख मिलता है जिसमे केवल यही बात कही गयी है कि जहाँगीर के सामने सिखाये गये तेंदुवे ने किस प्रकार जंगली भैंसे पर प्रहार किया।[११९९]

इस्लाम के प्रचार के लिए कुछ मुसलमान सूफी भक्त प्रेम-कहानियाँ लिख

११९९. मुगल एडमिनिस्ट्रेशन पृ० १६२-१६३

रहे थे। उनमे मलिक मुहम्मद जायसी. कुतुवन, मंझन और उसमान आदि उल्लेखनीय है। इनके पात्र साधारण राजा-रानी होते थे परन्तु उनके माध्यम से वे ईश्वर की ओर सकेत किया करते थे। पद्मावत, मृगावती, मधुमालती और चित्रावली आदि रचनाओ मे इन कवियो ने इसी प्रकार की प्रेमकथाएँ लिखी हैं। इन सभी मे विरह को प्रधानता दी गयी है। कहानी के वीच-वीच मे ये कवि इस्लाम धर्म-सम्बन्धी बाते भी कहते चलते हैं। हिन्दू-मुस्लिम-एकता भी इन कवियो का एक उद्देश्य था।

इसी के साथ निर्गुणपथ भी चल रहा था। इसमे कवीर, दादू, सुन्दर, मलूक, नानक और रैदास आदि सन्तकवि पदो की रचना कर रहे थे। ये सभी जाति-पाँति के विरुद्ध थे। नीति सभी की खण्डनात्मक थी। कवीर की रचनाएँ 'वीजक' नाम से प्रसिद्ध है। इनमे सवद, रमैनी और साखी—तीनो का सग्रह है। निर्गुण-साहित्य निराकार ब्रह्म का मार्ग प्रशस्त कर रहा था और हिन्दू-मुस्लिम एकता के लिए प्रयत्नशील था। बाह्य आडम्बरों को इन सभी निर्गुणपथियो ने फटकारे सुनायी है। इन लोगो मे साहित्यिक ज्ञान की कमी थी। केवल एक सुन्दरदास ही पढ़े-लिखे व्यक्ति थे। शेप सव सन्त ही थे। उन्होने सत्संग से जो भी सुना या पाया, उसे ही वे कह गये।

तत्कालीन मुगल-शासन की ओर से भी साहित्यिक प्रगति मे सहयोग दिया जा रहा था। अवुल फजल और फैंजी अकवर के समय के उत्कृष्ट विद्वानो मे से थे। अवुल फजल-कृत 'आइने-अकवरी' और 'अकबरनामा' सदृश फारसी के श्रेष्ठ ग्रन्थ भी इसी युग की रचनाएँ है। फैजी फारसी का मर्मज्ञ कवि और सस्कृत का अच्छा ज्ञाता था। निजामुद्दीन अहमद ने 'तवकाते-अकवरी' और 'अब्दुल वदायूँनी' ने 'मुंतखवुततवारीख' की रचना भी इसी समय की थी।[१२००] वादशाह ने अथर्ववेद, महाभारत, रामायण, पचतन्त्र आदि अनेक सस्कृत ग्रन्थो का फारसी मे अनुवाद कराया था।[१२०१] एक विशाल पुस्तकालय की भी स्थापना की गयी थी, जिसमे २४ हजार हस्तलिखित ग्रन्थ विद्यमान थे। फारसी के अतिरिक्त हिन्दी मे भी वहुत कुछ लिखा जा रहा था। अकवर स्वयं व्रजभाषा की कविता का प्रेमी था। वह स्वय व्रजभाषा मे कविता भी लिखता था। अब्दुर्रहीम खान-खाना जैसे उसके कुछ अधिकारी भी काव्यरचना करते थे। अन्य दरवारी कवियो मे महापात्र, नरहरि वन्दीजन, महाराजा टोडरमल, महाराज वीरवल,

---

१२०० भारतवर्ष का इतिहास, पृ० २५७-५८।

१२०१ वही, पृ० २५८।

गग, मनोहर कवि, केशवदास, होलराय और पुहकर कवि आदि उल्लेखनीय है।[१२०२] ये कवि प्राय शृगार और नीति या कभी-कभी वीर रस की कविता लिखा करते थे। सैयद मुबारक अली ने तो नायिका के अलक और तिल पर भी 'अलक-शतक' और 'तिल-शतक' तैयार कर डाले थे। इस समय की वीरता की कविताओ में केवल अपने आश्रयदाता की चाटुकारिता ही मिलती है। रहीम के अतिरिक्त सभी कवियो की नीति की रचनाएँ विशेष महत्त्वपूर्ण नही कही जा सकती। इस प्रकार अकबर के दरबारी कवियो ने प्राय मुक्तक रचनाएँ ही लिखी। कुछ लोगो ने प्रबन्ध-काव्य भी लिखे। केशवदास ने **'वीरसिंह देवचरित'**, **'जहाँगीर-जसमयंक चन्द्रिका'** और **'रामचन्द्रिका'** की रचना की थी। पुहकर कवि ने 'रसरतन' लिखा था।[१२०३]

इस प्रकार तुलसी के युग मे अनेक प्रकार की रचनाएँ लिखी जा रही थी। तुलसी ने अपने युग की प्रचलित सभी शैलियो में साहित्य रचना की है। तुलसी के युग मे प्रचलित शैलियाँ इस प्रकार थी—(१) **कवित्त-छप्पय-पद्धति**—इस पद्धति को वीरगाथा-काल के कवियो ने अपनाया था। उन्होने अपने आश्रयदाताओ की वीरता की प्रशंसा इन्ही छन्दो मे की थी। तुलसी ने अपने राम की वीरता आदि के पसगो मे इन्ही छन्दो को अपनाया है। इनके उदाहरण उनकी कवितावली मे देखे जा सकते हैं। (२) **सिद्ध, नाथ और सन्त कवियों की साखी-पद्धति**—यह उपदेश प्रधान है और इसमे दोहे लिखे गये है। तुलसी की 'वैराग्य-सन्दीपनी', 'रामाज्ञा-प्रश्न' तथा 'दोहावली' मे यही शैली अपनायी गयी है। (३) **सूफी कवियों की दोहा-चौपाई-पद्धति**—इसका प्रयोग जायसी, कुतुबन और मझन आदि प्रेममार्गी कवियो ने किया है। इसी पद्धति का प्रयोग तुलसी ने अपने 'रामचरितमानस' मे किया है। (४) **कवित्त-सवैया-पद्धति**—गग और नरहरि आदि कवियो ने इस पद्धति में ही लिखा है। तुलसी की कवितावली मे इस पद्धति का भी दर्शन होता है। (५) **पद-पद्धति**—पदों का प्रयोग कृष्ण-भक्त कवियो सूर और अष्टछाप के अन्य कवियो ने किया था। तुलसी ने इस पद्धति का प्रयोग गीतावली, कृष्णगीतावली और विनयपत्रिका मे किया है। इन पदो मे भाव-गाम्भीर्य और काव्य-सौन्दर्य दोनो का मणि-काचन-सयोग दिखाई देता है। (६) **लोकगीत-पद्धति**—लोक मे प्रचलित अनेक गीतो ने भी तुलसी को प्रभावित किया था। ये गीत मागलिक उत्सवो पर गाये जाते थे। उन्होने पार्वती-मगल, जानकी

१२०२ रामचन्द्र शुक्ल हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० ३२३।
१२०३ वही, पृ० ३२३

मगल, रामलला नहछू और कही कवितावली तथा गीतावली तक मे इन लोक-गीतो को अपनाया है। पुत्रोत्सव का सोहर 'नहछू' के समय गाया गया है। कवितावली मे कही-कही 'झूलना' नामक लोक-छन्द का भी प्रयोग किया गया है।

इन प्रचलित पद्धतियो के अतिरिक्त तुलसी ने प्रवन्ध और मुक्तक दोनो प्रकार के काव्यो की रचना की है। विनयपत्रिका जैसी गीतिकाव्य की रचना एक आश्चर्यजनक कृति है। वास्तव मे जन-रुचि का ध्यान रखकर ही तुलसी ने इन विविध शैलियों में राम का चरित्र प्रस्तुत किया है।

रविषेणकालीन और तुलसीकालीन साहित्यिक परिस्थितियो मे कुछ साम्य और कुछ अन्तर है। साम्य इतना है कि दोनो के काल मे सस्कृत और हिन्दी के अनुपम काव्य रचे गये। यदि एक ओर सस्कृत मे दण्डी, वाण, सुवन्धु आदि ने अपनी रचनाओ के रूप मे अनन्वय अलंकार के उदाहरण प्रस्तुत किये हैं तो दूसरी ओर तुलसी ने भी। दोनो कवियो के समय मे कलापक्ष का उन्नयन हुआ। किन्तु रविषेण के काल मे स्वच्छन्द साहित्यिक परम्परा का जैसा वृहण हुआ वैसा तुलसी के काल मे नही। रविषेण के काल मे प्रौढि अभिनन्दनीय थी किन्तु तुलसी के काल मे 'भाषा-निबन्ध' की आवश्यकता पड़ने लगी थी। रविषेण के काल मे हम अपनी भाषा पढने के लिए लालायित रहते थे किन्तु तुलसी के काल मे दूसरे देश की भाषा पढने को विवश। रविषेण के काल मे महाकाव्यो के प्रणयन और मनन का पर्याप्त अवसर था, तुलसी के काल मे प्राय. मुक्तको की रचना एवं श्रवण का अवकाश। भाव यह है कि रविषेणकालीन साहित्यिक परिस्थितियाँ अधिक स्वस्थ थी।

उपर्युक्त परिस्थितियो मे दोनो कवियो ने अपने-अपने ग्रन्थो का प्रणयन किया है। निश्चय ही अपने समय की परिस्थितियो ने उनकी रचनाओ को पर्याप्त प्रभावित किया है।

रविषेण और तुलसी के समय की परिस्थितियो का तुलनात्मक परिचय देने के अनन्तर हम 'पद्मपुराण' और 'रामचरितमानस' की विविध दृष्टियो से तुलना करना औपयिक समझते हैं। पद्मपुराण के विविध पक्षो पर यथासम्भव विस्तार के साथ प्रस्तुत ग्रन्थ के दशम अध्याय तक लिखा जा चुका है। एकादश अध्याय के प्रारम्भ मे तुलसी से पूर्व रामकाव्य-परम्परा की सक्षिप्त चर्चा के साथ रामचरितमानस का प्रकृतोपयोगी सक्षिप्त परिचय दिया जा चुका है। आगे हम पद्मपुराण और मानस की विषयवस्तु, पात्र एव चरित्र-चित्रण, भावपक्ष, कलापक्ष, धर्म और सस्कृति की दृष्टि से तुलनात्मक समीक्षा करेंगे।

पद्मपुराण और मानस की विषयवस्तु . पद्मपुराण और मानस दोनो मे ही राम की कथा कही गयी है। अत स्वाभाविक है कि दोनो के कथानक मे कुछ

साम्य भी दृष्टिगत हो। किन्तु कथा कहने वाले दोनों कवियो का दृष्टिकोण एवं परम्परा पृथक्-पृथक् है, अतः दोनों के ग्रन्थो की विषयवस्तु मे वैषम्य भी पर्याप्त मात्रा मे पाया जाता है, जिसका परिचय वक्ष्यमाण सामग्री के माध्यम से दिया जा रहा है।

साम्य : आचार्य रविषेण और गोस्वामी जी ने अपने-अपने ग्रन्थों को प्राय. समान रूप से ही प्रारम्भ किया है। दोनो ने धूमधाम से लम्बा मंगलाचरण सज्जन-गुणकीर्तन, अभिधा अथवा व्यजना से दुर्जन-निन्दा एव आत्म-विनय का प्रदर्शन किया है।

दोनो ने रामचरित के माहात्म्य का व्याख्यान किया है। दोनो के लिए राम-कथाकार नमस्य है। दोनों की ही रामकथाओ का उपस्थापन प्रश्न या शंका के उत्तर मे हुआ है। वक्ता या श्रोता का सवाद अनवरत चलता रहता है।

दोनो ग्रन्थो मे रावण के दो भाई (भानुकर्ण या कुम्भकर्ण एव विभीषण) एवं एक बहिन (शूर्पनखा या चन्द्रनखा) है। दोनो मे रावण का वीरत्व और दशाननत्व सिद्ध है। सिद्धि-प्राप्ति के हेतु रावण, कुम्भकर्ण एवं विभीषण की तपस्या का वर्णन है जिसके फलस्वरूप उन्हे सिद्धि या वरदान प्राप्त होते है। मयसुता मन्दोदरी से रावण का विवाह, युद्ध द्वारा रावण की लका-विजय, रावण का पुष्पक-लाभ, रावण-मारीच-सम्बन्ध, इन्द्र, वरुण आदि अनेक प्रतापी पात्रों और अन्य राजाओ पर रावण की विजय एवं उसका भक्त रूप दोनो ग्रन्थो में वर्णित है। सहस्रकिरण (सहस्रार्जुन) की जल-क्रीडा, उससे रावण को क्रोध एव उससे युद्ध का दोनो मे उल्लेख है। अनेक राजाओ से रावण के युद्ध एवं उन्हे जीतने का दोनो में वर्णन है।

दोनो काव्यो में, दशरथ अयोध्याधिपति है। उनके राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न--ये चार पुत्र है। राम कौशल्या के, लक्ष्मण सुमित्रा के एव भरत कैकेयी के पुत्र है। जनक मिथिला के राजा है; उनकी पुत्री सीता से राम का विवाह होता है; इसके लिए धनुष-सम्बन्धी शर्त है जिसे अनेक राजाओ एव राजकुमारो में केवल राम ही पूरा कर पाते है। सीता-सहित राम के अयोध्या लौटने पर आमोद-प्रमोद होता है, नगरी की सज्जा होती है। दशरथ अपने वार्द्धक्य--आगमन पर राम का अभिषेक करना चाहते हैं किन्तु कैकेयी (केकया) इस समय राजा द्वारा पूर्वकाल मे प्रतिश्रुत वर माँग कर भरत को राज्य दिलाती है एवं राम-लक्ष्मण-सीता वन को जाते है। भरत अपनी माता के इस कृत्य का विरोध करता है। लक्ष्मण भी इस काण्ड पर क्षुब्ध दिखाई देते हैं। वनगमन--वेला में राम का माता से विदा माँगना एवं उसे प्रबोध देना, रामरहित अयोध्या की उदासी एवं नागरिको

की पीड़ा सजीव रूप मे वर्णित है। राम का लक्ष्मण एव सीता के साथ वनगमन एव भरत का राम-माता के पास आकर परिदेवन दोनो काव्यों मे उपनिवद्ध हैं।

दोनो काव्यो मे, भरत वनवासी राम को लौटाने के निमित्त जाते है। भरत की माता भी इस समय उनके साथ होती है। राम किसी भी प्रकार लौटना स्वीकार नही करते एव भरत को ही शासन-सचालन के लिए कहते हैं। वन-भ्रमण करते हुए राम-लक्ष्मण-सीता चित्रकूट पर जा पहुँचते हैं, अनेक मुनियो के दर्शन करते हैं, दण्डक-वन मे प्रवेश करते हैं। दोनो ग्रन्थो मे, रावण की वहिन राम-लक्ष्मण पर मुग्ध होकर उन्हे मोहित करना चाहती है, राम अपने को विवाहित कह कर छुटकारा पा लेते हैं और उसे लक्ष्मण के पास भेजते है जिस पर लक्ष्मण उसका तिरस्कार करते है, वह भयकर रूप धारण कर उनको त्रस्त करने का प्रयास करती है जो निष्फल होता है। रावण-भगिनी अपने तिरस्कार से खर-दूषण को परिचित कराती है जिससे क्रुद्ध खर-दूषण का राम-लक्ष्मण से युद्ध होता है एवं राम-लक्ष्मण विजयी होते है। रावण की वहिन अपने अपने भाई (रावण) को राम-लक्ष्मण के अविनय का परिचय देकर उनके विरुद्ध उसे भडकाती है एव सीता सुन्दरी का परिचय देती है। रावण सीता को चुरा लेना चाहता है। दोनो मे—एक भाई सीता की रक्षा के निमित्त उसके पास रहता है और दूसरे भाई के सकेत पर उसकी सहायता के लिए जाता है। इधर एकाकिनी सीता को पाकर रावण उसका हरण कर लेता है एव राम-लक्ष्मण एक दूसरे को देखकर सीता के विपत्ति-ग्रस्त होने की आशका करते है।

दोनो ग्रथो मे, रावण सीता को विमान पर चढाकर लका ले जाता है, मार्ग मे सीता को वचाने के निमित्त जटायु रावण से सघर्ष करता है किन्तु पराजित होता है और सीता विलाप करती जाती है। लका के उपवन मे सीता को अशोक वृक्ष के नीचे स्थान दिया जाता है, जहाँ वह रावण के प्रेम-प्रस्ताव को ठुकरा देती है।

दोनो ग्रथो मे, राम-लक्ष्मण के लौटने पर उनकी व्याकुलता एव वन की शून्यता के साथ भयकरता का वर्णन है। जटायु द्वारा सीता-हरण की सूचना, जटायु की मृत्यु, राम का मार्मिक एव विस्तृत विलाप, जगल-जगल भटकना एवं प्रकृति से सीता की सुधि पूछना-दोनो ग्रंथो मे निवद्ध है।

रावण का सीता के प्रति वारम्वार प्रेम-प्रस्ताव, लोभ-भय-दर्शन एव वल-वैभव मे राम लक्ष्मण का अपनी अपेक्षा लघुत्व-प्रतिपादन दोनो ग्रथो मे है। इसी प्रकार सीता की रावण को वार-वार फटकार, तिनके की ओट मे उसे धिक्कारना मन्दोदरी का रावण को समझाना एवं सीता को ससम्मान लौटाने की राय देना,

रावण का क्षणभर के लिए हाँ मे हाँ मिला कर फिर अपनी पर आ जाना, सीता को अपने प्रेमपाश में बाँधने के लिए उसका विविधि यत्न करना एव सीता की अपने व्रत से अडिगता उभयत्र है।

दोनो ग्रथो मे, किष्किन्धपुरवासी सुग्रीव वालि का भाई है। सुग्रीव के साथ युद्ध करके उसका प्रतिद्वन्द्वी उसका राज्य और पत्नी छीन लेता है। निराश सुग्रीव राम की शरण लेता है। उसके साथ हनुमान, अगद आदि अनेक पात्र राम के निकट आते हैं। पत्नीहरण-रूप समान विपत्ति से ग्रस्त राम-सुग्रीव की मैत्री होती हे जिसमें दोनो के द्वारा परस्पर सहायता की प्रतिज्ञा होती है। राम-सुग्रीव की विपत्ति दूर करने का वचन देते है और सुग्रीव सीता की खोज कराने का। सुग्रीव का अपने प्रतिद्वन्द्वी से युद्ध होता है एवं उसे चोट लगती है। राम उन दोनो में पहले यह नही पहचान पाते कि कौन असली सुग्रीव है और कौन प्रतिद्वन्द्वी? बाद में किसी प्रकार से पहचानकर अपने बाण से सुग्रीव के प्रतिद्वन्द्वी को मार देते हैं। निस्सपत्न सुग्रीव राज्य और पत्नी का लाभ कर विलासग्रस्त हो जाता है एव सीता-खोज के प्रति प्रमादी हो जाता है। इस पर उसे प्रबुद्ध करने के लिए राम लक्ष्मण को भेजते हैं। लक्ष्मण सुग्रीव को डॉटते है जिस पर वह उनकी खुशामद करके क्षमा याचना करता हैं एव उनके आदेशानुसार सीता-न्वेषण के लिए वानर-वीरो को चतुर्दिक् प्रस्थापित करता है। अनुचरो द्वारा सीता की लका मे स्थिति जानकर हनुमान को लका भेजा जाता है, परिचय के लिए राम उन्हे अपनी अँगूठी देते है। समुद्र-तट पर एक पात्र (विद्याधर या सम्पाति) उन्हे सीता-विषयक परिचय देता है।

समुद्र पार कर हनुमान का लका-प्रवेश, लकिनी या लकासुन्दरी से भेंट एव उससे युद्ध, उसका हनुमान का शुभचिंतक बनना, हनुमान का विभीषण-गृह-गमन एव उससे आतिथ्य-लाभ, उसके द्वारा अशोकवृक्षतलस्थित सीता का ज्ञान प्राप्त कर उसका उपवन-गमन, विरहिणी सीता की दशा देखकर हनुमान का दु.खी होना एव अँगूठी गिराना, अँगूठी देखकर सीता का हर्ष—विषाद, सीता-हनुमान-परिचय, सीता के राम-लक्ष्मण की कुशल पूछने पर हनुमान द्वारा राम के वियोग का मार्मिक वर्णन, सीता द्वारा अपनी व्यथा का वर्णन एव राम-लक्ष्मण के प्रति अपनी विपत्ति दूर करने का सदेह, हनुमान द्वारा उपवन-विध्वस, रक्षक—मर्दन, अनेक योद्धाओ का सहार, हनुमान के निग्रहार्थ इन्द्रजित् का उपवन मे आगमन, दोनो का भयंकर युद्ध, इन्द्रजित् द्वारा पाश फेकना और हनुमान का जान बूझकर उसमें फँसना, पाशवद्ध हनुमान का रावण की सभा मे उपस्थापन, हनुमान-रावण-सवाद, जिसमे रावण को सन्मार्ग पर चलने की सलाह दी गयी, सीता को लौटाने को

कहा गया तथा राम के पराक्रम का परिचय दिया गया, क्षुब्ध रावण का हनुमान को मारने एव अपमानित कर नगर मे घुमाने का आदेश और हनुमान का सबको डराकर एव लका मे त्राहि-त्राहि मचाकर सीता की चूडामणि लेकर लौटना उभयत्र वर्णित है।

लका-निवृत्त हनुमान (अथवा हनूमान) का राम-लक्ष्मण-सुग्रीव आदि द्वारा सत्कार, उससे सीता की व्यथा-कथा एव सदेह सुनकर राम की भावविभोरता एव उसे गले लगाना, राम-सुग्रीव आदि के द्वारा मिलकर सीता को लौटाने के हेतु लका पर चढाई, वानर-सेना-प्रस्थान पर शुभ शकुन एव मार्ग मे नल द्वारा समुद्र की समस्या का हल होना—ये विषय दोनो ग्रथो मे है।

विभीषण द्वारा वारम्वार प्रबुद्ध किये जाने पर भी रावण का न मानना, उसका राम के पक्षपाती विभीषण पर क्रोध एव उसका नवानिर्वासन, विभीषण का राम की सेना मे उपस्थित होना, प्रथम साक्षात्कार मे ही राम का विभीषण को परम सम्मान-दान एव उसके लकाधिपतित्व का विचार, युद्ध का प्रारम्भ, कई दिन युद्ध चलना, सायकाल को युद्ध-विराम, हनुमान-मेघनाद-युद्ध, कुम्भकर्ण का शरीर देखकर वानर-सेना का भयभीत होना, विभीषण-रावण-युद्ध, रावण द्वारा विभीषण पर शक्ति-प्रहार एव राम द्वारा उसका बचाव, इन्द्रजित-लक्ष्मण-युद्ध, लक्ष्मण का शक्ति प्रहार से मूर्च्छित होना, मूर्च्छित लक्ष्मण के चिकित्सक द्वारा रात-रात मे ही औषध-प्रबन्ध की अनिवार्यता का प्रतिपादन अन्यथा लक्ष्मण के जीवन की सदिग्धता का कथन, शक्ति-मूर्च्छित भाई की दशा देखकर रामद्वारा अत्यन्त मार्मिक करुण विलाप, व्याकुल राम की विभीषण-विषयक चिन्ता, हनुमान द्वारा औषध लाना, हनुमान-भरत का अयोध्या मे साक्षात्कार, औषध आ जाने पर लक्ष्मण का प्रकृतिस्थ होना एव युद्धार्थ सन्नद्ध होना—ये विषय भी उभयत्र है।

युद्ध-विराम होने पर रावण की सिद्धि-साधना, अगद द्वारा उसमे अनेक प्रकार से विघ्नोपस्थापन, रावण का पुन. क्रोध, उसका सीता के पास जाकर एक बार फिर प्रेम-प्रस्ताव, सीता द्वारा उसका पूर्ण प्रत्याख्यान, राम-लक्ष्मण के साथ रावण का भीषण युद्ध, रावण के लिए अपशकुन तथापि उसका मायायुद्ध करना एव अन्त मे युद्धस्थल मे मारा जाना, उसकी मृत्यु पर मन्दोदरी का करुण मार्मिक विलाप, मृत रावण का क्रिया-कर्म, लका के सिंहासन पर विभीषण का अभिषेक, सीता-राम-मिलन, विभीषण द्वारा राम-लक्ष्मण से लकागमन का निमत्रण तथा उनके प्रति कृतज्ञता—ये विषय उभयत्र निबद्ध है।

इसी प्रकार राम का सीता-लक्ष्मण सहित अयोध्या के लिए प्रस्थान, उनका

मार्ग में सीता को अनेक स्थान दिखाना, उनके साथ हनुमान-सुग्रीवादि का भी आना, आकाश से ही उन्हे अयोध्या की सजावट का दिखाई देना, अयोध्यावासियो को दूत द्वारा रामागमन की सूचना, नगर से बाहर ही राम का विमान से उतारना, भरत आदि द्वारा उनकी अगवानी, राम-लक्ष्मण-सीता का सबसे मिलन (विशेषतया माताओ से), अयोध्या के वैभव-समृद्धि का वर्णन, राम का अभिषेक एव राम का हनुमान सुग्रीव आदि सहायको को ससम्मान विदा करना, राम-राज्य-वर्णन एव प्रजा जनो की सुसम्पन्नता दोनो ग्रथो के विषय है।

साथ ही सीता की अग्नि-परीक्षा का भी दोनो ग्रन्थो में वर्णन है।

किंतु 'पद्मपुराण' और 'मानस' की विषयवस्तु में साम्य की अपेक्षा वैषम्य अधिक दृष्टिगत होता है। श्रमण-सस्कृति और वर्णाश्रम-व्यवस्था के विश्वासी रविषेण और तुलसीदास ने अपने-अपने ग्रथो मे अपनी-अपनी परम्पराओ मे अपनी बुद्धि और प्रतिभा के अनुसार कुछ जोडा हे एव कुछ घटाया है पद्मपुराण की कथा यद्यपि **वाल्मीकि-रामायण** से पर्याप्त प्रभावित है और तुलसी भी आदि-कवि के ऋणी है तथापि यह नही कहा जा सकता कि दोनो की कथा एक ही है। दोनो कवियो का दर्शन एक दूसरे का विरोधी है। एक वेदनिंदक है तो दूसरा वेदविश्वासी, एक राम को महापुरुष, और अपने कर्म के द्वारा मोक्ष प्राप्त करने वाला 'भव्य' प्राणी मानता है तो दूसरा उन्हे मर्यादापुरुषोत्तम के साथ भगवान् भी मानता है जिसने धर्म के हेतु अवतार ग्रहण किया है। राम के इस चरित्र को निबद्ध करते समय दोनो कवियो के दृष्टिकोण ही 'पद्मपुराण' और 'मानस' की विषयवस्तु के वैषम्य के हेतु हैं।

'पद्मपुराण' की विषयवस्तु का विस्तृत विवेचन पीछे किया जा चुका है[१२०४] जिसके साथ 'मानस' की विषयवस्तु का मिलान करने पर दोनो मे पुष्कल वैषम्य की प्रतीति होती है। 'पद्मपुराण' मे सर्वप्रथम महावीर-वदना है तो 'मानस' मे वाणी-विनायक की।[१२०५] इसके बाद 'पद्मपुराण' मे कुलकरो तथा तीर्थंकरो की वदना है तो मानस में भवानी-शकर, गुरु, कवीश्वर, कपीश्वर-उद्भवस्थिति-सहारकारिणी क्लेशहारिणी, सर्वश्रेयस्करी, रामवल्लभा,[१२०६] सीता आदि की। यद्यपि आरभ मे ही यह प्रतिभासित होने लगता है कि दोनो कवि किसी महाकाव्य के प्रणयन की तैयारी कर रहे है फिर भी मानस के मंगलाचरण का जो

१२०४ प्रस्तुत ग्रन्थ का चतुर्थ अध्याय।

१२०५ वर्णानामर्थसघाना रसाना छन्दसामपि।
मगलाना च कर्त्तारौ वन्दे वाणीविनायकौ ॥ (मानस, बाल,० श्लोक १)

१२०६ मानस, बालकाण्ड, श्लोक २-५।

प्रभाव पडता है वह पद्मपुराण के मंगलाचरण का नही। मानस के आरम्भ मे पर्याप्त विस्तार के साथ विभिन्न देवी-देवताओ, महात्माओ, ऋषि-मुनियो, संतो, असतो, राम-नाम, सगुण और निर्गुण आदि की वदना के साथ अन्त मे 'सीय-राममय' जान कर समस्त जग को करबद्ध प्रणाम किया गया है जिसका पाठक पर व्यापक और गभीर प्रभाव पड़ता है। 'पद्मपुराण' के मगलाचरण मे शाब्दिक चमत्कार के साक्षात्कार होते है तो मानस के मगलाचरण मे कवि की लोक-व्यापी दृष्टि के। इसके बाद 'पद्मपुराण' में राम-कथा की भूमिका के रूप मे उपस्थापित राजा 'श्रेणिक' का महावीर के समवरण मे जाकर धर्मोपदेश सुनना तथा रात्रि को वानर-राक्षसो के विषय मे सदिग्धचित्त होकर अगले दिन प्रात. काल गौतम गणधर से राम कथा सुनना आदि मानस मे नही है। 'मानस' मे याज्ञ-वल्क्य-भारद्वाज, शिव-पार्वती और काक भुशुडि-गरुड के वार्तालाप-प्रसग से रामकथा कहलायी गयी है। 'मानस' के नारद-मोह, शिव-पार्वती-विवाह एव मनु-शतरूपा के उपाख्यान 'पद्मपुराण' मे नही हैं। 'पद्मपुराण' मे प्रदत्त राक्षस वश और वानर-वश का विस्तृत परिचय मानस मे नही है। 'मानस' मे रावण, कुभकर्ण, सूर्पनखा तथा विभीषण के जन्म से ही राक्षस-वश का परिचय मिलता है। वहाँ इनके पूर्वजन्म की कथा कही गयी है जिसके अनुसार प्रतापभानु रावण बनता है, अरिमर्दन कुभकर्ण और धर्मरुचि विभीषण। 'मानस' मे विभीषण रावण का सौतेला भाई है, सगा नही। 'मानस' के वानरवशी हनुमान, सुग्रीव, आदि बदर ही हैं, विद्याधर नही। पद्मपुराण मे रावण के मुख का हार मे प्रति-बिम्ब पडने के कारण उसका नाम 'दशानन' पडता है किंतु 'मानस' मे रावण के दस मुख ही बताये गये है। 'पद्मपुराण' मे वर्णित दशानन आदि भाइयो की विद्या-सिद्धि एव अनेक स्त्रियो की प्राप्ति, रावण के प्रति उपरम्भा की आसक्ति तथा रावण की अपने ऊपर अननुरक्त परकीया नारी के अनुपभोग की प्रतिज्ञा आदि का 'मानस' मे कोई सकेत नही है। 'मानस' मे खर और दूषण दो पात्र है जबकि पद्मपुराण मे खर-दूषण एक ही व्यक्ति का नाम है।

'मानस' के खरदूषण का सुग्राव से कोई सबध नही है जबकि 'पद्मपुराण' का खरदूषण सुग्रीव का 'पटाक जीजा' निकलता है। 'पद्मपुराण' मे समागत अजना-पवनजय-प्रसग और हनूमान् की उत्पत्ति की कथा 'मानस' मे नही आयी है, वहाँ तो हनुमान केवल पवनसुत के रूप मे प्रस्तुत किये गये है जो अखड बाल ब्रह्मचारी रहकर श्रीराम की सेवा को अपना कर्त्तव्य समझते है।

पद्मपुराण का 'दशरथ-जनक-काल-निर्वर्तन' वृत्तांत मानस मे नही है। पद्मपुराण मे दशरथ की चार रानियो का उल्लेख है जबकि मानस मे तीन का।

मानस मे **'पुत्रेष्टियज्ञोत्थ पायस'** के प्रभाव से दशरथ को सतान प्राप्ति होती है जबकि पद्मपुराण मे ऐसा कुछ नही है। भामंडल का वृत्तात मानस मे नही है। वहाँ सीता के किसी भाई की चर्चा नही है। राम-सीता का विवाह शिवधनुष की प्रत्यचा चढाने पर होता है, म्लेच्छ-दमन के कारण नही। पद्मपुराणमे सीता-राम के विवाह के साथ लक्ष्मण और भरत का विवाह वर्णित है जबकि मानस मे श्रीराम के तीनो भाइयो के विवाहो का उल्लेख है। 'मानस' मे भरत के शोक का प्रसग नही आया है। इसी प्रकार मानस मे वर्णित सीता-राम-विवाह से पूर्व की घटनाएँ—यथा राम-लक्ष्मण का विश्वामित्र के साथ जाना, ताडका-सुबाहु को मारना, अहल्या का उद्धार करना, मिथिला के स्वयवर मे तमाशा देखने जाना, वाटिका मे पुष्प-चयन करते हुए सीता-साक्षात्कार करना, लक्ष्मण-परशुराम-सवाद, बारात-आगमन तथा रामविवाहोत्सव आदि पद्मपुराण मे नही है।

पद्मपुराण मे दशरथ के वैराग्य के कारणरूप मे उपस्थित वृद्ध कचुकी का प्रसग मानस मे नही आया है। कैकेयी के वरयाचन के प्रसग मे भी अतर है। 'मानस' मे यह प्रसग विस्तृत भूमिका के साथ आया है। देवसभा मे सरस्वती को राम-वन-गमन सपादन के लिए भेजा जाता है। वह मथरा की बुद्धि बदल देती है—**"गई गिरा मति फेरि।"** मथरा कैकेयी को भरती है। कैकेयी कोप-भवन मे जाकर पड जाती है। दशरथ उसे मनाते है। उस समय वह दो वर माँगती है, एक मे वह भरत का राज्याभिषेक और दूसरे मे वह राम का वन-गमन माँगती है। दशरथ राम-वन-गमन का वर देने मे हिचकिचाते है। पद्मपुराण मे एक ही वर माँगा गया है। पद्मपुराण मे कैकेयी'वन-वास' का वर नही माँगती, केवल भरत के लिए राज्य माँगती है। पद्मपुराण मे दशरथ भरत को राम-वन-गमन से पूर्व ही राज्य दे देते हैं। राम वन जाने से पूर्व भरत से राज्य करने का अनुरोध करते है और उसे अपनी ओर से निश्चित भी करते है—**'न करोमि पृथिव्यां ते कांचित् पीड़ां गुणालय'** किंतु मानस मे भरत के ननिहाल से लौटने पर उन्हे अभिषेक समर्पित किया जाता है। पद्मपुराण मे, जब सीता भी राम के साथ चलने का अनुरोध करती हैं तो राम कहते है कि मैं दूसरे नगर को (वन को नही) जा रहा हूँ, तुम यही रहो **प्रिये त्वं तिष्ठ चात्रैव गच्छाम्यहं पुरान्तरम्**—किंतु मानस मे वे स्पष्ट बताते है कि मैं वन जा रहा हूँ और तुम हंसगामिनी होने के नाते वन जाने के योग्य नही हो। पद्मपुराण मे दशरथ खभे से टिके हुए मूर्च्छित हो जाते है जिससे उन्हे कोई मूर्च्छित नही जान पाता, मानस मे उनकी मूर्च्छा का सब को पता है। **वन-प्रस्थान का वृत्तांत** भी दोनो ग्रथो मे अतरयुक्त है। पद्मपुराण' मे अपने पीछे आने वाले प्रजाजनो को धोखा देने के लिए सायं समय वनगामी

राम-लक्ष्मण-सीता जिन-मदिर मे टिक कर रात मे मदिर के पश्चिम द्वार से दक्षिण दिशा की ओर चल पडते है, तथा शर्वरी नदी को पार कर जाते है, किंतु प्रजाजन उसे पार नही कर पाते और उनमे से अनेक तो लौट जाते है एव अनेक दीक्षित हो जाते है। मानस मे ऐसा नही है। यहाँ तो पहले तमसा के तट पर राम-लक्ष्मण-सीता विश्राम करते है फिर गगा को केवट की नाव से पार करते है। यहाँ केवट-प्रसग और ग्राम-वधुओ के मार्मिक प्रसग से कथानक मे अत्यन्त चारुत्व आ गया है।[१२०७] यहाँ सुमन्त्र जब लौटकर अयोध्या आता है और राम को न ला सकने का वर्णन करता है तो दशरथ प्राण ही छोड देते है। मानस मे भरत-मिलाप-प्रसग मे लक्ष्मण एव निषादराज भरत के साथ युद्ध करने के लिए उद्यत हो जाते हैं परन्तु बाद मे भरत का सद्भाव देखकर उनसे सौहार्दपूर्वक मिलते है। पद्म-पुराण मे ऐसा नही हुआ है।

पद्मपुराण मे समागत वज्रकर्ण और सिंहोदर का वृत्तान्त, कल्याणमाला का प्रसग, कपिल ब्राह्मण की कथा, वनमाला-लक्ष्मण-विवाह-प्रसग, अतिवीर्य का वृत्तान्त, देशभूषण-कुलभूषण के उपसर्ग का राम-लक्ष्मण द्वारा दूरीकरण आदि वृत्तान्त मानस मे नही है, और मानस के कुछ प्रसग—यथा जनक का सपरिवार चित्रकूट मे आगमन, भरत का पादुका लाना, जयन्त की दुष्टता और सीता के चरण मे चोच मारना, अनसूया द्वारा सीता को पातिव्रत्यधर्मोपदेश, शरभगऋषि-प्रसंग, वन्य ऋषियो की अस्थियो को देखकर राम की प्रतिज्ञा—'निसिचरहीन करौ महि भुज उठाइ प्रन कीन, पद्मपुराण मे नही है। पद्मपुराण मे सीताहरण का हेतु शबूक-वध है जबकि मानस मे शूर्पनखा का नाक-कान काटना। पद्मपुराण का रत्नजटी और विराधित का प्रसग भी 'मानस' मे नही है और मानस का शबरी-मिलन, कबध उद्धार, विराध-वध और पम्पासरोवर-गमन पद्मपुराण मे नही है। पद्मपुराण मे रावण की वियोगजन्य दुरवस्था को देखकर विवश होकर मन्दोदरी सीता के पास रावण का दौत्य सम्पादन करती है और उसे रावण के प्रति अनु-रक्त करने की चेष्टा करती है किन्तु मानस मे मन्दोदरी सीताकामी रावण को धिक्कारती है तथा सीता को लौटा देने के लिए उससे कहती हैं। मानस मे राम का सुग्रीव से परिचय हनुमान कराते है, वे ही पहले विप्ररूप मे राम-लक्ष्मण का परिचय प्राप्त करते है और फिर सुग्रीव के पास उन्हे ले आते हैं। सुग्रीव राम को सीता के चिह्न देता है और राम अपनी प्रतिज्ञानुसार बालि को मारते है। पद्म-

---

१२०७ पद्मपुराण मे तपोवन की स्त्रियाँ राम-लक्ष्मण को देखकर मतवाली हो जाती हैं जबकि 'मानस' की ग्राम-वधुएँ सात्त्विकता से मुग्ध।

पुराण मे राम साहसगति विद्याधर का वध करते है, वहाँ वालि-वध की चर्चा नही है। पद्मपुराण मे वर्णित कोटिशिला का लक्ष्मण के द्वारा उठाया जाना, हनूमान् द्वारा अपने नाना को परास्त करना, राम को गन्धर्वकन्याओ की प्राप्ति, लकासुंदरी और हनूमान् का विवाह आदि प्रसंग मानम मे नही है। मानस का हनूमान् समुद्र को लाँघकर लका जाता है, विमान मे बैठकर नही। बीच मे सुरसा उसकी परीक्षा लेकर उसे आशीर्वाद देती है। मार्ग मे वह समुद्रवासिनी छायाग्राहिणी निशिचरी (सिंहिका) का वध करता है और मैनाक का स्पर्श करता है। यहाँ लकासुदरी से हनूमान् के युद्ध और बाद मे दोनो के विवाह की चर्चा नही है अपितु लकिनी नामक निशिचरी का हनूमान् के मुष्टि-प्रहार से वध होता है। मानस मे मशक-समान रूप धारण कर हनूमान् का लका-प्रवेश होता है, पद्मपुराण मे असली रूप मे। पद्मपुराण मे सीता को हनूमान् के द्वारा अँगूठी दिये जाने पर मन्दोदरी उपस्थित है जिसे हनूमान् फटकार लगाता है किन्तु मानस मे इस अवसर पर त्रिजटा ही प्रधानत: उपस्थित है, मन्दोदरी अशोक-वन मे नही आती। पद्मपुराण मे हनुमान् लका का ध्वंस करता है, जबकि मानस मे वानर होने के कारण राक्षसो द्वारा जलायी गयी अपनी पूँछ से लका का दहन करता है। पद्मपुराण मे रावण को समझाते हुए विभीषण को इन्द्रजित् सापमान टोकता है, और विभीपण को फटकारता है जिस पर रावण उसे खड्ग से मारने को तत्पर हो जाता है और विभीषण भी एक खभा उखाडकर युद्ध के लिए सन्नद्ध हो जाता है, बाद मे मत्रियो द्वारा बीच-बचाव किये जाने पर वह तीस अक्षौहिणी सेना के साथ राम से जा मिलता है किन्तु मानस मे न तो इन्द्रजित् उसे टोकता है न ही विभीपण सेना के साथ राम से मिलता है। मानस मे रावण को जब विभीपण समझाता है और सीता को राम के पास लौटाने का निवेदन करता है—**मोरे कहे जानकी दीजै तब रावण मम पुर बसि तपसिन्ह कै प्रीती** कहकर चरण प्रहार से उसे अपमानित करता है और विभीषण सचिव को सग लेकर नभ-पथ से जाकर राम से मिलता है जहाँ कि राम उसे 'लकेश' कहकर उसका अभिषेक करते है—**जो सपति सिव रावनहिं दीन्हि दिये दस माथ। सोइ संपदा विभीषनहि सकुचि दीन्हि रघुनाथ॥** मानस का विभीषण चरण-प्रहार का प्रतिशोध नही लेता, बस इतना भर कहता है—"**तुम पितु सरिस भले मोहि मारा। राम भजे हित नाथ तुम्हारा।**" मानस मे समुद्र (सागर) को नल-नील बाँधते है जबकि पद्मपुराण मे नल वेलन्धरपुर के स्वामी समुद्र नामक राजा को परास्त करता है। पद्मपुराण मे रावण की सभा में अंगद के द्वारा चरण रोपने का प्रसग नही है। मानस मे अगद राम का दौत्य सपादन करने के लिए रावण के पास जाता है और उसकी सभा में "**मैं तव दसन तोरिबे**

लायक।" आदि कहकर उसका अपमान करता है, वह रावण को चुनौती देता है कि कोई भी योद्धा उसका पैर उठा दे किन्तु सब हार मानते हैं। वह रावण के मुकुट उठाकर आकाश मे फेंक देता है और अपने पैर उठाने वाले रावण को श्री राम के पैर पकडने की सलाह भी देता है। मानस में अंगद द्वारा भानुकर्ण (कुम्भ-कर्ण) के अधोवस्त्र खोलने की घटना भी नही आयी है। पद्मपुराण मे उल्लिखित राम-लक्ष्मण को सिहवाहिनी-गरुडवाहिनी विद्याओ की प्राप्ति, रावण द्वारा लक्ष्मण पर शक्ति का प्रहार, शक्तिनिहत लक्ष्मण को देखने के लिए रावण का राम को अनुमति दे देना आदि प्रसग मानस मे नही है। मानस मे मेघनाद के द्वारा लक्ष्मण को शक्ति लगती है, रावण के द्वारा नही। पद्मपुराण मे वर्णित विशल्या का वृत्तान्त, लक्ष्मणसबधी समाचार प्राप्त कर भरत द्वारा राक्षसो के विरुद्ध साकेत मे युद्ध की तैयारी आदि के वृत्तान्त 'मानस' में नही है। यहाँ तो लक्ष्मण-मूर्च्छा पर हनुमान सुषेण नामक वैद्य को पकड लाते है। सुषेण लक्ष्मण को देखकर द्रोणगिरि से सजीवनी बूटी लाकर देने पर ही लक्ष्मण के प्राण बचने की बात कहता है। हनुमान द्रोणपर्वत से सजीवनी लेने जाते है। बीच में रावण की प्रेरणा से राक्षस कालनेमि हनुमान को रोकने का व्यर्थ प्रयास करता है और मारा जाता है। हनु-मान पर्वत पर जाकर सजीवनी बूटी को नही पहचान पाते और पर्वत को ही उखाडकर तेजी से उड चलते है। जब वे अयोध्या के ऊपर से उडकर जाते है तो भरत आशकावश उनके पैर मे बिना फलक का बाण मार देते है। हनुमान 'राम' कहते हुए नीचे आ जाते हैं और भरत के पूछने पर सारा वृत्तान्त सुनाते हैं। भरत उन्हे अपने बाण पर बिठाकर शीघ्र ही लका भेजने का प्रस्ताव रखते हैं किन्तु वे स्वय उडकर सूर्योदय से पूर्व लका मे आ जाते है। लक्ष्मण की चिकित्सा के उप-रान्त हनुमान सुषेण को उसके घर पहुँचा देते है। मानस मे कुम्भकर्ण रावण के प्रयत्नो से जागता है और उसकी सीताहरण के लिए भर्त्सना करता है और सीता को लौटाने के लिए रावण को सलाह देता है। उसकी दृष्टि मे विभीषण अधिक प्रिय है क्योकि उसने राम की शरण ले ली है परन्तु मदिरापान और मास-भक्षण करके वह आपे से बाहर हो जाता है और वानर-सेना पर टूट पड़ता है। वानर उसके भूधराकार शरीर मे घुस-घुसकर नाक-कान से बाहर निकलते हुए दिखाई देते है। पद्मपुराण मे कुम्भकर्ण (भानुकर्ण) मदिरापानादि नही करता और राम का विरोधी है। वह रावणविमुख विभीषण को प्यार भी नही करता। पद्मपुराण मे समागत मृगाक आदि मत्रियो के द्वारा रावण को समझाया जाना तथा रावण का दूत को इशारे से राम के पास भेजना और दूत का वहाँ रावण के पक्ष का समर्थन एव भामडल का क्रुद्ध होकर उसे मारने को उद्यत हो जाना आदि मानस

में नही है। बहुरूपिणी-विद्या-साधक रावण की माला का अगद के द्वारा तोड दिया जाना एव उसकी स्त्रियो की दुर्दशा किया जाना आदि भी मानस में कुछ अन्तर के साथ वर्णित है। मानस का रावण यज्ञ करता है, जिसे लक्ष्मण, हनुमान आदि भग करते हैं। मानस मे इन्द्रजित् (मेघनाद) भी यज्ञ करता है किन्तु उसका भी यज्ञ भग कर दिया जाता है और भग्नयज्ञ मेघनाद का आगे चलकर लक्ष्मण के हाथों वध हो जाता है। इसी प्रसग मे राम-लक्ष्मण नागपाश से भी बाँधे जाते है, जिन्हे गरुड छुडाता है। पद्मपुराण में रावण अपने किये को बुरा स्वीकारता है तथा पश्चात्ताप करता है। वह अपने को धिक्कारता है तथा एक बार राम-लक्ष्मण को जीवित पकड़कर अपने सम्मान को अक्षुण्ण रखते हुए सीता को उन्हे लौटा देने की भी सोचता है किन्तु मानस मे वह सीता को लौटाने की नही सोचता, न ही वह अपने किये पर पश्चात्ताप करता है। पद्मपुराण मे रावण का लक्ष्मण के हाथो वध होता है जबकि मानस में विभीषण के द्वारा रावण की नाभि मे अमृत कुण्ड होने के रहस्य को उदघाटित किये जाने पर राम रावण की नाभि पर अग्नि बाण चलाकर उसका वध करते है। पद्मपुराण मे इन्द्रजित् मेघ-वाहन और कुम्भकर्ण छोड़ दिये जाते है और वे दीक्षा ले लेते है। मन्दोदरी चन्द्रनखा आदि भी आर्यिका बन जाती है। किन्तु मानस मे इन्द्रजित् और कुभकर्ण का वध होता है। पद्मपुराण मे रावण-वध के अनन्तर राम लका मे प्रवेश करते है, सीता का आलिगन करते है तथा कई दिनो तक विभीषण का आतिथ्य स्वीकार करके लका मे आनन्द मनाते है किन्तु मानस मे राम लका मे प्रवेश ही नही करते, आनन्द मनाने की तो बात ही दूसरी है। वे सुग्रीवादि को भेजकर विभीषण का राजतिलक करा देते है और सीता को लाने के लिए विभीषण एव हनुमान को ही भेजते है, स्वय नही जाते। विभीषण एव हनुमान सीता को पालकी मे लाना चाहते है किन्तु सीता की वानरदर्शनोत्सुकता देखकर राम उन्हे सीता को पैदल ही लाने को कहते है। सीता की अग्नि-परीक्षा होती है। अग्नि स्वय सीता को राम तक पहुँचाता है। पद्मपुराण मे नारद के मुख से अपनी माता की दयनीय दशा को सुनकर राम अयोध्या जाने के लिए उत्सुक होते है किन्तु विभीषण की विनम्र प्रार्थना पर १६ दिन लका मे और रुक जाते है, किन्तु मानस मे राम भरत की दशा पर विचार करते हुए तुरन्त अयोध्या के लिए लौट पड़ते है। हनुमान उनके आने की सूचना भरत को अयोध्या मे देते हैं। मानस की विषयवस्तु राम के अयोध्या-प्रत्यवर्त्तन राम-राज्य-वर्णन तथा भक्ति-ज्ञानादि के विवेचन के साथ ही समाप्त हो जाती है, इसमें वाल्मीकि रामायण के सदृश आगे की कथा नही चलती, अतः पद्मपुराण और मासस की इससे आगे की विषयवस्तु की तुलना

का अवकाश ही नही रह जाता।

इस विवेचन से 'पद्मपुराण' और 'मानस' की विपयवस्तु का साम्य-वैषम्य स्पप्ट हो चुका है जिसका कारण दोनों कवियो का दृष्टिकोण ही है। यदि अष्टम वलभद्र राम के चरित्र को वर्णित करके रविपेण जैनधर्म की भावनाओ को पाठको तक पहुँचाने का प्रयत्न करते है तो तुलमी 'विधि हरि संभु नचावनहारे' व्रह्मरूप राम का चरित्र वर्णित करके राम-भक्ति का प्रचार करने का प्रयत्न करते हैं। अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए दोनो कवियो ने अपने ढग से वस्तु-योजना की है।

अव हम दोनों रचनाओ की प्रवन्धात्मकता पर किञ्चित् विचार करेंगे।

'पद्मपुराण' की विपयवस्तु का आरंभ पौराणिक ढग के आख्यानों को लेकर हुआ है। आधिकारिक कथा– राम की कथा–तो वहुत वाद में आती है। राक्षस-वश एव वानर-वश के परिचय, अनेक राजाओ की वशावलियो एव क्षेत्र-काल आदि के वर्णनो के कारण मुख्य कथा तक पहुँचने मे कुछ अडचन का सामना करना पडता है। किन्तु मानस का प्रारभ हमे सीधे राम-कथा पर ले जाता है। नारद-मोह, शिव पार्वती, भानुप्रताप आदि के प्रसगों के कुछ देर वाद ही रामावतार हो जाता है और मुख्य कथा तेजी से चल देती है। इस प्रकार जहाँ 'पद्मपुराण' में मुख्य कथा से 'टेलीफोन' मिलाने मे पाठक को कई एक्सचेंजो से लाइन जोड़नी पडती है, वहाँ 'मानस' मे 'डाइरेक्ट सिस्टम' से ही काम चल जाता है।

कथानक की गति का जहाँ तक प्रश्न है 'मानस' अधिक सफल है। इसका यह तात्पर्य कदापि नही कि 'पद्मपुराण' मे कथानक गतिशील नही है। है अवश्य, किन्तु मानस जितना नही। मार्मिक प्रसगो की पहिचान दोनो कवियो को हैं। यदि तुलसी ने राम-लक्ष्मण का जनकपुरी-दर्शन, राम-सीता-साक्षात्कार, धनुप-यज्ञ, राम-विवाह, राम-वन-गमन, ग्राम-वधू-प्रसग, भरत-राम-मिलन, सीताहरण के समय राम-विलाप, लक्ष्मण-शक्ति, राम-रावण-युद्ध और राम-राज्य आदि मार्मिक प्रसगो को पहिचाना है तो रविपेण ने भी अपनी कथा के अनुसार धनु-पोत्सव, अनेक स्थलो पर तरुणो को देखकर नारियो के भावालाप, राम-विलाप, अजना-पवनञ्जय-वियोग, राम-लक्ष्मण-प्रेम, लवणाकुश-युद्ध आदि अनेक मार्मिक प्रसगो को दृष्टि मे रखा है। अन्तर इतना है कि तुलसी ने मार्मिक प्रसग भावुकता के साथ कथानक मे घुला मिला रखे है जवकि रविषेण उनके आगे-पीछे जैनधर्म का स्पष्ट या मूक सन्देश देने लगते है।

चलते वर्णनो मे 'मानस' वहुत आगे है। 'पद्मपुराण' एक विशालकाय ग्रंथ होने के कारण प्रत्येक वात का सागोपाग वर्णन देता है, 'मानस' थोड़े मे वहुत

कहता है। यद्यपि रविषेण ने भी कही-कही एक-दो पक्तियो से ही काम चला लिया है, यथा—"तौ विधाय यथायोग्यमुपचार ससीतयो.। रामलक्ष्मणयोर्यातौ माता-पुत्रौ यथागतम्।"[१२०८] तथापि अधिकाश उसने लम्बे वर्णन ही किये है। रविषेण को किसी वात के वर्णन का अवसर मिलने पर उनकी लेखनी से सागोपाग वर्णनो की झडी लग जाती है। तुलसी तो रावण-विजय पर राम को तुरन्त ही लौटा देते है, किन्तु रविषेण उन्हे पूर्ण विलास का आनन्द देकर ६ वर्ष वाद लौटाते है। भला राम-लक्ष्मण को अपनी माताएँ बिलकुल ही याद नही रही! मानस मे मार्मिक प्रसगो के अतिरिक्त शेष सभी वर्णन चलते हुए है यथा—**आगे चले बहुरि रघुराया। ऋष्यमूक परबत नियराया॥** रविषेण यदि इस वात को कहते तो पहले रघुराज के विशेषण आते, फिर ऋष्यमूक पर्वत के और फिर निकटता के।

अरोचक वर्णनों के त्याग मे प्राय दोनो कवि जागरूक है। उन वर्णनो को प्राय उन्होने नही किया है जिनमे पाठक की उत्सुकता नष्ट हो। इसीलिए वर्णनो के आरोह विस्तृत है और अवरोह अत्यन्त सक्षिप्त। यथा—रावण की अनेक राजाओ पर विस्तृत चढाई एव सक्षिप्त प्रत्यावर्तन (पद्म०) राम की विशद बारात तथा सकेतात्मक जनकपुरी-स्वागत (मानस)।

मर्यादावादी होने के नाते तुलसी ने **अप्रिय प्रसंगों की स्थिति** अपने काव्य मे अभिधा से नही होने दी, यहाँ केवल सकेत ही दिये गये है यथा—'**मरम वचन जब सीता बोला**' किन्तु 'पद्मपुराण' की व्यास शैली मे सब कुछ कहा गया है; यथा—लक्ष्मण का भरत का दशरथ को धिक्कारना आदि।

निरर्थक आवृत्ति से बचाव 'मानस मे अधिक है। 'पद्मपुराण' मे दो-तीन बार तो 'रामकथा' का विवरणात्मक परिचय है; यथा-हनूमान् द्वारा सीता के समक्ष एवं नारद द्वारा लव-कुश के समक्ष किन्तु तुलसी ऐसे प्रसगो का 'आदिहु ते सव कथा सुनाई' आदि कहकर सकेतात्मक परिचय ही देते है।

प्रासंगिक कथाओं की संगति दोनो ग्रथो मे हुई है। 'पद्मपुराण' और 'मानस' मे सुग्रीव और हनुमान् की कथा प्रासगिक मानी जा सकती है। यह कथा दोनो ग्रथो मे अधिकारिक कथा के साथ अन्त तक चलती है 'पद्मपुराण' और 'मानस' में सुग्रीव और हनूमान् अन्त तक राम के मित्र, सेवक और सहायक बने रहते है। सुग्रीव को राज्य-प्राप्ति और स्त्री-प्राप्ति होती है और हनूमान् को 'पद्मपुराण' मे पत्नी-राज्य-सम्मान-प्राप्ति और 'मानस' मे रामभक्ति-प्राप्ति होती है।

१२०८ पद्म० ३२,१३५

जहाँ तक उपाख्यानो का सम्बन्ध है—दोनो ग्रथो मे अनेक उपाख्यान आये हैं। पद्मपुराण के उपाख्यानो की चर्चा पीछे की जा चुकी है।[१२०९] मानस के प्रमुख उपाख्यान ये है.—

नारद-मोह, प्रतापभानु-कथा, मनु-शतरूपा-उपाख्यान, शिव-पार्वती-विवाह-कथा, याज्ञवल्क्य-भरद्वाजोपाख्यान, गुह-निषाद-कथा, कालनेमि-कथा, जटायु-उपाख्यान, मारीच-कथा और वालि-कथा, काकभुशुण्डि-उपाख्यान, केवट-प्रसग तथा शवरी-कथा। इसके अतिरिक्त कुछ उपाख्यानो का केवल नामनिर्देश ही किया गया है। इनमे सुवेलपर्वत, शिवि, दधीचि, हरिश्चन्द्र, नहुष, ययाति, सगर, रन्तिदेव, पृथुराज, अजामिल, सुतीक्ष्ण, वाल्मीकि, जाम्बवान्, नल, नील, लोमश, जय-विजय, कश्यप-अदिति, जलधर-वाणासुर, अगस्त्य, अम्बरीष, अन्धतापस, कद्रू, गज, कैकेयी, गणिका, अजामिल, व्याध, गीध, गरुड, गगावतरण, चित्रकेतु, चन्द्रमा, तपस्विनी, ताडका, त्रिशकु, दण्डक, दुदुभि, दुर्वासा, परशुराम, प्रह्लाद, वलि, वेन, ययाति, रावण, राहु, विराध, विश्वामित्र, शृगी, सहस्रवाहु, सीता को नारद का आशीर्वाद, सुरनाथ इन्द्र और हिरण्यकशिपु आदि के उपाख्यान आते है। उत्तरकाण्ड मे 'शूद्रभक्त' के उपाख्यान का भी सकेत कवि ने किया है।

इन उपाख्यानो पर दृष्टिपात करने पर सहज ही ज्ञात हो जाता है कि पद्म-पुराण के उपाख्यान मानस के उपाख्यानो से कही अधिक है। पद्मपुराण के उपाख्यान कही-कही मुख्य कथा की गति मे वाधा डालते है किन्तु मानस के उपा-ख्यान आधिकारिक कथा से विलकुल सम्वद्ध है। वे ऐसे नही है कि उन्हे मुख्य कथा से वाहर की वस्तु माना जाय। या तो वे कथा की पुष्टि करते है या किसी पात्र के चरित्र-निर्माण मे सहयोग देते है, या तो रामावतार की भूमिका मे सहा-यक होते है या भक्ति का महत्त्व प्रतिपादन करते है। साथ ही इनकी सक्षिप्तता भी इन्हे सरस और रोचक वना देती है। 'पद्मपुराण' के उपाख्यानो के समान इनकी 'अति' नही है।

जहाँ तक कथानक के उपसंहार का प्रश्न है—दोनो कवियो ने अपने दृष्टि-कोण से विषयवस्तु का निर्वहण करने की चेष्टा की है। रविषेण ने 'पद्मपुराण' की विषयवस्तु का निर्वाह 'भवोक्ति' और 'परिनिर्वृति' नामक अधिकार मे किया है।

'मानस' के कथानक का उपसहार 'उत्तरकाण्ड' मे देखा जा सकता है। पार्वती की सन्देह-निवृत्ति के साथ मानस का कथानक समाप्त होता है—'**नाथ कृपा मम गत संदेहा**। इस काण्ड मे कवि ने राम द्वारा पुष्पक को कुवेर के पास भेजना,

१२०९ दे० प्रस्तुत ग्रन्थ, पृ० १३०-१३१।

लक्ष्मण का कैकेयी से बार-बार मिलना, राम-राज्याभिषेक, सुग्रीव-विभीषण आदि की विदा, राम-राज्य वर्णन, सन्त-असन्त के लक्षण नीति-उपदेश, शिव-पार्वती-सवाद, काक-भुशुण्डि-कथा, राम-महिमा-वर्णन, कलि-वर्णन, शूद्रभक्त-कथा, ब्राह्मण-महिमा, काक-भुशुण्डि के काक होने की कथा, ज्ञानभक्ति-विवेचन, मानस के अधिकारी तथा पाठ-माहात्म्य का वर्णन और पार्वती की सन्देह निवृत्ति का वर्णन किया है। 'मानस' की विषय-वस्तु का आरम्भ सन्देह या शका से ही होता है। पार्वती को राम के ब्रह्मत्व मे सन्देह होता है जिसका दूरीकरण शिव करते है। उधर गरुड को राम की सर्वशक्तिमत्ता पर शका होती है जिसका समाधान काक-भुशुण्डि करते हैं—'राम ब्रह्म व्यापक जग माही।' कवि का मुख्य उद्देश्य राम की ब्रह्मता प्रतिपादन करना एव दूसरा उद्देश्य भक्ति की महत्ता प्रतिपादन करना ही था। इन उद्देश्यो का पूर्णतया निर्वाह मानस की समाप्ति तक हो जाता है। किन्तु कथानक—केवल कथानक—की दृष्टि से हम विचार करते है तो इसके कथानक को पूर्णतया 'पूर्ण' कहते हुए सकोच सा होता है। राम-राज्य के पश्चात् क्या हुआ ? लक्ष्मण, सीता, सुग्रीव, विभीषण, हनुमान, अगद, शत्रुघ्न, भरत, जनक, कैकेयी और स्वय राम का क्या हुआ ? उनका अन्त कैसे कब और कहाँ हुआ ? ये प्रश्न लटकते ही रह जाते है। वस्तुत. मानस मे विषयवस्तु की अपेक्षा उद्देश्य का ही निर्वाह है। हमे यह कहना ही पडता है कि विषयवस्तु के उपसहार की दृष्टि से 'पद्मपुराण' 'मानस' से आगे है।

निष्कर्ष . 'पद्मपुराण' और 'मानस' की विषयवस्तु में साम्य भी है, वैषम्य भी। दोनो मे अनेक उपाख्यान तथा प्रासङ्गिक कथाएँ है किन्तु 'पद्मपुराण' के उपाख्यान कही-कही पाठक को मुख्य कथा से दूर कर देते है। मार्मिक प्रसगो की दोनो कवियो को पहिचान है किन्तु मानस मे इनकी अधिक भावपूर्ण योजना है। 'मानस' की विषयवस्तु छोटी होने के कारण अधिक सगठित है, 'पद्मपुराण' की विषय-वस्तु कही-कही उपदेश दान आदि से बिखर सी गयी है। हाँ, विषय-वस्तु-सम्बन्धी पूर्णता 'पद्मपुराण' मे शत प्रतिशत है, 'मानस' इस दृष्टि से शिथिल है। 'पद्मपुराण' की प्रतिनायक-सम्बन्धी विषयवस्तु अधिक प्रभावशाली है। 'मानस' मे 'राम की कथा' की गरिमा अधिक है, 'पद्मपुराण' मे उतनी उदात्त भावना उनके प्रति नहीं उत्पन्न होती। पद-पद पर सीता के स्तनो का वर्णन, उनकी कामोद्दीपकता एव राम-लक्ष्मण के अनेक स्त्रियो से 'थोक' मे विवाहो के वर्णनो को देखकर उनके प्रति भारतीय दृष्टिकोण वाले पुरुषो की श्रद्धा जैसी भावना वैसे रूप मे नही उठती जैसी 'मानस' के श्रीराम के चरित्र को पढ़कर उनके प्रति। फिर भी अपने-अपने दृष्टिकोण के अनुसार दोनो कवियो ने अपने ग्रन्थो की विषयवस्तु को सफल बनाने

की चेष्टा की है और वे सफल हुए भी है।

पद्मपुराण और रामचरितमानस के पात्र तथा चरित्र-चित्रण : पद्मपुराण और मानस के पात्रो की तुलना करते समय हमे ज्ञात होता है कि यद्यपि मानस मे पात्रों की सख्या पद्मपुराण से अर्धांश भी नही है तथापि मुख्य कथानक के पात्र प्राय: उसके समान ही है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल 'मानस' के पात्रो का वर्गीकरण करते हुए इनके तीन वर्ग बनाते है—**सात्त्विक, राजस, एव तामस।** तीनो प्रवृत्तियो के अनुसार चरित्र विधान करने से दो प्रकार के चित्रण हम गोस्वामी जी मे पाते हैं **आदर्श और सामान्य।** आदर्श चित्रण के भीतर सात्त्विक और तामस दोनो आते है। राजस को सामान्य चित्रण के भीतर लिया जा सकता है। इस दृष्टि से सीता, राम, भरत, हनुमान और रावण आदर्श चित्रण के भीतर आयेगे तथा दशरथ, लक्ष्मण, विभीषण, सुग्रीव और कैकेयी सामान्य चित्रण के भीतर। आदर्श चित्रण मे हम या तो यहाँ से वहाँ तक सात्त्विक वृत्ति का निर्वाह पायेंगे या तामस का। प्रकृति भेद सूचक अनेकरूपता उसमे न मिलेगी। सीता, राम, भरत और हनुमान सात्त्विक आदर्श है, रावण तामस आदर्श है।[१२१०]

स्पष्टता की दृष्टि से पद्मपुराण के पात्रो के सदृश मानस के पात्रो को भी सात भागो मे विभक्त किया जा सकता है—

१. **राम-पक्ष के पुरुष पात्र**—दशरथ, राम, भरत, शत्रुघ्न और लव-कुश।

२ **राम-पक्ष के स्त्री पात्र**—कौशल्या, सुमित्रा, कैकेयी, सीता मन्थरा, शवरी और अनसूया।

३. **रावण-पक्ष के पुरुष पात्र**—रावण, कुम्भकर्ण, विभीषण मेघनाद और अक्षकुमार।

४ **रावण-पक्ष के स्त्री पात्र**—मन्दोदरी और त्रिजटा।

५ **प्रासगिक कथाओ के पुरुष पात्र**—नारद, जटायु, हनुमान, वालि, सुग्रीव अगद, सम्पाति और जनक।

६ **प्रासगिक कथाओ के स्त्री पात्र**—तारा, सुलोचना।

७. **पौराणिक महापुरुष**—वसिष्ठ, विश्वामित्र, परशुराम, काक-भुशुडि आदि।

यदि पुरुष और स्त्री का भेद हटा दिया जाय तो इन पात्रो को अग्रलिखित तीन वर्गो मे रखा जा सकता है—१ **राम-पक्ष के पात्र २. रावण-पक्ष के पात्र** एव ३. **प्रासंगिक कथाओ के पात्र।** इसके अतिरिक्त और भी कुछ गौण पात्रो का मानस मे उल्लेख है। यह स्पष्ट है कि पद्मपुराण और मानस मे अनेक सामान्य

१२१०. तुलसी-ग्रथावली प्रस्तावना पृष्ठ ११३

पात्र है। कुछ पात्रो के नामो मे अन्तर है। पद्मपुराण मे अनगलवण और मदना-कुश जिन्हे मिलाकर लवणाकुश कहा गया है, मानस मे लव और कुश है। पद्म-पुराण मे राम की माता का नाम अपराजिता है जब कि मानस मे कौशल्या। पद्म-पुराण मे रावण की बहिन का नाम चन्द्रनखा है, मानस मे सूर्पनखा (शूर्पनखा)। पद्मपुराण मे लकासुन्दरी एक राजकुमारी है और मानस मे लकिनी एक राक्षसी है।

'पद्मपुराण' और 'मानस' के **दशरथ** के चरित्र मे पर्याप्त अन्तर है। पद्म-पुराण के दशरथ हमारे सामने नवयौवन से भूषित वपु के साथ प्रस्तुत होते है जबकि मानस के दशरथ हमारे सामने वृद्ध राजा के रूप मे आते है। पद्मपुराण के दशरथ का श्रवणकुमार के वध से कोई सबध नही है जबकि मानस के दशरथ के साथ श्रवणकुमार के वध की कथा जुडी हुई है। पद्मपुराण के दशरथ वृद्ध कचुकी की अवस्था को देखकर वैराग्य धारण करते है जबकि मानस मे अपने चौथेपन को देखकर वे राज्य का भार राम को देना चाहते है। मानस के दशरथ सच्चे रघुवशी है जिनका नियम है—**'प्रान जाइ पर बचन न जाई।'** वे कैकेयी को वर दे देते है और राम-वियोग मे उनके प्राण शरीर छोड़ देते है। मानस के दशरथ राम-भक्त है, पद्पुराण के दशरथ जिन-भक्त। पद्मपुराण के दशरथ केकया के वर माँगने पर सज्ञाशून्य नही होते, वे परम धैर्यशाली और विवेकशील हैं। वे स्वय भरत को शासन सँभालने को कहते है। किन्तु मानस के दशरथ मे मोह की मात्रा अधिक है और वे **सोकबस उतरु** नही दे सकते। पद्मपुराण मे वे दीक्षा ले लेते है जबकि मानस मे राम-विरह मे प्राण ही त्याग देते है। जहाँ पद्म-पुराण मे दशरथ का चरित्र आदर्शवादी है, वहाँ मानस मे मनोवैज्ञानिक।

पद्मपुराण और मानस दोनो मे ही **राम** नायक है। पद्मपुराण मे उनका नाम **'पद्म'** भी है जबकि मानस मे नाम एक ही है—**राम** जिसके विशेषण अनेक हो सकते है। पद्मपुराण के राम ६००० रानियो के स्वामी, विलासी तथा मोह से युक्त है किन्तु मानस के राम एकपत्नीव्रत, तपस्वी तथा मोहघ्न है। मानस के राम का चरित्र बहुत ही आदर्श है। डॉ० माताप्रसाद गुप्त के शब्दो मे 'किसी भी भाँति की काव्य प्रतिभा ने कभी भी जिन उदात्त गुणो की कल्पना की होगी, कदाचित् उन सबका एक आदर्शतम रूप हमे राम के चरित्र मे समाहित मिलता है। उन्हे एक अत्यन्त भव्य शरीर गठन प्राप्त है। किन्तु इससे कही अधिक प्रभावो-त्पादक है उनकी दृढता, उनकी क्षोभहीनता, उनकी कृतज्ञता, उनकी निष्कलुप-हृदयता, उनका दृढ निश्चय, उनका अदम्य उत्साह, उनकी अन्त.करण की पवि-त्रता, उनकी सुशीलता और सबसे अधिक उनका निष्ठावान व्यक्तित्व। अव्यवस्था अनैतिकता, अधार्मिकता और नास्तिकता के स्थान पर व्यवस्था, नैतिकता और

आस्तिकता का सस्थापन करने के लिए एक ऐसे ही पूर्ण चरित्र की ईश्वर के रूप मे दिव्य कल्पना कीजिये और यही तुलसीदास के पूर्ववर्ती भारतीय साहित्य के राम हैं। इसी पूर्ण चरित्र मे—जैसे और भी पूर्णता भरने मे उनकी प्रतिभा लीन होती है।'[१२११] पद्मपुराण के राम के समान ही मानस के राम का व्यक्तित्व भी बहुत आकर्षक है। उनका सौन्दर्य वर्णनातीत है। करोड़ो कामदेवो को लजानेवाले राम की शक्ति भी अतुल है और उनका शील भी। पद्मपुराण मे भी राम अपरिमित शक्ति के पुज और शील के भडार है। पद्मपुराण मे वज्रावर्त धनुष को चढाकर एव मानस मे शिव-धनुप को तोडकर राम अपनी शक्ति का परिचय देते हैं तथा पिता की आज्ञा मानकर वे वन के लिए प्रस्थान कर देते है। पद्मपुराण के राम की शक्ति का प्रमाण म्लेच्छो को परास्त करने में तथा अनेक युद्धो मे पराक्रम का प्रदर्शन करने मे मिलता है तो मानस के राम की शक्ति का अलौकिक प्रताप यह है कि '**भृकुटि विलास सृष्टि लय होई।**' राम तेज बल बुधि की बिपुलाई को सेस सहस सत भी नही गा सकते है। वे दुर्द्धर्प रावण के सहर्ता है। बचपन से ही ताडका और मारीच जैसे दुष्टो का दमन करने वाले है। पद्मपुराण के राम रावण का वध नही करते। रावण का वध वहाँ लक्ष्मण के हाथो होता है। इसका कारण जैनो की यह मान्यता है कि नारायण के हाथो प्रतिनारायण का वध होता है, बलदेव के हाथो नही। राम बलदेव है, लक्ष्मण नारायण और रावण प्रतिनारायण। पद्मपुराण के राम का चरित्र लक्ष्मण के चरित्र के सामने दब सा गया है जबकि मानस के राम के चरित्र की व्याप्ति समस्त कथानक मे है। पद्मपुराण के राम मे यद्यपि शरणागतवत्सलता, कलापारगतता, पत्नी-प्रेम, मातृ-भक्ति आदि गुण हैं, किन्तु उनमे मानस के राम जैसी मर्यादा और लोकरक्षकता नही है। मानस के राम मर्यादापुरुषोत्तम होने पर भी भगवान् है। यही कारण है कि पद्मपुराण के राम जहाँ जैनियो के कर्म-सिद्धान्त के आधार पर स्वय तपस्या करके अन्त मे कैवल्य प्राप्त करते हैं और अनेक सासारिक स्थितियो से गुजरते हुए मोक्ष सिद्धि करते है वहाँ मानस के राम अपनी लीला दिखाने के लिए सासारिक कृत्यो को करते है जिन का लक्ष्य है—धर्म की रक्षा। उनके दशरथ-पुत्र होने में सदेह नही, किन्तु उनके पूर्ण ब्रह्म होने मे भी प्रश्नवाचक चिह्न नही लगता। वे '**ब्रह्म अनामय अज भगवंता, व्यापक, अजित, अनादि अनंता**' हैं, वे '**सज्जन, पीरा**' हरण करने वाले है, वे '**गो द्विज धनु देव हितकारी**' तथा '**मानुष तनु धारी**' '**कृपासिंधु**' हैं; वे खल-व्रात के भंजक तथा जनरजक हैं, वे वेद-धर्म रक्षक

१२११ तुलसीदास, पृ० २८७।

है; वे धर्मतरु के मूल हैं, विवेक जलधि के पूर्णेन्दु है, वैराग्याम्बुज के भास्कर है, अघघनध्वात और मोह के नाशक है; शरणागतवत्सलता, कृतज्ञता, गुणज्ञता, समचित्तता, सत्यसधता, दीनोद्धारकता तथा एक आदर्श आराध्य मे सम्भावित समस्त सद्गुणो के वे आस्पद है। वे ब्रह्माशभुफणीन्द्रसेव्य, वेदान्तवेद्य, विभु और जगदीश्वर है।

यद्यपि तुलसीदास की दृष्टि से अनेक कवियो द्वारा आलोचित शूर्पनखा की नाक काटना, बालि को छिपकर मारना आदि राम के कार्यकलाप लोककल्याण के लिए उचित बैठते है तथापि पहले मानना पडेगा कि मानस के राम इन विवादास्पद कार्यो से बचाये नही जा सके जब कि पद्मपुराण के राम इन प्रमगो से साफ बचे हुए है। पद्मपुराण में राम अयोध्या मे सीता की कडी अग्नि परीक्षा लेते है तथा लोकापवाद से भयभीत होकर अपने मन मे उसकी शुद्धता जानते हुए भी उसे छोड देते है किन्तु मानस मे तुलसी इस प्रसग तक अपनी कथा बढ़ने ही नही देते। 'पद्मपुराण' के राम अन्त मे केवली होते है, जबकि 'मानस' के राम का अन्त चित्रित ही नही हुआ है।

जहाँ तक लक्ष्मण का प्रश्न है, दोनो ही ग्रन्थो मे वे विशिष्ट पात्रो मे परिगणित है। पद्मपुराण मे वे अष्टम नारायण है और मानस मे वे शेषावतार किन्तु पद्मपुराण मे उनकी महत्ता राम से भी अधिक है। पद्मपुराण मे वे श्यामलवर्ण है जब कि मानस मे गौरवर्ण। पद्मपुराण मे वे ही रावण का वध करते है तथा अधिक क्रियाशील है जब कि मानस मे वे राम के अनुचर के रूप मे ही चित्रित है। उनका स्वतन्त्र अस्तित्व मानस में उभरकर नही आता। मानस के लक्ष्मण दृढ, निर्भय, उत्साही, निष्कपट, तेजस्वी और शक्तिशाली है; वे 'शिवधनु' को उठाकर तोडने की क्षमता रखते है, वे ब्रह्माण्ड को कच्चे घडे सदेश फोड़ सकते है, किन्तु ये सारे काम वे अपने अग्रज श्रीरामचन्द्रजी की प्रतिष्ठा की रक्षा करने के लिए ही करना चाहते है, अपने लिए वे स्वतन्त्र रूप से कुछ नही करते मानो उन्होने अपना जीवन श्रीराम के चरणकमलो मे समर्पित कर दिया है। 'मानस के लक्ष्मण की उग्रता और असहिष्णुता और कभी-कभी कुछ खटकने वाली निर्मर्यादता भी, जिसका प्रमाण परशुराम-सवाद और भरत-मिलाप-प्रसग मे मिलता है, उनके अनन्य राम-प्रेम से दब जाती है। वे वन मे रहकर परम सयमी ब्रह्मचारी का जीवन विताते हुए राम की सेवा करते हैं। किन्तु पद्मपुराण के लक्ष्मण क अस्तित्व राम के चरित्र का पुच्छभूत नही है, उनका अस्तित्व राम के समानातर चलने वाला स्वतन्त्र अस्तित्व है। पद्मपुराण के लक्ष्मण परमविलासी और अनेक रानियो के स्वामी है, वे चुचलचित्त युवक है, जिसका प्रमाण राम के द्वारा चन्द्र-

नखा को लौटाये जाने पर उसके विषय में उनकी उत्सुकता से मिलता है। पद्म-पुराण के लक्ष्मण एक वीर सामंत योद्धा के रूप मे अनेक राजाओ को विजित करते हैं किन्तु मानस मे ऐसा कोई प्रसग नही आता। पद्मपुराण मे लक्ष्मण सागरावर्त धनुप को चढाते है जब कि मानस मे वे धनुष नही चढाते है। यहाँ तो रामचन्द्र के रहते वे धनुप तोडना पसंद नही करते। मानस के लक्ष्मण की सन्तान की कोई चर्चा नही है जब कि पद्मपुराण मे उनके दो सौ पचास पुत्र[१२९२] है। पद्म-पुराण के लक्ष्मण मरकर नरक जाते है, जबकि मानस मे उनके नरक-गमन की कोई चर्चा नही है।

भरत का चरित्र पद्मपुराण और मानस दोनो मे ही आदर्श रूप मे चित्रित है। भातृप्रेम भरत के चरित्र का बहुचर्चित विन्दु है, किन्तु पद्मपुराण में भरत का चरित्र इतना मार्मिक नही है जितना मानस मे। पद्मपुराण में भरत के ने गिने-चुने काम है—दीक्षा का विचार, राम के समझाने पर राज्यग्रहण, भामडल आदि से लक्ष्मण-शक्ति का समाचार सुनकर अयोध्या मे रण-सज्जा और अन्त में दीक्षा धारण करना। 'मानस' के भरत सदा राम के ध्यान मे मग्न है और उनके चरित्र से जुडे हुए प्रधान कार्य है —गुह-मिलन, चित्रकूट-यात्रा श्रीराम की चरणपादुकाओ को राज्यसिंहासन पर स्थापित कर उनके प्रतिनिधि के रूप मे शासनकार्य देखना तथा सजीवनी बूटी ले जाते हुए हनुमान को वाण मारकर गिराना तथा वस्तुस्थिति का ज्ञान होने पर उन्हे अपने वाण पर विठाकर लंका भेजने की बात कहना आदि। माता को धिक्कारना और कटु शब्द कहना भी मानस के भरत के राम-प्रेम को ही व्यक्त करते है। पद्मपुराण के भरत राम के अयोध्या से चलने के समय अयोध्या मे ही उपस्थित है जबकि मानस के भरत ननिहाल मे। मानस के भरत यदि राम-वन-गमन के समय अयोध्या होते तो शायद वे राज्य ही न सँभालते, भले ही लक्ष्मण की तरह वन को चल पडते, अस्तु। पद्मपुराण के भरत की तरह मानस के भरत एक सौ पचास स्त्रियो के स्वामी नही है। सीता के साथ भरत की क्रीडा की तो तुलसीदास कल्पना भी नही कर सकते जब कि रविषेण ने बडे मनोयोगपूर्वक भरत की अपनी भाभियो के साथ जल क्रीडा का चित्रण किया है। कुल मिलाकर देखने पर दोनो ही ग्रथो मे भरत को एक विवेकी पुरुष के रूप मे चित्रित किया गया है किन्तु तुलसी के भरत के चरित्र मे किसी प्रकार की कमी नही है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के शब्दो मे "उनके चरित्र मे कई अमूल्य सद्भावनाओं का योग मिलता है। भरत के हृदय का विश्लेपण करने पर उनमें

१२९२. पद्म० ९४।२७

लोकभीरुता स्नेहार्दता व्यक्ति और धर्मप्रवणता का मेल पाते है।"१२१३

शत्रुघ्न का व्यक्तित्व दोनो ग्रन्थो मे किसी विशिष्ट स्थान का अधिकारी नही है। पद्मपुराण मे वे दशरथ की सुप्रभा रानी से उत्पन्न है और मानस मे सुमित्रा से। मानस मे वे कैकेयी की करतूतो से क्षुब्ध होकर मथरा के कूबर पर लात मारते हैं किन्तु भरत के कहने से छोड़ देते है। इस काड से उनके राम-प्रेम और अन्याय का विरोध करने की प्रवृत्ति की व्यञ्जना मानी जा सकती है। पद्मपुराण मे मथरा का प्रसग है ही नही। पद्मपुराण में मधुसुन्दर के साथ युद्ध करने से उसकी वीरता की सिद्धि की जा सकती है। मानस के शत्रुघ्न क्रोधी प्रकृति के है, जब कि पद्मपुराण के शत्रुघ्न प्राय- शांत प्रकृति के जैन, जो अन्त मे ससार के आकर्षण से विमुख होकर श्रमण हो जाते हैं।

जहाँ तक लव और कुश का सम्बन्ध है, मानस मे उनके नाम का सकेत मात्र है और उन्हे विजयी विनयी और गुणो का भडार कहा गया है।१२१३ (अ) किंतु पद्मपुराण मे उनके (लवणाकुश के) चरित्र का विकास भी दिखलाया गया है। पद्मपुराण की मुख्य कथा के वे सक्रिय पात्र है जबकि मानस की कथा में वे केवल सकेतित पात्र है।

पद्मपुराण और मानस दोनो मे राम की माता पुत्रवत्सला हैं। पद्म-पुराण में उसका नाम अपराजिता है और मानस मे **कौशल्या** है। मानस की कौशल्या अपने औरस पुत्र राम के साथ अन्य रानियो से उत्पन्न तीनो पुत्रों को भी परम स्नेह करती है। वनगमन के समय वह एक विचित्र स्थिति मे है क्योकि एक ओर तो उसके सम्मुख पति के सत्य वचन की रक्षा का प्रश्न है दूसरी ओर पुत्र-वियोग। राम के लिए उसका आदेश उसकी बुद्धिमत्ता, शिष्टता और मर्यादा का द्योतक है। वह कहती है "यदि पिता ने वनवास दिया है तो माता की आज्ञा प्रधान मानकर तू वन मत जा, यदि पिता और माता दोनो ने कहा है तो चला जा, तेरे लिए वन भी सौ अयोध्याओ के समान हो।" मानस की कौशल्या के चरित्र का उसकी सादगी, ऋजुता, शिष्टता एव मर्यादा से अधिक प्रभाव पडता है। पद्पुराण की अपराजिता तो पहले एक स्वार्थी स्त्री सी लगती है, वह इसलिए राम के साथ जाना चाहती है क्योकि—

"पिता नाथोऽथवा पुत्र. कुलस्त्रीणाममी गति.।
पितातिक्रांतकालो मे नाथो दीक्षासमुत्सुक ॥

१२१३(अ) दुइसुत सुन्दर सीता जाए। लव कुस बेद पुरानन गाए॥ दोउ विजयी विनयी गुन मन्दिर। हरि प्रतिनिधि मानहुँ अति सुन्दर॥ मानस उत्तर काड २४।

जीवितस्य त्वमेवैक. साम्प्रत मेऽवलम्बनम्।
त्वयापि रहिता साह वद गच्छामि का गतिम्।।"[१२१४]

पद्मपुराण की सुमित्रा सुबन्धुतिलक की मित्रा रानी से उत्पन्न पुत्री और दशरथ की रानी है। इसका नाम 'केकयी' है और चेष्टाओ के कारण सुमित्रा भी।[१२१५] लक्ष्मण इसके पुत्र है। मानस मे सुमित्रा लक्ष्मण और शत्रुघ्न की माता है एव दशरथ की कनिष्ठ रानी है। वह गम्भीर, तेजस्विनी एव भक्त है। लक्ष्मण को राम के साथ वन भेजते समयउन का सिद्धात यही है—"पुत्रवती जुवती जग सोई। रघुपति भगतु जासु सुत होई।।"[१२१६]

भरत की माता का नाम पद्मपुराण मे केकया है और मानस कैकेयी। पद्मपुराण मे वह निखिल-कला-पारगत, वीरागना, बुद्धिमती एव मनोविज्ञान की पारखी है। मानस मे भी वह अपूर्वसौन्दर्यशालिनी है। पद्मपुराण मे वह भरत के दीक्षा लेने के इरादे को बदलने के लिए दशरथ से उसके लिए राज्य माँगती है, वह राम को वन भेजने के प्रति अभिनिवेशिनी नही है और वह राम को लौटाने भी जाती है किन्तु मानस की कैकेयी मथरा के द्वारा वहकायी जाने पर कुटिल हो जाती है एव दो वरो को माँगकर भरत के लिए राज्य और राम के लिए वनगमन दुःखी राजा से स्वीकार करा लेती है। वह स्वाधीनभर्तृका एव स्वार्थ से प्रेरित एक कुटिल नारी के रूप मे हमारे सामने उपस्थित होती है। पद्मपुराण में वह अपने किये पर पश्चात्ताप करती है और राम को वहुत मनाती है किन्तु तुलसी ने उसे अपने अपराध-प्रकाशन का समय भी नही दिया। कभी उसके ग्लानि से गलने की बात कही है और कभी अयोध्या प्रत्यावर्तन पर राम-लक्ष्मण के कैकेयी से वार-वार मिलने का सकेत करके कैकेयी को तुलसी ने अधिक्षिप्त किया है। भाव यह है कि पद्मपुराण की केकया के प्रति रविषेण का दृष्टिकोण प्रतिवद्ध और कटु नही है जैसा कि मानस की कैकेयी के प्रति तुलसी का है।

पद्मपुराण मे शत्रुघ्न की माता सुप्रभा है किंतु 'मानस' मे सुप्रभा नाम की कोई रानी नही है। शत्रुघ्न और लक्ष्मण एक ही रानी के पुत्र है।

पद्मपुराण और मानस दोनो मे ही सीता जनक की पुत्री और राम की पत्नी है। वह अनिंद्य सुदरी एव पतिव्रता है। तुलसी ने एक आदर्श मर्यादित नारी के रूप मे उन्हे चित्रित किया है। सखियो के साथ पुष्प वाटिका मे श्रीराम को देखकर पुलकगात जल नयन से युक्त सीता का प्रेमाधिक्य, सौदर्य एव लज्जाशीलता

१२१४ पद्म० ३१।१७७, १७८

१२१५ पद्म० २२।१७५

१२१६ मानस, अयोध्या ४७/१

साक्षात्कृत होती है। स्वयवर के समय राम मे मन ही मन अनुरक्त किंतु गुरुजन सकोच से आक्रात सीता की शालीनता दृष्टिगोचर होती है। विदा के अवसर पर वे भारतीय कन्याओ की भाँति अपने माता-पिता एव सखियो के गले लग-लगकर रोती है। वनवास के समय वे कैकेयी की आज्ञा से वनोचित वस्त्र धारण कर अपने पति का अनुगमन करती है। उस राजवधू को पति के साथ वन भी राज-महल प्रतीत होता है। चित्रकूट मे वे अपनी सास तथा अन्य गुरुजनो की मन से सेवा करती है। वे आतिथेयता सत्कार का अनुपम उदाहरण है। रावण को भिक्षा देती है। अशोकवाटिका मे हम उनकी निर्भयता एवं पति-धर्मपरायणता का साक्षात्कार करते है। हनुमान से बाते करते हुए उनकी बुद्धिमत्ता और साव-धानता व्यक्त होती है। तुलसी ने उनमे दाम्पत्य-प्रेम और सेव्य-सेवक भाव की भक्ति का सुन्दर सामजस्य दिखाया है। भाव यह है कि मानस की सीता पुत्री, वधू, पुत्रवधू, भाभी आदि अनेक रूपो मे हमारे सम्मुख आदर्श उपस्थित करती है। एक स्थान पर सीता का चरित्र कुछ हल्का-सा दिखाई देता है जबकि वे लक्ष्मण को सदिग्ध दृष्टि से देखती हुई उससे **'मरम बचन'** बोलती है। किंतु यह स्थल सकेतात्मक ही है।

तुलसी की सीता उद्भवस्थितिसहारकारिणी जगज्जननी है और रविषेण की सीता एक भूमिगोचरी राजा की पुत्री। यही कारण है कि मानसकार ने उन्हे परम मर्यादित एव आदर्श रूप मे देखा है जबकि पद्मपुराणकार ने उन्हे अधिक मनोवैज्ञानिक रूप मे चित्रित किया है। मानस मे उनका रूप-वर्णन सकेतात्मकता के साथ किया गया है जबकि पद्मपुराण मे उनके स्तनादि का अनेक स्थानो पर खुला वर्णन किया गया है। तुलसी की सीता रामभक्त है जबकि रविषेण की जिन-भक्त। अपने-अपने दृष्टिकोण से दोनो का ही सीता-चित्रण जोर का है। साहित्यिक दृष्टि से रविषेण आगे है और मर्यादावादी सास्कृतिक दृष्टि से तुलसी।

पद्मपुराण मे रावण का चरित्र अत्यधिक उदात्त तथा उज्ज्वल रूप मे चित्रित किया गया है। वह अष्टम प्रतिनारायण है जिसके अपने सिद्धान्त है। मानस का रावण एक राक्षस है जिसका कार्य ससार को कष्ट देना है। पद्मपुराण मे राम और रावण की लड़ाई सत्य और प्रतिसत्य की लडाई है जबकि मानस मे सत्य और असत्य की। रविषेण ने रामकथा को रावणपक्षीय पात्रो की ओर से देखने का प्रयत्न किया है, जबकि बाल्मीकि और तुलसी ने राम-कथा को रामपक्षीय पात्रो की ओर से देखा है। तुलसी रावण के प्रति उदार नही है क्योकि वह अधर्म का प्रतीक है, वह तपस्या करके भी यही वर माँगता है कि **'हम काहू के मारे न**

मारें', वह कोई धर्म का आचरण नही करता । यद्यपि उसकी सुख-सम्पत्ति, सुत, सेना, सहायक, जय, प्रताप, वल, वुद्धि और बडाई नित्य नूतन बढती जाती है किंतु वह "ध्रुवमुपचितो मुह्यति खलः" के अनुसार ब्राह्मण-भोजन-यज्ञ-हवन मे बाधा डलवाता है। उसकी यह आज्ञा है—सुनहु सकल रजनीचर जूथा। हमरे बैरी विबिध बरूथा ।। ते सनमुख नहिं करहिं लराई। देखि सकल रिपु जाहिं पराई ।। तिन्ह कर मरन एक विधि होई। कहहुँ बुझाइ सुनहुँ अब सोई ।। द्विज भोजन, मख, होम सराधा। सबकै जाइ करहु तुम बाधा।[१२१७]

वह अनेक राजाओ को अपने अधीन करता है तथा अनेक किन्नर, देव, यक्ष, गधर्व, नर एव नागो की कन्याओ से विवाह कर लेता है।[१२१८] गो-ब्राह्मणघ्न धर्म-ध्वसी रावण के पापो का कोई ठिकाना नही है। वह निशाचर है, कपटवेश धारण करके सीता-हरण करता है तथा जटायु को घायल करके सीता को लका के अशोक-वन मे छोड देता है जहाँ उसे वह अनेक भय दिखाता है। वह अपार अभिमानी है। राम की ब्रह्मता का आभास प्राप्त कर लेने पर भी तथा विभीषण और मदोदरी आदि के समझाने पर भी वह सीता को लौटाने के लिए उद्यत नही होता और अपनी हठधर्मिता पर अटल रहकर भगवान् राम के हाथो युद्ध मे मारा जाता है। राम-भक्ति भी उसके मन के अन्दर देखी जा सकती है जबकि राम को भगवान् समझकर वह हठपूर्वक उनसे बैर करके मरना चाहता है। अपनी आद्या शक्ति सीता का ध्यान करने के कारण भगवान् उसे मरणोपरात अपना धाम देते हैं।

पद्मपुराण का रावण सुदर, रमणीयाकृति तथा मनोहर है जबकि मानस का भयकर। पद्मपुराण के रावण के एक मुख तथा दो बाहु है, दशाननत्व तो उसे हार मे प्रतिबिम्ब दिखाई देने से प्राप्त होता है जबकि मानस के रावण के दस मुख तथा बीस भुजाएँ है।

दोनो का रावण शूरवीर तथा विजेता है किन्तु पद्मपुराण का रावण अत्याचारी नही है, वह किसी गो-ब्राह्मण का हन्ता नही है जैसा कि मानस का रावण है। पद्मपुराण के रावण के रूप-शील-सौन्दर्य के वशीभूत होकर अनेक कन्याएँ उसे वरती है तथा वह भी राजी से अनेक कन्याओ से रमण करता है जबकि 'मानस' का रावण पराजित राजाओ की कन्याओ से विवाह करता है (जो कि विवशता का ही परिचायक है।)

१२१७ मानस, बाल काड १८१।३-४

१२१८. मानम, बाल काड १८५।२(ख)।

पद्मपुराण का रावण विनयी, सहिष्णु, प्रजापालक, धर्माधर्मविवेकी, गम्भीर नीतिज्ञ तथा उदात्त है जबकि 'मानस' का अविनयी, असहिष्णु, प्रजोच्छेदक, अधर्मी अभिमानी तथा निकृष्ट। पद्मपुराण का रावण सच्चा मनोयोगी साधक है जो 'बहुरूपिणी' विद्या सिद्ध करके ही उठता है, चाहे वानर उसे कितना ही कष्ट दे किन्तु मानस का रावण यज्ञ-विध्वंस पर बौखला उठता है तथा सिद्धि नही कर पाता। पद्मपुराण के रावण द्वारा युद्धभूमि मे शक्तिनिहत लक्ष्मण को देखने की राम को अनुमति देना तथा कुम्भकर्ण को वरुण की स्त्रियों को वन्दी बनाने पर फटकार देना—आदि कार्य ऐसे है जिनके समान किसी कार्य का 'मानस' के रावण में सद्भाव नही दिखाई देता।

सक्षेप मे पद्मपुराण का रावण अधिक उदात्त है, वह अपने वंश का नाम करने वाला है तथा मानस का रावण पुलस्त्य ऋषि के वश-रूपी चन्द्र का कलक।

मानस का कुम्भकर्ण भूधराकार है। वह नगाड़े आदि बजाये जाने पर उठता है। उठते ही रावण को सीताहरण के लिए बुरा-भला कहता है और राम-भक्त विभीषण की प्रशंसा करता है किन्तु मदिरापान और मास-भक्षण करके वह आपे से बाहर होकर गर्जना करता है। वह रणधीर है और वानर-सेना में त्राहि-त्राहि मचा देने वाला है। वह अपने मुष्टि-प्रहार से हनुमान को चक्कर खिला देता है। इसी प्रकार के अनेको विकट काम करता हुआ वह राम के द्वारा मारा जाता है। किन्तु पद्पुराण मे कुम्भकर्ण मारा नही जाता, वह केवल बन्दी बनाया जाता है। और मुक्त होने पर दीक्षा ले लेता है। पद्मपुराण मे वह शीलवान् है और अनंतवल केवली की शरण में उसने नित्यप्रति जिनेन्द्र-वदना करने की प्रतिज्ञा की है।

विभीषण का चरित्र दोनो कवियो ने अपनी-अपनी व्याख्याओ से सँवारने का प्रयत्न किया है। घर के भेदी लका ढहाने वाले विभीषण के देशद्रोह और भ्रातृ-द्रोह को 'मानस' मे रामभक्ति का पुट देकर परिमार्जित कर लिया गया है किन्तु पद्मपुराण मे कुछ काल के लिए वह इन दोषो से मुक्त नही होता। मानस मे विभीषण के द्वारा दशरथ-जनक-हत्या का प्रयास, रावण के साथ खम्भा उखाड कर लडने की क्रोधभरी सज्जा तथा अयोध्या का नवनिर्माण आदि चित्रित नहीं हैं। हाँ, राम के द्वारा उसको 'लकेश' कहा जाना दोनों ग्रन्थों में वर्णित है। राम के परामर्शदाता के रूप मे वह दोनों ग्रन्थो में चित्रित है। रावण-वध के बाद वह दोनों ग्रन्थो मे दुःखी होता है।

पद्मपुराण और मानस मे रावण के इन पुत्रों का उल्लेख हुआ है—मेघवाहन, इन्द्रजित् और अक्षकुमार। पद्मपुराण मे पहले दो आते है और मानस में बाद के दो। अक्षकुमार का तो हनुमान के द्वारा वध होता है और मेघनाद हनुमान-बन्धन

और लक्ष्मण-शक्ति का कारण है। वह सच्चा वीर और पत्नीव्रत है। पद्मपुराण मे मेघवाहन और इन्द्रजित् की चर्चा है। इन्द्रजित् हनूमान् को बाँधकर रावण के सामने लाता है। वह विभीषण को भी खरी-खोटी सुनाता है किन्तु युद्ध मे उसका लिहाज भी करता है।[१२१९] पद्मपुराण मे इन्द्रजित् मारा नही जाता, वन्दी बनाया जाता है और अन्त मे दीक्षा ग्रहण करता है।

खर-दूषण दोनो ग्रन्थो मे छोटा-सा चरित्र है। पद्पुराण मे खरदूषण एक ही पात्र है जबकि मानस मे 'खर' और 'दूपण' नामधारी दो पात्र है। पद्मपुराण का खरदूपण रावण का बहनोई है। वह चन्द्रनखा का हरण करता है तथा लक्ष्मण से युद्ध करता हुआ मारा जाता है। मानस मे खर और दूषण रावण के भाई लगते है जिनका राम से युद्ध होता है इस युद्ध से उनका भगिनी-प्रेम स्पष्ट होता है।

मानस की मंदोदरी राम भक्त के रूप मे हमारे सामने आती है। वह सदैव रावण को समझाती हुई ही दिखाई देती है। वह बार-बार कहती है कि रावण को सीता राम के पास वापस भेज देनी चाहिए। जब राम के बाण से रावण का मुकुट और मन्दोदरी के ताटक गिरते है, तभी वह इसे अपशकुन समझकर रावण को समझाने लगती है। वह राम के विश्वरूप का भी वर्णन करती है। रावण-मरण पर किये गये विलाप मे भी वह राम को 'अग जगनाथ', 'हरि' और 'निरामय ब्रह्म' कहकर पुकारती है। इस पात्र के चरित्र मे एक और भी बात मिलती है और वह है उसकी रावण के प्रति भावना। मन्दोदरी कई बार रावण को नीच तक कह देती है। पद्मपुराण की मन्दोदरी का चरित्र मानस की मन्दोदरी से कही ऊँचा है। वह अपने पति को 'नीच' आदि नही कहती। राम-भक्ति के अनन्य पक्षपाती तुलसी रावण को उसके अभिन्न परिजनो से भी अनादृत कर असत् की सर्वत्र गर्हणा दिखाना चाहते थे किन्तु रविषेण ऐसा नही करता। 'मानस' की मन्दोदरी राम की ब्रह्मता मे ही उलझकर रह जाती है किन्तु पद्मपुराण की मन्दोदरी का चरित्र चन्द्रनखा-हरण-प्रसग, मन्दोदरी-सीता-सवाद, रावण-मन्दोदरी-सवाद तथा दीक्षा-ग्रहण आदि के समय निखरता दिखाई देता है। जब रावण के लिए रविषेण की उदात्त भावना है तो मन्दोदरी के प्रति क्यों न होती ?

१२१९ वानर सेना का ध्वस करके इन्द्रजित् ने विभीषण को सामने आया देखकर इस प्रकार विचार किया है—

"तातस्यास्य च को भेदो न्यायो यदि निरीक्ष्यते।
ततोऽभिमुखमेतस्य नावस्थातु प्रशस्यते ॥ (पद्म०, ६०।१२३)

रावण की बहिन का नाम पद्मपुराण मे चन्द्रनखा है और मानस में सूर्पनखा। पचवटी में घूमती हुई वह राम लक्ष्मण से विवाह की प्रार्थना करती है। राम उसे लक्ष्मण के पास और लक्ष्मण राम के पास भेजते है। बाद मे लक्ष्मण उसके नाक और कान काट देते है जिससे वह खरदूषण और रावण के पास शिकायत करती है। यद्यपि दोनो ग्रन्थो मे ही उसे कुटिल दिखाया गया है तथापि उसका चरित्र पद्मपुराण मे अधिक विस्तृत, मनोवैज्ञानिक एव युक्तिपूर्ण है।

'मानस' मे '**त्रिजटा** सीता से सहानुभूति रखने वाली राक्षसी के रूप मे चित्रित है। पद्मपुराण मे उसकी चर्चा नही है। पद्मपुराण की **लंकासुन्दरी** और मानस की **लंकिनी** मे पर्याप्त अन्तर है। पद्मपुराण की लकासुन्दरी वीरांगना और भावुक बाला है जबकि मानस की लकिनी एक निशिचरी है जिसका वध हनुमान करते है जिसे वह अपना अहोभाग्य समझती है क्योंकि रामदूत के मुष्टिप्रहार से उसकी गति हो जाती है। पद्मपुराण और मानस के हनुमान के चरित्र मे आकाश-पाताल का अन्तर है। पद्मपुराण मे **हनूमान** विलासी है किंतु मानस मे वे अखड ब्रह्मचारी रामभक्त। पद्मपुराण के हनूमान् खर-दूषण हता राम के प्रति क्रुद्ध भी हो जाते है किन्तु मानस मे ऐसी सम्भावना भी नही की जा सकती। पद्मपुराण के हनूमान् का रावण और सुग्रीव से सम्बन्ध है किन्तु मानस के हनुमान का उनसे कोई सम्बन्ध नही है। मानस के हनुमान परम रामभक्त, चतुर, वीर, शक्तिशाली, वन्दर, और विकट योद्धा है। वे सुरसा के मुख से निकलकर अपनी चतुरता का, समुद्रलघन, लका दहन, द्रोण गिरि-आहरण आदि से वीरता और शक्तिमत्ता का, अक्षकुमार, इन्द्रजित् और रावणादि के साथ युद्ध करने से अपने योद्धृत्व का एव सीता और राम के साथ वार्तालाप से अपने विनय का परिचय देते है। वे निर्भीक, विवेकी, जितेन्द्रिय तथा धार्मिक है। विभीषण उनकास्वागत करता है। 'एक प्रकार से हनुमान का चरित्र दास्यभक्ति का प्रतीक है। राम की ओजस्विता और विवेक, भरत का वैराग्य और रामभक्ति, लक्ष्मण का शौर्य और रामसेवा, रावण का पौरुष और प्रचण्डता कुम्भकर्ण का धैर्य और धडक और निज का बुद्धिचातुर्य, अतुल वल और मनोजव इन गुणो का समीकरण गोस्वामी जी के हनुमान हैं।'

बालि, दोनो ग्रन्थो मे सुग्रीव का वडा भाई है। पद्मपुराण मे वह मुनि हो जाता है। मानस का बालि मायावी दैत्य का वध करता है तथा वाद मे वह सुग्रीव का शत्रु बन जाता है वह तारा के समझाने पर भी नही मानता और सुग्रीव से युद्ध करता है। अन्त में वह राम द्वारा ताड़ वृक्ष की ओट से मारा जाता है और मरते-मरते अंगद को श्रीराम के हाथ सौप जाता है। स्पष्ट है कि मानस

के वालि का चरित्र अधिक मार्मिक है।

सुग्रीव का चरित्र प्राय दोनो ग्रथो मे एक सा ही है। वह वालि का अनुज है। पद्मपुराण मे वह साहसगति विद्याधर के द्वारा उपद्रुत होता है एवं राम की सहायता लेता है जबकि मानस में वह बालि का विरोधी है एव उससे भयभीत है। राम के द्वारा अपने विरोधी का वध कर दिये जाने पर वह प्रमाद कर बैठता है, किंतु लक्ष्मण के क्रोध से रास्ते पर आ जाता है और श्रीराम की सहायता करता है।

अंगद का उल्लेख उभयत्र हुआ है और चरित्र भी प्रायः समान ही है। उसका कार्य राम की सेवा करना और रावण को अपमानित करना है किन्तु पद्मपुराण मे यह सुग्रीव का पुत्र है जवकि मानस मे वाली का। पद्मपुराण मे वह योद्धा, साहसी, सुन्दर, प्रभावक और रसिक है। वह रावण की स्त्रियो की दुर्दशा करता है किन्तु रावण के विद्या सिद्ध कर लेने पर भाग खडा होता है जिससे उसकी चतुरता भी सिद्ध होती है। सुग्रीव के दीक्षा लेने पर वह राजा होता है।

मानस का अगद बलवान् है। वह उद्दण्ड भी है और रावण को बुरा भला कहता है। पैर जमाकर खड़ा होने से वह एक आतककारी व्यक्तित्व का प्रकाशन करता है। मेघनाद का यज्ञ-भग करने मे भी वह सबसे आगे है। रावण-वध के वाद राम का वह विशेष स्नेह-भाजन वन जाता है और उनके गले का हार प्राप्त करता है।

जनक दोनो ही ग्रन्थो मे सीता के पिता और राम के श्वसुर है किन्तु इनके परिचय और चरित्र मे पर्याप्त अन्तर है। पद्मपुराण के जनक के साथ विभीपण से आतकित होकर दशरथ सहित कौतुकमगल नगर में भाग जाने की कथा जुडी हुई है जबकि मानस मे ऐसी कोई घटना जनक से सम्वद्ध नही है। मानस के जनक विदेहराज है और योगियो के भी योगी हैं। सीता-स्वयम्वर के समय वे शिव-धनुष को चढाने की शर्त पर अपनी पुत्री सीता के विवाह की घोपणा करते है। राम के द्वारा धनुर्भंग किये जाने पर वे परम आनदित हैं। वे अतिथि-सत्कार-कर्ता, विनीत और वात्सल्य के अवतार है। वारात के लिए अनेक सुविधाओ का प्रबन्ध करने, दशरथ के साथ प्रेम से मिलने, सीता की विदा के समय आँखों मे आँसू भर लाने और तपस्वी वेष मे पुत्री तथा जामाता को देखकर विह्वल हो जाने आदि से उपर्युक्त तथ्य पुष्ट होता है। वे राजर्पि हैं। इस प्रकार जनक संतानप्रेमी, आत्माभिमानी, सरल, विनयी, आदर्श मित्र, राजा, श्वसुर और पिता के रूप मे उपस्थित हुए है। मानस के जनक अधिक विद्वान् और आध्यात्मिक हैं।

जाम्बवान् दोनो ग्रन्थों मे हनूमान् को लका जाने की राय देता है और एक

परामर्शदाता के रूप मे चित्रित किया गया है।

जटायु दोनो ग्रन्थो में रावण का विरोधी, यथाशक्ति पराक्रमी एवं राम सीता का सहायक सिद्ध होता है। मानस मे उसका अधिक मार्मिक चित्रण हुआ है जव कि पद्मपुराण मे उसके चरित्र को बुद्धिसंगत बनाने का ही प्रयत्न किया गया है। राम के द्वारा उसे दिव्य शरीर की प्राप्ति होती है।

पद्मपुराण में सुतारा सुग्रीव की पत्नी है किन्तु मानस की तारा बालि की पत्नी और अगद की माता है। वह बालि को राम के विरुद्ध न लड़ने का परामर्श देती है और बालि की मृत्यु पर विलाप करती है। राम उसे उपदेश देते है। मानस मे उसके चरित्र का अधिक विकास हुआ है।

पौराणिक महापुरुष पात्रो मे नारद का नाम उल्लेखनीय है। दोनो ही ग्रन्थो मे नारद का चरित्र महत्वपूर्ण है। पद्मपुराण का नारद कथा से सबंधित तथ्यो को इधर से उधर पहुँचाता है और मानस का नारद राम को अवतार के लिए विवश करता है। दोनो का अपना-अपना महत्त्व है।

मानस में कुछ ऐसे पात्र है जो कि पद्मपुराण में नही आते जैसे मंथरा, शबरी, अनसूया, संपाति, वसिष्ठ, विश्वामित्र, शिव, निषाद, काकभुशुंडि और सुलोचना आदि। इनका कोई विशेष चरित्र-चित्रण नही हुआ है।

उपर्युक्त विवेचन से रविषेण और तुलसी के चरित्र-चित्रण-कौशल का परिचय हमे मिला जाता है। चरित्र-चित्रण के मूल मत्र मनोविज्ञान का ज्ञान दोनो को है। फिर भी अपने अपने दृष्टिकोण के अनुसार एक ने कुछ पात्रो को अधिक सुन्दरता के साथ चित्रित किया जाता है तो दूसरे ने अन्य पात्रो को। रविषेण ने लक्ष्मण, रावण, सीता, लवणाकुश, मन्दोदरी, लंकासुन्दरी और हनूमान् आदि का चरित्र बड़े मनोयोग और विस्तार के साथ चित्रित किया है। उसने रावण की तो कायापलट ही कर दी है जिसका परिचय पीछे दिया जा चुका है। मानस में राम, दशरथ, भरत, कौसल्या, सुमित्रा, कुंभकर्ण, इद्रजित्, जनक और नारद उल्लेखनीय पात्र हैं जिनके चरित्र-चित्रण मे तुलसी ने पर्याप्त मनोवैज्ञानिक दक्षता से काम लिया है। सक्षेपत, राम-पक्ष के चरित्रो को तुलसी ने अधिक निखारा है और रावण-पक्ष के चरित्रों को रविषेण ने, जिसके आधार पर कहा जा सकता है कि दोनो कवि पात्रो के चरित्र के सफल चितेरे है।

पद्मपुराण और रामचरितमानस का भावपक्ष : जहाँ तक भावसम्पदा का प्रश्न है दोनो कवि उसके धनी हैं किंतु तुलसी का मर्यादावादी दृष्टिकोण उन्हे वहुत कुछ साकेतिक शैली के वर्णनो के लिए प्रेरित करता रहा है। पद्मपुराण का संयोग शृंगार स्वच्छद, उन्मुक्त एव विस्तृत है जब कि मानस का सयोग शृगार पूर्ण मर्यादित एव

सूक्ष्म, क्यो कि तुलसी मर्यादा पुरुषोत्तम की रति का अतिरजित वर्णन करके 'इदं पित्रोः संम्भोगवर्णनमिवात्यंतमनुचितम्" नही सुनना चाहते थे और न अपने इष्ट को इतरजनसाधारण बनाना चाहते थे जबकि रविषेण को इसकी कोई चिन्ता न करके एक उच्च कोटि का साहित्यिक तथा आकर्षक पौराणिक काव्य प्रस्तुत करना था। रविषेण अजना और पवनजय के सम्भोग का वर्णन करते समय दोनो के आलिगन का, पवनजय के द्वारा अजना को निर्निमेष देखने एवं मुख-चुम्बन से पूर्व उसके चरण, कर, नाभि, स्तन, ठोडी, कनपटी एव नेत्रो के चुम्बन करने का, अधर-पान का, अजना के नीवीविमोचन का, सम्भोग के समय 'छोड़ो' 'ठहरो' 'पकड़ लो' (तिष्ठा मुच, गृहाण) आदि शब्दो का, अधरग्रहण पर अजना के सीत्कार का, अजना के जघनस्थल पर पवनजय के द्वारा किये गये नखक्षतो का तथा अन्य अनेक चेष्टाओ का खुला वर्णन करते है जबकि तुलसी राम और सीता के पुष्प-वाटिका-मिलन का वर्णन करते समय बडी व्यजनापूर्ण शैली मे राम और सीता के पारस्परिक अनुराग का परम मर्यादित और मनोरम चित्रण करते है—

ककन किंकनि नूपुर धुनि सुनि। कहत लखन सन रामु हृदयँ गुनि॥
मानहुँ मदन दुदुभी दीन्ही। मनसा विस्व विजय कहँ कीन्ही॥
अस कहि फिरि चितए तेहि ओरा। सिय मुख ससि भए नयन चकोरा॥
भए विलोचन चारु अचंचल। मनहुँ सकुचि निमि तजे दिगचल॥
देखि सीय सोभा सुखु पावा। हृदयँ सराहत बचनु न आवा॥
जनु विरचि सब निज निपुनाई। विरचि विस्व कहँ प्रगटि देखाई॥[१२२०]

यह प्रसग शृगार की दृष्टि से सर्वश्रेष्ठ है किन्तु इसमे साकेतिता और सूक्ष्मता अधिक है जोकि पद्मपुराण के सभोग-वर्णन मे नही है।

वियोग-वर्णन दोनो ग्रन्थो मे समयानुसार हुए है। मानस के अरण्यकाण्ड मे सीता के विरह मे राम की दशा[१२२१] एव सुन्दरकाण्ड मे राम के विरह मे सीता

१२२० मानस, बालकाण्ड, २३०

१२२१ आश्रम देखि जानकी हीना। भए विकल जस प्राकृत दीना॥
हा गुनखानि जानकी सीता। रूप सील व्रत नेम पुनीता॥
लछिमन समुझाए बहु भाँती। पूछत चले लता तरु पाँती॥
हे खग मृग हे मधुकर श्रेनी। तुम्ह देखी सीता मृगननी॥
खजन सुक कपोत मृग मीना। मधुप निकर कोकिला प्रवीना॥
कुद कली दाडिम दामिनी। कमल सरद ससि अहिभामिनी॥
बरुन पास मनोज धनु हसा। गज केहरि निज सुनत प्रससा॥
श्रीफल कनक कदलि हरषाही। नेकु न सक सकुच मन माही॥
सुनु जानकी तोहि बिनु आजू। हरषे सकल पाइ जनु राजू॥
किमि सहि जात अनख तोहि पाही। प्रिया वेगि प्रकटसि कस नाही॥
एहि विधि खोजत विलपत स्वामी। मनहुँ महा बिरही अति कामी॥
—मानस, अरण्य०, २९।३-८

की दशा वियोग-वर्णन के उदाहरण के रूप मे लिये जा सकते है। पद्मपुराण और मानस के वियोग-वर्णनो की तुलना करने पर कहा जा सकता है कि तुलसी ने "जानु प्रीतिरस एतनेहि माँही" जैसे व्यजनापूर्ण वाक्यो से वियोग की मार्मिक व्यजना करके अपनी भाषा की समासशक्ति को और कल्पना की समाहारशक्ति का परिचय दिया है जब कि रविषेण ने कविसमयख्यातियो तथा अन्य साहित्यिक मान्यताओ का उपयोग करते हुए अपने विस्तृत वर्णन-कौशल का परिचय दिया है।

यद्यपि पद्मपुराण के समान मानस मे भी अन्य रसो की अपेक्षा हास्य रस की अभिव्यक्ति अत्यल्प हुई है, तथापि नारद-प्रसग, शिव-बारात, लक्ष्मण-परशुराम-सवाद, अगद-रावण-सवाद तथा विवाह के अवसर पर मर्यादित हास्य की अभिव्यक्ति हुई है। यद्यपि हास्य की अभिव्यक्ति की दृष्टि से तुलसी कुछ आगे है किन्तु इस रस के लिये रुझान दोनो कवियो का नही है।

पद्मपुराण और मानस के करुण रस के अभिव्यजन के विषय मे भी वही निर्णय दिया जा सकता है जो वियोग के विषय मे। मानस मे करुण रस का साक्षात्कार, राम-वन-गमन पर दशरथ की दशा,[१२२२] लक्ष्मण-मूर्च्छा पर राम-विलाप[१२२३] तथा कुछ अन्य वर्णनो मे होता है। मानस के इन प्रसंगो मे अनुभावादि के, थोडे मे बहुत कहने की शैली से, कारुणिक दृश्य उपस्थित किये गये हैं जबकि पद्मपुराण के करुण रस के प्रसंगो में अनुभावादि को सागोपांग वर्णित किया गया है। जहाँ मानस मे—"करहिं विलाप अनेक प्रकारा। परहिं भूमि तल बारहिं बारा॥" कहकर शोक की व्यंजना कर दी गयी है वहाँ पद्मपुराण मे अनेक प्रकार के विलाप और भूमिपात आदि का वर्णन किया गया है।

रौद्र-रस की व्यजना दोनो ग्रन्थो मे अवसरानुसार हुई है। मानस के धनुष-यज्ञ मे, जनक के "बीर बिहीन मही मै जानी" कह देने पर तमके हुए लक्ष्मण की उक्ति[१२२४] मे रौद्र रस की अभिव्यजना हुई है। रौद्र रस के चित्र खीचने मे रविषेण और तुलसी दोनो ही सफल हुए है किन्तु रविषेण विस्तारवादी प्रतीत होते हैं जबकि तुलसी सक्षेपवादी।

१२२२ आसन सयन बिभूषन हीना। परेउ भूमितल निपट मलीना॥
लेइ उसासु सोच एहि भाँती। सुरपुर तें जनु खँसेउ जजाती॥
लेत सोच भरि छिनु-छिनु छाती। जनु जरि पख परेउ सपाती॥
राम-राम कह राम सनेही। पुनि कह राम लखन वैदेही॥
(मानस, अयोध्याकाण्ड, १४८)

१२२३ मानस, लङ्काकाण्ड. ६०-६१

१२२४ मानस, बालकाण्ड, २५३

वीर रस की अभिव्यक्ति मे पद्मपुराण मानस से पर्याप्त आगे है। विविध युद्धो के दौरान रणबाँकुरे वीरों के उत्साह एव उनकी वीरता की चेष्टाओ का वर्णन करते समय लगता है कि मानो रविषेण युद्धस्थल मे किसी मँचान पर बैठे हो और उस युद्ध को उन्होने फिल्मा लिया हो जिसका प्रदर्शन हमारे सामने हो रहा है। जब रविषेण हमारे सामने वीरो की उक्तियाँ प्रस्तुत करते है तब लगता है मानो रविषेण ने उन्हे टेप रिकार्ड कर लिया हो। इस कथन का यह तात्पर्य नही है कि मानस मे वीर रस की सफल अभिव्यक्ति नही हुई। जटायु-रावण-युद्ध तथा किष्किन्धाकाण्ड-सुन्दरकाण्ड-लकाकाण्ड के अनेक प्रसगो मे वीर रस का अच्छा परिपाक हुआ है। अयोध्याकाण्ड मे भरत को आते हुए देखकर शकित निषादराज की उक्ति मे उसका उत्साह देखते ही बनता है।[१२२५]

मानस मे भरत के अयोध्या-प्रवेश पर अयोध्या की भयानकता एव युद्ध की भयानकता के वर्णन[१२२६] के अवसर पर **भयानक रस** की अभिव्यक्ति हुई है किन्तु पद्मपुराण मे रावण के द्वारा कैलाश के कम्पन के वर्णन मे हा-हा-हु-ही-आदि शब्दों से जो साक्षात् भय की अभिव्यंजना होती है वैसी अभिव्यक्ति मानस मे अपेक्षाकृत कम है। वस्तुत. कठोर रसो की अभिव्यंजना में तुलसी रविषेण की समता नही कर सकते।

बीभत्स रस की अभिव्यक्ति के अवसर पद्मपुराण मे अधिक है। मानस के लकाकाण्ड मे भी उसके अवसर आये है। युद्ध मे बहने वाली रुधिर की नदी, गीधो के द्वारा आँत खीचने, जोगिनियो के द्वारा खप्पर मे खून भरने एवं गीदडों के द्वारा कट-कट करके हड्डी खाने आदि के वर्णन मे वीभत्स रस की व्यजना हुई है।[१२२७]

१२२५ होहु सँजोइल रोकहु घाटा। ठाटहु सकल मरै के ठाटा ॥
सनमुख लोह भरत सन लेऊँ। जिअत न सुरसरि उतरन देऊँ ॥
समर मरनु पुनि सुरसरि तीरा। राम काजु छनभगु सरीरा ॥
भरत भाइ नृपु मैं जन नीचू। बडे भाग अस पाइय मीचू ॥
स्वामि काज करिहउँ रन रारी। जस धवलिहउँ भुवन दस चारी ॥
तजउँ प्रान रघुनाथ निहोरे। दुहूँ हाथ मुँह मोदक मोरे ॥
(मानस, अयोध्याकाण्ड, १९०-१९१)

१२२६ देखिए, मानस, लङ्काकाण्ड ८७

१२२७ मज्जहिं भूत पिसाच बेताला। प्रमथ महा झोटिंग कराला ॥
काक कक लै भुजा उड़ाही। एक ते छीनि एक लै खाही ॥
× × ×

अद्भुत रस के अवसर मानस मे अनेक आये है। अशेषकारणपर राम तो **'कर्त्तुमकर्त्तुमन्यथाकर्त्तुं समर्थ'** है, फिर भला उनके चरित्र से सम्बद्ध कथानक मे अद्भुतता क्यो न होती ! बचपन मे राम का विराट् रूप-दर्शन (बाल० २०१-२०२), देवताओ की उपस्थिति (उत्तर० ७८-८०), पुष्पवर्षा, प्रकृति पर राम का अनुशासन, हनुमान के समुद्रलघनादि लोकोत्तर कृत्य, शिवधनुर्भग आदि अनेक प्रसग इसके उदाहरण हैं। श्रीराम का विराट्-रूप-दर्शन-प्रसग उदाहरणार्थ प्रस्तुत हैं—

देखरावा मातहि निज अद्भुत रूप अखड।
रोम-रोम प्रति लागे कोटि-कोटि ब्रह्मड॥
अगनित रबि ससि सिव चतुरानन। बहु गिरि सरित सिंधु महि कानन॥
काल कर्म गुन ग्यान सुभाऊ। सोउ देखा जो सुना न काऊ॥
देखी माया सब बिधि गाढी। अति सभीत जोरे कर ठाढ़ी॥
देखा जीव नचावइ जाही। देखी भगति जो छोरइ ताही॥
तन पुलकित मुख बचन न आवा। नयन मूदि चरननि सिरु नावा।
बिसमयवत देखि महतारी। भए बहुरि सिसुरूप खरारी॥[१२२८]

शांत रस की अभिव्यक्ति भरत की आत्मग्लानि, दशरथ की आत्मसंत्सना, कैकेयी की आत्मग्लानि आदि प्रसगो मे हुई है। पद्मपुराण मे शांत रस की अभिव्यक्ति के स्थलो मे विशदता और वर्णनात्मकता अधिक दृष्टिगोचर होती है किन्तु मानस के शात रस के प्रसगो मे सक्षिप्तता अधिक है।

जिस प्रकार पद्पुराण मे जिनेन्द्र की भक्ति के अनेक प्रसग **भक्ति रस** के उदाहरण के रूप मे प्रस्तुत हुए है उसी प्रकार मानस मे भी रामभक्ति और शिव-भक्ति के सूचक स्थलो मे भक्ति रस का उन्मेष दिखायी पडता है। निर्भर भक्ति के प्रार्थी तुलसी ने अनेक पात्रो के द्वारा की गयी स्तुतियो मे तथा काडो के आरम्भ में दिये गये श्लोको मे भक्ति रस की कलकलनिनादिनी और शीतलतादायिनी धारा प्रवाहित की है। तुलसी की अहैतुकी भक्ति की जो मार्मिकता तथा सहज

खैंचहिं गीध आँत तट भए। जनु वसी खेलत चित दए॥
वहु भट वहहि चढे खग जाही। जनु नावरि खेलहिं सरि माही॥
जोगिनि भरि-भरि खप्पर सचहि। भूत पिसाच वधू नभ नचहिं॥
× × ×
जवुक निकर कटक्कट कट्टहि। सीस परे महि जय जय बोल्लहिं॥
(मानस, लङ्काकाण्ड, ८७।१-५)

१२२८ मानस, बालकाण्ड, २०१।१, २, ३।

भावुकता है वह पद्मपुराण की जिनपूजा-प्रचाराभिनिवेशिनी भक्ति मे नही है। तुलसी ने हृदय खोलकर रख दिया है, जबकि रविषेण ने हृदय के साथ अपने मस्तिष्क को भी अपने लक्ष्य के प्रति जागरूक रखा है।

मानस मे राम-लक्ष्मणादि की बालक्रीड़ा[१२२९] कौशल्या-भरत-भेंट तथा चित्रकूट मे जनक-सीता-भेंट आदि प्रसगो मे वात्सल्य रस की अभिव्यक्ति हुई है। वियोग-वात्सल्य की अभिव्यक्ति, सीता के पितृगृह से विदा होने के प्रसंग मे, हुई है।[१२३०]

जिस प्रकार पद्मपुराण मे रसादि मे परिगणित रसाभास आदि के उदाहरण मिलते है, उसी प्रकार मानस मे भी उनके उदाहरण मिलते है।

मानस मे तिर्यग्गत रति का सकेत वहाँ मिलता है जहाँ कि कामदेव की माया फैलने पर जलचर और थलचर पशु-पक्षी भी कामवश हो जाते है।[१२३१] प्रतापभानु के प्रति अभिव्यक्त कपटमुनि के प्रेम को भावाभास के उदाहरण के रूप मे लिया जा सकता है।[१२३२] भावोदय और भावशांति की स्थिति वहाँ देखी जा सकती है जहाँ कि क्रोधी परशुराम का क्रोध शांत होता है एवं विस्मय उदित होता है। सीता द्वारा मुद्रिका देखने पर हर्ष और विषाद की एक साथ अनुभूति किये जाने पर भाव-सधि देखी जा सकती है। भावशबलता का उदाहरण राम के इस कथन मे पाया जा सकता है—

१२२९ बाल चरित हरि बहु विधि कीन्हा। अति अनद दासन्ह कहँ दीन्हा।

० ० ०

भोजन करत बोल जब राजा। नहिं आवत तजि बाल समाजा॥
कौसल्या जब बोलन जाई। ठुमुकु-ठुमुकु प्रभु चलहिं पराई॥ आदि

मानस, बालकाण्ड, २०२-२०३

१२३० पुनि पुनि मिलत सखिन्ह बिलगाई। बाल बच्छ जिमि धेनु लवाई।

० ० ०

बधु समेत जनक तब आये। प्रेम उमगि लोचन जल छाये।
सीय बिलोकि धीरता भागी। रहे कहावत परम बिरागी॥
लीन्हि रायँ उर लाइ जानकी मिटी महा मरजाद ग्यानकी।

मानस, बालकाड, ३३६-३३७

१२३१. पसु पच्छी नभ जल थल चारी। भए काम बस समय बिसारी।
मदन अन्ध ब्याकुल सब लोका। निसि दिनु नहिं अवलोकहिं कोका॥

मानस, बालकांड, ८५।३

१२३२ सुनु महीस असि नीति जहँ तहँ नाम न कहहिं नृप।
मोहि तोहि पर अति प्रीति सोइ चतुरता बिचारि तव॥

मानस, बालकाड, १६३

"सकहु न दुखित देखि मोहि काऊ। बधु सदा तव मृदुल सुभाऊ।
मम हित लागि तजेहु पितु माता। सहेउ विपिन हिम आतप बाता॥"
(मानस ६।६०।२)

यहाँ लक्ष्मण के विषय मे राम के मति, शका, विषाद, निश्चय आदि भाव एक साथ प्रकट हुए है।

समस्त रस-व्यजना पर दृक्पात करने पर एक बात स्पष्ट सामने आती है कि रविषेण शास्त्रस्थितिसपादन के शौकीन है, इसीलिए उनके रस-व्यजना के स्थल विस्तृत है और कही-कही उनमे कुछ बोझिलता भी आ गयी है जबकि मानस मे व्यजना से और साकेतिकता से रसाभिव्यक्ति हुई है। मानस के मगलाचरण में 'रसानां' को ध्यान मे रखने वाले तुलसी का रसाभिव्यजना भले ही विपुल विभावादि के सन्निवेश वाली न हो किन्तु है बडी मार्मिक।

कल्पना-वैभव के यद्यपि दोनो ही कवि धनी है तथापि रविषेण ने अपने कल्पना-वैभव का प्रदर्शन विशद रूप मे किया है और तुलसी ने पाठको की कल्पना की परीक्षा लेने के लिए अपनी कारयित्री प्रतिभा को सूक्ष्म एव साकेतिक रूप मे ही प्रस्तुत किया है।

पद्मपुराण और मानस दोनो ही ग्रन्थो मे **विचारतत्त्व** अनुस्यूत है। पद्म-पुराण जिन-दीक्षा पर केन्द्रित है तो रामचरितमानस भक्ति के सिद्धांत पर।

'नानापुराणनिगमागमसम्मत रघुनाथगाथा-निबन्ध' तुलसी के व्यापक-गभीर अध्ययन एव निर्भर भक्ति का परिणाम है जिसका मूल विचार है श्रेय और प्रेय की सिद्धि के लिए आदर्श रामराज्य की स्थापना, जो समस्त प्रचलित मत-मता-तरो के सद्गुणो का समन्वय करता दिखाई देता है। राम दैवी प्रवृत्ति के प्रतीक है और रावण अधर्म का। अधर्म के ऊपर धर्म की विजय दिखाकर ससार मे कल्याण का प्रसार करना ही मानस का दर्शन है। राम तुलसी के आराध्य है; वे परब्रह्म है, वे 'ब्रह्माशम्भुफणीन्द्रसेव्य वेदान्तवेद्य विभु जगदीश्वर' है, वे मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान् है, जो अपनी आद्या शक्ति के साथ सर्वव्यापक है.—'व्यापक अजित अनादि अनन्ता' 'सीय राम मय सब जग जानी।' उनकी भक्ति 'सकल सुख-दायिनी' है; उसका ज्ञान से भी बढकर स्थान है। मायावश जीव को अज्ञाना-धकार-ध्वसनार्थ भक्ति-रूपी मणि ग्रहण करनी चाहिए।[१२३३]

तुलसी का विचार है कि ससार मे जब-जब धर्म की हानि होती है। एव अभिमानी अधम असुर बढ़ते हैं, तब तब प्रभु शरीर धारण करके सज्जनो की

१२३३. मानस, उत्तर०, ११४-१२०

पीडा हरते है। वे पतितपावन, दीनोद्धारक, शरणागतवत्सल, मर्यादारक्षक, जग-रजन, खल-भजन तथा भक्त-प्रेमवश है।

इस प्रकार मानस का विचारतत्त्व पर्याप्त स्फीत है। बालकाण्ड का आदि और उत्तरकाण्ड का अन्त तो विचार-मणियो का आकर ही है, अतएव 'बाल का आदि उत्तर का अन्त। जो जानें सो पूरा सन्त'—आभाणक प्रचलित है। मानस मे ज्ञान-विज्ञान-दर्शन-व्याकरणादि शास्त्र का विचारतत्त्व के परिवर्द्धन मे पर्याप्त योग है। अधिक क्या, वर्णाश्रम-धर्म के समस्त आदर्श विचारो की प्राप्ति मानस मे होती है जिसकी पूर्ण व्याख्या पर्याप्त स्थान-सापेक्ष है।

दोनो ग्रन्थो के विचारतत्त्व पर विचार करने के अनन्तर स्पष्ट प्रतीत होता है कि 'पद्मपुराण' का विचारतत्त्व अपनी पृथक् सत्ता रखता है, वह कथा पढते समय यदि छोड़ भी दिया जाय तो कोई हानि नही होती, जबकि 'मानस' का विचारतत्त्व कथा से घुला-मिला है। दूसरे शब्दो मे 'पद्मपुराण' के विचार और भावना का 'तिलतण्डुल' सम्बन्ध है जबकि 'मानस' के उन दोनो का 'नीरक्षीर-सम्बन्ध' है। कभी-कभी तो लगता है कि रविषेण ने जैन-सम्प्रदाय के सिद्धान्तो का प्रचार करना मुख्य मान लिया है और राम-कथा कहना गौण, किन्तु मानसमे ऐसा नही है। वहाँ पद-पद पर दूसरे के मत का खण्डन या अपने धर्म की दुहाई नही दी गयी है। वहाँ तो साकेतिक शैली मे सूक्ष्मता के साथ भाव-माला मे विचारमणि ग्रथित किये गये है। किसी भी धर्म या सम्प्रदाय को मानने वाला मानस को पढे, उसे आनन्द ही आएगा किन्तु 'पद्मपुराण' को यदि वैदिक धर्मानुयायी पढे तो उसे ऐसे श्लोक पढकर आनन्द नही आएगा जिनमे ऋषियो की निन्दा हो, यज्ञ को पातक की सज्ञा प्रदान की हो, वेद को कुग्रन्थ कहा हो तथा अहिंसावादियो के द्वारा ऐसी कठोर वाणी का प्रयोग किया गया हो—

"भृगुरङ्गिशिरा वह्नि कपिलोऽत्रिर्विदस्तथा।
अन्ये च बहवोऽज्ञानाज्जाता वल्कलतापसा.॥
स्त्रिय दृष्ट्वा कुचित्तास्ते पुल्लिङ्ग प्राप्तविक्रियम्।
पिदधुर्मोहसछन्ना. कौपीनेन नराधमा.॥[१२३४]

एक नही, ऐसे अनेक उदाहरण पद-पद पर आते हैं, जिन्हे पढ़कर जैन-आचार्यो की इस घोर साम्प्रदायिकता पर हँसा भी आने लगती है। 'पद्मपुराण' के विचार-तत्त्व के स्थलो पर जब पारिभाषिक शब्दो की बाढ आती है, अनु-प्रेक्षाओ के वर्णन चलते है, स्वर्गो के नाम चलते है, 'अजैर्यष्टव्यम्'— आदि पर

१२३४. पद्म० ४।१२६-१२७

जटिल शास्त्रार्थ चलते है तो सहृदय पाठक एक बार तो त्राहि-त्राहि कर उठता है, किन्तु मानस मे ऐसा नही है, वहाँ रसधारा विच्छिन्न नही होती। इसका कारण स्पष्ट है कि पद्मपुराण की रचना प्रतिक्रियात्मक तथा आर्य-परम्परा की खण्डयित्री है जबकि मानस की रचना समन्वयेच्छा एव लोकनिर्माणेच्छा से प्रेरित भक्ति का फल।

पद्मपुराण और मानस का कलापक्ष : पद्मपुराण और मानस पौराणिक शैली के काव्य है। पद्मपुराण की शैली के विषय मे सप्तम अध्याय मे लिखा जा चुका है। जहाँ तक मानस की शैली का प्रश्न है, इसमे साहित्यिक अवधी के साथ-साथ व्रजभाषा, छत्तीसगढी, खडी बोली और अरबी-फारसी के भी कुछ शब्दो का प्रयोग हुआ है। यह एक अतिमजुल भाषा-निबन्ध है। काण्डारम्भ के समय सस्कृत के छन्द प्रयुक्त हुए है। राम-कथा के अतिरिक्त अनेक प्रासगिक कथाओ की कवि ने अच्छी संगति बैठायी है। कवि ने पाठक को भक्ति की ओर उन्मुख करने का सफल प्रयास किया है। मुख्य छन्द-दोहा-चौपाई है। अलकार अत्यन्त स्वाभाविक है। डाक्टर माताप्रसाद गुप्त के शब्दो मे—तुलसीदास की अनुपम शैली का सौन्दर्य उसकी ऋजुता, उसकी सुबोधता, उसकी सरलता, उसकी चारुता, उसकी रमणीयता, उसके लालित्य और उसके प्रवाह मे है. और ये गुण 'रामचरितमानस' में चरम उत्कर्ष को प्राप्त होते है। 'रामचरितमानस' की शैली सरल तथा आडम्बरविहीन है। कवि उसे किसी ऐसी वस्तु से सजाने का प्रयास नही करता जो पाठक के ध्यान को काव्य की दृष्टि से हटा सके। यह स्वाभाविक तथा स्वत.प्रवर्तित है। शब्द विना किसी सतर्क प्रयास के कवि के मस्तिष्क से अपने आप आते हुए प्रतीत होते है। उसमे एक अद्भुत प्रवाह है। कवि के विचारो की शृखला का—जिनको वह प्राय. पूर्वापर क्रम से पाठक के सम्मुख रखता है—समझने मे बहुधा कठिनाई नही होती है। उसकी वाक्य-रचना इतनी सीधी है कि उसको समझने के लिए किसी प्रकार के अन्वय की आवश्यकता नही पड़ती। उसकी शैली सुललित तथा सुचारु है। प्रत्येक शब्द अपने स्थान पर आवश्यक प्रतीत होता है। शब्द छोटे है और समास निर्माण की ओर कोई प्रयास परिलक्षित नही होता और ध्वनि-सकलन ऐसा है जो श्रोता के कानो को कही भी कर्कश प्रतीत नही होता होता। प्रधान रूप से 'मानस' की की शैली की विशेषता ये है।[१२३५]

पद्मपुराण और रामचरितमानस दोनो ही पौराणिक शैली के काव्य है

१२३५ तुलसीदास, पृ० ३६१

किन्तु दोनो की शैली मे पर्याप्त अन्तर है। पहला संस्कृत भाषा में लिखित है तो दूसरा प्रधानत. अवधी मे; पहले मे अनुष्टुप् छन्द प्रधान है तो दूसरे मे दोहा-चौपाई, पहले मे धार्मिकता कविता पर हावी है तो दूसरे मे वह उसमे घुली-मिली; पहले में अभिधा के द्वारा लम्बे वर्णन हुए है तो दूसरे मे व्यंजना के द्वारा छोटे, पहले मे अलकारो का पूर्ण प्रकर्ष एव चमत्कार है तो दूसरे मे स्वाभाविक सन्निवेश। मानस की शैली सरल है तथा पद्मपुराण की प्रौढ़, पहले के लिए सहृदय भक्त पाठक अपेक्षित है और दूसरे के लिए सहृदय विद्वान्।

पद्मपुराण और रामचरितमानस दोनो के ही कर्ताओ का भापा पर पूर्ण अधिकार है। पद्मपुराण की भाषा पर साहित्यक दृष्टि से विचार सप्तम अध्याय मे किया जा चुका है। जहाँ तक मानस की भापा का प्रश्न है, यद्यपि उसमे यत्रक्वचित् बघेली, छत्तीसगढ़ी, भोजपुरी (तहवाँ, जहवाँ) बुदेलखडी (जानव) राजस्थानी, (मेला), गुजराती (जूनधनु) मराठी, खडी बोली (तव किया) अरवी, फारसी (गरीवनिबराजू तया साहिव) प्राकृत-अपभ्र श (खप्परिन्ह, खग्ग, अल्लुज्झ जुज्झहिं) के शब्दो का प्रयोग हो गया है तथापि उसमे प्रधानत. सस्कृत, व्रजभाषा तथा अवधी ही प्रयुक्त हुई है। सस्कृत का प्रयोग, कविता के प्रारभ[१२३६] और अन्त[१२३७] के लिए, काडोके आदि मे मगलाचरण[१२३८] के लिए तथा व्राह्मणो[१२४१] और देवताओ के मुख से भगवान् की स्तुति के लिए हुआ है।

मानस की सस्कृत के विषय मे एक वात कह देनी उचित है कि यह सस्कृत कही-कही हिन्दी का रूप धारण कर गयी है यथा—

१२३६ वर्णानामर्थसधाना रसाना छन्दसामपि।
मगलाना च कर्तारौ वन्दे वाणीविनायकौ।
(मानस, वालकाण्ड आरम्भ१)

१२३७ पुण्य पापहर सदा शिवकर विज्ञानभक्तिप्रद
मायामोहमलापह सुविमल प्रेमाम्बुपूर शुभम्।
श्रीमद्रामचरित्रमानसमिद भक्त्यावगाहन्ति ये
ते ससारपतगघोरकिरणैर्दह्यन्ति नो मानवा॥ (मानस, ७।१३०।२)

१२३८ मूल धर्मतरोर्विवेकजलधे . पूर्णेन्दुमानन्दद
वैराग्याम्बुजभास्कर ह्यघघनध्वान्तापह तापहम्।
मोहाभोधरपूगपाटनविधौ स्व सम्भव शकर
वन्दे ब्रह्मकुल कलकशमन श्रीरामभूपप्रियम्॥१॥ (अरण्यकाड, आरभ श्लोक १)

१२३९ नमामीशमीशाननिर्वाणरूप विभुव्यापक ब्रह्मवेदरूपम्
(ब्राह्मणकृत शिवस्तुति) (उत्तरकाण्ड, १०७।१-८)

'स्फुरन्मौलिकल्लोलिनी चारुगगा।
लसद्भालबालेन्दु कण्ठे भुजंगा ॥'

× × ×

चिदानन्दसन्दोह मोहापहारी,।
प्रसीद प्रसीद प्रभो! मन्मथारी ॥[1240]

यहाँ शिवजी के विशेषण विशुद्ध सस्कृत के रूप नही है। इसी प्रकार अन्य अनेक उदाहरण लिये जा सकते है।

ब्रजभाषा का उपयोग कविता की गति के लिए नही हुआ है और न इसके द्वारा किसी तथ्य या घटना का प्रकाशन ही हुआ है। केवल पूर्ववर्ती वृत्तो मे वर्णित कथावस्तु को भव्यता देने के लिए तथा उसकी भव्य पुनरावृत्ति के लिए ही ब्रजभाषा का प्रयोग हुआ है। विविध 'छन्द' इसके प्रमाण है। उदाहरण के लिए अवधी की चौपाइयो के बाद आये इस छन्द को लिया जा सकता है—

'केहरि नाद भालु कपि करही। डगमगाहि दिग्गज चिक्करही॥
चिक्करहिं दिग्गज डोल महि गिरि लोल सागर खरभरे।
मन हरष सभ गधर्ब सुर मुनि नाग किंनर दुख टरे॥
कटकटहिं मर्कट बिकट भट बहु कोटि कोटिन्ह धावही।
जय राम प्रबल प्रताप कोसलनाथ गुनगन गावही॥[1241]

किन्तु मानस की ब्रजभाषा पूर्ण विशुद्ध नही है।

'मानस' की सर्वप्रधान भाषा अवधी है जिसमे समस्त कथानक कहा गया है। जिस अवधी के ग्रामीण रूप को अनेक सूफियो ने काव्यभाषा बनाया था, उसे ही तुलसी ने परिमार्जित साहित्यिक रूप दिया। मानस की भाषा के विषय मे डा० गोविंदराम का कथन द्रष्टव्य है—'तुलसी की भाषा का सौन्दर्य उसकी सरलता, सुबोधता और लालित्य पर अवलम्बित है। मानस की भाषा प्रवाहमयी, परिष्कृत और आडम्बरहीन है। उसमे स्वाभाविकता और सजीवता है। वाक्य-रचना सीधी-सादी और सरल है। वाक्यो मे शब्द यथास्थान जडे हुए प्रतीत होते है। उनके अर्थ को समझने मे कोई कठिनाई प्रतीत नही होती। भाषा और भाव दोनो मे सुन्दर सामजस्य दिखाई देता है। विषय के अनुसार मानस की भाषा कही सरल, कही मधुर और कही ओजस्विनी दिखाई देती है। विविध रसो और भावो को व्यक्त करने की उसमे पूर्ण क्षमता है। लोकोक्तियो और मुहावरो का प्रयोग भी मानस मे यथास्थान हुआ है। इसके प्रयोग से भाषा मे मर्यादा सजीवता और

१२४० मानस, उत्तर० १०७ दोहे के बाद।
१२४१. मानस, सुन्दर० ३४ के बाद।

व्यावहारिकता आ गयी है। मानस की भाषा साहित्यिक होकर भी सरल, सहज और जनसुलभ है। उसमे वह वेग और प्रवाह है जो कि एक जीवित भाषा मे होना चाहिए। मानस की भाषा की इस सरलता और सुबोधता के कारण ही तुलसी भारतीय जनता के हृदय मे स्थान बना सके हैं।'[१२४२] कोमल प्रसगो मे तुलसी की भाषा जैसे नाचती चलती है यथा—

'कंकन किंकिनि नूपुर धुनि सुनि। कहत लखन सन रामु हृदय गुनि॥[१२४३]

परन्तु वही युद्ध आदि के कठोर प्रकरणो मे कठोर हो जाता है —

'बोल्लहिं जो जय जय मुडं रुंड प्रचंड सिर बिनु धावही।
खप्परिन्ह खग्ग अलुज्झि जुज्झहिं सुभट भटन्ह ढहावहीं॥
बानर निसाचर निकट मर्दहिं रामबल दर्पित भए।
संग्राम अंगन सुभट सोवहिं राम सर निकरन्हि हए॥[१२५४]

इस प्रकार तुलसी की भी भाषा को अवसरानुकूल साहित्यिक भाषा कहा जा सकता है जो कि एक महाकाव्य के लिए उपयुक्त होती है।

दोनो ग्र थो की भाषा पर विचार करने पर हमे ज्ञात होता है कि दोनो ही कवियो का भाषा पर पूर्ण अधिकार है। यदि रविषेण ने अवसरानुकूल, भावाभिव्यञ्जिका, गतिशील, आलकारिक तथा मूर्तिविधायिनी विशुद्ध साहित्यिक सस्कृत भाषा का प्रयोग किया है तो तुलसी ने अपने देश-काल के अनुसार जनमनोऽवगाहिनी, अवसरदर्शिनी, सस्कृत-व्रज-सहिता, भावाभिव्यञ्जनक्षमा साहित्यिक अवधी का। तुलना करके उनके उत्कर्षापकर्ष का कथन करना ही कठिन है क्योकि दोनो अपने-अपने क्षेत्र मे पूर्ण प्रभु तथा अद्वितीय है।

पद्मपुराण की छन्दोयोजना पर सप्तम अध्याय मे विचार किया जा चुका है। मानस के मगलाचरण मे 'छन्दसामपि' कहने वाले तुलसा के छन्दोयोजना-कौशल मे कोई शका ही नही होनी चाहिए। प्रवन्धानुरूप छन्दोयोजना के धनी तुलसी ने यद्यपि पुरातनपरम्पराप्राप्त दोहा-चौपाई छन्दो को प्रधान रूप मे अगीकार किया है तथापि प्रसगानुकूल अन्य छन्द भी मानस मे सयोजत किये है। इससे एक ओर प्रबधकथा-ऽवाह की मसृणता एव क्षिप्रता अक्षुण्ण बनी रही है और दूसरी ओर स्थान-स्थान पर अभिनव छन्द-सौष्ठव से प्रबन्ध कलेवर की सुन्दर सघटना का सपादन भी हो गया है। दोहा, चौपाई, सहित मानस मे प्रयुक्त छन्द

१२४२ 'हिन्दी के आधुनिक काव्य' पृष्ठ ९५

१२४३ मानस, बाल २२९।१

१२४४ मानस, लका ८७ के बाद का छन्द

द्विविध हैं (अ) ग्यारह वर्णवृत्त एवं आठ मात्रावृत्त। वर्णवृत्तो मे अनुष्टुप्[१२४५] इद्रवज्रा[१२४६] तोटक[१२४७] नगस्वरूपिणी (प्रमाणिका)[१२४८] भुजगप्रयात[१२४९] मालिनी[१२५०] रथोद्धता[१२५१] वसततिलका[१२५२] वशस्थ[१२५३] शार्दूलविक्रीडित[१२५४] और स्रग्धरा[१२५५] एव मात्रावृत्तों मे दोहा[१२५६] सोरठा[१२५७] चौपाई[१२५८] तोमर[१२५९] डिल्ला[१२६०] त्रिभगी[१२६१] हरिगीतिका[१२६२] और चौपइया[१२६३] प्रयुक्त हुए है। कुल मिलाकर मानस मे १६ छन्द प्रयुक्त हुए हैं।

इनमे अनुष्टुप्, शार्दूलविक्रीडित वसन्ततिलका, इन्द्रवज्रा, मालिनी, वशस्थ नगस्वरूपिणी, स्रग्धरा आदि छन्दो के द्वारा एक ओर तो महाकाव्य के प्रत्येक काड के आदि मे मगलादि का विधान हुआ है दूसरी ओर इन तथा अन्य हरिगीतिकादि छन्दो के द्वारा 'अवसानेऽन्यवृत्तकै' वाले नियम का परिपालन भी। 'अनुष्टुप्' का प्रयोग ग्रन्थारम्भ, कथाविस्तार, शान्ति-उपदेश और सर्वसाधारण-वृत्तान्त आदि के लिए किया जाता है। 'मानस' मे अनुष्टुप् ग्रन्थारम्भ के लिए प्रयुक्त है। कवि ने शार्दूलविक्रीडित से प्राय अपने अभीष्ट देव के शक्ति-शील-सौन्दर्य के चित्र खीचे हैं। मात्रिक छन्दो में ही कवि ने क्रम रखा है। दोहा और सोरठा प्राय: कथा-प्रवाह मे विश्राम देते है। कही वे नीति प्रकट करते है तो कही दार्शनिक तथ्यो का प्रकाशन करते हैं। प्राय: कथाप्रवाह का निर्वाह आठ चौपाइयो के अन्तर दोहे या सोरठे के क्रम से ही हुआ है (यद्यपि यत्र-क्वचित् इसके अपवाद भी है)। इससे कथाप्रवाह मे क्षिप्रता एव गतिमत्ता बनी रही है। श्रुति, नाद और शैली की अनेक विशेषताओ को चौपाई मे निविष्ट कर कवि ने विभिन्न वातावरणों

१२४५ मानस, बालकाड, मगलाचरण, श्लोक १
१२४६ वही, अयोध्याकाड, मगलाचरण, श्लोक ३
१२४७ वही, उत्तरकाड १००।१०२
१२४८ वही, अरण्यकाड ३।१-१२
१२४९ वही, उत्तरकाड १०७
१२५० सुन्दरकाड मगलाचरण, ३
१२५१ वही उत्तरकाड, मगलाचरण, २
१२५२ वही, सुन्दरकाड, मगल, २
१२५३ वही, अयोध्याकाड, मगल, २
१२५४ वही, अयोध्याकाड, मगल १
१२५५ वही, उत्तरकाड मगल १
१२५६ वही, बालकाड १ तथा अन्य अनेक
१२५७ वही, बालकाड ५ तथा अन्य अनेक
१२५८ वही, बालकाड १-८ आदि अनेक स्थल
१२५९ वही, अरण्यकाड १९
१२६० वही, " (१९) ख के पश्चात् का छन्द
१२६१ वही, बालकाड, २१० के बाद का छन्द
१६६२ वही, बालकाड २३५ के बाद का छन्द
१२६३ वही, बालकाड, १८४ के साथ का छन्द

का साक्षात् अंकन कर दिखाया है। चौपाई के अनन्तर परिमाण के अनुसार 'हरिगीतिका' छन्द का प्रयोग है जिसमे किसी भाव, व्यापार, दृश्य या परिस्थिति को अधिक प्रभावोत्पादक बनाने का प्रयत्न हुआ है। प्राय: उल्लासमय वातावरण के वर्णन के लिए इसका प्रयोग हुआ है। स्तुतियो मे तोटक एवं भुजंगप्रयात का सौन्दर्य निखरा है तो तोमर का उपयोगित्व युद्ध के वर्णनो मे है।

'मानस' के छन्दोनिर्वाचन के वैशिष्ट्य का प्रकाशन श्री राजपति दीक्षित के शब्दो मे इस प्रकार किया जा सकता है—"गोस्वामीजी की प्रबन्ध-धारा मानो उनके संस्कृत वर्णिको के शुभ्र हिमशिलाखण्ड से प्रसूत होकर चौपाइयो की समभूमि मे सहज स्वाभाविक गति से चलती है; मार्ग मे दोहा–सोरठो के मोड़ पर विश्राम करती हुई, समय-समय पर प्रसंग एवं भावावेग रूप वायु के झकोरो से विलोडित होकर अपनी मनमोहक लहरो मे सजीव चित्र दिखाने के लिए हरिगीतिका, चौपय्या, त्रिभंगी, प्रमाणिका, तोटक और तोमर आदि के क्षेत्र मे अपनी इठलाहट दिखाती कल-कल नाद करती हुई उत्तरोत्तर रामसागर मे लीन हो जाती है।"[१२६४]

जहाँ तक छंदो की संख्या का प्रश्न है, पद्मपुराण मे मानस से दुगुने से भी अधिक छंद प्रयुक्त हुए है। तुलसी ने किसी छंद का स्वतः निर्माण नही किया है जबकि रविषेण ने कुछ छंदो की कल्पना स्वतः भी की है। रविषेण ने ४२वे पर्व मे बहुत जल्दी-जल्दी छंद परिवर्तन किया है किन्तु तुलसी ने कहीं भी इतनी शीघ्रता से छंद नही बदले हैं।

अलंकारो के प्रयोग मे रविषेण और तुलसी दोनो ही जागरूक हैं। दोनो ने ही प्राय: अपृथग्यत्ननिर्वर्त्य अलंकारो का प्रयोग किया है, यद्यपि एकाध स्थल पर रविषेण सायास अलंकारो की योजना मे भी तत्पर दिखायी देते हैं। यदि रविषेण लक्षणालंकृती वाच्यं कहकर अलंकारो के प्रति सचेष्टता को द्योतित करते हैं तो तुलसी 'आखर अरथ अलंकृति नाना' के द्वारा अपने अलंकाराधिकार की व्यंजना करते है। पद्मपुराण के अलंकारो का सोदाहरण उल्लेख सप्तम अध्याय मे किया जा चुका है। मानस मे अनेक अलंकार प्रयुक्त हुए है किन्तु रूपक, उपमा एवं उत्प्रेक्षा तुलसी के अत्यन्त प्रिय अलंकार हैं। मानस का तो नाम ही रूपक अलंकार का उदाहरण है। प्रसिद्ध विद्वान् वी० ए० स्मिथ ने तुलसीदास की उपमाओ को कालिदास की उपमाओ से चारुतर स्वीकार किया है। मानस मे प्रयुक्त मुख्य अलंकारो के नाम अधोलिखित है —यमक, श्लेष, रूपक, अपह्नुति, दीपक, निदर्शना व्यतिरेक, उपमा, उत्प्रेक्षा, विभावना, विषम, रूपकातिशयोक्ति, परिसंख्या,

१२६४ तुलसी और उनका युग पृष्ठ ३७८

अर्थापत्ति, यथासख्य, प्रत्यनीक, स्वभावोक्ति, अर्थान्तरन्यास, कारणमाला आदि जिनके उदाहरण तुलसी के काव्य का परिचय देने वाले ग्रन्थो के लेखको ने अनेक स्थानो पर दिये हैं। यहाँ हम स्थानानुरोध से उनके उदाहरण नही दे रहे है। ससृष्टि और सकर के भी अनेक उदाहरण तुलसी के मानस मे प्राप्त होते हैं।

पद्मपुराण और मानस में प्रयुक्त अलकारो की तुलना करने पर ज्ञात होता है कि यद्यपि दोनो ही अलकारों का सौन्दर्य दर्शनीय है किन्तु ग्रन्थो की पृथक् भाषा तथा काव्य-पद्धति मे कुछ भेद होने के कारण अलंकार-योजना मे भी अतर है। पद्मपुराण के कर्त्ता ने अपने ग्रन्थ को सस्कृत-साहित्य का एक प्रौढ तथा आकर्षक ग्रन्थ बनाने के लिए लालायित होकर जहाँ अलकारो के विस्तृत उदाहरण प्रस्तुत किये है वहाँ मानस के लोकसग्रही कवि ने जनमानस तक मानस को पहुँचाने के लिए अलकारो का सरल और सक्षिप्त प्रयोग किया है। उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा मेदोनो ही कवि परम सफल है। किसी की भी अधरोत्तरता सिद्ध नही की जा सकती, क्योकि दोनो की काव्यभाषा, काव्यप्रणाली, काव्य परिस्थिति एव मनो-वृत्ति पृथक् है जिसके कारण अलकार-योजना मे कही प्रौढि और कही सरलता का आश्रय लिया जा सकता है।

'पद्मपुराण' और 'मानस' दोनो ही पौराणिक काव्य है। पुराणो मे वक्ता और श्रोताओ की शृखलाएँ जुडती चली जाती है। पद्मपुराण के सवादो की चर्चा सप्तम अध्याय मे की जा चुकी है जिनमे श्रेणिक-गणधर-संवाद आधारभूत है। ठीक इसी पद्धति पर मानस की प्रस्तावना मे चार वक्ता-श्रोता दिखाई पड़ते है। 'मानस धर्मग्रन्थ भी है और काव्यग्रन्थ भी। इसीलिए उसमे धर्मग्रन्थ पुराणो की तरह शृखलाबद्ध सवाद रखे गये है।'[१२६५]

इनके अतिरिक्त भक्ति, ज्ञान और धर्म आदि पर आधारित और भी अनेक सवाद चलते है। कुछ सवाद कथा के भाग भी है। कुछ मे सघर्ष और मनोविज्ञान सामने आता है तो कुछ परिस्थितिविशेष के चरित्रो एव घटनाओं को गति देते है। कुछ सवादो के केवल निर्देश ही मिलते है। कुछ लोगो का विचार है कि ये सवाद ज्ञान, कर्म और भक्ति आदि का निरूपण करने के लिए ही हैं क्योंकि काकभुशुण्डि भक्ति का, शिव ज्ञान का और याज्ञवल्क्य कर्मकाण्ड का प्रतिपादन करते है। परन्तु संवादो की योजना का उद्देश्य यह प्रतीत नही होता। वास्त-विकता यह है कि तुलसी ने अनेक श्रोता और वक्ताओ के माध्यम से नाना भाँति के तर्कों का समाधान कर दिखाया है। एक प्रकार के सवाद और भी मिलते है,

---

१२६५ 'मानस' के संवाद, 'कल्याण', भाग-१३, स० २।

जैसे—'सीता-अनसूया-सवाद' तथा 'राम-नारद-संवाद'। इनमे कवि के अपने ही दृष्टिकोण सामने आते है।'

कथा भाग को गति देने वाले सवादो को प० विश्वनाथ मिश्र ने दो भागो मे विभक्त किया है—(१) सभा-सवाद और (२) गोष्ठी-संवाद। सभा-संवादो मे लक्ष्मण-परशुराम-सवाद, भरत-राम-सभा-सवाद, जनक-सभा-सवाद, हनुमान-रावण-सवाद और अगद-रावण-सवाद मुख्य है। गोष्ठी-सवादो मे मिथिला की सखियो का सवाद, मन्थरा-कैकेयी-सवाद, राम-सीता-सवाद, केवट-राम-सवाद, रावण-मन्दोदरी-सवाद और शूर्पणखा-राम-लक्ष्मण-सवाद आदि आते है। इन सभी के उदाहरण मानस मे देखे जा सकते है। इन सवादो मे कही-कही, किसी आलोचक की दृष्टि से, मर्यादा का उल्लघन हो गया है यथा—अगद-रावण-सवाद मे।

पद्मपुराण और मानस के सवादो पर तुलनात्मक दृष्टि डालने पर ज्ञात होता है कि यद्यपि दोनो के कर्ताओ ने सवादो की योजना की है किन्तु इस क्षेत्र मे रविषेण तुलसी से आगे है क्योकि इनके सवाद मनोवैज्ञानिक और आकर्षणपूर्ण अपेक्षाकृत अधिक है।

जहाँ तक **प्रकृति-चित्रण** का प्रश्न है दोनो ग्रन्थो मे अवसरानुसार उसे स्थान मिला है। पद्मपुराण के प्रकृति चित्रण का परिचय दिया जा चुका है। मानस में प्रकृति उद्दीपन, अलकार और उपदेशदात्री के रूप मे अधिक चित्रित हुई है। प्रकृति के स्वतन्त्र रूप को यहाँ अधिक स्थान नही मिला है। गोस्वामीजी ने प्रकृति-चित्रण करते समय प्रायः परम्परा का ही पालन किया है। सभवत. राम-भक्त तुलसी के पास प्रकृति का सूक्ष्म अन्वेषण करने का अधिक अवकाश नही था। तभी तो **'बूँद अघात सहहिं गिरि कैसे। खल के बचन संत सहिं जैसे'** आदि उपदेशदायक रूपो मे प्रकृति का चित्रण अधिक हुआ है। शरद्-वर्णन, वर्षा-वर्णन तथा चित्रकूट-वर्णन आदि स्थल प्रकृति-चित्रण की दृष्टि से रमणीय है।

जहाँ तक **विविध वर्णनो** का प्रश्न है दोनो ग्रन्थो मे विविध वर्णन, अनेक अवसरो पर, किये गये है। 'पद्मपुराण' के वर्णनो की विशद सूची हम सप्तम अध्याय मे दे चुके है। मानस के वर्णनो मे कवि का आत्म-परिचय, जनकपुरी, अयोध्या तथा लका नगरी का वर्णन, वर्षा और शरद् ऋतु का वर्णन, सन्ध्या, सूर्य, इन्दु और रजनी आदि के अत्यन्त सूक्ष्म तथा सक्षिप्त वर्णन, पम्पा-सरोवर-वर्णन, सीता-सौन्दर्य-वर्णन, जनकपुरी के नर-नारियो के भावालापो का सक्षिप्त वर्णन, शिव-विवाह और राम-विवाह का वर्णन, राम-लक्ष्मण की शोभा का वर्णन, राम-भरत की यात्रा का वर्णन, निषाद की सेवा का वर्णन, अशोक-वाटिका-विध्वंस-वर्णन, खरदूषण-राम-युद्ध, इन्द्रजित्-लक्ष्मण-युद्ध, राम-कुम्भकर्ण-युद्ध एवं राम-

रावण-युद्ध का वर्णन, दशरथ-राम-मन्दोदरी-सुलोचना के विलाप-वर्णन तथा सुतीक्ष्ण मुनि आदि के सक्षिप्त वर्णन प्रमुख है। 'रामचरितमानस' के विशिष्ट वर्णनों मे नगरी-वर्णन की दृष्टि से अयोध्या[१२६६] और लका[१२६७] का वर्णन लिया जा सकता है। अयोध्या का वर्णन करते समय कवि ने ध्वजा, पताका, पट, चामर, विचित्र बाजार, कनक-कलश, तोरण, मणिजाल, हल्दी, दूब, दधि, अक्षत आदि मागलिक द्रव्य, छिडकाव, चौक पूरना, षोडष शृगार युक्त दामिनी की द्युति के समान भामिनियो, विधुवदनी, मृगशावकलोचनी एव अपने स्वरूप से रति का मान भग करने वाली पुरवनिताओ के द्वारा कोकिल को लजाने वाली वाणी के द्वारा मगलगान, अनेक मागलिक द्रव्यो से युक्त राजभवन, नगाडे, बदिजनो के द्वारा विरुदावलि का गान, ब्राह्मणो के द्वारा वेद पाठ तथा दशरथ के भवन मे रामजन्म पर उत्साहातिरेक प्रभृति का परिगणनात्मक शैली में वर्णन किया है। लंका का वर्णन करते समय कवि ने लका-दुर्ग, चारो दिशाओ मे समुद्र की परिखा, कनक-कोट, हाट, वाथी, गज-वाजि-खच्चर, पदचर, रथ, निशाचरो, सैन्य, वन, बाग, उपवन, सर, कूप, वापी, नर, नाग, सुर एव गधर्वो की कन्याओ, शैलोपम देहधारी मल्लो के अखाडो मे भिडने, कोटि यत्नो से नगर की रक्षा एवं निशाचरो के द्वारा अनेक पशुओ के भोजन आदि का वर्णन किया है।

ऋतु-वर्णन की दृष्टि से रामचरितमानस का वर्षा-वर्णन[१२६८] एव शरद्-ऋतु-वर्णन[१२६९] द्रष्टव्य है। इन वर्णनो मे केवल वस्तु-परिगणन-प्रणाली का ही आश्रय न लेकर प्रकृति के उपदेशदायक रूप का विविध उपमाओ के माध्यम से चित्रण किया गया है। वर्षा ऋतु के एक-एक उपादान से किसी न किसी शिक्षात्मक तथ्य की सगति की गयी है। वारिद को देखकर मयूरो का नृत्य, घनो मे दामिनी का दमकना, बरसते बादलो का भूमि के निकट हो जाना, पर्वतो का वर्षा की बूँदो के आघात को सहना, क्षुद्र नदी का भरकर चलना, भूमि पर गिरते ही पानी का मलिन हो जाना, सिमिट-सिमिटकर जल का तालाब मे भर जाना, सरिता के जल का जलनिधि मे पहुँचकर अचल हो जाना, हरित तृणो से सकुल भूमि मे पथ का न सूझ पडना, चारो दिशाओ मे दादुरो की ध्वनि का फैलना, वृक्षो मे अनेक नये पल्लवो का उद्गम, आक और जवास का पत्रहीन हो जाना, खोजने पर भी कही धूलि का न मिलना, शस्य से सम्पन्न पृथ्वी की शोभा, रात

१२६६ मानस, बाल० २९६-२९७

१२६७ वही, सुन्दरकाड २-३

१२६८ देखिए, मानस, किष्किधाकाण्ड १३-१५

१२६९ वही " " १६-१७

के घने अँधेरे मे खद्योतो का चमकना, महावृष्टि से क्यारियों का फूट चलना, चतुर किसानो के द्वारा खेती का नलाना, चक्रवाक पक्षी का न दिखाई देना, ऊसर मे वर्षा होने पर भी तृण का न जमना, पृथ्वी का विविध जन्तुओ से संकुल होना, जहाँ-तहाँ पथिकों का थककर रह जाना, कभी प्रबल मारुत के प्रवाह से मेघो का इधर-उधर विलीन हो जाना एवं कभी दिन मे निविड़ अधकार का होना और कभी सूर्य का प्रकट होना आदि अपने समानधर्मा शिक्षा-तथ्य की प्रस्तुति करते हैं। यहाँ तुलसी की भाषा की समास-शक्ति और कल्पना की समाहार-शक्ति के साथ उनका व्यापक अनुभव मुखर हो उठा है। इसी प्रकार वर्षा के बीतने पर शरद् ऋतु के आगमन का वर्णन चेतन और अचेतन प्रकृति के साधर्म्य का द्योतन कराता है। इन वर्णनो मे केवल वस्तुपरिगणन-प्रणाली का ही निर्वाह नही है, अपि तु वस्तुओ के कार्य-कलाप का भी संश्लिष्ट वर्णन हुआ है।

जिस प्रकार पद्मपुराण मे अनेक जलाशयों के वर्णन आये हैं उसी प्रकार मानस मे भी जलाशयो के वर्णन आये है। उदाहरण के लिए मानस का पम्पा-सरोवर वर्णन[१२७०] लिया जा सकता है। यदि वर्षा और शरद का वर्णन करते समय तुलसी ने दृष्टान्त एव उपमाओं के सहारे प्रकृति के लोक-शिक्षक रूप को व्यक्त किया है तो पम्पा-सरोवर के वर्णन मे उसने उत्प्रेक्षाओ का सहारा लेकर इस कार्य की सिद्धि की है। पद्मपुराण के समान ही मानस भी सौन्दर्य-वर्णनो से युक्त है किन्तु इसके सौन्दर्य वर्णन साकेतिक, व्यजना से परिपूर्ण एव मर्यादित हैं। उदाहरण के लिए मानस के सीता-सौन्दर्य-वर्णन को लिया जा सकता है जो अपनी ध्वनिपूर्णता के लिए प्रसिद्ध है—

सिय सोभा नहि जाइ बखानी। जगदम्बिका रूप गुन खानी॥
उपमा सकल मोहि लघु लागी। प्राकृत नारि अंग अनुरागी॥
सिय बरनिअ तेइ उपमा देई। कुकवि कहाइ अजसु को लेई॥
जौं पटतरिअ तीय सम सीया। जग असि जुवति कहाँ कमनीया॥
गिरा मुखर तन अरध भवानी। रति अति दुखित अतनु पति जानी॥
विष वारुनी बंधु प्रिय जेही। कहिअ रमा सम किमि बैदेही॥
जौं छवि-सुधा पयोनिधि होई। परम रूपमय कच्छपु सोई॥
सोभा रजु मंदरु सिंगारू। मथै पानि पंकज निज मारू॥
एहि विधि उपजै लच्छि जब सुन्दरता सुख मूल।
तदपि सकोच समेत छवि कहहिं सीय सम तूल॥

१२७० देखिये मानस, अरण्यकाण्ड, ३८-४०

चली संग लै सखी सयानी । गावत गीत मनोहर बानी ।।
सोह नवल तनु सुंदर सारी । जगत जननि अतुलित छबि भारी ।।
भूषन सकल सुदेस सुहाए । अंग अंग रचि सखिन्ह बनाए ।।
रंगभूमि जब सिय पगु धारी । देखि रूप मोहे नर नारी ।।
हरषि सुरन्ह दुंदुभी बजाई । बरषि प्रसून अपछरा गाई ।।
पानि सरोज सोह जयमाला । अवचट चितए सकल भुआला ।।
सीय चकित चित रामहि चाहा । भए मोहबस सब नरनाहा ।।
मुनि समीप देखे दोउ भाई । लगे ललकि लोचन निधि पाई ।।

गुरजन लाज समाजु बड़ देखि सीय सकुचानि ।
लागि बिलोकन सखिन्ह तन रघुबीरहि उर आनि ।।[१२७१]

यहाँ **'उपमा सकल मोहि लघु लागी'** आदि व्यजनापूर्ण वाक्यों से तथा **'जौ छबि सुधा पयोनिधि होई'** आदि यद्यर्थातिशयोक्ति के द्वारा जगज्जननी सीता के वर्णनातीत सौन्दर्य की व्यजना की गयी है। पद्मपुराण मे सीता का वर्णन करते समय रविषेण ने नख-शिख-वर्णन का आश्रय लिया है एव ब्यौरेवार प्रत्येक अग का आलकारिक वर्णन प्रस्तुत किया है जबकि तुलसी सीता के वर्णन के लिए उपमा देने को कुकवि की उपाधि का कारण मानते हैं।

शृंगारिक वर्णनों का जितना आधिक्य पद्मपुराण मे है उतना मानस मे नही; फिर भी कुछ स्थल ऐसे है जिनमे शृगार के सयोग-पक्ष से सम्बद्ध वर्णन अत्यन्त भव्य रूप मे निबद्ध हुए है। उदाहरण के लिए मानस का राम-सीता-मिलन का वर्णन लिया जा सकता है। सीता सखियो के साथ गिरिजा-पूजन के लिए जाती हैं। एक सखि, पुष्पवाटिका मे राम-लक्ष्मण को देखकर सीता से उनके रूप-सौन्दर्य का वर्णन करती है। सीता प्रिय सखी के साथ राम-लक्ष्मण को देखने चलती है और सीता को देखकर श्रीराम लक्ष्मण से उसके अलौकिक सौन्दर्य का वर्णन करते है। इसके बाद सीता और राम के पूर्वराग का साकेतिक, व्यजनापूर्ण एव उदात्त वर्णन हुआ है।[१२७२]

इस वर्णन मे पद्मपुराण के अञ्जना-पवनञ्जय-सम्भोग-वर्णन जैसी वर्णनात्मकता तथा पार्थिवता नही है, अपितु सूक्ष्म-साकेतिकता तथा गम्भीर प्रभाववत्ता विद्यमान हैं। रविषेण, ऐसे स्थलो पर सागोपाग वर्णन करके अभिधा के चमत्कार से मानो यह कहना चाहते है कि 'मैं वर्णन करते हुए छोटी-सी भी वस्तु को उपेक्षित नही करता' जबकि तुलसी व्यजना का आश्रय लेकर यह बता देना चाहते है कि

१२७१ मानस, बालकाण्ड, २४६-२४८
१२७२. देखिए, मानस बालकाण्ड, २२८-२३४

'वर्णनीय वस्तुओ का शब्दो के द्वारा वास्तविक वर्णन नही हो सकता, उसके लिए सहृदय की कल्पना अपेक्षित है।' 'बरनि न जाई देखि मन मोहा।', 'स्याम गौर किमि कहौं बखानी। गिरा अनयन नयन बिनु बानी।', 'देखि सीय सोभा सुख पावा। हृदय सराहत बचनु न आवा॥', 'सब उपमा कवि रहे जुठारी। केहि पटतरौं बिदेह कुमारी॥' आदि वाक्यो से उनकी व्यजनात्मकता सिद्ध होती है। कहने का यह तात्पर्य बिल्कुल नही है कि रविषेण व्यजना का आश्रय नही लेते। उन्होने भी'यथा ब्रवीति वैदग्ध्यं, यथाज्ञापयति स्मरः। अनुरागो यथा शिक्षां प्रयच्छति महोदयः॥ तथा तयो रति प्राप्ता दम्पत्योर्वृद्धिमुत्तमाम्॥'आदि वाक्यो से अनुभवैकगम्य का कही-कही साकेतिक वर्णन किया है, किन्तु अधिकाशत उन्होने अभिधा के चमत्कार से युक्त ही सयोग-वर्णन किये है।

युद्ध-वर्णन मानस की अपेक्षा पद्मपुराण मे अधिक सजीव और प्रभूत है। मानस के युद्ध वर्णनों मे प्राय वे सभी घिसी-पिटी बाते पायी जाती है, जो किसी औसत दर्जे के पौराणिक काव्य मे मिलती है। उसमे वीरो के नाम, अस्त्रो के नाम, एक-दूसरे को ललकारना, विविध माया फैलाना आदि तथ्यपरक वाक्यो की योजना अधिक है। पद्मपुराण जैसी बिम्बोत्पादकता मानस के युद्ध वर्णनो मे नही है। मेघनाद-लक्ष्मण-युद्ध-वर्णन को उदाहरण के लिए लिया जा सकता है।[१२७३] इस प्रसग मे कुछ स्थलो पर तो केवल तथ्यकथन है और कही-कही उपमादि अलकारो से परिपुष्ट कुछ बिम्ब उभरते है।

सक्षेप मे, पद्मपुराण और मानस के वर्णनो पर दृष्टिपात करने पर यह निष्कर्ष निकलता है कि वर्णन करने मे दोनो ही कवि निपुण हैं किन्तु जितने विविध, आलकारिक तथा विस्तृत वर्णन पद्मपुराण मे पाये जाते है उतने मानस मे नही। भावालाप-वर्णनो मे तो रविषेण ने कमाल ही कर दिया है जिसे देखकर बाण और दण्डी स्मृतिपथ मे उतर आते है। एक-एक वस्तु के उन्होने नये से नये ढग से मुहुर्मुहु वर्णन किये है। मानस मे ऐसा नही है। इसका कारण स्पष्ट है। तुलसी ने मानस जनसाधारण तक पहुँचाने के लिए लिखा था, काव्यमार्गियो मे अपनी प्रौढता दिखाने के लिए नही। दूसरे उन्होंने मर्यादा एव लोकमगल की भावना का पूरी तरह पालन किया है। अत वे स्वच्छन्द वर्णन नही कर पाये। अत एव जहाँ पद्मपुराण के वर्णन एक ही वस्तु का बारम्बार अभिनव व्याख्यान करने वाले, आलकारिक तथा स्वच्छन्द हैं वहाँ मानस के वर्णन अपुनरुक्तिपूर्ण, तीव्रगतिमय, सक्षिप्त, चित्रमय, स्वाभाविक, साकेतिक, व्यजनापूर्ण, सरल तथा मर्यादित। पद्मपुराण के वर्णन व्यास-शैली के हैं और मानस के समास-शैली के। इनका

१२७३ देखिए, मानस, लङ्काकाण्ड, ४९-५४

कारण स्पष्ट है। तुलसी का ध्येय समस्त चराचर के उपास्य श्रीराम का चरित्र कथन करना था, अन्य वस्तुओ के सागोपाग विवरण देने का उन्हे अवकाश नही था। इसीलिए श्रीराम से सम्बद्ध वर्णन कुछ विस्तृत है, शेष अति सक्षिप्त।

साराश यह है कि रविषेण और तुलसीदास दोनो ही ने अपने ग्रन्थो को भाव-सम्पदा और कला-कौशल से सजाने की पूरी चेष्टा की है। दोनो कवि भावपक्ष और कलापक्ष से अपने ग्रन्थ को समृद्ध बनाने के लिए जागरूक है। पद्मपुराण के अन्तिम पर्व मे रविषेण ने लिखा है कि इस ग्रन्थ मे व्यजनात, स्वरात, अर्थ के वाचक, शब्द, लक्षण, अलकार, वाच्य, प्रमाण, छन्द, आगम आदि सब कुछ यहाँ विद्यमान है।[१२७४] तुलसीदास ने भी मानस-रूपक की रचना करते समय काव्य से सम्बद्ध समस्त सामग्री के प्रयोग के प्रति अपनी जागरूकता प्रकट करते हुए लिखा है कि सुदर चार सवाद इस मानस के चार घाट है, सप्त प्रबध इसके सुदर सोपान है, रघुपति की महिमा का वर्णन इस मानस मे रहनेवाला अगाध जल है; राम और सीता के यश रूपी सुधोपम जल मे उपमारूपी सुदर लहरो का विलास होता है; चारु चौपाई उस जल मे रहनेवाली पुटकिनी हैं और सुदर युक्तियाँ मणि और सीप के समान सुशोभित है, छन्द-सोरठा और सुन्दर दोहे इस मानस मे खिलने वाले बहुरगी कमल है जिनके मकरन्द और सुवास के रूप मे अनुपम अर्थ एव सुन्दर भाषा से युक्त सुन्दर भाव विद्यमान है, सुकृतो के पुज मजुल भ्रमरमाला के रूप मे तथा ज्ञान और विराग के विचार हसो के रूप मे विद्यमान हैं, ध्वनि, अवरेव, कवित्व, गुण और जाति इस मानस मे विचरण करने वाली मछलियाँ है। पुरुषार्थचतुष्टय, ज्ञान-विज्ञान के विचार, नवरस, जप, तप, योग और विराग इस मानस मे विचरण करने वाले जलचर हैं। पुण्यात्माओ एव सज्जनो के नाम के गुणगान विचित्र जल-विहगो के समान हैं। इसमे उल्लिखित सतो की सभा चारो दिशाओ मे रहनेवाला अमराई के समान है और श्रद्धा वसत ऋतु के समान छायी हुई हैं। विविध विधानो से भक्ति का निरूपण, क्षमा, दया, और दम लता-वितान के समान है। शम, यम और नियम फूल के समान है एव ज्ञान फल के समान है, जिनमे हरि के चरणो मे प्रेम का रस समाया हुआ है। कथा के अनेक अपर प्रसग बहुवर्णक शुक और पिक आदि विहगो के समान है।[१२७५]

इन दोनो उल्लेखो से रविषेण और तुलसीदास के काव्य-वैभव के प्रति दत्ता-वधान होने का स्पष्ट साक्ष्य मिलता है। राम के चरित्र का वर्णन करने के माध्यम से दोनो ही कवियो ने अपने काव्यप्रणयनपटुत्व का अपने देश और काल के

१२७४. पद्म०, १२३।१८५-१८६
१२७५. मानस, बालकाण्ड, ३६-३७

अनुसार, सफल परिचय दिया है। इतना तो कहना ही पडेगा कि पद्मपुराण का कलापक्ष अधिक चमत्कारपूर्ण है क्योंकि रविषेण ने अपने समय मे उपलब्ध प्रौढ काव्य-सरणि का यथेष्ट अनुसरण किया है एव मानस का कलापक्ष स्वाभाविक और सरल क्योकि इस 'भाषा-निबन्ध' का प्रणयन विद्वानो के साथ जन-साधारण के लिए भी किया गया है, भले ही शब्दो से 'स्वान्त सुख' की बात कही गयी हो।

'पद्मपुराण' और 'मानस' दोनो ग्रन्थो का धार्मिक दृष्टि से भी महत्त्व है। पद्मपुराण के प्रतिपाद्य धर्म की चर्चा पीछे की जा चुकी है। यहाँ मानस के प्रतिपाद्य धर्म की सक्षिप्त चर्चा करके दोनो ग्रथो की धार्मिक दृष्टि से तुलना की जा रही है।

'मानस' का मुख्य प्रतिपाद्य भक्ति है। 'धर्म और भक्ति का अविच्छिन्न सम्बन्ध है। गोस्वामीजी इन दोनो मे से प्रत्येक को दूसरे का पूरक मानते है। उनकी दृष्टि मे भक्ति और धर्म मे अगागिभाव सम्बन्ध है। किसी अग के रुग्ण होने पर जैसे समस्त शरीर की विकलता को कोई नही रोक सकता, उसी प्रकार धर्म के किसी आडम्बर या अनाचार से ग्रस्त हो जाने पर भक्ति का विकृत हो जाना भी अनिवार्य है। भक्ति का विमल और यथार्थ प्रकाश प्रस्फुटित हो और उससे विश्व का अभ्युदय होता रहे, इसके लिए नितान्त आवश्यक है कि साधक की उपासना किसी प्रकार के अनाचार से पकिल और रहस्य से आवृत न हो— यह बात गोस्वामी जी भली भाँति जानते थे, इसी से इन्होने इनको रामोपासना मे रचमात्र भी स्थान नही दिया, प्रत्युत इन्हे मिटाने का प्रयास किया है।[१२७६]

'मानस के अनुसार धर्म के क्षेत्र मे आडम्बर घातक है। उसके अनुसार मन की निर्मलता के बिना भगवत्प्राप्ति कदापि नही हो सकती।[१२७७] मानस मे नैतिक भाविक और बौद्धिक आधार पर धर्म की स्थापना की गयी है। नैतिक का सम्बन्ध हमारे उन सभी कार्यो से है जो परस्पर व्यवहार के लिए आवश्यक है। भाविक तत्त्व की प्रधानता हमारे उन सभी कृत्यो मे रहती है जिनमे हमारी अन्तर्वृत्तियो को भी खुल-खेलने का अवसर मिलता है। इष्टानिष्ट परिणाम की ओर दृष्टि रखकर साधक-बाधक तर्क-वितर्कों का मन्थन करके जो कार्य किया जाता है वह बौद्धिक कोटि मे आता है।[१२७८] तुलसी ने जिस व्यापक धर्म का निर्देश किया, वह उनका कोई व्यक्तिगत नया धर्म न था। वह प्राचीन भारत का सनातन

१२७६ डा० राजपति दीक्षित तुलसीदास और उनका युग, पृ० ७६

१२७७ 'मानस' ५।४३।५

१२७८ दे० डा० राजपति दीक्षित तुलसीदास और उनका युग, पृ० ८३-८४।

धर्म ही है जो मनुष्य मात्र के लिए सामान्य धर्म के नाम से अनादिकाल से चला आ रहा है।[१२७९] नाना-पुराण-निगमागम के अध्ययन से उनके सारभूत धर्म को ही मानस मे तुलसी ने प्रस्तुत किया है।

'मानस' मे धर्मपालको के प्रति अपार आस्था प्रदर्शित की गयी है।[१२८०] उसके अनुसार, धर्मशील के पीछे समस्त सुख सम्पति उसी प्रकार दौड़कर आती है जिस प्रकार समुद्र के पीछे सरिताएँ।[१२८१] परम पुरुषार्थ का प्रथम सोपान भी धर्म ही है[१२८२]। धर्म की महिमा के विषय मे 'मानस' वैसे ही विचार देता है जैसे कि प्राचीन ब्राह्मण-धर्मग्रन्थ।[१२८३]

'मानस' मे धर्म-भावना का स्वरूप उसी प्रकार निर्दिष्ट है जैसा कि मनु-स्मृति, रामायण, महाभारत, भागवत आदि मे कथित है।[१२८४] धर्म के अवयव ये है—शौर्य, धैर्य, सत्य, शील, विवेक, दम, परहित, क्षमा कृपा, समता, ईशभक्ति, विरति, सन्तोष, दान, बुद्धि, श्रेष्ठज्ञान, अचल पवित्र मन, सम, यम, नियम, विप्र-गुरु-पूजन आदि।[१२८५] मनुष्यमात्र इन गुणो को ग्रहण करने का अधिकारी है। इस व्यापक धर्म के विरोधी दुर्गुण ही अधर्म है और निन्दनीय है। धर्म के सभी अवयव प्रशसा के पात्र है।

'मानस' के अनुसार—सत्य सभी सुकृतो का मूल है और उसके समान दूसरा धर्म नही है।[१२८६] शील बड़े भाग्य से प्राप्त होता है।[१२८७] मनोनिग्रह परम आवश्यक धर्मांग है। बिना मन को वश मे किये मनुष्य परम लक्ष्य को कदापि नही प्राप्त कर सकता। ईश्वर को मन की शुद्धता बडी प्यारी होती है।[१२८८]

असत्य के समान कोई पातक का पुज नही है।[१२८९] ऐसे पातक और अधर्म से प्राणि मात्र को बचना चाहिए। पर-नारी को चौथ के चाँद के समान छोड़ देना चाहिए, उसे नही देखना चाहिए।[१२९०]

१२७९ वही, पृ० ८७
१२८० मानस, २।९४।३, ४
१२८१. वही, १।२९३।२, ३
१२८२. वही, ३।१५।१
१२८३ दे० मनुस्मृति, ४।२४१
१२८४ दे० महाभारत, शान्ति ० २७०।५५, राज० १०९।१०, १२
मनुस्मृति, ६।२२, १०।६३ याज्ञवल्क्यस्मृति, १।१२२
महाभारत, शान्ति०, ६०।७ भागवत, ७।११।१२
१२८५. मानस, ६।७९।५-११
१२८६. वही, ७।८९।६
१२८७. वही, २।२७।५
१२८८. वही, २।२७।६, २।९४।५
१२८९. वही, १।२३०।५,
१२९०. वही, ५।३७।५, ६

'मानस' के अनुसार हिंसा पाप है।[१२९१] आसुरी प्रकृति वाले व्यक्ति ही सर्वभूत-द्रोहरत होते है। परद्रोह परम गर्हित पाप है।[१२९२] परोपकार परम धर्म है।[१२९३] परहित-व्रत-परायण को ससार मे कुछ भी दुर्लभ नही है।[१२९४] परोपकार धर्म है और परपीडन अधमता—"परहित सरिस धरम नहिं भाई। परपीड़ा-सम नहिं अधमाई॥ निरनय सकल पुरान वेद कर। कहेउँ तात जानहिं कोविद नर॥"[१२९५] दया का स्थान भी धर्म मे अत्युच्च एव उदात्त है।[१२९६]

'मानस' के अनुसार, वैष्णवधर्म का अहिंसावाद सर्वोच्च माना गया है। धर्म के कठिन विधि-विधानो की अपेक्षा राम-नाम जप सरलतम है।

मानस के अनुसार—भक्ति अति सुखदायिनी है। रामभक्त होने के लिए शिव की भक्ति भी अनिवार्य है।[१२९७]

सनातन धर्म की वर्णाश्रम-व्यवस्था एव उसमे प्रतिष्ठित नियम, व्रत, उपवास, स्वाध्याय, यज्ञ, पूजा-पाठ, स्नान-ध्यान, तिलक-मुद्रा-प्रभृति धर्म के वाह्य स्वरूपो के प्रति भी 'मानस' मे आस्था प्रकट की गयी है और भूलकर भी इनकी निन्दा नही की गयी है। सक्षेप मे, 'मानस' मे उस धर्म का प्रतिपादन किया गया है जो भक्ति-प्रधान लोक-धर्म कहा जा सकता है।

'पद्मपुराण' और 'मानस' का धार्मिक दृष्टि से अध्ययन करने पर ज्ञात होता है कि दोनो मे ही मानव कल्याण के लिए धर्म का विधान किया गया है पद्मपुराण सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र-युक्त जैन-धर्म का एडवोकेट है और मानस वर्णाश्रम-व्यवस्था का। विचार करने पर दोनो ही धर्मिक दृष्टियाँ कल्याणकारी हैं और अपने युग की आवश्यक उपज है। किन्तु ये धर्मदृष्टियाँ एक दूसरे से भिन्न मानी मानी जाती रही हैं। यही कारण है कि रविषेण और तुलसी-दोनो की धार्मिक विचारधाराएँ भिन्न हे। जहाँ 'पद्मपुराण' यज्ञादि का खण्डन करता है वहाँ 'मानस' उनका पोषण। जहाँ 'पद्मपुराण' का धर्म व्यावहारिक दृष्टि से अधिक कठिन है वहाँ 'मानस' का धर्म लोक-धर्म होने के कारण अधिक सुगम और ग्राह्य। 'पद्मपुराण' के धर्म को समझने के लिए दार्शनिक पृष्ठभूमि अपेक्षित है, 'मानस' के धर्म के अनुसरण के लिए सरल हृदय। 'पद्मपुराण' मे ब्राह्मण धर्म की मिथ्यादर्शन के रूप में निन्दा करके अपने धर्म की प्रतिष्ठा की गयी है, 'मानस'

१२९१ वही, १।१८३, १।१८०-१८४, १।१८०।१

१२९२ वही, १।१८३।५

१२९३ वही, १।८३।१, २

१२९४ वही, ३।३०।९

१२९५ वही, ७।४०।१, २

१२९६ वही, ७।१११।१०

१२९७ वही, १।१०३।५

मे धर्म की प्रतिष्ठा करके अधर्म की निन्दा की गयी है। 'पद्मपुराण' का आदर्श धर्म है—कट्टर, कठोर जैनधर्म और 'मानस' का लोक-धर्म, जिसकी समाज मे रहकर सरलता से साधना की जा सकती है। 'पद्मपुराण' का धर्म प्रचार की भावना से युक्त है और 'मानस' का धर्म सुधार का भावना से।

साहित्य और संस्कृति एक दूसरे के पूरक और स्मारक होते है। अतीत के गर्भ मे विलान होने वाली मानव की जिजीविषा की सहचर क्रियाओं का पुनर्दर्शन साहित्य के माध्यम से अनागत तक मे होता रहता है और शब्द और अर्थ मे छिपी चिरन्तन मूल वृत्तियों की प्रायोगिक कक्षाएँ जीवन मे लगती रहती है। यही है साहित्य और संस्कृति का अन्योन्याश्रय-सम्बन्ध। 'पद्मपुराण' और ,मानस' सास्कृतिक दृष्टि से भी हमे कुछ देते है। 'पद्मपुराण' मे निविष्ट सांस्कृतिक सामग्री का परिचय पीछे दिया जा चुका है। यहाँ 'मानस' के साकृतिक सूचना-दान का उल्लेख करके दोनो ग्रथो के **सांस्कृतिक** पक्ष पर तुलनात्मक दृष्टि डाली जा रही है।

'रामचरितमानस' मे संस्कृति : 'रामचरितमानस मे उपनिबद्ध सस्कृति आदर्श हिन्दू-सस्कृति है। यहाँ सस्कृति का यथार्थ रूप अधिकत. प्रस्फुरित नही हो सका है। मर्यादावादी एव लोकसग्रहवादी होने के कारण तुलसी ने मानस मे राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक तथा अन्य क्षेत्रो मे मर्यादा का आदर्श रखा है, अत वहाँ तत्कालीन सस्कृति का यथार्थ दर्शन कठिन है। फिर भी व्यजना से उन्होने इसकी बहुत कुछ झलक दे दी है। डा० भगीरथ मिश्र के शब्दो मे 'गोस्वामी तुलसीदास का काव्य लिखने का वास्तविक उद्देश्य लोक-जीवन का यथार्थ चित्रण करना नही था, वरन् उसके आदर्श की ओर सकेत करना था। इसलिए राम के चरित्र का वर्णन करने मे प्रधान रूप से लोक-जीवन का यथार्थ चित्रण कही भी नही मिलता। साथ ही-साथ अपने काव्य सम्बन्धी आदर्श स्पष्ट करते हुए उन्होने प्राकृत जन के गुणगान न करने का भी सकल्प प्रकट कर दिया है। ऐसी दशा मे बहुत विस्तारपूर्वक पूर्ण व्यापक और यथार्थ तथा निरपेक्ष जन-जीवन के वर्णन की आशा हम कर भी नही सकते, किन्तु तुलसी का उद्देश्य अपनी काव्य-रचना मे जन-जीवन-सुलभ वस्तुओं को देना है। इसलिए गौणरूप मे प्रकारान्तर से लोक-जीवन की झलक हमे मिल जाती है। पर सस्कृति जीवन का आदर्श रूप प्रस्तुत करती है, अत. उसका चित्रण गोस्वामी जी के ग्रन्थों मे 'राम-चरितमानस' के माध्यम से बराबर हुआ है।[१२९८] भाव यह है कि पूर्वपक्ष के

१२९८ डा० भगीरथ मिश्र · तुलसी रसायन, पृ० १५८।

अन्तर्गत संस्कृति के यथार्थ चित्रण की झलक है और उत्तरपक्ष के अन्तर्गत आदर्श की। यहाँ हमे इस सास्कृतिक चित्रण पर विचार करना है।

तुलसीदास ने 'मानस' में राजनीतिक आदर्शों को हमारे सम्मुख रखा है। उनके अनुसार जिस राजा के राज्य मे प्रजा दुखारी हो वह राजा अवश्य ही नरक का अधिकारी है। इससे सिद्ध है कि तुलसी के समय राजा से प्रजा दुखी थी। **'नृप पाप परायन धर्म नही। कर दंड विडंब प्रजा नितही।।'**[१२९९]—से तत्कालीन राजाओ की अन्यायपरता ध्वनित होती है। 'रामराज्य' की कल्पना आदर्श राज्य की कल्पना है जहाँ राजा प्रजा का हितकारी होकर यह कहता है—

'जो कछु अनुचित भाषौं भाई। तौ मोहि बरनहु भय बिसराई।।'

युद्ध आदि के वर्णनो से कोई विशेष निष्कर्ष नही निकलता। पारम्परिक बाते ही युद्ध के प्रसगो मे आयी है।

समाज-व्यवस्था के विषय मे पर्याप्त प्रकाश पड़ता है। गोस्वामीजी ने वर्णाश्रम-व्यवस्था को आदर्श रूप मे रखा है जो प्राचीनकाल से वेदशास्त्रानुमोदित रही है।[१३००] वे ब्राह्मणो की बड़ी प्रशंसा करते है।[१३०१] किन्तु यह सब आदर्श ही है। गोस्वामीजी के समय समाज का स्तर बहुत नीचे गिरा प्रतीत होता है। वर्णाश्रम-व्यवस्था विलुप्त-सी लगती है—**'बरन धर्म नहिं आश्रम चारी। श्रुति बिरोध रत सब नर नारी।।'** मानस के उत्तरकाण्ड मे ब्राह्मण से लेकर शूद्र तक की अव्यवस्था का सकेत है—

सूद्र द्विजन्ह उपदेसहिं ग्याना। मेलि जनेऊ लेहिं कुदाना।।
सूद्र करहिं जप तप ब्रत दाना। बैठि बरासन कहहिं पुराना।।
बिप्र निरन्तर लोलुप कामी। निराचार सठ बृषली स्वामी।।

गोस्वामीजी ने ऐसे विशृंखल समाज को सुशृंखल बनाने के लिए समन्वय की भावना वाली आदर्श सस्कृति प्रस्तुत की।

'रामचरितमानस' मे वर्णित जातियो के तीन वर्ग किये जा सकते है—दिव्य जातियाँ (गन्धर्व, अप्सरा आदि), मनुष्य जातियाँ (ब्राह्मण, भाट, बदी, मागध, सूत आदि) तथा वन्य जातियाँ (निषाद, कोल, किरात आदि)। इन जातियो के

१२९९ 'मानस' ७।१००।६।

१३०० वर्णाश्रम-व्यवस्था की प्राचीनता के लिए देखिये—ऋग्वेद १०।९०।१२-१३, यजुर्वेद, ३१।११-१२, अथर्ववेद १९।६।६-७, गीता ४।१३, भागवत ३।५।३७। इनके अतिरिक्त 'मनुस्मृति' आदि ग्रन्थो मे तो वर्णाश्रम धर्म की विशद व्यवस्था है ही।

१३०१ देखिये 'मानस' ३।३३।१,२१, ७।४४।७-८, १०८।१३-१४, ४।१६।८, १।१६४।३६ आदि।

उल्लेख और वर्णन से उनकी सस्कृति का कुछ आभास मिलता है।[१३०२] मागध, वन्दी, और भाटो के विरुदावली-गान का उल्लेख है—

"बन्दी मागध सूतगन बिरुद बदहि मति धीर।
करहिं निछावर लोग सब हय गय धन मनि चीर।"।[१३०३]
"कतहुँ बिरिद बदी उच्चरही।"[१३०४]
"मागध सूत बिदुप बदी जन।"[१३०५]
'बन्दि मागधन्हि गुनगन गाए।"[१३०६]

वन्य जातियो मे उल्लेख तो बहुत सी जातियो का है जैसे कोल, किरात, भील, आदि परन्तु निषादो का चित्रण विशद रूप मे मिलता है। निषादराज गुह ने अपनी जाति नीच बताई है—"मै जनु नीच सहित परिवारा।" निषाद मछली पकडते तथा शिकार खेलते थे। मछली पकड़ने का सकेत इस बात से मिलता है कि भरत को भेंट देते समय निषाद मछलियाँ भी भेंट करता है—**"मीन-पीठ पाठीन पुराने। भरि-भरि थार कहारन्ह आने।।"** प्रतीत होता है कि निषादो का जीवन कठोर था। उसमे कोमल भावनाओ के लिए कोई स्थान नही था। कठोर जीवन के साथ ही वह जाति इतनी नाच समझी जाती थी कि लोग उसकी छाया से भी घृणा करते थे—'लोक वेद सब भाँतिहिं नीचा। जासु छाँह छुइ लेइय सीचा।।" (मानस २।१६३।२)

गोस्वामी जी ने आदर्श परिवार की कल्पना की है। उसमें उन्होने दाम्पत्य-प्रेम, भ्रातृ-स्नेह, पिता-पुत्र का आदर्श सम्बन्ध, सास-बहू और ससुर का प्रेम, गुरु-भक्ति आदि सभी कुछ दिखाया है। इस आदर्श की व्यजना यही है कि इस समय ऐसा प्राय नही था। यदि यह सब होता तो वे ऐसा आदर्श उपस्थित क्यो करते ?

'मानस' के उत्तरकाण्ड मे तत्कालीन आर्थिक दशा के सकेत भी मिलते है। 'कलि वारहि बार अकाल परे' से तत्कालीन दयनीय स्थिति की ध्वनि निकलती है। इसे सुधारने के लिए भा तुलसी आदर्श रामराज्य की कल्पना करते है जहाँ—

**"मणि दीप राजहिं भवन भ्राजहिं देहरी विद्रुम रची।
मनि स्वयं भीति बिरंचि बिरची कनक मनि मरकत खची।।"**[१३०७] **आदि**

१३०२ चन्द्रभान रामचरितमानस मे लोक वार्ता।
१३०३ 'मानस' १।२६२ १३०४ वही, १।२९६-२९७ के बीच।
१३०५ वही, १।३०८-३०९ १३०६ वही, १।३५७-३५८ के बीच।
१३०७ मानस, उत्तर०, २६वें दोहे के बाद का छन्द।

धार्मिक जीवन के सकेत भी मानस के उत्तरकाण्ड मे मिलते है। धार्मिक आडम्वर और ढोग समाज मे अधिक फैल चुके प्रतीत होते है। धुने-जुलाहे धर्माचार्य वने लगे थे। 'मूँड मुँडाकर सन्यासी' होने वालो की भी कमी नही थी। तुलसी ने ऐसे धर्म को सुधारने के लिए लोकधर्म की स्थापना का।

सस्कृति का सर्वाधिक यथार्थ चित्रण 'मानस' मे हमे विविध सस्कारो के प्रसग मे मिलता है। रामजन्म-सस्कार के अवसर पर लोक-सस्कृति का यथार्थ चित्रण हुआ है—

"नांदीमुख सराध करि, जात करम सव कीन्ह।
हाटक धेनु वसन मनि नृप विप्रन्ह कहँ दीन्ह॥"[१३०८]

यहाँ 'जातकरम' करने से उन समस्त लौकिक कृत्यो की ओर निर्देश है जो 'जन्ति' के समय स्त्री-समाज की ओर से होते हैं। आगे चलकर कवि ने नगर-वासियो के समारोह का वर्णन किया है। 'मगलकलस' मगलसूचक माना जाता था—

'वृद-वृद मिलि चली लोगाई। सहज सिंगार किए उठि धाई॥
कनक-कलस मंगल भरि थारा। गावत पैठहिं भूप दुआरा॥
करि आरति निवछावर करहीं।'[१३०९]

नाम सस्कार भी जन्म-सस्कार की एक प्रमुख घटना है। वसिष्ठजी ने श्रीराम का नाम रखा है। आगे चूडाकरण आदि का उल्लेख है। दूसरा प्रधान संस्कार विवाह-सस्कार है। 'मानस' मे दो विवाह प्रमुख है—पहला शिव-पार्वती-विवाह और दूसरा राम-सीता-विवाह। शकर की वारात के नगर के निकट पहुँचने पर उसकी अगवानी की जाती है। वह प्रथा आज भी है। साथ ही 'परिछन' लेने की प्रथा भी है। पार्वती की माता 'परिछन' करने चलती है :—

'मैनाँ सुभ आरती सँवारी। संग सुमंगल गावहिं नारी॥
कचन थार सोह वर पानी। परिछन चली हरहि हरषानी॥'[१३१०]

मगलगान के अतिरिक्त 'जेवनार' के समय 'गारी' का भी उल्लेख मिलता है। इन गारियो मे नाम ले-लेकर परिहास किया जाता था—

'नारि वृन्द सुर जेवत जानी। लगी देन गारी मृदु वानी॥'[१३११]

राम-सीता-विवाह मे भी 'गारी' देने का उल्लेख है—

१३०८ मानस, १।१९३।
१३०९ मानस, १।१९३।२-३।
१३१० वही, १।९५।१-२।
१३११ वही, १।९८।४।

'जेवँत देहिं मधुर धुनि गारी। लै लै नाम पुरुष अरु नारी।।
समय सुहावनि गारि विराजा। हँसत राउ सुनि सहित समाजा।।'[१३१२]

आज भी पूर्वी प्रान्तो मे यह 'गारी' देना प्रचलित है। विवाह के मण्डप के निर्माण मे हरे बांसो के उपयोग का उल्लेख हुआ है—

'बेनु हरित मनिमय सब कीन्हे। सरल सपरब परहिं नहिं चीन्हे।।'[१३१३]

सीताजी के द्वारा देवताओ की पूजा कराई गयी है और स्त्रियो के द्वारा विविध मनौतियो का उल्लेख किया गया है। आज भी ये प्रथाएँ विद्यमान है—

'आचारु करि गुरु गौरि गनपति मुदित विप्र पुजावहिं।

० ० ०

पुर नारि सकल पसारि अंचल विधिहि बचन सुनावहीं।
ब्याहिअहुँ चारिउ भाइ इहिं पुर हम सुमंगल गावहीं।।'[१३१४]

भाँवर पडने के बाद माँग मे सेन्दुर देने की प्रथा का भी सकेत है—

'राम सीय सिर सेंदुर देहीं। सोभा कहि न जाति विधि केहीं।।'[१३१५]

कोहवर की प्रथा का भी उल्लेख आया है—

'कोहवरहिं आने कुँअरि-कुँअरि सुआसिसिन्ह सुख पाइ कै।
अति प्रीति लौकिक रीति लागी करन मंगल गाइ कै।।
लहकौरि गौरि सिखाव रामहिं सीय-सन सारद कहैं।
रनिवासु हास-विलास रस बस जन्म को फलु सब लहैं।।'[१३१६]

इसी प्रकार 'जेवनार' का और 'पच कवल' प्रथा का वर्णन भी आया है—

'पंच कवल करि जेवन लागे।'[१३१७]

इस प्रकार के वैवाहिक चित्रण से लोक-सस्कृति का पर्याप्त ज्ञान होता है।

इन सस्कारो के अतिरिक्त लोक-विश्वासो तथा शकुन-अपशकुनो का वर्णन भी आया है।—दाहिनी ओर कौआ बैठना, नकुल का दीखना आदि शुभ शकुन माने गये है, यथा—

'चारा चाषु बाम दिसि लेई। मनहुँ सकल मंगल कहि देई।।
दाहिन काग सुखेत सुहावा। नकुल दरसु सब काहूँ पावा।।
सानुकूल बह त्रिविध बयारी। सघट सबाल आव बर नारी।।
लोवा फिरि फिरि दरसु दिखावा। सुरभी सनमुख सिसुहि पियावा।।
मृगमाला फिरि दाहिनि आई। मंगल गन जनु दीन्हि देखाई।।

१३१२. वही, १।३६८।३-४
१३१३ वही, १।१८७।१
१३१४ वही, १।३२२।छन्द १, १।३२६।छन्द १
१३१५ वही, १।३२४।४
१३१६ वही, १।३२६।छन्द २
१३१७ वही, १।३२८।१

छेमकरी कह छेम बिसेषी। स्यामा वाम सुतरु पर देखी॥
सनमुख आयउ दधि अरु मीना। कर पुस्तक दुइ बिप्र प्रवीना॥[1318]

अपशकुनो का वर्णन रावण के रणप्रयाण के समय हुआ है। अशुभ समझे जाने वाले शकुनो मे गिद्ध, उल्लू, कर्कशवाक् कौआ आदि पक्षी आते है। रिक्त घट का आना भी अपशकुन है—

'चलत होहिं अति असुभ भयंकर। बैठहिं गीध उड़ाइ सिरन्ह पर॥'[1319]

इन अपशकुनो की विश्वव्यापी स्थिति रावण-वध के समय दिखाई गयी है। आकाश और पृथ्वी के अपशकुनो का वर्णन निम्नलिखित पक्तियो मे देखा जा सकता है—

'असुभ होन लागे तब नाना। रोवहिं खर सृकाल बहु स्वाना॥
बोलहिं खग जग आरति हेतू। प्रगट भए नभ जहँ तहँ केतू॥
दस दिसि दाह होन अति लागा। भयउ परबबिनु रबि उपरागा॥'[1320]

गीदडो और कुत्तो का रोना आदि देखकर मदोदरी का हृदय काँपने लगता है। इस सबसे तत्कालान विश्वासो की व्यजना होती है।

शरीर के अगो के फडकने से भी शुभ-अशुभ का आभास तुलसी के समय मे माना जाता था, जैसा कि आज भी है। स्त्री के दाहिने अग का फडकना अशुभ समझा गया है। मथरा के द्वारा भरी जाने पर कैकेयी अपने अशुभसूचक अग-स्फुरण की बात कहती है—'सुनु मन्थरा बात फुरि तोरी। दहिनि आँखि नित फरकत मोरी॥' (२।१९-३) पुरुषो के वामाग फडकने पर अशुभ की सूचना मिलने की बात कही गयी है। अभिषेक की चर्चा चलने पर राम के मगल-अग फडकने लगते हैं जिनको वे भरतागमन के सूचक मानते है—

'सुनत राम अभिषेक सुहावा। बाज गहागह अवध बधावा॥
राम सीय तन सगुन जनाए। फरकहिं मंगल अंग सुहाए॥'[1321]

स्वप्नो के शुभाशुभफलदायकत्व की भी चर्चा हुई है। कैकेयी अपने कुसपनो की बात मथरा से कहती है—'दिनप्रति देखउँ राति कुसपने। कहहुँ न तोहि मोहि बस अपने॥' लकिनी को भी अशुभ स्वप्न दीखा है—

'सपनें बानर लंका जारी। जातुधान सेना सब मारी॥
खर आरूढ़ नगन दस सीसा। मुंडित सिर खंडित भुज बीसा॥'[1322]

१३१८ वही, १।३०२-३०३ के बीच।
१३१९ वही, ६।५५
१३२० वही, ६।१०।१४
१३२१ वही, २।६।२
१३२२ वही, ५।१०।२

मानस की लोक-सस्कृति मे काने, कूबरे और खोरे कुटिल, कुचाली और अशुभ माने गये हे। कैकेयी मथरा से कहती है—

'काने खोरे कूबरे कुटिल कुचाली जानि।
तिय विसेषि पुनि चेरि कहि भरत मातु मुसकान ।।'[१३२३]

छीक-सम्बन्धी-विश्वास का भी मानस में उल्लेख हुआ है। निषादराज जिस समय राम-मिलन के लिए चित्रकूट जाते हुए भरत से मोर्चा लेने के लिए सन्नद्ध होता है, उस समय छीक होती है—

'एतना कहत छींक भई बाएँ। कहेउ सगुनिअन्हि खेत सुहाए।।
बूढ एकु कह सगुन बिचारी। भरतहिं मिलिह न होइहि हारी।।[१३२४]

'शिष्टाचार और कलात्मक सजधज का जो वर्णन तुलसा ने किया है उसमें भी उनके यथार्थवादी और आदर्शात्मक दृष्टिकोण का समन्वय है। शिष्टाचार में व्यक्ति के परिवार के विभिन्न जातियो से व्यवहार और अभिवादन के प्रसग है या व्यक्ति के समाज के विभिन्न व्यक्तियो के साथ के व्यवहार है। इसमे सामान्यतया गुरु, मित्र राजा, पुरोहित, सेवक, शत्रु आदि के वार्तालापो के प्रसग आते हैं। सुमन्त्र सचिव और राजा की बातचीत में तुलसी ने शिष्टाचार सम्बन्धी अभिवादन सूचक शब्द 'जय जीव' का प्रयोग किया है जैसे—

'देखि सचिव जयजीव कहि कीन्हेउ दण्ड प्रणाम।'[१३२५]

अथवा

'कहि जय जीव सीस तिन्ह नाए।'[१३२६]

यह 'जयजीव' एक विशिष्ट शब्द है। 'जय' तो अब भी प्रचलित है, पर 'जय-जीव' नही।'[१३२७]

माताओ के द्वारा बच्चो के प्रयाण या विलम्ब के बाद आगमन पर उनके शिर सूँघने का उल्लेख भी तुलसी ने किया है।

'कलात्मक सज-धज के अनेक अवसर तुलसी द्वारा वर्णित रामचरित के भीतर आये है और सर्वत्र तुलसी की कलादृष्टि की बारीकी को स्पष्ट करते है। उन्होंने सकेत रूप से वस्तु, चित्र, नृत्य, सगीत, काव्य आदि कलाओं का उल्लेख किया है। परन्तु विशेष रूप से मोहक विवरण विवाह आदि सस्कारो मे की गयी कलात्मक सजधज के है। तुलसी की कलासम्बन्धी सूझ का पूर्ण स्पष्टीकरण 'राम-

---

१३२३ वही, २।१४
१३२४ वही, २।१९१-२
१३२५ वही, २।१४८
११२६ वही, २।४।१
१३२७ डा० भगीरथ मिश्र तुलसी रसायन, पृ० १६३-६४।

चरितमानस' मे वर्णित जनकपुरी-सजावट के प्रसंग मे हो जाता है।'[१३२८]
यथा—

'बिधिहि बंदि तिन कीन्ह अरंभा। बिरचे कनक कदलि कर खंभा॥
हरित मनिन्ह के पत्र फल, पद्मराग के फूल।
रचना देखि बिचित्र अति, मन बिरंचि के भूल॥
बेनु हरित मनिमय सब कीन्हे। सरल सपरव परहिं नहि चीन्हें॥
कनक कलित अहिबेलि बनाई। लखि नहिं परइ सपरन सुनाई॥
तेहि के रचि पचि बंध बनाए। बिच बिच मुकता दाम सुहाए॥
मानिक मरकत कुलिस पिरोजा ···· ·· · · · · · · आदि॥'[१३२९]

शिव-पार्वती, वनदेवी-वनदेव, कुलदेवता आदि लोक देवताओ का भी तुलसी ने मानस मे उल्लेख किया है। गिरिजा की सीता ने पूजा की है।[१३३०] गणेश की भी पूजा हुई है—'आचारु करि गुर गौरि गनपति मुदित विप्र पुजावहीं।' कौशल्या ने वनदेवो की मनौती की है—'पितु बनदेव मातु वनदेवी।'[१३३१] सीता भी वनदेवो मे विश्वास रखती है—'बनदेवी बनदेव उदारा।'[१३३२] पितरो की पूजा का भी सकेत है—'देव पितर पूजे विधि नीकी।'[१३३३]

'मानस मे 'भौगोलिक नाम ५० से अधिक नही है। कुछ नाम बार-बार आते है। अवध या उसके पर्यायवाची अवधपुर, अवधपुरी, अयोध्या, कोशल, कोसला, कौशलपुर, कौशलपुरी, रामपुर, रामपुरी या दशरथपुर—ये नाम सौ से अधिक बार आये हैं। अकेले अयोध्याकाण्ड में अवध का नाम ५४ बार आया है। सुरसरी और उसके पर्यायवाची सुरसरिता देवसरि, देव-धुनी, विबुध-नदी और गग या गगा का नाम ५० बार से अधिक मिलता है। ३५ बार लका, २६ बार हिमगिरि, २३ बार प्रयाग, १८ बार चित्रकूट, १६ बार सरयू, ११ बार यमुना, १० बार कैलाश, ८ बार मिथिला, ७ बार काशी और त्रिवेणी, ६ बार दण्डक और पचवटी, ५ बार शृगवेरपुर या सिंगरौर, ४ बार मन्दाकिनी, विन्ध्याचल और गोदावरी, ३ बार तमसा, गोमती, प्रवर्षणगिरि, त्रिकूट गिरि, अशोकवन और २ बार से कम कर्मनागा, मेकलसुता, सई, नीलगिरि, सेतुबन्ध और सुबेल के नाम नही आये। प्रसगानुसार नन्दि-ग्राम, बदरी-वन, नैमिष, केकयदेश, मग, मरु-देश, मालव, उज्जैन, सोननद, मानस, पम्पा-सरोवर, ऋष्यमूक, रामेश्वर आदि

१३२८ डा० भगीरथ मिश्र तुलसी रसायन, पृष्ठ १६४।
१३२९. मानस, २।२८७।१-२
१३३० वही, १।२२७।१-३
१३३१. वही, २।५५-५६
१३३२. वही, २।६५।१
१३३३. वही, १।३५०।१

का नाम भी कम से कम एक बार तो आ ही गया है। कहीं-कहीं पौराणिक भूगोल के नाम भी आ गये हैं, सुमेरु, सरस्वती, सप्तद्वीप, भोगवती, अमरावती, मंदर, मैनाक, आदि। कई स्थलो मे राजाओ आदि के नाम भौगोलिक नामों पर से बतलाए गये है। जैसे—अवधेश, अवधपति, कौशलेश, कौशलाधीश। 'लंकाकाण्ड' मे तो कौशलाधीश की भरमार है। इसी प्रकार जनक के नाम मिथिलेश, तिरहुतिराउ, विदेह और उनकी लडकी का नाम मैथिली, वैदेही आदि से कई स्थलों मे सूचित किया गया है। रावण के लिए लकापति, लकेश आदि का प्रयोग किया गया है।'[१३३४]

'पद्मपुराण' और 'मानस' का सांस्कृतिक दृष्टि से अध्ययन करने के उपरान्त यह निष्कर्ष निकलता है कि जहाँ 'पद्मपुराण' भारत के सुख-शान्ति-वैभव-आदि से समन्वित सस्कृति का यथार्थ परिचय देता है वहाँ 'मानस' आदर्श संस्कृति का रूप प्रस्तुत करता है। पहले मे यदि 'क्या था' पर बल दिया गया है तो दूसरे मे 'क्या होना चाहिए' पर। इसका यह आशय नही कि मानस में यथार्थ सस्कृति का रूप है ही नही। उसमे लोक सस्कृति का चित्रण पर्याप्त मात्रा में है परन्तु राजनीतिक रहन-सहन, स्थापत्यकला, व्यापार-व्यवस्था आदि का यथार्थ चित्रण 'पद्मपुराण' के सदृश नही है। जो कुछ भी इसका सकेत 'मानस मे मिलता है वह सुने गये के आधार पर ही है यथा—युद्धवर्णन आदि। इसलिए यह करने मे कोई कोई सकोच नही करना चाहिए कि तत्कालीन भारतीय संस्कृति का अध्ययन करने के लिए जितना महत्त्व 'पद्मपुराण' का है उतना 'मानस' का नही।

'पद्मपुराण' का 'रामचरितमानस' पर प्रभाव

'रामचरितमानस' पर 'पद्मपुराण' का प्रभाव अभी तक शब्दप्रमाण के आधार पर तो प्रतिपादित किया ही नही गया है, प्रत्यक्ष और अनुमान भी अभी तक मौन से ही हैं। हम प्रत्यक्ष और अनुमान के सहारे इस समस्या पर विचार करेंगे।

मानस के प्रारम्भ मे आया 'नानापुराणनिगमागमसम्मतं यद्रामायणे निगदितं क्वचिदन्यतोऽपि'—श्लोक ही एक ऐसा स्रोत है जिसके आधार पर तुलसी के रामचरितमानस के उपजीव्य ग्रन्थो का अनुमान किया जा सकता है। 'नानापुराण' और 'क्वचिदन्यतोऽपि'—शब्द (ही) कथचित् 'पद्मपुराण' के मानस पर प्रभाव की वकालत कर सकते है क्योंकि 'पद्मपुराण' 'पुराण' संज्ञा

१३३४ 'तुलसी और उनका काव्य' पृ० १६९-१७० पर उद्धृत पुरातत्त्वज्ञ स्व० हीरालाल जी का एक लेख जो 'माधुरी' स० १९९० श्रावण मे छपा था।

वाला भी है और यदि 'पंचलक्षण पुराण' भेद मे पद्मपुराण का अन्तर्भाव न हो सकता हो तो फिर उपर्युक्त सूची मे 'अन्यतोऽपि' के अन्तर्गत यह आ सकता है।

केवल इन्ही दो शब्दो के आधार पर यह अनुमान किया जा सकता है कि सम्भवतः तुलसी ने 'पद्मपुराण' को देखा हो।

दूसरी सरणि है प्रत्यक्ष दर्शन की। रविषेण और तुलसी के ग्रथों में अनेक समानधर्मा पद्य आये है यथा—

'आचाराणां विघातेन कुदृष्टीनां च सम्पदा।
धर्मं ग्लानिपरिप्राप्तमुच्छ्रयन्ते जिनोत्तमा॥'[1335] (रविषेण)

'जब जब होइ धरम कै हानी। बाढहिं असुर अधम अभिमानी।
० ० ०
तब तब प्रभु धरि विविध सरीरा। हरहिं कृपानिधि सज्जन पीरा॥'[1336]
(तुलसी)

अथवा—

'एवमुक्ता सती सीता पराचीनव्यवस्थिता।
अन्तरे तृणमाधाय जगादारुचिताक्षरम्॥[1337] (रविषेण)

'तृन धरि ओट कहति बैदेही। सुमिरि अवधपति परम सनेही॥'[1338] (तुलसी)

इन समान उक्तियो से पद्मपुराण के मानस पर प्रभाव की बात कही जा सकती है। यह कहा जा सकता है कि 'पद्मपुराण' के आधार पर 'मानस' मे ये उक्तियाँ लिखी गयी है। किन्तु वस्तुत. ऐसा कहना वस्तुस्थिति से मुँह मोडना है।

पहली बात तो यह है कि ये उक्तियाँ मानसकार ने रविषेण से नहीं ली है अपितु दोनो ने इन्हे किसी तीसरे ग्रंथ से ही सीधे लिया है। उदाहरणार्थ उपर्युक्त 'आचाराणां विघातेन · ·· ' एवं 'जब जब होइ धरम कै हानी · · ··' आदि गीता के इन श्लोको के रूपान्तर हैं :—

'यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदाऽऽत्मानं सृजाम्यहम्॥
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे॥'[1339]

इसी प्रकार 'अन्तरे तृणमाधाय और 'तृन धरि ओट' भी 'वाल्मीकिरामायण' अथवा 'अध्यात्मरामायण' का सीधा अनुकरण है:—

१३३५ पद्म०, ५।२०७
१३३६. मानस, १।१२०।३-४
१३३७ पद्म०, ४६।११
१३३८ मानस, ५।८।३
१३३९. गीता, ४।७-८

'उवाचाधोमुखी भूत्वा विधाय तृणमन्तरे' (अध्यात्म०)
'तृणमन्तरत: कृत्वा प्रत्युवाच शुचिस्मिता।
निवर्तय मनो मत्तः स्वजने प्रियतां मनः ॥'[१३४०] (वाल्मीकि)

ऐसे स्थलो के कारण पद्मपुराण का मानस पर प्रभाव सिद्ध करना साहस ही होगा।

दूसरी बात यह है कि जब हम किसी ग्रन्थ का किसी ग्रन्थ पर प्रभाव सिद्ध करते है तो हमारा आशय यह होता है कि उपजीव्य ग्रथ का मनोयोगपूर्वक अनुकरण किया गया है। पद्मपुराण और मानस के विषय मे ऐसा निर्णय कदापि नही दिया जा सकता। पद्मपुराण की कथावस्तु और पात्रों का पार्थक्य पीछे दिखाया जा चुका है। जब दोनो ग्रन्थो का 'वस्तु' तत्त्व ही पृथक् है तो फिर एक का दूसरे पर प्रभाव कैसा ? जैसा 'अध्यात्मरामायण' आदि ग्रन्थो का प्रभाव मानस पर है वैसा पद्मपुराण का तो त्रिकाल मे भी सिद्ध नही किया जा सकता।

इस प्रकार अनुमान और प्रत्यक्ष भी पद्मपुराण के मानस पर सीधे और यथावस्थित प्रभाव को सिद्ध नही कर पाते। हाँ, एक बात अवश्य कही जा सकती है कि सभवत. गोस्वामी जी ने पद्मपुराण को देखा होगा क्योकि जैन कवि बनारसी उनके परिचितो मे थे। यह भी कथचित् कहा जा सकता है कि उन्होने इसकी कुछ सूक्तियो को पढ़कर या सुनकर अपने मानस मे उनके भाव की सूक्तियाँ रखी होगी किन्तु यह पद्मपुराण का मानस पर प्रभाव नही, अपितु गोस्वामी जी की मधुकरी वृत्ति का निदर्शन है। प्रभाव तो तब माना जाता जब वे मानस मे पद्मपुराण के कथानक के किसी अश को निविष्ट करते। उन्होने लक्ष्मण-शक्ति पर अयोध्या की रणसज्जा तक का सकेत नही किया। यदि वे पद्मपुराण को आद्योपान्त ध्यान से पढते तो कम-से-कम कुछ प्रसगो को तो अवश्य वे मानस मे स्थान देते। अयोध्या की रणसज्जा का प्रसंग तो उनके कथानक को और भी चारु बना देता और इसमे कोई सैद्धातिक विरोध भी नही आता था। अत: पद्मपुराण के मानस पर यथावस्थित प्रभाव की चर्चा खपुष्पत्रोटन ही है। जो उक्तियाँ इन दोनो ग्रन्थो मे समान भावो वाली मिलती है, वे प्राय या तो 'घुणाक्षरन्यायसिद्ध' मानी जानी चाहिएँ अथवा उनका स्रोत कोई तीसरा ही ग्रन्थ मानना चाहिए यथा—वाल्मीकिरामायण, गीता, पचतन्त्र आदि। यहाँ हम कुछ ऐसे तुलनात्मक उद्धरण प्रस्तुत कर रहे है—

१. **रविषेण**—'सत्कथाश्रवणौ यौ च श्रवणौ तौ मतौ मम।
अन्यौ विदूषकस्येव श्रवणाकारधारिणौ ॥

१३४० वाल्मीकिरामायण ५।२१।३

सच्चेष्टावर्णना वर्णा घूर्णन्ते यत्र मूर्धनि ।
अथ मूर्द्धाऽन्यमूर्द्धा तु नालिकेरकरकवत् ।।
सत्कीर्तनसुधास्वादसक्त च रसन स्मृतम् ।
अन्यच्च दुर्वचोधार कृपाणदुहितुः फलम् ।।
श्रेष्ठावोष्ठौ च तावेव यौ सुकीर्तनवर्तिनौ ।
न शम्बूकास्यसयुक्तजलौकापृष्ठसन्निभौ ।।
दन्तास्त एव ये शान्तकथासगमरजिता. ।
शेषा सश्लेष्मनिर्वाणद्वारबन्धाय केवलम् ।।
मुख श्रेय परिप्राप्तेर्मुख मुख्यकथारतम् ।
अन्यत्तु मलसम्पूर्णं दन्तकीटाकुल विलम् ।।
वदिता योऽथवा श्रोता श्रेयसा वचसा नर ।
पुमान् स एव शेषस्तु शिल्पिकल्पितकायवत् ।।''[३४१]

तुलसी—'जिन हरि कथा सुनहि नहि काना ।
स्रवन रध्र अहि भवन समाना ।।
० ० ०
जो नहि करइँ राम गुनगाना ।
जीह सो दादुर जीह समाना ।।'[१३४४]

२ रविषेण—'ससारे पर्यटन्नेप वहुयोनिसमाकुले ।
मनुष्यभावमायाति चिरेणात्यन्तदु खत ।।'[१३४३]

तुलसी—'वडे भाग मानस तन पावा ।
सुर दुर्लभ सव ग्रथन्हि गावा ।।
साधन धाम मोच्छ कर द्वारा ।
पाइ न जेहिं परलोक सँवारा ।।'[१३४४]

३ रविषेण—'प्रिये त्व तिष्ठ चात्रैव गच्छाम्यह पुरान्तरम् ।
ततो जगाद साध्वी सा यत्र त्व तत्र चाप्यहम् ।।''[३८]

१३४१ पद्म०, १।२८-३४ १३४२ मानस, १।११२।२,६
ऐसे भाव भागवत मे भी व्यक्त हुए है, यथा—
'विले वतोरुक्रमविक्रमान् ये न शृण्वत कर्णपुटे नरस्य ।
जिह्वा मती दार्दुरिकेव सूत न चोपगायत्युरुगायगाथा ।।' (श्रीमद्भागवत, २।३।२०)
'श्वविड्वराहोष्ट्रखरै' सस्तुत पुरुष पशु ।
न यत्कर्णपथोपेतो जातु नाम गदाग्रज ।।' (वही, २।३।१९)
१३४३ पद्म०, २।१६८ १३४४ मानस, ७।४२।४
१३४५ पद्म०, ३१।१८५

तुलसी–'आपन मोर नीक जौं चहहू। बचन हमार मान गृह रहहू ॥

० ० ०

प्राननाथ करुनायतन सुन्दर सुखद सुजान।
तुम बिनु रघुकुल कुमुद बिधु सुरपुर नरक समान ॥[१३४६]
प्राननाथ तुम बिनु जग माहीं।
मो कहुँ सुखद कतहुँ कछु नाहीं ॥[१३४७]

४. रविषेण–'वितत्य सकलं लोकं शशांककरनिर्मला।
कीर्तिर्व्यवस्थिता माभूत् सैव सति मलीमसा ॥'[१३४८]

तुलसी–'रिसि पुलस्ति जसु बिमल मयंका।
तेहि ससि महुँ जनि होहु कलंका ॥'[१३४९]

५. रविषेण–रन्ध्रं प्राप्य वने भीमे हा केनास्मि दुरात्मना।
हरता जानकी कष्टं हतो दुष्करकारिणा ॥
दर्शयस्तामथोत्सृष्टा हरन् शोकमशेषतः।
को नाम बान्धवत्वं मे वनेऽस्मिन् परमेष्यति ॥
भो वृक्षाश्चम्पकच्छाया सरोजदललोचना।
सुकुमाराह्लिका भीरुस्वभावा वरगामिनी ॥
चित्तोत्सवकरा पद्मरजोगन्धिमुखानिला।
अपूर्वा यौषिती सृष्टिर्दृष्टा स्यात् काचिदगना ॥
कथं निरुत्तरा यूयमित्युक्त्वा तद्गुणैर्हृत.।
पुनर्मूर्छापरीतात्मा धरणीतलमागमत् ॥

० ० ०

भो भो महीधराधीश धातुभिर्विविधैश्चित।
सूनुर्दशरथस्य त्वा पद्माख्य. परिपृच्छते ॥
विपुलस्तननम्राङ्गा बिम्बौष्ठी हंसगामिनी।
सन्नितम्बा भवेद् दृष्टा सीता मे मनस. प्रिया ॥
दृष्टादृष्टेति किं वक्षि ब्रूहि ब्रूहि क्व सा क्व सा।
केवल निगदस्येव प्रतिशब्दोऽयमीदृशः ॥

० ० ०

१३४६ वही, २।६४
१३४७. मानस, २।६४।३
१३४८. पद्म०, ४४।७०
१३४९ वही, ५।२२।४

भूयो भूयो ग्रहु ध्यायन् क्षणनिश्चलविग्रह. ।
निराशता परिप्राप्त सूत्कारमुखराननः ॥[१३५०]

तुलसी–'आश्रम देखि जानकी हीना । भए विकल जस प्राकृत दीना ॥
हा गुनखानि जनकी सीता । रूप सील व्रत नेम पुनीता ॥
लछिमन समुझाए वहु भाँती । पूछत चले लता तरु पाँती ॥
हे खग मृग हे मधुकर श्रेनी । तुम्ह देखी सीता मृगनैनी ॥
० ० ०
ऐहि विधि खोजत विलपत स्वामी ।
मनहुँ महा विरही अति कामी ॥'[१३५१]

६ रविषेण–'भस्मभावगते गेहे कूपखानश्रमो वृथा ।'[१३५२]

तुलसी–'का वरषा जव कृषी सुखाने ।

७ रविषेण–'भवत्कीर्तिलताजालैर्जटिल वलय दिशाम् ।
मा धाक्षीदयशोदाव प्रसीद स्थितिकोविद ॥
परदाराभिलापोऽयमयुक्तोऽतिभयकर ।
लज्जनीयो जुगुप्स्यश्च लोकद्वयनिपूदन ॥'[१३५३]

तुलसी–'जो आपन चाहै कल्याना ।
सुजसु सुमति सुभ गति सुख नाना ॥
सो परनारि लिलार गोसाईं ।
तजउ चउथि के चद कि नाईं ॥'[१३५४]

८ रविषेण–'ता दु खहेतव सर्वा वैदेही हन्तुमुद्यता ।[१३५५]

तुलसी–भवन गयउ दसकधर इहाँ पिसाचिनि वृन्द ।
सीतहि त्रास दिखावहि धरहिं रूप वहु मद ॥'[१३५६]

९. रविषेण–'इत्युक्ते रुदती सीता समाश्वास्य प्रयत्नत ।
यथाज्ञापयसीत्युक्त्वा निरैत्सीताप्रदेशत ॥'[१३५७]

तुलसी–'जनकसुतहि समुझाइ करि वहु विधि धीरजु दीन्ह ।
चरन कमल सिरु नाइ कपि गवनु राम पहिं कीन्ह ॥'[१३५८]

१० रविषेण–'चूडामणिमिमं चोद्ध दृढप्रत्ययकारणम् ।

१३५० पद्म०, ४४।११४-१४९
१३५१ मानस, ३।२३।१-८
१३५२. पद्म०, ४६।६९
१३५३ पद्म०, ४६।१२२-१२३
१३५४ मानस, ५।३७।३
१३५५ वही, ५३।१२३
१३५६ वही, ५।१०
१३५७ वही, ५३।१७०
१३५८ वही, ५।२७

दर्शयिष्यसि नाथाय तस्यात्यन्तमयं प्रिय· ।।'[१३५९]

तुलसी–'चूडामनि उतारि तब दयऊ ।
हरष समेत पवनसुत लयऊ ।।'[१३६०]

११. रविषेण–'उत्पाट्य वायुपुत्रोऽपि नि शस्त्रो धीरपुगव. ।
सघात तुगवृक्षाणा शिलाना वारमक्षिपत् ।।[१३६१]

o o o

बभज त्वरित काश्चिदपरानुदमूलयत् ।
मुष्टिपादप्रहारेण पिपेषान्यान् महाबल ।।'[१३६२]

तुलसी—'चलेउ नाइ सिरु पैठेउ बागा । फल खाएसि तरु तोरै लागा ।।
रहे तहाँ बहु भट रखवारे । कछु मारेसि कछु जाइ पुकारे ।।

o o o

कछु मारेसि कछु मर्देसि कछु मिलएसि धरि धूर ।
कछु पुनि जाइ पुकारे प्रभु मर्कट बल भूरि ।।[१३६३]

१२. रविषेण–सर्वस्वेनापि यः पूज्यो यद्यप्यसकृदागतः ।
सुचिरादागतो द्रोही त्व निग्राह्यस्तु वर्तसे ।।
इमैर्निगदितैः क्रोधात् प्रहस्योवाच मारुतिः ।
को जानाति विना पुण्यैर्निग्राह्य. को विधेरिति ।।
स्वय दुर्मतिना सार्द्धमनेनासन्नमृत्युना ।
इतो दिनैः कतिपयैर्द्रक्ष्याम. क्व प्रयास्यथ ।।[१३६४]

तुलसी—'मृत्यु निकट आई खल तोही । लागेसि अधम सिखावन मोही ।।
उलटा होइहि कह हनुमाना । मतिभ्रम तोर प्रगट मैं जाना ।।[१३६५]

१३. रविषेण–'इत्युक्त. क्रोधसरक्त. खड्गमालोक्य रावण. ।
जगाद दुर्विनीतोऽय सुदुर्वचननिर्भर. ।।
त्यक्तमृत्युभयो बिभ्रत्प्रगल्भत्व ममाग्रतः ।
द्राक् खलीक्रियता मध्ये नगरस्य दुरीहित. ।।'[१३६६]

तुलसी—'सुनि कपि वचन वहुत खिसिआना । बेगि न हरहु मूढ कर प्राना ।।
सुनत विहसि बोला दसकधर । अग भग करि पठइअ बदर ।।[१३६७]

१३५९ वही, ५३।१६७
१३६० वही, ५।२६।१
१३६१ पद्म०, ५३।१९४
१३६२. वही, ५३।१९८
१३६३ मानस, ५।१७।१४,१८
१३६४. पद्म०, ५३।२४२-२४३
१३६५ मानस, ५।२३।२
१३६६ पद्म०, ५३।२५६-२५७
१३६७ मानस, ५।२३।३, ५

१४. रविषेण—'प्रमोदं जानकी प्राप्ता विषाद च मुहुर्मुहु ।'[१३६८]
'ययौ हर्षविषाद च जन. सक्ताश्रुलोचन. ।।'[१३६९]

तुलसी—'हरष विषाद हृदय अकुलानी ।'[१३७०]

१५. रविषेण—'प्रिया जीवति ते भद्रे त्येवमागत्य मारुतिः ।
वेदयिष्यति मे साधुरिति चिन्तामुपागतम् ।।
क्षीणमत्यभिराभाग क्षीयमाण निरकुशम् ।
वियोगवह्निना नाग दावेनैवाकुलीकृतम् ।।
० ० ०
किन्तु त्वद्विरहोदारदावमध्यविवर्त्तिनी ।
गुणौघनिम्नगा वाला नेत्राम्बुकृतदुर्दिना ।।
वेणीवन्धच्युतिच्छायमूर्द्धजात्यन्तदु खिता ।
मुहुर्नि.श्वसती दीन चिन्तासागरवर्तिनी ।।'[१३७१]

तुलसी—'नाम पाहरू दिवस निसि ध्यान तुम्हार कपाट ।
लोचन निज पद जंत्रित जाहि प्रान केहि वाट ।।'
'सीता कैं अति बिपति विसाला ।
विनहि कहे भलि दीनदयाला ।।'[१३७२]
'कृस तनु सीस जटा एक वेनी ।'[१३७३]

१६. रविषेण—'विस्तीर्णा प्रवरा सम्पन्महेन्द्रस्येव ते प्रभो ।
स्थिता च रोदसी व्याप्य कीर्ति· कुन्ददलामला ।।
स्त्रीहेतो क्षणमात्रेण सेय मागा परिक्षयम् ।
स्वामिन् सन्ध्याभ्ररेखेव प्रसीद परमेश्वर ।।
क्षिप्र समर्प्यता सीता तव किं कार्यमेतया ।
दृश्यते न च दोपोऽत्र प्रस्पष्ट केवलो गुण. ।।'[१३७४]

तुलसी—'तात चरन गहि मागउँ राखहु मोर दुलार ।
सीता देहु राम कहुँ अहित न होइ तुम्हार ।।'[१३७५]

१७. रविषेण—'नैपा सीता समानीता पित्रा तव कुवुद्धिना ।
रक्षोभोगविल लकामेषानीता विषौषधि. ।।'[१३७६]

तुलसी—तव कुल कुमुद विपिन दुखदाई । सीता सीत निसा सम आई ।।[१३७७]

१३६८ पद्म०, ५३।२६७
१३६९ वही, ११३।२१
१३७० मानस, ५।१२।१
१३७१ पद्म०, ५४।५-२०
१३७२ मानस, ५।३०।५
१३७३ वही, ५।७।४
१३७४ पद्म०, ५।९-११
१३७५ मानस, ५।४०
१३७६ पद्म०, ५५।२५
१३७७ मानस, ५।३५।५

१८. रविषेण—'एवं प्रवदमानं तं क्रोधप्रेरितमानसः।
उत्खाय रावणः खड्गमुद्गतो हन्तुमुद्यतः ॥'[१३७८]

तुलसी—'अस कहि कीन्हेसि चरन प्रहारा।'[१३७९]

१९. रविषेण—'देवागमननिर्मुक्ते कालेऽतिशयवर्जिते।
प्रनष्टकेवलोत्पादे हलचक्रधरोज्झिते ॥
भवद्विधमहाराजगुणसंघातरिक्तके।
भविष्यन्ति प्रजा दुष्टा वचनोद्यतमानसाः ॥
निश्शीला निर्व्रताः प्रायः क्लेशव्याधिसमन्विताः।
मिथ्यादृशो महाघोरा भविष्यन्त्यसुधारिणः ॥
अतिवृष्टिरवृष्टिश्च विषमा वृष्टिरीतयः।
विविधाश्च भविष्यन्ति दुस्सहाः प्राणधारिणाम् ॥
मोहकादम्बरीमत्ता रागद्वेषात्ममूर्तयः।
नर्तितभ्रूकराः पापा मुहुर्गर्वस्मिता नराः ॥
कुवाक्यमुखराः क्रूरा धनलाभपरायणाः।
विचरिष्यन्ति खद्योता रात्राविव महीतले ॥
गोदण्डपथतुल्येषु मूढास्ते पतिताः स्वयम्।
कुधर्मेषु जनानन्यान्पातयिष्यन्ति दुर्जनाः ॥
अपकारे समासक्ताः परस्य स्वस्य चानिशम्।
ज्ञास्यन्ति सिद्धमात्मानं नरा दुर्गतिगामिनः ॥
कुशास्त्रमुक्तहुंकारैः कर्मम्लेच्छैर्मदोद्धतैः।
अनर्थजनितोत्साहैर्मोहसंतमसावृतैः ॥
छेत्स्यन्ते सततोद्युक्तैर्मन्दकालानुभावतः।
हिंसाशास्त्रकुठारेण भव्येतरजनाधिपाः ॥'[१३८०]
'धर्मनन्दनकालेषु व्ययं यातेष्वनुक्रमात्।
भविष्यति प्रचण्डोऽत्र निर्धर्मसमयो महान् ॥
दुःपाषण्डैरिदं जैनं शासनं परमोन्नतम्।
तिरोधायिष्यते क्षुद्रै रजोभिर्भानुबिम्बवत् ॥
श्मशानसदृशा ग्रामाः प्रेतलोकोपमाः पुरः।
क्लिष्टा जनपदाः कुत्स्या भविष्यन्ति दुरीहिताः ॥

१३७८ पद्म०, ५५।३१
१३७९. मानस, ५।४।३
१३८०. पद्मपुराण, २०।९२-१०१

कुकर्मनिरतैः क्रूरैश्चौरैरिव निरन्तरम् ।
दु:पाषण्डैरय लोको भविष्यति समाकुल: ॥
महीतल खल द्रव्यपरिमुक्ता: कुटुम्बिन ।
हिंसाक्लेशसहस्राणि भविष्यन्तीह सन्ततम् ॥
पितरौ प्रति निस्नेहा पुत्रास्तौ च सुतान् प्रति ।
चौरा इव च राजानो भविष्यन्ति कलौ सति ॥
सुखिनोऽपि नरा: केचिन् मोहयन्त: परस्पम् ।
कथाभिर्दुर्गतीशाभी रस्यन्ते पापमानसा: ॥
नक्ष्यन्त्यतिशया: सर्वे त्रिदशागमनादय ।
कषायबहुले काले शत्रुघ्न समुपागते ॥
जातरूपधरान् दृष्ट्वा साधून् व्रतगुणान्वितान् ।
सजुगुप्सा करिष्यन्ति महामोहान्विता जना: ॥
अप्रशस्ते प्रशस्तत्व मन्यमाना: कुचेतस: ।
भयपक्षे पतिष्यन्ति पतगा इव मानवा: ॥
प्रशान्तहृदयान् साधून् निर्भर्त्स्य विहसोद्यता: ।
मूढा मूढेपु दास्यन्ति केचिदन्न प्रयत्नत: ॥
इत्थमेत निराकृत्य प्राहूयान्य समागतम् ।
यतिनो मोहिनो देय दास्यन्त्यहितभावना: ॥[१३८१]

तुलसी—'सो कलिकाल कठिन उरगारी । पाप परायन सब नर नारी ॥
कलिमल ग्रसे धर्म सब लुप्त भए सदग्रन्थ ।
दम्भिन्ह निज मति कल्पि करि प्रकट किए बहु पथ ॥
भए लोग सब मोह बस लोभ ग्रसे सुभ कर्म ।
सुनु हरिजान ग्यान निधि कहउँ कछुक कलिधर्म ॥
बरन धर्म नहिं आश्रम चारी । श्रुति विरोध रत सब नर नारी ॥
द्विज श्रुति वेचक भूप प्रजासन । कोउ नहिं मान निगम अनुसासन ॥
मारग सोइ जा कहुँ जोइ भावा । पडित सोइ जो गाल बजावा ॥
मिथ्यारभ दभ रत जोई । ता कहुँ सत कहइ सब कोई ॥
सोइ सयान जो परधन हारी । जो कर दभ सो बड़ आचारी ॥
जो कह झूँठ मसखरी जाना । कलिजुग सोइ गुनवत बखाना ॥
निराचार जो श्रुति पथ त्यागी । कलिजुग सोइ ग्यानी सो विरागी ॥
जाके नख अरु जटा बिसाला । सोइ तापस प्रसिद्ध कलिकाला ॥

१३८१ वही, ९२।५४-६५

अमुभ बेष भूषन धरे भच्छाभच्छ जे खाहिं।
तेइ जोगी तेइ सिद्ध नर पूज्य ते कलिजुग माहिं ॥
जे अपकारी चार, तिन्ह कर गौरव मान्य तेइ।
मन क्रम बचन लबार, तेइ बकता कलिकाल महुँ ॥

नारि बिबस नर सकल गोसाईं। नाचहिं नट मर्कट की नाईं ॥
सूद्र द्विजन्ह उपदेसहिं ग्याना। मेलि जनेऊ लेहिं कुदाना ॥
सब नर काम लोभ रत क्रोधी। देव बिप्र श्रुति संत बिरोधी ॥
गुन मंदिर सुंदर पति त्यागी। भजहिं नारि पर पुरुष अभागी ॥
सौभागिनीं बिभूषन हीना। बिधवन्ह के सिंगार नबीना ॥
गुर सिष बधिर अंध का लेखा। एक न सुनइ एक नहिं देखा ॥
हरइ सिष्य धन सोक न हरई। सो गुर घोर नरक महुँ परई ॥
मातु पिता बालकन्हि बोलावहिं। उदर भरै सोइ धर्म सिखावहिं ॥

ब्रह्म ग्यान बिनु नारि नर कहहिं न दूसरि बात।
कौडी लागि लोभ बस करहिं बिप्र गुरु घात ॥
बादहिं सूद्र द्विजन्ह सन हम तुम्ह ते कछु घाटि।
जानइ ब्रह्म सो विप्रवर आँखि देखावहिं डाटि ॥

पर त्रिय लंपट कपट सयाने। मोह द्रोह ममता लपटाने ॥
तेइ अभेदबादी ग्यानी नर। देखा मैं चरित्र कलिजुग कर ॥
आपु गए अरु तिन्हहू घालहिं। जे कहुँ सत मारग प्रतिपालहिं ॥
कल्प-कल्प भरि एक-एक नरका। परहिं जे दूषहिं श्रुति करि तरका ॥
जे बरनाधम तेलि कुम्हारा। स्वपच किरात कोल कलवारा ॥
नारि मुई गृह संपति नासी। मूड़ मुड़ाइ होहिं सन्यासी ॥
ते बिप्रन्ह सन आपु पुजावहिं। उभय लोक निज हाथ नसावहिं ॥
बिप्र निरच्छर लोलुप कामी। निराचार सठ बृषली स्वामी ॥
सूद्र करहिं जप तप ब्रत नाना। बैठि बरासन कहहिं पुराना ॥
सब नर कल्पित करहिं अचारा। जाइ न बरनि अनीति अपारा ॥

भए बरन संकर कलि भिन्नसेतु सब लोग।
करहिं पाप पावहिं दुख भय रुज सोक बियोग ॥
श्रुति संमत हरि भक्ति पथ संजुत बिरति बिवेक।
तेहिं न चलहिं नर मोह बस कल्पहिं पंथ अनेक ॥

बहु दाम संवारहिं धाम जती। विषया हरि लीन्हि न रही बिरती ॥
तपसी धनवंत दरिद्र गृही। कलि कौतुक तात न जात कही ॥

कुलवति निकारहिं नारि सती। गृह आनहिं चेरि निवेरि गती॥
सुत मानहि मातु पिता तब लौ। अबलानन दीख नही जब लौ॥
ससुरारि पिआरि लगी जब ते। रिपुरूप कुटुंब भए तब ते॥
नृप पाप परायन धर्म नही। करि दंड विडंब प्रजा नितही॥
धनवत कुलीन मलीन अपी। द्विज चिन्ह जनेउ उघार तपी॥
नहिं मान पुरान न वेदहि जो। हरि सेवक सत सही कलि सो।
कवि बृंद उदार दुनी न मुनी। गुन दूषक व्रात न कोपि गुनी॥
कलि बारहिं बार दुकाल परै। बिनु अन्न दुखी सब लोग मरै॥
सुनु खगेस कलि कपट हठ दंभ द्वेष पाखंड।
मान मोह मारादि मद व्यापि रहे ब्रह्मंड॥[१३८२]

२० रविषेण—'अभिमानोन्नतिं त्यक्त्वा प्रसाद्य रघूत्तमन्।
मा कलंक स्ववंशस्य कार्षीर्योपिन्निमित्तकम्॥'[१३८३]
तुलसी—'रिषि पुलस्ति जसु बिमल मयंका।
तेहि ससि महुँ जनि होहु कलंका॥'[१३८४]
'परिहरि मान मोह मद भजहु कोसलाधीस।'[१३८५]

२१ रविषेण—'क्व सौमित्रि क्व सौमित्रिरिति गाढ समुत्सुक।
लोकोऽपि हि समस्तो मे प्रक्ष्यति प्रेमनिर्भर॥
रत्न पुरुषवीराणा हारयित्वा त्वकामहम्।
मन्ये जीवितमात्मीय हत निहतपौरुष॥
कामार्था. सुलभा सर्वे पुरुषस्यागमास्तथा।
विविधाश्चैव सम्बन्धा विष्टपेऽस्मिन् यथा तथा॥
पर्यट्य पृथिवी सर्वा स्थान पश्यामि तन्ननु।
यस्मिन्नवाप्यते भ्राता जननी जनकोऽपि वा॥'[१३८६]
तुलसी—'सुत बित नारि भवन परिवारा।
होहिं जाहिं जग बारहिं बारा॥
अस बिचारि जियँ जागहु ताता।
मिलइ न जगत सहोदर भ्राता॥
जैहउँ अवध कौन मुहु लाई।
नारि हेतु प्रिय भाइ गँवाई॥

१३८२ मानस, ७।९७-१०१
१३८३ पद्म०, ६२।२६
१३८४ मानस, ५।२२।१
१३८५ वही, ५।३९क
१३८६ पद्म०, ६३।९, १०, १३, १४

बरु अपजस सहतेउँ जग नाहीं।
नारि हानि विशेष छति माहीं ।।'[१३८७]

२२. रविषेण–'अथवा वेत्ति नारीणा चेतस. को विचेष्टितम्।
दोषाणा प्रभवो यासु साक्षाद्वसति मन्मथ ।।
धिक्स्त्रिय सर्वदोषाणामाकरं तापकारणम्।
विशुद्धकुलजाताना पुसा पक सुदुत्यजम् ।।
अभिहन्त्री समस्ताना बलाना रागसंश्रयाम्।
स्मृतीना परम भ्रशं सत्यस्खलनखातिकाम् ।।
विघ्न निर्वाणसौख्यस्य ज्ञानप्रभवसूदनीम्।
भस्मच्छन्नाग्निसकाशां दर्भसूचीसमानिकाम् ।।
दृङमात्ररमणीया ता निर्मुक्तमिव पन्नग ।
तस्मात् त्यजामि वैदेही महादु खजिहासया ।।'[१३८८]

तुलसी–'काम क्रोध लोभादि मद प्रबल मोह कै धारि।
तिन्ह महँ अति दारुन दुखद मायारूपी नारि ।।
सुनु मुनि कह पुरान श्रुति संता। मोह बिपिन कहुँ नारि वसंता ।।
जप तप नेम जलाश्रय भारी। होइ ग्रीषम सोषइ सब नारी ।।
काम क्रोध मद मत्सर भेका। इन्हिहि हरषप्रद बरषा एका ।।
दुर्वासना कुमुद समुदाई। तिन्ह कहँ सरद सदा सुखदाई ।।
धर्म सकल सरसीरुह बृंदा। होइ हिम तिन्हहि दहइ सुख मंदा ।।
पुनि ममता जवास बहुताई। पलुहइ नारि सिसिर ऋतु पाई ।।
पाप उलूक निकर सुखकारी। नारि निबिड रजनी अँधियारी ।।
बुधि बल सील सत्य सब मीना। बनसी सम त्रिय कहहिं प्रबीना ।।
अवगुन मूल सूलप्रद प्रमदा सब दुख खानि।
ताते कीन्ह निवारन मुनि मैं यह जियँ जानि ।।[१३९१]

२३. रविषेण–'सुकृतस्य फलेन जन्तुरुच्चै पदमाप्नोति सुसम्पदा निधानम्।
दुरितस्य फलेन तत्तु दु.ख कुगतिस्थ समुपैत्यय स्वभाव. ।।'[१३८९]

तुलसी–'जहाँ सुमति तहँ संपति नाना।
जहाँ कुमति तहँ बिपति निदाना ।।'[१३९०]

●

१३८७ मानस, ६।६०।४, ६
१३८८ पद्म०, ९६।६१-६५
१३८९ मानस, ३।४३-४४
१३९० पद्म०, १२३।१७६
१३९१ मानस, ५।३९।३

परिशिष्ट

एक	•	पद्‌मपुराण के सुभापित
दो	•	पद्‌मपुराण की प्रमुख वंशावलियाँ
तीन	•	संकेतित ग्रन्थ-सूची

परिशिष्ट—१

पद्मपुराण के सुभाषित

१ मत्तवारणसक्षुण्णे व्रजन्ति हरिणा. पथि ।
प्रविशन्ति भटा युद्ध महाभटपुरस्सरा. ॥१।१६

२ भास्वता भासितानर्थान् सुखेनालोकते जन ।
सूचीमुखविनिर्भिन्न मणिं विशति सूत्रकम् ॥१।२०

३. व्यक्ताकारादिवर्णा वाग् लम्भिता या न सत्कथाम् ।
सा तस्य निष्फला जन्तो. पापादानाय केवलम् ॥१।२३

४. वृद्धि व्रजति विज्ञानं यशश्चरति निर्मलम् ।
प्रयाति दुरित दूर महापुरुषकीर्तनात् ॥१।२४

५ अल्पकालमिद जन्तो. शरीर रोगनिर्भरम् ।
यशस्तु सत्कथाजन्म यावच्चद्रार्कतारकम् ॥१।२५
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन पुरुषेणात्मवेदिना ।
शरीर स्थास्नु कर्त्तव्यं महापुरुषकीर्तनात् ॥१।२६

६ लोकद्वयफल तेन लब्ध भवति जन्तुना ।
यो विधत्ते कथा रम्या सज्जनानन्ददायिनीम् ॥१।२७

७ सत्कथाश्रवणौ यौ च श्रवणौ तौ मतौ मम ।
अन्यौ विदूषकस्येव श्रवणाकारधारिणौ ॥१।२८

८. सच्चेष्टवर्णना वर्णा घूर्णन्ते यत्र मूर्धनि ।
अथ मूर्द्धाऽन्यमूर्द्धा तु नालिकेरकरकवत् ॥१।२९

९ सत्कीर्तनसुधास्वादसक्त च रसन स्मृतम् ।
अन्यच्च दुर्वचोधार कृपाणदुहितु फलम् ॥१।३०

१०. श्रेष्ठावोष्ठौ च तावेव यौ सुकीर्तनवर्तिनौ ।
न शम्बूकास्यसभुक्तजलौकापृष्ठसन्निभौ ॥१।३१

११. दन्तास्त एव ये शान्तकथासगमरञ्जिता ।
शेषा सश्लेष्मनिर्वाणद्वारबन्धाय केवलम् ॥ २।३२

१२. मुख श्रेय परिप्राप्तेर्मुख मुख्यकथारतम् ।
अन्यत्तु मलसम्पूर्ण दन्तकीटाकुल विलम् ॥२।३३

१३. वदिता योऽथवा श्रोता श्रेयसा वचसा नरः ।
पुमान् स एव शेषस्तु शिल्पिकल्पितकायवत् ॥१।३४

१४. गुणदोषसमाहारे गुणान् गृह्णन्ति साधव ।
क्षीरवारिसमाहारे हसा. क्षीरमिवाखिलम् ॥१।३५

१५. गुणदोषसमाहारे दोषान् गृह्णत्यसाधवः ।
मुक्ताफलानि सत्यज्य काका मासमिव द्विपात् ॥१।३७

१६. अदोषामपि दोषाक्ता पश्यन्ति रचना खला. ।
रविमूर्तिमिवोलूकास्तमालदलकालिकाम् ॥१।३७

१७. सरोजलागमद्वारजालकानीव दुर्जना. ।
धारयन्ति सदा दोषान् गुणबन्धनवर्जिताः ॥१।३८

१८ स्वभावमिति सचिन्त्य सज्जनस्येतरस्य च ।
प्रवर्तन्ते कथाबन्ध स्वार्थमुद्दिश्य साधव ॥१।३९

१९. सत्कथाश्रवणाद् यच्च सुख सम्पद्यते नृणाम् ।
कृतिना स्वार्थ एवासौ पुण्योपार्जनकारणम् ॥२।४०

२०. सन्मार्गे प्रकटीकृते हि रविणा कश्चारुदृष्टि. स्खलेत् ॥१।९०३

२१. मनुष्यभावमासाद्य सुकृत ये न कुर्वते ।
तेषा करतलप्राप्तममृत नाशमागतम् ॥२।१६७

२२. सम्प्राप्त रक्षित द्रव्य भुञ्जानस्यापि नो शम. ।
प्रतिवासरसवृद्धगर्द्धाग्निपरिवर्तनात् ॥२।१७७

२३. हिंसात. ससृतेर्मूल दुःख ससारसज्ञकम् ॥२।१८१

२४. प्रष्टव्या गुरवो नित्यमर्थ ज्ञातमपि स्वयम् ।
स तैर्निश्चयमानीतो ददाति परम सुखम् ॥२।२५२

२५. न विना पीठबन्धेन विधातु सद्म शक्यते ।
कथाप्रस्तावहीन च वचनं छिन्नमूलकम् ॥३।२८

२६. साधौ तपोऽगारे व्रतालङ्कृतविग्रहे ।
सर्वग्रन्थविनिर्मुक्ते दत्त दान महाफलम् ॥३।६९

२७. यद्यदाधीयते वस्तु दर्पणे, तस्य दर्शनम् ॥३।७२

२८ अस्मिंस्त्रिभुवने कृत्स्ने जीवानां हितमिच्छताम् ।
शरण परमो धर्मस्तस्माच्च परम सुखम् ॥४।३५

२९ सुखार्थं चेष्टितं सर्वं तच्च धर्मनिमित्तकम् ।
एव ज्ञात्वा जना· यत्नात् कुरुध्वं धर्मसङ्गमम् ॥४।३६

३० वृष्टिर्विना कुतो मेघैः क्व सस्य बीजवर्जितम् ।
जीवानां च विना धर्मात् सुखमुत्पद्यते कथम् ॥४।३७

३१ गन्तुकामो यथा पङ्गुर्मूको वक्तु समुद्यत· ।
अन्धो दर्शनकामश्च तथा धर्मादृते सुखम् ॥४।३८

३२ परमाणो. पर स्वल्प न चान्यन्नभसो महत् ।
धर्मादन्यश्च लोकेऽस्मिन् सुहृन्नास्ति शरीरिणाम् ॥४।३९

३३ न कल्पते । साधूनामीदृशी भिक्षा या तदुद्देशसस्कृता ॥४।९५

३४. प्राणा धर्मस्य हेतव ॥४।९७

३५ अहो वत महाकष्ट जैनेश्वरमिद व्रतम् ॥४।९९

३६ प्राप्यते सुमहद् दु ख जन्तुभिर्भवसागरे ॥५।१२१

३७ कष्ट यैरेव जीवोऽय कर्मभि· परितप्यते ।
तान्येवोत्सहते कर्तुं मोहित. कर्ममायया ॥
आपातमात्ररम्येषु विषवद् दु खदायिषु ।
विषयेषु रतिः का वा दु खोत्पादनवृद्धिषु ॥
कृत्वापि हि चिर सङ्ग धने कान्तासु बन्धुषु ।
एकाकिनैव कर्त्तव्यं संसारे परिवर्तनम् ॥
तावदेव जन सर्वः प्रियत्वेनानुवर्तते ।
दानेन गृह्यते यावत्सारमेयशिशुर्यथा ॥
इयता चापि कालेन को गत सह बन्धुभि ।
परलोक कलत्रैर्वा सुहृद्भिर्बान्धवेन वा ॥
नागभोगोपमा भोगा भीमा नरकपातिन. ।
तेषु कुर्यान्नर. सङ्ग को वा यः स्यात्सचेतन ॥
अहो परमिद चित्र सद्भावेन यदाश्रितान् ।
लक्ष्मी· प्रतारयत्येव दुष्टत्व किमत. परम् ॥
स्वप्ने समागमो यद्वत्तद्वद् बन्धुसमागम ।
इन्द्रचापसमान च क्षणमात्रं च तैं सुखम् ॥
जलबुदबुदवत्काय. सारेण परिवर्जितः ।
विद्युल्लताविलासेन सदृश जीवित चलम् ॥५।२२९-२३७

३८. महातरौ यथैकस्मिन्नुषित्वा रजनी पुनः।
प्रभाते प्रतिपद्यन्ते ककुभो दश पक्षिण'॥
एव कुटुम्ब एकस्मिन् सङ्गम प्राप्य जन्तव ।
पुन. स्वा स्वा प्र पद्यन्ते गर्ति कर्मवशानुगा ॥५।२६५-२६६
३९. बलवद्भ्यो हि सर्वेभ्यो मृत्युरेव महाबलः।
आनीता निधन येन बलवन्तो वलीयसा॥५।२६८
४०. फेनोर्मीन्द्रधनु स्वप्नविद्युद्बुद्बुदसन्निभा ।
सम्पद प्रियसम्पर्का विग्रहाश्च शरीरिणाम्॥५।२७०
४१ नास्ति कश्चिन्नरो लोके यो ब्रजेदुपमानताम्।
यथायममरस्तद्वद्य मृत्यूज्भिता इति॥५।२७१
४२. येऽपि शोषयितु शक्ताः समुद्र ग्राहसङ्कुलम्।
कुर्युर्वा करयुग्मेन चूर्णं मेरुमहीधरम्॥
उद्धर्त्तु धरणी शक्ता ग्रसितु चन्द्रभास्करौ।
प्रविष्टास्तेऽपि कालेन कृतान्तवदन नरा ॥५।२७२-२७३
४३. मृत्योर्दुर्लङ्घितस्यास्य त्रैलोक्ये वशतां गते।
केवल व्युज्भिता सिद्धा जिनधर्मसमुद्भवा.॥५।२७४
४४. शोक कुर्याद्विबुद्धात्मा को नरो भवकारणम् ? ५।२७६
४५. सङ्घस्य निन्दन कृत्वा मृत्युमेति भवे भवे॥५।२९३
४६. धिगिच्छामन्तवर्जिताम् ।५।३०७
४७. मधुदिग्धासिधारायाा लेहने कीदृश सुखम्।
रसन प्रत्युतायाति शतधा यत्र खण्डनम्॥५।३११
विषयेषु तथा सौख्य कीदृश नाम जायते।
यत्र प्रत्युत दु खानामुपर्युपरि सन्तति ॥५।३१२
४८. यथा स्वजीवित कान्त सर्वेषा प्राणिना तथा॥५।३२८
४९. दुर्लभ सति जन्तुत्वे मनुष्यत्व शरीरिणाम्।
तस्मादपि सुरूपत्व ततो धनसमृद्धता॥
ततोऽप्यार्यत्वसम्भूतिस्ततो विद्यासमागम ।
ततोऽप्यर्थज्ञता तस्माद् दुर्लभो धर्मसङ्गम ॥५।३३३-३३४
५०. परपीडाकर वाक्य वर्जनीय प्रयत्नत ।
हिंसाया कारण तद्धि सा च ससारकारणम्॥५।३४१
तथा स्तेय स्त्रिया. सङ्ग महाद्रविणवाच्छनम्।
सर्वमेतत्परित्याज्य पीडाकारणता गतम्॥५।३४२

५१ भवान्तरकृतेन तपोबलेन सम्प्राप्नुवन्ति पुरुषा मनुजेषु भोगान् ।।५।४०५
५२ दुष्कर्मसक्तमतय. परमा लभन्ते निन्दा जना इह भवे मरणात्पर च ।५।४०६
५३ पापतमसो रविता भजध्वम् ।।५।४०६
५४ आचाराणा विघातेन कुदृष्टीना च सम्पदा ।
धर्मं ग्लानिपरिप्राप्तमुच्छ्रयन्ते जिनोत्तमा ।।
ते त प्राप्य पुनर्धर्मं जीवा बान्धवमुत्तमम् ।
प्रपद्यन्ते पुनर्मार्ग सिद्धस्थानाभिगामिन ।।५।२०६-२०७
५५ कालप्राप्त नय सन्तो युञ्जाना यान्ति तुङ्गताम् ।।६।२५
५६ स्वभाव एव कन्याना यत्परागारसेवनम् ।।६।४३
५७ शुद्धाभिजनता मुख्या गुणाना वरभाजिनाम् ।।६।४६
५८ स्वयमेव तु कन्यायै रोचते क्रियतेऽत्र किम् ? ६।५०
५९ हा कष्ट क्षुद्रशक्तीना मनुष्याणा धिगुन्नतिम् ।।६।१४४
६० मनोज्ञ प्रायशो रूप धीरस्यापि मनोहरम् ।।६।१६७
६१ कान्ताभिप्रायसामर्थ्यात् सुरूपमपि नेष्यते ।।६।१७१
६२ मङ्गल यस्य यत्पूर्व पुरुषै. सेवित कुले ।
प्रत्यवायेन सम्बन्धो निरासे तस्य जायते ।।
क्रियमाण तु तद्भक्त्या करोति शुभसम्पदम् ।।६।१८६
६३ अभिमानेन तुङ्गाना पुरुषाणामिद व्रतम् ।
नमयन्त्येव यच्छत्रु द्रविणे विगताशया. ।।६।१९५
६४ प्रायशो विषवल्लीव दृष्टा पूर्वैर्नृपद्युति ।।६।२००
६५ पूर्वोपार्जितपुण्याना पुरुषाणा प्रयत्नत ।
सजातासु न लक्ष्मीषु भाव सञ्जायते महान् ।।
यथैव ता समुत्पन्नास्तेषामल्पप्रयत्नत. ।
तथैव त्यजतामेषा पीडा तासु न जायते ।।
तथा कथञ्चिदासाद्य सन्तो विषयज सुखम् ।
तेषु निर्वेदमागत्य वाञ्छन्ति परम पदम् ।।६।२०१-२०३
६६ यन्नोपकरणै साध्यमात्मायत्त निरन्तरम् ।
महदन्तेन निर्मुक्त सुख तत् को न वाञ्छति ? ६।२०४
६७ लक्षण यस्य यल्लोके स तेन परिकीर्त्यते ।।६।२०८
६८ तपो हि श्रम उच्यते ।।६।२११
६९ परा हि कुरुते प्रीति पूर्वाचरितसेवनम् ।।६।२१६
७०. आचार्ये म्रियमाणे यस्तिष्ठत्यन्तिकगोचरे ।

करोत्याचार्यक मूढ. शिष्यता दूरमुत्सृजन् ॥
नासौ शिष्यो न चाचार्यो निर्धर्मः स कुमार्गग. ।
सर्वतो भ्र शमायातः स्वचारात्साधुनिन्दित ॥६।२६४-२६५

७१. अहो परममाहात्म्य तपसो भुवनातिगम् ॥६।२६७

७२ मार्गोऽयमिति यो गच्छेद् दिशामज्ञाय मोहवान् ।
प्राधीयसापि कालेन नेष्टं स्थान स गच्छति ॥६।२७८

७३. धर्मस्य हि दया मूल तस्या मूलमहिंसनम् ॥६।२८६

७४. अन्य. कस्तस्य कथ्येत धर्मस्य परमो गुणः ।
त्रिलोकशिखर येन प्राप्यते सुमहासुखम् ॥६।२९५

७५. अय (मनुष्यभव) हि दुर्लभो लोके धर्मोपादानकारणम् ॥६।३७६

७६. वाञ्छिते हि वरत्वेन दृष्टिश्चञ्चलता व्रजेत् ॥६।३९४

७७. बीज युद्धस्य योषित. ॥६।४५०

७८. दारजात पराभवम् ॥६।४६३

७९. शोको हि पण्डितैर्दृष्ट पिशाचो भिन्ननामक ॥६।४८०

८०. कर्मणा विनियोगेन वियोग. सह बन्धुना ।
प्राप्ते तत्रापर दु ख शोको यच्छति सन्ततम् ॥६।४८१

८१. अविधाय नरा कार्य ये गर्जन्ति निरर्थकम् ।
महान्त लाघव लोके शक्तिमन्तोऽपि यान्ति ते ॥६।५४६

८२. प्रेक्षापूर्वप्रवृत्तेन जन्तुना सप्रयोजन ।
व्यापार सतत कृत्य. शोकश्चायमनर्थक ॥६।४८१

८३. प्रत्यागम कृते शोके प्रेतस्य यदि जायते ।
ततोऽन्यानपि सगृह्य विदधीत जन· शुचम् ॥६४८३

८४ शोक प्रत्युत देहस्य शोषीकरणमुत्तमम् ।
पापानामयमुद्रेको महामोहप्रवेशनः ॥६।४८४

८४. (अ) नानुबन्ध (सस्कार) त्यजत्यरि. ॥

८४. (आ) बलीयसि रिपौ गुप्ति प्राप्य काल नयेद् बुध ।
तत्र तावदवाप्नोति न निकार(पा विकार)-मरातिकम् ॥६४८८

८४ (इ) प्राप्य तत्र स्थित काल कुतश्चिद् द्विगुण रिपुम् ।
साधयेन्नहि भूतानामेकस्मिन् सर्वदा रति ॥६।४८९

८४ (ई) भग्ना. किलानुसर्तव्या. शत्रवो न ॥६।४९६

८४. (उ) अनुकम्पा हि कर्त्तव्या महता दु·खिते जने ॥६।४९८

८४. (ऊ) पृष्ठस्य दर्शनं येन कारितं कातरात्मना।
जीवन्मृतस्य तस्यान्यत् क्रियतां किं मनस्विना ? ६।४६६

८४. (ऋ) मनुष्यजन्म चात्यन्तदुर्लभं भवसङ्कटे ॥६।५०३

८५ अभिप्रेत्य वधं शत्रोरारुह्य जयिनं द्विपम्।
प्रस्थितः पौरुषं बिभ्रत्कथं भूयो निवर्त्तते ? ७।५०

८६. भटः किं विनिवर्त्तते ? ७।५२

८७ 'असौ पलायितो भीतो वराक' इतिभाषितम्।
कथमाकर्णयेद्धीरो जनतायाः सुचेतसः ॥ ७।५६

८८ यत्नेन महतान्विष्य हन्तव्या लोककण्टकाः। ७।६६

८९ पक्षपातो भवत्येव योगिनापि सज्जने। ७।१६०

९०. ज्ञातव्येषु हि नारीणां प्रमाणं प्रियमानसाम्। ७।१८४

९१ भवेदमृतवल्लीतो विषस्य प्रसवः कथम् ? ७।१९७

९२. मूलं हि कारणं कर्म स्वरूपविनियोजने।
निमित्तमात्रमेवास्य जगतः पितरौ स्मृतौ। ७।१९९

९३. हेतुसमं फलम्। ७।२०२

९४. वितथं नैव जायते यतिभाषितम्। ७।२२०

९५. अवाप्तं मरणं पुंसां स्वस्थानभ्रंशतो वरम्। ७।२४०

९६ कुर्वन्त्याराधनं यत्नात्साधवस्तपसो यथा।
आराधनं तथा कृत्यं विद्याया खग-गोत्रजैः ॥ ७।२५४

९७ कापुरुषा एव स्खलन्ति प्रस्तुताशयात्। ७।२८०

९८. स्वसरि प्रेम हि प्रायः पितृभ्यां सोदरे परम्। ७।३०३

९९. विद्या हि साध्यते पुत्रा ! स्वजनानां समृद्धये ॥ ७।३०४

१००. पुत्रा हि गदिताः पित्रोः प्ररोहा इव धारकाः। ७।३०६

१०१. निश्चयात् किं न लभ्यते ? ७।३१५

१०२ निश्चयोऽपि पुरोपात्तात्लभ्यते कर्मणः सितात्।
कर्मण्येव हि यच्छन्ति विघ्नं दुःखानुभाविनः ॥ ७।३१६

१०३. काले दानविधिं पात्रे क्षेमे चायुः स्थितिं क्षयम्।
सम्यग्बोधिफला विद्या नाभव्यो लब्धुमर्हति ॥ ७।३१७

१०४. कस्यचिद्दशभिर्वर्षैर्विद्या मासेन कस्यचित्।
क्षणेन कस्यचित्सिद्धिं यान्ति कर्मानुभावतः ॥७।३१८

१०५ धरण्यां स्वपितु त्यागं करोतु चिरमन्धसः।
मज्जत्वप्सु दिवानक्तं गिरेः पततु मस्तकात् ॥

विधत्ता पञ्चतायोग्यां क्रिया विग्रहशोषिणीम् ।
पुण्यैर्विरहितो जन्तुस्तथापि न कृती भवेत् ।। ७।३१९-३२०

१०६ अन्नमात्र क्रियाः पुसा सिद्धे सुकृतकर्मणाम् ।
अकृतोत्तमकर्माणो यान्ति मृत्यु निरर्थका ।। ७।३२१

१०७ सर्वादरान्मनुष्येण तस्मादाचार्यसेवया ।
पुण्यमेव सदा कार्य सिद्धि पुण्यैर्विना कुत. ।। ७।३२२

१०८. पूर्वभवार्जितेन पुरुषा पुण्येन यान्ति श्रियम् ।। ७।३९४

१०९ अग्ने किं न कण. करोति विपुल भस्म क्षणात् काननम् ? ७।३९४

११०. मत्ताना करिणा भिनत्ति निवह सिंहस्य वा नार्भक. ? ७।३९४

१११ बोध ह्याशु कुमुद्वतीषु कुरुते शीताशुरोचिर्लव
सन्ताप प्रणुदन् दिवाकरकरैरुत्पादित प्राणिनाम् ।
निद्राविद्रुतिहेतुभिश्च समये जीमूतमालानिभ
ध्वान्त दूरमपाकरोति किरणैरुद्योतमात्रो रविः ।। ७।३९५

११२ कन्याना यौवनारम्भे सन्तापाग्निसमुद्भवे ।
इन्धनत्व प्रपद्यन्ते पितरौ स्वजनै समम् ।।८।६
एवमर्थ ददत्यस्या जन्मनोऽनन्तर बुधा ।
लोचनाञ्जलिभिस्तोय दु.खाकुलितचेतस ।।८।७

११३ कन्याना देहपालने ।
जनन्य उपयुज्यन्ते पितरो दानकर्मणि ।।८।१०

११४ भर्तृच्छन्दानुवर्तिन्यो भवन्ति कुलबालिका ।।८।११

११५. प्रपद्यन्ते परिभ्रश कुलज्ञा नोपचारत ।।८।३१

११६. क न कुर्वन्ति सज्जना दर्शनोत्सुकम् ? ८।४८

११७ सता हि कुलविद्येय यन्मनोहरभाषणम् ।।८।४९

११८ प्रतिकूलसमाचारा न भवन्त्येव साधव ।।८।५१

११९. नीयन्ते विषयै प्राय. सत्त्ववन्तोऽपि वश्यताम् ।।८।७३

१२०. सह्यतापत्रपा तावद् दु सहा. स्मरवेदना ।।८।१०७

१२१ शशाङ्केन विमुक्ताना ताराणा काभिरूपता ? ।।८।११०

१२२. एकाकी पृथुक. सिंह प्रस्फुरत्सितकेसर ।
किं वा नानयते ध्वस यूथ समददन्तिनाम् ।।८।१२७

१२३. आनन्द पुत्रतो नान्यत् प्रीतेरायतन परम् ।।८।१५७

१२४. तिरश्चा मानुषाणा च प्रायो भेदोऽयमेव हि ।
कृत्याकृत्य न जानन्ति यदेकेऽन्ये तु तद्विद. ।।८।१६९

१२५ विस्मरन्ति च नो पूर्वं वृत्तान्त दृढ़मानसा ।
जातायामपि कस्याञ्चिद्भूतौ विद्युत्समद्युतौ ।।८।१७०

१२६ को हि स्वकुलनिर्मूलध्वसहेतुक्रिया भजेत् ।।८।१७१

१२७ हृदयस्थेन नाथेन पिशाचेनेव चोदिता ।
दूता वाचि प्रवर्तन्ते यन्त्रदेहा इवावशा ।।८।१८८

१२८ अकीर्तिरुद्रवत्युर्वीलोके क्षुद्रवधे कृते ।।८।१८९

१२९ नहि गण्डूपदान् हन्तु वैनतेय प्रवर्तते ।।८।१९०

१३० धिग् भृत्य दु खनिर्मितम् । ८।१९२

१३१ धिक् कष्ट ससार दु खभाजनम् ।
चक्रवत्परिवर्तन्ते प्राणिनो यत्र योनिषु ।।८।२२०

१३२ कृत्वा प्राणिवध जन्तुर्मनोजविषयाशया ।
प्रयाति नरक भीम सुमहादु खसङ्कुलम् ।।८।२२४

१३३. यथैकदिवस राज्य प्राप्त सवत्सर वधम् ।
प्राप्नोति सदृश तेन निश्चये विषयै सुखम् ।।८।२२५

१३४. चक्षु पक्ष्मपुटासङ्गक्षणिक ननु जीवितम् ।।८।२२६

१३५. मत्तस्तम्बेरमारूढैर्मण्डलाग्रकरैर्नरै ।
क्रियते मारण शत्रोर्न तु धर्मनिवेदनम् ।।८।२२८

१३६ कुर्वाणो हि निज कर्म पुरुषो नैव लज्जते ।।८।२३०

१३७ वीर्यमक्षतकायाना शूराणा नहि वर्धते ।।८।२३३।।

१३८. वीराणा शत्रुभङ्गेन कृतत्व न धनादिना ।।८।२४२

१३९ एतदर्थं न वाञ्छन्ति सन्तो विषयज सुखम् ।
यदेतदध्रुव स्तोक सान्तराय सदु खकम् ।।८।२४६

१४०. निमित्तमात्रतान्येषामसुखस्य सुखस्य वा ।
बुधास्तेभ्यो न कुप्यन्ति समारस्थितिवेदिन ।।८।२४८

१४१ भव्य कस्य न सम्मत ? ।।८।२९६

१४२ मृदु पराभवत्येष लोक प्रखलचेष्टित ।
उद्वृत्याप्यसुख कर्तुं नाभिवाञ्छति कर्कशे ।।८।३३२

१४३ परकार्येषु यो रत ।
कार्ये तस्य कथ स्वस्मिन्नौदासीन्य भविष्यति ? ८।३७७

१४४ विविधरत्नसमागमसम्पद प्रबलशत्रुनमूलविमर्दनम् ।
सकलविष्टपगामि यश मित भवति निर्मिननिर्मलकर्मणाम् ।।८।५३०

१४५. रिपव उग्रतरा विषयाह्वया अपनयन्ति भुवस्त्रितये स्मृतिम् ।
बहिरवस्थितिशत्रुगण पुन सततमानमते यदनन्तरम् ॥८।५३१

१४६. इति विचिन्त्य न युक्तमुपासितु विषयशत्रुगणं पुरुचेतस ॥
अमरमेति जनस्तमसा तत न तु रवे किरणैरवभासितम् ॥८।३२

१४७. स्त्रीणा स्वाभाविकी त्रपा ॥९।३५

१४८. कन्या नाम प्रभो ! देया परस्मायेव निश्चयात् ।
उत्पत्तिरेव तासा हि तादृशी सार्वलौकिकी ॥९।३२

१४९. हिंसित्वा जन्तुसघात नितान्त प्रियजीवितम् ।
दु ख कृतसुखाभिख्य प्राप्यते तेन को गुण. ? ॥९।८१

१५०. अरघट्टघटीयन्त्रसदृशा. प्राणधारिण. ।
शश्वद्भवमहाकूपे भ्रमन्त्यत्यन्तदु खिता ॥९।८२

१५१ क्व धर्मः क्व च संक्रोधः ? ॥१०।१३२

१५२. इन्द्राणामपि सामर्थ्यमीदृश नाथ नेक्ष्यते ।
यादृक् तप.समृद्धाना मुनीनामल्पयत्नजम् ॥९।१६३

१५३. पुण्यवन्तो महासत्त्वा मुक्तिलक्ष्मीसमीपगाः ।
तारुण्ये विषयास्त्यक्त्वा स्थिता ये मुक्तिवर्त्मनि ॥९।१७२

१५४. जिनवन्दनया तुल्य किमन्यद्विद्यते शुभम् ? ॥९।२०१

१५५. जिनेन्द्रवन्दनातुल्य कल्याणं नैव विद्यते ॥९।२०२

१५६. ददाति परिनिर्वाणसुख या समुपासिता ।
जिननत्या तया तुल्य न भूत न भविष्यति ॥९।२०६

१५७. असाध्यं जिनभक्तेर्यत्साधु तन्नैव विद्यते ॥९।२०५

१५८. आस्ता तावदिदं स्वल्प व्याघाति भवजं सुखम् ।
मोक्षजं लभ्यते भक्त्या जिनानामुत्तम सुखम् ॥९।२०७

१५९. एकया दशया कस्य कालो गच्छति सज्जन !
विपदोऽनन्तरा सम्पत् सम्पदोऽनन्तरा विपत् ॥९।२११

१६०. धिङ्मनोभवदूषितम् ! ॥१०।११३

१६१. महेच्छा हि तुष्यन्त्यानतिमात्रत ॥१०।२१

१६२. बलाना हि समस्तानां बल कर्मकृत परम् ॥१०।२६

१६३. प्रायो हि सोदरस्नेहात् पर स्नेहो न विद्यते ॥१०।३२

१६४. पराभिभवमात्रेण क्षत्रियाणां कृतार्थता ॥१०।१४७

१६५. स्वर्ग धिक् च्युतियोगेन धिग् देह दु.खभाजनम् ॥१०।६३

१६६. प्रवयसा नृणाम् । प्रव्रज्या शोभते ॥१०।१६५॥

१६७ नैव मृत्युर्विवेकवान् । शरद्घन इवाकस्माद्देहो नाश प्रपद्यते ।।१०।६६६

१६८ येन केनचिदुदात्तकर्मणा कारणेन रिपुणेतरेण वा ।
निर्मितेन समवाप्यते मति श्रेयसी न तु निकृष्टकर्मणा ।।१०।१७७

१६९. य प्रयोजयति मानस शुभे यस्य तस्य परम स बान्धवः ।
भोगवस्तुनि तु यस्य मानस य. करोति परमारि कस्य स ।।१०।१७८

१७०. निसर्गोऽय यदाप्तस्य पुर· शोको विवर्द्धते । ११।३०

१७१. प्राणनाथपरित्यक्ता का वा स्त्री सुखमृच्छति ? ११।५४

१७२ सत्य वदन्ति राजान पृथिवीपालनोद्यता. ।
ऋपयस्ते हि भाप्यन्ते ये स्थिता जन्तुपालने ।। ११।५८

१७३. यतो धर्मस्ततो जय ।। ११।७४

१७४. हिंसायज्ञमिम घोरमाचरन्ति न ये जना ।
दुर्गति ते न गच्छन्ति महादु खविधायिनीम् ।। ११।१०४

१७५. कष्ट पश्यत नर्त्यन्ते कर्मभिर्जन्तव. कथम् ? ११।१२३

१७६. यथा हि छर्दित नान्न भुज्यते मानुपै पुनः ।
तथा त्यक्तेपु कामेषु न कुर्वन्ति मति बुधा. ।। ११।१२६

१७७ दह्यमाने यथागारे कथञ्चिदपि नि सृत. ।
तत्रैव पुनरात्मान प्रक्षिपेन्मूढमानस ।। ११।१३२
यथा च विवर प्राप्य निष्क्रान्त पञ्जरात् खग ।
निवृत्य प्रविशेद् भूयस्तत्रैवाज्ञानचोदित ।। ११।१३३
तथा प्रव्रजितो भूत्वा यो यातीन्द्रियवश्यताम् ।
निन्दित स भवेल्लोके न च स्वार्थ समश्नुते ।। ११।१३४

१७८. प्राणिनो ग्रन्थसगेन रागद्वेपसमुद्भव ।
रागात् सञ्जायते कामो द्वेपाज्जन्तुविनाशनम् ।। ११।१३६
कामक्रोधाभिभूतस्य मोहेनाक्रम्यते मन ।
कृत्याकृत्येपु मूढस्य मतिर्न स्याद्विवेकिनी ।। ११।१३७
यत्किञ्चित्कुर्वतस्तस्य कर्मोपार्जयतोऽशुभम् ।
ससारसागरे घोरे भ्रमण न निवर्तते ।। ११।१३८
एतान् ससर्गजान् दोषान् विदित्वाशु विपश्चित ।
वैराग्यमधिगच्छन्ति नियम्यात्मानमात्मना ।। ११।१३९

१७९ अरण्यान्या समुद्रे वा स्थित वारातिपञ्जरे ।
स्वयकृतानि कर्माणि रक्षन्ति न परो जन ।। ११।१४७

य पुन प्राप्तकाल स्याज्जनन्यङ्कगतोऽपि स ।
ह्रियते मृत्युना जीव स्वकर्मवशता गत. ।। ११।१४८

१८० अशुद्धं कर्तृभि. प्रोक्त वचन स्यान्मलीमसम् ।। ११।१६६

१८१ सति सर्वज्ञतायोगे वक्ता हि सुतरा भवेत् ।। ११।१८५

१८२. गुणैर्वर्णव्यवस्थिति. ।। ११।१९८

१८३. ब्राह्मण्य गुणयोगेन न तु तद्योनिसम्भवात् ।। ११।२००

१८४ न जातिर्गर्हिता काचिद् गुणा कल्याणकारणम् । ११।२०३

१८५ विद्याविनयसम्पन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि ।
शुचि चैव श्वपाके च पण्डिता समदर्शिन. ।। ११।२०४

१८६. शास्त्रमुच्यते । तद्धि यन्मातृवच्छास्ति सर्वस्मै जगते हितम् । ११।२०९

१८७ प्रायश्चित्त च निर्दोषे वक्तु कर्मणि नोचितम् ।। ११।२१०

१८८. किञ्चिन्न कृत्य प्राणिहिंसया ।। ११।३००

१८९. अज्ञानेन हि जन्तूना भवत्येव दुरीहितम् ।। ११।३०५

१९० पुण्यसम्पूर्णदेहाना सौभाग्य केन कथ्यते ? ११।३७१

१९१. नाम श्रुत्वा प्रणमति जन पुण्यभाजा नराणाम् ।। ११।३८३

१९२. पुण्यबन्धे यतध्वम् ।। ११।३८३

१९३ ज्येष्ठो व्याधिसहस्राणा मदनो मतिसूदन ।
येन सम्प्राप्यते दु ख नरैरक्षतविग्रहै ।। १२।३३

१९४. प्रधान दिवसाधीश सर्वेषा ज्योतिषा यथा ।
तथा समस्तरोगाणा मदनो मूर्ध्नि वर्तते ।। १२।३४

१९५. आमगर्भेषु दु खानि प्राप्नुवन्ति चिर जना ।
ये शरीरस्य कुर्वन्ति स्वस्याविधिनिपातनम् ।। १२।४८

१९६. अहो कष्ट ससार सारवर्जित ।। १२।५०

१९७. पृथक् पृथक् प्रपद्यन्ते सुखदु खकरी गतिम् ।
जीवा. स्वकर्मसपन्ना कोऽत्र कस्य सुहृज्जन ? १२।५१

१९८. विजिगीषुत्व क्रियते दीर्घदर्शिना ।। १२।९४

१९९ समान ख्याति येनात सखिशब्द प्रवर्तते ।। १२।१००

२००. सख्यो हि जीवितालम्बन परम् । १२।१०१

२०१. विधवा भर्तृसयुक्ता प्रमदा कुलबालिका ।
वेश्या च रूपयुक्तापि परिहार्या प्रयत्नत ।। १२।१२४

२०२. लोकद्वयपरिभ्रष्ट. कीदृशो वद मानव ? १२।१२५

२०३ नरान्तरमुखक्लेदपूर्णेऽन्याङ्गविमर्दिते ।
उच्छिष्टभोजने भोक्तु (भद्रे !) वाञ्छति को नर ? ८।१२६
२०४ उदारा भवन्ति हि दयापरा ॥ १२।१३१
२०५ प्राणिना रक्षणे धर्म श्रूयते प्रकटो भुवि ॥ १२।१३२
२०६ उत्तिष्ठतो मुख भक्तुमधरेणापि शक्यते ।
कण्टकस्यापि यत्नेन परिणाममुपेयुप ॥ १२।१६०
२०७ उत्पत्तावेव रोगस्य क्रियते ध्वसन सुखम् ।
व्यापी तु बद्धमूल स्यादूर्ध्व स क्षेत्रियोऽथवा ॥ १२।१६१
२०८ जायते विफल कर्माप्रेक्षापूर्वकारिणाम् ॥ १२।१६५
२०९ भवत्यर्थस्य ससिद्ध्यै केवल च न पौरुपम् ।
कर्पकस्य विना वृष्ट्या का सिद्धि कर्मयोगिन ? १२।१६०
२१० समानमहिमानाना पठता च समादरम् ।
अर्थभाजो भवन्त्येके नापरे कर्मणा वशात् ॥ १२।१६७
२११. प्रकृष्टवयसा पुसा धीर्यात्येवाथवा क्षयम् ॥ १२।१७२
२१२ हतानेककुरग किं शबरो हन्ति नो हरिम् ॥ १२।१७६
२१२(क) सग्रामे शस्त्रसम्पातजातज्वलनजालके ।
वर प्राणपरित्यागो न तु प्रतिनरानति ॥ १२।१७७
२१३ प्राणानभिमुखीभूता मुञ्चन्ति न तु सायकान् ॥ १२।२०४
२१४ नखेन प्राप्यते छेद वस्तु यत्स्वल्पयत्नत ।
व्यापार परशोस्तत्र ननु (तात !) निरर्थक ॥ १२।२२८
२१५ तन्दुलेषु गृहीतेषु ननु शालिकलापत ।
त्यागस्तुषपलालस्य क्रियते कारणाद्विना ॥ १२।३५२
२१६ धिगतिचपल मानुषसुखम् । १२।३७५
२१७ रविरुचिकर यान्तु सुकृतम् ॥ १२।३७६
२१८ परगर्वापसाद हि समीहन्ते नराधिपा ॥१३।४
२१९. (किन्तु) मातेव नो शक्या त्यक्तु जन्मवसुन्धरा ।
सा हि क्षणाद्वियोगेन कुरुते चित्तमाकुलम् ॥ १३।२८
२२० जन्मभूमे. किमुच्यताम् ? १३।३०
२२१ धिग् विद्यागोचरैश्वर्य विलीन यदिति क्षणात् ।
शारदानामिवाब्दाना वृन्दमत्यन्तमुन्नतम् ॥१३।४०
२२२ अथवा कर्मणामेतद्वैचित्र्य कोऽन्यथा नर ।
कर्त्तु शक्नोति तेषा हि सर्वमन्यद्बलाधरम् ॥१३।४२

२२३. कर्मणामुचितं तेषां जायते प्राणिना फलम् ।।१३।६८
२२४. हेतुना न विना कार्यं भवतीति किमद्भुतम् ? १३।६९
२२५. लोकत्रयेऽपि तन्नास्ति तपसा यन्न साध्यते ।
बलानां हि समस्ताना स्थितं मूर्ध्नि तपोबलम् ।।१३।९२
२२६. न सा त्रिदशनाथस्य शक्तिः कान्तिर्द्युतिर्धृति ।
तपोधनस्य या साधोर्यथाभिमतकारिण ।।१३।९३
२२७ विधाय साधुलोकस्य तिरस्कारं जना महत् ।
दु खमत्र प्रपद्यन्ते तिर्यक्षु नरकेषु च ।।१३।९४
२२८ मनसापि हि साधूना पराभूतिं करोति यः ।
तस्य सा परमं दुःख परत्रेह च यच्छति ।।१३।९५
२२९. यस्त्वाक्रोशति निर्ग्रन्थ हन्ति वा क्रूरमानस. ।
तत्र किं शक्यते वक्तु जन्तौ दुष्कृतकर्मणि ।।१३।९६
२३०. कायेन मनसा वाचा यानि कर्माणि मानवा ।
कुर्वते तानि यच्छन्ति निकचानि फल ध्रुवम् ।।१३।९७
२३१. साधो. सङ्गमनाल्लोके न किञ्चिद्दुर्लभ भवेत् ।
बहुजन्मसु न प्राप्ता बोधिर्येनाधिगम्यते ।।१३।१०१
२३२. प्रायेण महतां शक्तिर्यादृशी रौद्रकर्मणि ।
कर्मण्येवं विशुद्धेऽपि परमा चोपजायते ।।१३।१०८
२३३. स्तोकमपीह न चाद्भुतमस्ति न्यस्य समस्तपरिग्रहसङ्गम् ।
यत्क्षणतो दुरितस्य विनाशं ध्यानबलाज्जनयन्ति बृहन्तः ।।१३।१११
२३४ अर्जितमत्युरुकालविधानादिन्धनराशिमुदारमशेषम् ।
प्राप्य पर क्षणतो महिमान किं न दहत्यनिलः कणमात्र ।।१३।११२

(चतुर्दश पर्व मे अनन्तबल केवली का उपदेश है। उसमे प्राय. विचारात्मक पद्य ही हैं जिन्हे धार्मिक सुभाषित कहा जा सकता है। उनमे कुछ यहाँ दिये जा रहे हैं।)

२३५. सुप्तमेतेन जीवेन स्थलेऽम्भसि गिरौ तरौ।
गहनेषु च देशेषु भ्राम्यता भवसकटे ।।१४।३६
२३६. तिलमात्रोऽपि देशोऽसौ नास्ति यत्र न जन्तुना ।
प्राप्तं जन्म विनाशो वा संसारावर्तपातिना ।।१४।३८
२३७. सर्वं तु दुःखमेवात्र सुखं तत्रापि कल्पितम् ।।१४।४६

२३८ कृत्वा चतुर्गतौ नित्य भवे भ्राम्यन्ति जन्तव.।
अरघट्टघटीयन्त्रसमानत्वमुपागता. ॥१४।५०

२३९ सम्यग्दर्शनशक्त्या च त्रायन्ते मुनयो जनान् ॥१४।५५

२४० दर्शनेन विशुद्धेन ज्ञानेन च यदन्वितम्।
चारित्रेण च तत्पात्र परम परिकार्तितम् ॥१४।५६

२४१ दान निन्दितमप्येति प्रशसा पात्रभेदत.।
शुक्तिपीत यथा वारि मुक्तीभवति निश्चयम् ॥१४।७७

२४२ अन्तरङ्ग हि सकल्प· कारण पुण्यपापयो ।
विना तेन वहिर्दान वर्प पर्वतमूर्धनि ॥१४।७९

२४३ वाणिज्यसदृशो धर्मस्तत्रान्वेष्यालपभूरिता।
वहुना हि पराभूति क्रियतेऽल्पस्य वस्तुन ॥१४।९१

२४४ यथा विषकण प्राप्त सरसी नैव दुष्यति।
जिनधर्मोद्यतस्यैव हिंसालेशो वृथोद्भव.॥१४।९२

२४५ आशापाशवशा जीवा मुच्यन्ते धर्मबन्धुना ॥१४।१०२

२४६ नैव किञ्चिदसाध्यत्व धर्मस्य प्रतिपद्यते ॥१४।१२५

२४७. सारस्त्रिभुवने धर्मः सर्वेन्द्रियसुखप्रद ।
क्रियते मानुषे देहे ततो मनुजता परा ॥१४।१५५

२४८. तृणाना शालय. श्रेष्ठा पादपाना च चन्दना ।
उपलाना च रत्नानि भवाना मानुषो भव· ॥१४।१५६

२४९ पतित तन्मनुष्यत्व पुनर्दुर्लभसङ्गमम्।
समुद्रसलिले नष्ट यथा रत्न महागुणम् ॥१४।१५९

२५०. इहैव मानुषे लोके कृत्वा धर्म यथोचितम्।
स्वर्गादिषु प्रपद्यन्ते सर्वं प्राणभृत फलम् ॥१४।१६०

२५१ न शील न च सम्यक्त्वं न त्याग साधुगोचर ।
यस्य तस्य भवाम्भोधितरण जायते कथम् ॥१४।२२९

२५२. ससारसागरे भीमे रत्नद्वीपोऽयमुत्तम.।
यदेतन्मानुष क्षेत्र तद्धि दु.खेन लभ्यते ॥१४।२३४

२५३ यथात्र सूत्रार्थं कश्चित् सचूर्णयेन्मणीन्।
विषयार्थं तथा धर्मरत्नाना चूर्णको जन ॥१४।१३६

२५४ स्वल्प स्वल्पमपि प्राज्ञैः कर्त्तव्य सुकृतार्जनम्।
पतद्भिर्विन्दुभिर्जाता महानद्य समुद्रगाः ॥१४।२४४

२५५. वर्जनीया निशाभुक्तिरनेकापायसगता ॥१४।३०८

२५६. धर्मो मूल सुखोत्पत्तेरधर्मो दु खकारणम् ।
इति ज्ञात्वा भजेद्धर्ममधर्म च विवर्जयेत् ॥१४।३१०

२५७ आगोपालाङ्गन लोके प्रसिद्धिमिदमागतम् ।
यथा धर्मेण शर्मेति विपरीतेन दु खितम् ॥१४।३११

१५८ हुताशनशिखा पेया बद्धव्यो वायुरशुके ।
उत्क्षेप्तव्यो धराधीशो निर्ग्रन्थत्वमभीप्सता ॥१४।३६३

२५९. भवन्ति कर्माणि यदा शरीरिणा प्रशान्तियुक्तानि विमुक्तिभाविनाम् ।
तदोपदेश परम गुरोर्मुखादवाप्नुवन्ति प्रभव शुभस्य ते ॥१४।३८०

२६० अत्यन्तव्याकुलप्राय कन्यादु ख मनस्विनाम् ॥१५।२३

२६१ गमिष्यति पति श्लाघ्य रमयिष्यति त चिरम् ।
भविष्यत्युज्झिता दोषैरतिचिन्ता नृणा सुता ॥१५।२४

२६२ स्त्रीहेतो किं न वेष्यते ? १५।३५

२६३ अथवा वचनज्ञानमस्पष्टमुपजायते ॥१५।५२

२६४ हताश विगनङ्गकम् ॥१५।१०१

२६५ मृदुचित्ता स्वभावेन भवन्ति किल योषित ॥१५।११२

२६६ अथवा सर्वकार्येषु साधनीयेषु विष्टपे ।
मित्र परममुज्झित्वा कारण नान्यदीक्ष्यते ॥१५।११०

२६७ कुटुम्बी क्षितिपालाय, गुरुवेऽन्तेवसन्, प्रिया ।
पत्यै, वैद्याय रोगार्तो, मात्रे शैशवसङ्गत ॥१५।१२२
निवेद्य मुच्यते दु खाद्यथात्यन्तपुरोरपि ।
मित्रायैव नर प्राज्ञ. ॥१५।१२३

२६८. जीवित ननु सर्वस्यादिष्ट सर्वशरीरिणाम् ।
सति तत्रान्यकार्याणामात्मलाभस्य सम्भव. ॥१५।१२७

२६९ श्लाघ्यसम्बन्धजस्तोषो वधूनामभवत्पर ॥१५।१५१

२७०. इतरस्यापि नो युक्त कर्त्तु नारीविपादनम् ॥१५।१७३

२७१ विचित्रा चेतसो वृत्तिर्जनस्यात्र न कुप्यते ॥१५।१७५

२७२ सन्देहविषमावर्त्ता दुर्भावग्रहसङ्कुला ।
दूरत परिहर्तव्या पररक्ताङ्गनापगा ॥१५।१७९

२७३ कुभावगहनात्यन्त हृषीकव्यालजालिनी ।
बुधेन नार्यरण्यानी सेवनीया न जातुचित् ॥१५।१८०

२७४ किं राजसेवन शत्रुसमाश्रयसमागमम् ।
श्लथ मित्र स्त्रिय चान्यसक्ता प्राप्य कुत सुखम् ? १५।१८१

२७५ इष्टान् बन्धून् सुतान् दारान् बुवा मुञ्चन्त्यसत्कृता: ।
पराभवजलाध्माता क्षुद्रा नश्यन्ति तत्र तु ॥१५।१८२

२७६ मदिरारागिण वैद्य द्विप शिक्षाविवर्जितम् ।
अहेतुवैरिण क्रूर धर्म हिंसनसङ्गतम् ॥१५।१८३
मूर्खगोष्ठी कुमर्याद देश चण्ड शिशुं नृपम् ।
वनितां च परासक्ता सूरिर्दूरेण वर्जयेत् ॥१५।१८४

२७७ अविदिततत्त्वस्थितयो विदधति यज्जन्तव परेऽशर्म ।
तत्तत्र मूलहेतौ कर्मरवौ तापके दृष्टम् ॥१५।२२७

२७८. अस्मत्प्रयतनासाध्यो गोचरो ह्येष कर्मणाम् ॥१६।३०

२७९. नोदाराणा यत कृत्ये मुच्यते चेतसा रस. ॥१६।५४

२८० भर्तापि तेजसा कृत्य कुरुतेऽरुणसङ्गत. ॥१६।६९

२८१ जगद्दाहे स्फुलिङ्गस्य किं वा वीर्यं परीक्ष्यते ? १६।७६

२८२ रमणेन वियुक्ताया पल्लवोऽप्येति खड्गताम् ।
चन्द्रांशुरपि वज्रत्व स्वर्गोऽपि नरकायते ॥१६।११६

२८३ धिगस्मत्सदृशान् मूर्खानप्रेक्षापूर्वकारिण. ।
जनस्य ये विना हेतु यत्कुर्वन्त्यसुखासनम् ॥१६।१२१

२८४ निश्चित्य विहिते कार्ये लभन्ते प्राणिन सुखम् ॥५६।१२६

२८५ कर्मवशीकृतम् ।
जगत्सर्वमवाप्नोति दु खं वा यदि वा सुखम् ॥१६।१५९

२८६ ननु चन्द्रेण शर्वर्या. सगमे का न चारुता ? १६।१६३

२८७ भवत्यन्यथवा काले कल्याण कर्मचोदितम् ॥१६।१६५

२८८. क्षेमाय दीर्घदर्शित्व कल्पते प्राणधारिणाम् ॥१६।२३२

२८९. कदाचिदिह जायते स्वकृतकर्मपाकोदयात्,
सुखं जगति सगमादभिमतस्य सद्वस्तुन ।
कदाचिदपि सभवत्यसुभृतामसौख्य परम्,
भवे भवति न स्थिति समगुणा यत. सर्वदा ॥१६।२४२

२९०. यत्रैव जनक क्रुद्धो विदधाति निराकृतिम् ।
तत्र शेषजने काऽऽस्था तच्छन्दकृतचेष्टिते ॥१७।६१

२९१ नेत्रे निमील्य सोढव्य कर्म पाकमुपागतम् ॥१७।८१

२९२ सर्वेषामेव जन्तूना पृष्ठत· पार्श्वतोऽग्रत. ।
कर्म तिष्ठति ॥१७।८२

२९३. अप्सर.शतनेत्रालीनिलयीभूतविग्रहा. ।
प्राप्नुवन्ति पर दु खं सुकृतान्ते, सुरा अपि ॥१७।८३
२९४ चिन्तयत्यन्यथा लोक. प्राप्नोति फलमन्यथा ।
लोकव्यापारसक्तात्मा परमो हि गुर्विधि. ॥१७।८४
२९५. हितङ्करमपि प्राप्त विधिर्नाशयति क्षणात् ।
कदाचिदन्यदा धत्ते मानसस्याप्यगोचरम् ॥१७।८५
२९६. गतय कर्मणा कस्य विचित्रा परिनिश्चिता· ॥१७।८६
२९७. साधुवर्गो हि सर्वेभ्य. प्राणिभ्यः शुभमिच्छति ॥१७।१७१
२९८. भवे चतुर्गतौ भ्राम्यन् जीवो दु खैश्चित सदा ।
सुमानुषत्वमायाति शमे कटुककर्मण ॥१७।१७५
२९९. यानि यानि हि सौख्यानि जायन्ते चात्र भूतले ।
तानि तानि हि सर्वाणि जिनभक्ते विशेषत ॥१७।२०५
३००. रोगमूलस्य हि च्छाया न स्निग्धा जायते तरो. ॥१७।३३२
३०१ दु ख हि नाशमायाति सज्जनाय निवेदितम् ।
महता ननु. शैलीय यदापद्गततारणम् ॥१७।३३४
३०२ स्खलन्ति न विधातव्ये वनेऽपि गुणिनो जनाः ॥१७।३५७
३०२. सम्भवतीह भूधररिपु. पविरपि कुसुम,
वह्निरपीन्दुपादशिशिर पृथु कमलवनम् ।
खड्गलतापि चारुवनिता सुमृदुभुजलता,
प्राणिषु पूर्वजन्मजनितात्सुचरितबलत ॥१७।४०५
३०४. एष तपत्यहो परिदृढ जगदनवरत
व्याधिसहस्ररश्मिनिकरो ननु जननरविः ॥१७.४०६
३०५. विवेकेन हि निर्युक्ता जायन्ते दु.खिनो जनाः । १८।४७
३०६. अपरीक्षणशीलाना सहसा कार्यकारिणाम् ।
पाश्चात्तापो भवत्येव जनाना प्राणधारिणाम् ॥ १८।६२
३०७. न त्वापन्नहितोन्मुक्ता महात्मानो भवन्ति हि ॥ १८।७९
३०८. उपायेभ्यो हि सर्वेभ्यो वशीकरणवस्तुनि ।
कामिनीसङ्गमुज्झित्वा नापर विद्यते परम् ॥ १८।९९
३०९. किं शिवस्थान कदाचिल्लब्धमाप्यते ? १९।११
३१०. पुण्यस्य पश्यतौदार्यं यदुद्भवति तद्वति ।
बहूनामुद्भव पुसा पतिते पतन तथा ॥ १९।६८
३११. कर्मवैचित्र्याल्लोकोऽय चित्रचेष्टित. ॥ १९।७९

३१२. पालिका मुग्धलोकस्य शत्रुलोकस्य नाशिका।
गुरुशुश्रूषिणी चेष्टा ननु चेष्टा महात्मनाम् ॥१९।८६

३१३ ग्रहणं ननु वीराणा रणे सत्कीर्तिकारणम्। १९।८९

३१४. द्वयमेव रणे वीरै: प्राप्यते मानशालिभि:।
ग्रहणं मरण वापि कातरैश्च पलायितुम् ॥ १९।९०

३१५ एकापि यस्येह भवेद् विरूपा
नरस्य जाया प्रतिकूलचेष्टा।
रते: पतित्व स नर: करोति
स्थित. सुखे ससृतिधर्मजाते ॥ १९।१३१

३१६. विषयवशमुपेतैर्नष्टतत्त्वार्थबोधै:
कविभिरतिकुशीलैर्नित्यपापानुरक्तै: ।
कुरचितगरहेतुग्रन्थवाग्वागुराभि.
प्रगुणजनमृगौघो बध्यते मन्दभाग्य. ॥ १९।१३९

३१७ कुलानामिति सर्वेषां श्रावकाणा कुलं स्तुतम्।
आचारेण हि तत्पूतं सुगत्यर्जनतत्परम् ॥ २०।१४०

३१८ असारा धिगिमा शोभां मर्त्याना क्षणिकामिति ॥ २०।१६०

३१९. न पाथेयमपूपादि गृहीत्वा कश्चिदृच्छति।
लोकान्तरं न चायाति किन्तु तत्सुकृतेतरम् ॥ २०।१९६

३२०. कैलासकूटकल्पेषु वरस्त्रीपूर्णकुक्षिषु।
यद्वसन्ति स्वगारेषु तत्फलं पुण्यवृक्षजम् ॥ २०।१९७

३२१. शीतोष्णवासयुक्तेषु कुगृहेषु वसन्ति यत्।
दारिद्रचपङ्कनिर्मग्नास्तदधर्मतरो. फलम् ॥ २०।१९८

३२२. विन्ध्यकूटसमाकारैर्वारणेन्द्रैर्व्रजन्ति यत्।
नरेन्द्राश्चामरोद्धूता: पुण्यशालेरिदं फलम् ॥ २०।१९९

३२३. तुरङ्गैर्यदल स्वङ्गैर्गम्यते चलचामरै.।
पादातमध्यगै. पुण्यनृपतेस्तद्विचेष्टितम् ॥ २०।२००

३२४. कल्पप्रासादसङ्काश रथमारुह्य यज्जना.।
व्रजन्ति पुण्यशैलेन्द्रात् स्रुतोऽसौ स्वादुनिर्झर. ॥ २०।२०१

३२५. स्फुटिताभ्या पदाङ्घ्रिभ्यां मलग्रस्तपटच्चरै:।
भ्रम्यते पुरुषै. पापविषवृक्षस्य तत्फलम् ॥ २०।२०२

३२६. अन्न यदमृतप्राय हेमपात्रेषु भुज्यते।
स प्रभावो मुनिश्रेष्ठैरुक्तो धर्मरसायन. ॥ २०।२०३

३२७ देवाधिपतिता चक्रचुम्बिता यच्च राजता।
लभ्यते भव्यशार्दूलैस्तदहिंसालताफलम् ॥ २०।२०४

३२८. रामकेशवयोर्लक्ष्मीर्लभ्यते यच्च पुङ्गवैः।
तद्धर्मफलम् ॥ २०।२०५

३२९. सनिदान तपस्तस्माद्वर्जनीय प्रयत्नत·।
तद्धि पश्चान्महाघोरदु खदानसुशिक्षितम् ॥ २०।२१५

३३० केचिद्गच्छन्ति मोक्ष कृतपुरुतपस स्तोकपङ्काश्च केचित्।
केचिद्भ्राम्यन्ति भूयो बहुभवगहना ससृतिं निर्विरामा ॥ २०।२४९

३३१. चक्रवत्परिवर्तन्ते व्यसनानि महोत्सवै।
शनैर्मायादयो दोषा प्रयान्ति परिवर्द्धनम् ॥२१।५९

३३२. शुभाशुभसमासक्ता व्यतिक्रामन्ति मानवा ॥२१।७१

३३३ जातस्य सुन्दरावश्य मृत्यु प्रेतस्य सम्भव ॥२१।११३

३३४. मृत्युजन्मघटीयन्त्रमेतद् भ्रात्म्यत्यनारतम्।
विद्युत्तरङ्गदुष्टाहिरसनेभ्योऽपि चञ्चलम् ॥२१।११४

३३५. स्वप्नभोगोपमा भोगा जीवित बुद्बुदोपमम् ॥२१।११५

३३६. सन्ध्यारागोपम स्नेहस्तारुण्यं कुसुमोपमम् ॥२१।११६

३३७. परिहासेन किं पीत नौषध हरते रुजम् ॥२१।११७

३३८. अर्थो धर्मश्च कामश्च त्रयस्ते तरुणोचिता.।
जरापरीतकायस्य दुष्करा प्राणधारिण ॥२१।१३६

३३९ कष्टमहो न शक्यते
विधिर्विनेतु प्रकटीकृतोदय·।·२१।१४६

३४०. उत्सार्य यो भीपणमन्धकार
करोति निष्कान्तिकमिन्दुबिम्बम्।
असौ रवि. पद्मवनप्रबोध·
स्वर्भानुमुत्सारयितु न शक्त· ॥२१।१४७
तारुण्यसूर्योऽप्ययमेवमेव
प्रणश्यति प्राप्तजरोपसग·।
जन्तुर्वराको वरपाशबद्धो
मृत्योरवश्य मुखमभ्युपैति ॥२१।१४८

३४१ धर्मे विनष्टे वद किं न नष्टम्? २१।१५५

३४२. पश्य श्रेणिक! ससारे समोहस्य विचेष्टितम्।
यत्राभीष्टस्य पुत्रस्य माता गात्राणि खादति ॥२२।९३

किमतोऽन्यत्पर कष्ट यज्जन्मान्तरमोहिता ।
वान्धवा एव गच्छन्ति वैरिता पापकारिण ॥२२।६४

३४३ कर्मभूमिमिमा प्राप्य धन्यास्ते युवपुङ्गवा ।
व्रतपोत समारुह्य तेरुर्ये भवसागरम् ॥२२।१११

३४४ अधोगति (र्यतो) राज्यादत्यक्तादुपजायते ।
सम्यग्दर्शनयोगात्तु गतिरूर्ध्वमसशया ॥२२।१७८

३४५. जीवितायाखिल कृत्य क्रियते (नाथ!) जन्तुभि ।
त्रैलोक्येशत्वलाभोऽपि (वद) तेनोज्झितस्य क: ? २३।३८

३४६ उपर्युपरि हि प्रायश्चलन्ति विदुषा धिय ॥२३।४५

३३७ जन्तुभ्यो यो ददात्यभय नर ।
किं न तेन भवेद्दत्त साधूना धुरि तिष्ठता ? २३।४६

३४८ यद्यत्र यावच्च यतश्च येन
दु ख सुख वा पुरुषेण लभ्यम् ।
तत्तत्र तावच्च ततश्च तेन
सम्प्राप्यते कर्मवशानुगेन ॥२३।६२

३४९ दु शिक्षितार्थैर्मनुजैरकार्ये
प्रवर्तते जन्तुरसारबुद्धि ॥२३।६४

३५० आशीविषाङ्गप्रभवोऽपि सर्प—
स्तार्क्ष्यस्य शक्नोति किमु प्रहर्तुम् ? २३।६०

३५१. क्वेभ सशङ्को मदमन्दगामी
क्व केसरी वायुसमानवेग. ? २३।६१

३५२ कालज्ञान हि सर्वेपा नयाना मूर्धनि स्थितम् ॥२४।१००

३५३. अवस्थित जगद्व्याप्य नुदेदर्क कथ तम ।
सव्येष्टा चेद्भवेदस्य न मूर्तिररुणात्मिका ॥२४।१२८

३५४ दुराचारयुक्ता पर यान्ति दुख
सुख साधुवृत्ता रविप्रख्यभास ॥२४।१३५

३५५ द्रविणोपार्जन विद्याग्रहण धर्मसग्रह ।
स्वाधीनमपि तत्प्रायो विदेशे सिद्धिमश्नुते ॥२५।४४

३५६. ज्ञानं सम्प्राप्य किञ्चिद् व्रजति परमता तुल्यमन्यत्र यात
तावत्त्वेनापि नैति क्वचिदपि पुरुषे कर्मवैषम्ययोगात् ।
अत्यन्त स्फीतिमेति स्फटिकगिरितटे तुल्यमन्यत्र देशे
यात्येकान्तेन नाश तिमिरवति रवेरंशुवृन्दं खगौघै ॥२५।५६

३५७. विद्याधर्मावगाहश्च जायतेऽव्यहितात्मनाम् । २६।७
३५८. पुरा ससर्गत. प्रीति. प्राणिनामुपजायते ।
प्रीतितोऽभिरतिप्राप्ती रतेर्विश्रम्भसम्भव ॥
सद्भावात्प्रणयोत्पत्ति. प्रेमैव पञ्चहेतुकम् ।
दुर्मोच वध्यते कर्म पातकैरिव पञ्चभि. ॥ २६।८-९
३५९. भीषिताना दरिद्राणामार्ताना च विशेषत ।
नारीणा पुरुषाणा च सर्वेषा शरण नृपः ॥ २६।२२
३६०. स्नेहस्य किमु दुष्करम् । २६।४२
३६१. आखोर्गिरिविलस्थस्य कि करोतु मृगाधिपः । २६।४९
३६२. दु खिताना दरिद्राणा वर्जिताना च बान्धवै. ।
व्याधिसपीडिताना च प्रायो भवति धर्मधीः ॥ २६।६१
३६३. माता पिता च पुत्रश्च मित्राणि च सहोदराः ।
भक्षितास्तेन यो मास भक्षयत्यधमो नरः ॥ २६।७४
३६४. ननु रविकरसङ्गस्योचिता पद्मलक्ष्मी. । २६।१७१
३६५. न ह्याखूना विरोधेन क्षुभ्यन्ति वरवारणा. ।
न चापि तूलदाहार्थं सन्नह्यति विभावसु. ॥ २७।३७
३६६. सद्य उत्पन्नो भृशमल्पोऽपि पावक ।
कथ दहति विस्तीर्ण महद्भिः कि प्रयोजनम् ॥ २७।४०
३६७. बालः सूर्यस्तमो घोर द्युतीर् ऋक्षगणस्य च ।
एको नाशयति क्षिप्र भूतिभि' कि प्रयोजनम् ॥ २७।४१
३६८. सत्त्वत्यागादिवृत्तीना क्षत्रियाणामिय स्थिति. ।
उत्सहन्ते प्रयातु यद्विहातुमपि जीवितम् ॥ २७।४३
३६९. अथवा क्षयमप्राप्ते जन्तुरायुषि नाश्नुते ।
मरण गहन प्राप्त पर यद्यपि जायते ॥ २७।४४
३७०. स्व ननु कर्म पुसाम् ।
समागमे गच्छति हेतुभाव वियोजने वा सुजनेन साकम् ॥ २७।९३
३७१. शिशोर्विषफले प्रीतिर्नि.स्वस्य बदरादिषु ।
ध्वाङ्क्षस्य पादपे शुष्के स्वभाव. खलु दुस्त्यज. ॥ २८।१४३
३७२. अत्यन्तविपुल. क्षारसागर. ।
न तत्करोति यद्वाप्य. स्तोकस्वादुपयोभृत. ॥ २८।१४६
३७३. अत्यन्तघनबन्धेन तमसा भूयसापि किम् ।
अल्पेन तु प्रदीपेन जन्यते लोकचेष्टितम् ॥ २८।१४७

३७४ असंख्या अपि मातङ्गा मदिनः कुर्वते न तत् ।
केशरी यत्किशोरः संश्चन्द्रनिर्मलकेसरः ॥ २८।१४८

३७५. अर्हन्तस्त्रिजगत्पूज्याश्चक्रिणो हरयो बलाः ।
उत्पद्यन्ते नरा यस्यां सा कथं निन्दिता मही ॥ २८।१५४

३७६ वायसा अपि गच्छन्ति नभसा तेन किं भवेत् ।
गुणेष्वत्र मनः कृत्यमिन्द्रजालेन को गुणः ॥ २८।१६५

३७७. शरीरे सति कामिन्यो भविष्यन्ति मनीषिताः ॥ २८।१८४

३७८. ननु कर्मार्जितं पुरा ।
नर्तयत्यखिलं लोकं नृत्ताचार्यो ह्यसौ परः ॥ २८।२०२

३७९ पद्मगर्भदलच्छाया साक्षाल्लक्ष्मीरिवोज्ज्वला ।
ईदृशी पुरुपुण्यस्य पुंसो भवति भामिनी ॥ २८।२५५

३८० यादृग् येन कृत कर्म भुङ्क्ते तादृक् स तत्फलम् ।
न ह्युप्तान् कोद्रवान् कश्चिदश्नुते शालिसम्पदम् ॥ २८।२६५

३८१. समवगम्य जनाः शुभकर्मण- फलमुदारमशोभनतोऽन्यथा ।
कुरुत कर्म बुधैरभिनन्दितं भवत येन रवेरधिकप्रभाः ।२८।२७५

३८२. सर्वतो मरण दु.खम् ।।२९।२६

३८३ प्रसादव्वनिपर्यन्तप्रकोपा हि महास्त्रियः ।।२९।२९

३२४. प्रणयादपरावेऽपि ननु तुष्यन्ति योषितः ।।२९।३७

२८५. दयिते क्रियते यावत्कोपो दारुणमानसे ।
तावत्ससारसौख्यस्य विघ्नं जानीहि शोभने ।।२९।३८

३८६. यत्प्राप्तव्यं यदा येन यत्र यावद्यतोऽपि वा ।
तत्प्राप्यते तदा तेन तत्र तावत्ततो ध्रुवम् ।।२९।८३

३८७. असिधाराव्रतं जैनो जनोऽसक्त निषेवते ।।२९।९७

३८८. शक्नोति न सुरेन्द्रोऽपि विधातुं विधिमन्यथा ।।३०।२४

३८९. शासनस्य जिनेन्द्राणामहो माहात्म्यमुत्तमम् ।।३०।४७

३९०. करण यदतिक्रान्तं मृतमिष्ट च बान्धवम् ।
हृतं विनिर्गत नष्टं न शोचन्ति विचक्षणाः ।।३०।७२

३९१. कातरस्य विषादोऽस्ति दयिते प्राकृतस्य च ।
न कदाचिद्विषादोऽस्ति विक्रान्तस्य बुधस्य च ।।३०।७३

३९२. चरितं निरगाराणां शूराणां शान्तमीहितम् ।
शिव सुदुर्लभं सिद्ध सारं क्षुद्रभयावहम् ।।३०।८३

३९३. कुत. श्रद्धाविमुक्तस्य धर्मो धर्मफलानि च ? ३१।२०

३९४. पुण्येन लभते सौख्यमपुण्येन च दु.खिता।
कर्मणामुचितं लोक सर्व फलमुपाश्नुते ।।३१।७६

३९५. अहो कष्ट दुश्छेद्य स्नेहवन्धनम् ।।३१।९५

३९६. जन्तुरेकक एवाय भवपादपसङ्कुले।
मोहान्धो दु.खविपिने कुरुते परिवर्तनम् ।।३१।९९

३९७. अत्यत दुर्धरोद्दिष्टा प्रव्रज्या जिनसत्तमै.।.३१।१०९

३९८. मृत्यु. प्रतीक्षते नैव वाल तरुणमेव वा ।।३१।१३३

३९९. गृहाश्रमे महावत्स ! श्रूयते धर्मसञ्चय.।
अशक्य. कुनरैः कर्त्तु कुरुते राज्यसंगत ।।३१।१३४

४०० कामक्रोधादिपूर्णस्य का मुक्तिर्गृहसेविन ।।३१।१३५

४०१. न करोति यत. पात पित्रोः शोकमहोदधौ।
अपत्यत्वमपत्यस्य तद्वदन्ति सुमेधस. ।।३१।१५३

४०२. न हि सागररत्नानामुत्पत्ति. सरसो भवेत् ।।३१।१५५

४०३. भ्राजते त्रायमान. सन् वाक्य तत्पितृकस्य यत्।
लब्धवर्णैरिदं भ्रातुर्भ्रातृत्व परिकीर्तितम् ।।३१।१६३

४०४. स्वार्थ ससक्तनित्याश धिक् स्त्रैणमनपेक्षितम् ।।३१।१९३

४०५. सर्वासामेव शुद्धीनां मन शुद्धि. प्रशस्यते।

४०६. अन्यथालिङ्गयतेऽपत्यमन्यथालिङ्गयते पतिः ।।३१।२३३

४०७. नानाकर्मस्थिती त्वस्या को नु शोचति कोविद. ।।३१।२३७

४०८. असमाप्तेन्द्रियसुख कदाचित्स्थितिसक्षये।
पक्षी वृक्षमिव त्यक्त्वा देह जन्तुर्गमिष्यति ।।३१।२३९

४०९. धिग्भोगान्भोगिभोगाभान् भङ्गुरान्भीतिभाविन. ।।३२।५९

४१०. वियोगमरणव्याधिजराव्यसनभाजनम्।
जलवुद्वुदनि सार कृतघ्न धिक् शरीरकम् ।।३२।६१

४११. भाग्यवन्तो महासत्त्वास्ते नरा श्लाघ्यचेष्टिता.।
कपिभ्रूभङ्गुरा लक्ष्मी ये तिरस्कृत्य दीक्षिता. ।।३२।६२

४१२. धिक् स्नेह भवदु खाना मूलम् ।। ३२।८३

४१३. नहि भक्तेर्जिनेन्द्राणा विद्यते परमुत्तमम् ।।३२।१८२

४१४. हितं करोत्यसौ स्वस्य भूतानां यो दयापर.।
दीक्षितो गृहयातो वा वुधो निर्मलमानस. ।।३३।१०२

४१५. साहस कुरुते किं न मानवो योषिता कृते ।।३३।१४९

४१६ यथा किलाविनीताना भृत्याना विनयाहृतौ ।
कुर्वन्ति स्वामिनो यत्न विरोध कोऽत्र दृश्यते ॥३३।२१६

४१७ ननु योषित्सु कारुण्य कुर्वन्ति पुरुषोत्तमा ॥३३।२७३

४१८. प्रणम्य त्रिजगद्वन्द्य जिनेन्द्र परम शिवम् ।
तुङ्गेन शिरसा तेन कथमन्य प्रणम्यते ॥३३।२६५

४१९. मकरन्दरसास्वादलब्धवर्णो मधुव्रत ।
रासभस्य पद पुच्छे प्रमत्तोऽपि करोति किम् ? ३३।२६६

४२०. अपकारिणि कारुण्य य करोति स सज्जन ।
मध्ये कृतोपकारे वा प्रीति कस्य न जायते ॥३३।३०६

४२१. प्रायो माङ्गलिके लोको व्यवहारे प्रवर्तते ॥३४।४३

४२२ श्रमणा ब्राह्मणा गाव पशुस्त्रीबालवृद्धका. ।
सदोषा अपि शूराणा नैते वध्या किलोदिता· ॥३५।२८

४२३ धिग् धिग् नीचसमासङ्ग दुर्वच श्रुतिकारणम् ।
मनोविकारकरण महापुरुषवर्जितम् ॥३५।३०

४२४. वर तरुतले शीते दुर्गमे विपिने स्थितम् ।
परित्यज्याखिल ग्रन्थ विहृत भुवने वरम् ॥
वरमाहारमुत्सृज्य मरण सेवितु नृणम् ।
अवज्ञातेन नान्यस्य गृहे क्षणमपि स्थितम् ॥३५।३१-३२

४२५ अणुव्रतधरो यो ना गुणशीलविभूषित ।
त राम परया प्रीत्या वाञ्छितेन समर्चति ॥३५।८०

४२६ धनवान् पूज्यते नित्य यथादित्यो हिमागमे ॥३५।१८

४२७. द्रविणानीह पूज्यन्ते ॥३५।१५६

४२८ यस्यार्थास्तस्य मित्राणि यस्यार्थास्तस्य बान्धवा. ।
यस्यार्था न पुमाँल्लोके यस्यार्था न च पण्डित. ॥३५।१६१

४२९ अर्थेन विप्रहीनस्य न मित्र न सहोदर· ।
तस्यैवार्थसमेतस्य परोऽपि स्वजनायते ॥३५।६२

४३० सार्थो धर्मेण यो युक्तो सो धर्मो यो दयान्वित. ।
सा दया निर्मला ज्ञेया मास यस्या न भुज्यते ॥३५।१६३

४३१. मासाशनान्निवृत्ताना सर्वेषा प्राणधारिणाम् ।
अन्या मूलेन सम्पन्ना. प्रशस्यन्ते निवृत्तय ॥३५।१६८

४३२ अनभिज्ञो विशेषस्य विशेष कमवाप्तवान् ? ३५।१८१

४३३. अयमन्यश्च विवशो जनै स्वकृतभोगिभि ।
न योऽवगम्यते यत्र न स तत्र जनोऽर्च्यते ।।३५।७२

४३४. सर्वेषामेव जीवाना धनमिष्टसमागम ।
जायते पुण्ययोगेन यच्चात्मसुखकारणम् ।।३५।७८

४३५ योजनाना शतेनापि परिच्छिन्ने श्रुतान्तरे ।
इष्टो मुहूर्त्तमात्रेण लभ्यते पुण्यभागिभि. ।।३६।७९

४३६ ये पुण्येन विनिर्मुक्ता प्राणिनो दु खभागिन. ।
तेषा हस्तमपि प्राप्तमिष्टवस्तु पलायते ।।३६।८०

४३७. अरण्याना गिरेर्मूर्ध्नि विषमे पथि सागरे ।
जायन्ते पुण्ययुक्ताना प्राणिनामिष्टसङ्गमा. ।।३६।८१

४३८. सिंहे करीन्द्रकीलालपङ्कलोहितकेसरे ।
शान्तेऽपि शावकस्तस्य कुरुते करिपातनम् ।।३७।४४

४३९ किं तारा भान्ति भास्करे ? ३७।६४

४४०. जातो वशलतातोऽपि मणि. सगृह्यते ननु ।।३७।६५

४४१. सहसारभ्यमाण हि कार्य व्रजति सशयम् ।। ३७।६७

४४२. प्रस्तुतमत्यक्त्वा समारब्ध प्रशस्यते ।।३७।६८

४४३. कष्टमेककयोर्जाते विरोधे कारण विना ।
पक्षद्वय मनुष्याणा जायते विवशक्षयम् ।।३७।७९

४४४. अज्ञाता एव ये कार्य कुर्वन्ति पुरुषाद्भुतम् ।
तेऽतिश्लाघ्या यथात्यन्त निवृष्य जलदा गता ।। ३७।९१

४४५. चकासति रवौ पापलक्ष्मीर्दोषाकरस्य का ।। ३७।१२२

४४६. को दोष कर्मसामर्थ्याद्यदायान्त्यापद नरा. ।
रक्ष्या एव तथाप्येते दधतामतिसाधुताम् ।। ३७।१४१

१४७. इतरो ऽपि खलीकर्तु साधूना नोचितो जन । ३७।१४२

४४८ महतामेव जायन्ते सम्पदो विपदन्विता. ।३७।१५०

४४९. षट्खण्डा यैरपि क्षोणी पालितेय महानरै. ।
न तृप्तास्ते ऽपि ।। ३७।१५५

४५०. प्रभाव तपसः पश्य त्रिदशेष्वपि दुर्लभम् ।।३८।७

४५१. समस्तेभ्यो हि वस्तुभ्य. प्रिय जगति जीवितम् ।
तदर्थमितरत् सर्वमिति को नावगच्छति ।।३८।६९

४५२. वर्तिकाग्रहणे को वा बहुमानो गरुत्मतः।।३८।१०२

४५३. ये जन्मान्तरसञ्चितातिसुकृता सर्वासुभाजा प्रियाः
य य देशमुपव्रजन्ति विविध कृत्यं भजन्त परम् ।
तस्मिन् सर्वहृषीकसौख्यचतुरस्तेपा विना चिन्तया
मृष्टान्नादिविधिर्भवत्यनुपमो यो विष्टपे दुर्लभ. ॥३८।१४२

४५४. भोगैर्नास्ति मम प्रयोजनमिमे गच्छन्तु नाश खला
इत्येपा यदि सर्वदापि कुरुते निन्दामलं द्वेपक. ।
एतै सर्वगुणोपपत्तिपटुभिर्यातोऽपि शृङ्ग गिरेः
नित्य याति तथापि निर्जितरविर्दीप्त्या जन सङ्गमम् ॥३८।१४३

४५५. कालं देश च विज्ञाय नीतिशास्त्रविशारदै. ।
क्रियते पौरुष तेन न जातु विपदाप्यते ॥३९।२२

४५६. नि.सारमीहित सर्वं ससारे दु खकारणम् ॥३९।३६

४५७. मित्राणि द्रविण दारा पुत्रा. सर्वे च बान्धवा ।
सुखदु खमिद सर्व धर्म एक सुखावह ॥३९।३७

४५८ नैव वारयितु शक्यास्तपस्तेजोऽतिदुर्गमा ।
त्रिदशैरपि दिग्वस्त्रा. किमुतास्मादृशैर्जनै ॥३९।१०३

४५९. करिबालककर्णान्तचपल ननु जीवितम् ।
मानुष्यक च कदलीसारसाम्य बिभर्त्यद. ॥३९।११३

४६०. स्वप्नप्रतिममैश्वर्यं सक्त च सह बान्धवै ॥३९।११४

४६१. धिगत्यन्ताशुचि देह सर्वाशुभनिधानकम् ।
क्षणनश्वरमत्राण कृतघ्न मोहपूरितम् ॥३९।११७

४६२ शरीरसार्थं एतस्मिन् परलोकप्रवासिनि ।
मुष्णन्त· प्रसभ लोक तिष्ठन्तीन्द्रियदस्यव ॥३९।१२०

४६३ रमते जीवनृपति. कुमतिप्रमदावृत· ।
अवस्कन्देन मृत्युस्त कदर्थयितुमिच्छति ॥३९।१२१

४६४. मनो विपयमार्गेपु मत्तद्विरदविभ्रमम् ।
वैराग्यबलिना शक्य रोद्वु ज्ञानाङ्कुशश्रिता ॥३९।१२२

४६५. परस्त्रीरूपसस्येपु विभ्राणा लोभमुत्तमम् ।
अमी हृषीकतुरगा वृतमोहमहाजवा ॥
शरीररथमुन्मुक्ता पातयन्ति कुवर्त्मसु ।
चित्तप्रग्रहमत्यन्त योग्य कुरुत तद्दृढम् ॥३९।१२३-१२४

४६६. यद्यथा निर्मित पूर्वं तद्योग्य जायतेऽधुना ।
ससारवाससक्तानां जीवाना गतिरीदृशी ॥३९।१४२

४६७ किमधीतैरिहानर्थग्रन्थैरौशसनादिभि ।
एकमेव हि कर्तव्य सुकृत सुखकारणम् ।।३९।१४३

४६८. न शृणोति स्मरग्रस्तो न जिघ्रति न पश्यति ।
न जानात्यपरस्पर्श न बिभेति न लज्जते ।।३९।२०८

४६९ आश्चर्यं मोहत. कष्टमनुताप प्रपद्यते ।
अन्धो निपतित. कूपे यथा पन्नगसेविते ।।३९।२०९

४७०. इह यत् क्रियते कर्म तत्परत्रोपभुज्यते ।
पुराकृताना पुण्यानामिह सम्पद्यते फलम् ।।४०।३७

४७१. अस्माकमत्र वसता बिभ्रता सुखसम्पदाम् ।
अमी ये दिवसा यान्ति न तेषा पुनरागम ।।४०।३८

४७२. नदीना चण्डवेगानामायुषो दिवस्य च ।
यौवनस्य च सौमित्रे यद्गत गतमेव तत् ।।४०।३९

४७३. स्त्रीचित्तहरणोद्युक्ता. किं न कुर्वन्ति मानवा ।।४१।६२

४७४. दृष्टान्त. परकीयोऽपि शान्तेर्भवति कारणम् ।
असमञ्जसमात्मीय किं पुन स्मृतिमागतम् ।।४१।१०१

४७५. इद कर्मविचित्रत्वाद् विचित्र परम जगत् ।।४१।१०५

४७६ तिर्यञ्चोऽपि ह्य ते रम्य परुषकृतिरहितमनसां विन्दन्ति समीहितम् ।।४२।८१

४७७. यथावस्थितभावाना श्रद्धान परम सुखम् ।
मिथ्याविकल्पितार्थाना ग्रहण दु खमुत्तमम् ।।४३।३०

४७८. जनोऽविदितपूर्वो यो जने बध्नाति सौहृदम् ।
अनाहूतश्च सामीप्य व्रजति त्रपयोज्झित ।।
अनादृत. प्रभूत च भाषते शून्यमानस. ।
उत्पादयति विद्वेप कस्य नासौ क्रमोज्झित ।।४३।१०५-१०६

४७९. न्यायेन सङ्गता साध्वी सर्वोपप्लववर्जिताम् ।
को वा नेच्छति लोकेऽस्मिन् कल्याणप्रकृतिस्थितम् ।।४३।१०८

४८०. दधति परमशोक बालवद् बुद्धिहीना ।।४३।१२२

४८१. किमिदमिह मनो मे किं नियोज्य तदिष्ट कथमनुगतकृत्यैं प्राप्यते श मनुष्यै. ।
इति कृतमतिरुच्चैर्यो विवेकस्य कर्ता रविरिव विमलोऽसौ राजते लोकमार्गे ।।
४३।१२३

४८२. क्वाबला क्व पुमान् बली ।।४४।२०

४८३. धिगिद शौर्यमस्माक सहायान् यदि वाञ्छति ।।४४।३५

४८४. चित्रा हि मनसो गति. ।।४४।६५

४८५. लोको हि परमो गुरु ।।४४।७१

४८६ महाप्रकृष्टपूरस्य नदस्योदाररहस ।
तटयो पातने शक्ति केन न प्रतिपद्यते ।।४४।७६

४८७ न प्रसादयितु शक्य क्रुद्ध शीघ्र नरेश्वर.।
अभीष्ट लब्धुमथवा द्युतिर्वा कीर्तिरेव वा ।।
विद्या वाभिमता लब्धु परलोकक्रियाऽपि वा ।
प्रिया वा मनसो भार्या यद्वा किञ्चित् समीहितम् ।।४४।९६-९७

४८८ प्रतीक्षते हि तत्काल मृत्यु कर्मप्रचोदित ।।४४।१००

४८९ मानुषत्व परिभ्रष्ट गहने भवसङ्कटे ।
प्राप्तुमत्यद्भुत भूय प्राणिनाशुभकर्मणा ।।
त्रैलोक्यगुणवद्रत्न पतित निम्नगापतौ
लभेत क. पुनर्धन्य कालेन महताप्यलम् ।। ४४।१२३-१२४

४९० अहो दु खस्य चित्रता ।।४४।१४४

४९१. अहो दु खार्णवो महान् ।।४४।१४५

४९२ प्रायोऽनर्था बहुत्वगाः ।।१४६

४९३. न ये भवप्रभवविकारसङ्गते. पराङमुखा जिनवचनान्युपासते ।
वशीकृतान् शरणविवर्जितानमून् तपत्यल स्वकृतरवि सुदुस्सहः ।।४४।१५१

४९४ कृत्स्न विधिवश जगत् ।।४५।५२

४९५ शोको हि नाम कोऽप्येप विषभेदो महत्तम ।
नाशयत्याश्रित देह का कथान्येषु वस्तुषु ।।४५।८१

४९६. जीवन् पश्यति भद्राणि धीरश्चिरतरादपि ।
शही ह्रस्वमतिर्भद्र कृच्छादपि न पश्यति ।।४५।८३

४९७ औदासीन्यमिहानर्थं कुरुते परम पुरा ।।४५।८४

४९८ अरण्यमपि रम्यत्व याति कान्तासमागमे ।
कान्तावियोगदग्धस्य सर्व विन्ध्यवनायते ।।४५।९९

४९९. यद्यप्याशा पूर्वकर्मानुभावात् सङ्ग कर्तु जायते प्राणभाजाम् ।
प्राप्य ज्ञान साधुवर्गोपदेशाद् गन्त्री नाश सा रवे शर्वरीव ।।४५।१०५

५०० राजते चारुभावाना सर्वथैव हि चारुता ।।४६।५

५०१. शक्नोति सुखधी. पातु क. शिखामाशुशुक्षणे.।
को वा नागवधूमूर्ध्नि स्पृशेद् रत्नशलाकिकाम् ।।४६।२१

५०२ जगत्प्राग्विहित सर्व प्राप्नोत्यत्र न सशय ।।४६।३२

५०३. प्राणा मूल सर्वस्य वस्तुन. ।। ४६।६४

५०४. निवृत्तिरेकापि ददाति परम फलम् ।।४६।५६
५०५. जन्तूना दु खभूयिष्ठभवसन्ततिसारिणाम् ।
पापान्निवृत्तिरल्पाऽपि ससारोत्तारकारणम् ।।४६।५७
५०६. येषा विरतिरेकापि कुतश्चिन्नोपजायते ।
नरास्ते जर्जरीभूतकलशा इव निर्गुणा ।।४६।५८
५०७ कर्मानुभावत सर्वे न भवन्ति समक्रिया ।।४६।६२
५०८. भस्मभावङ्गते गेहे कूपखानश्रमो वृथा ।।४६।६६
५०९. आत्मार्थं कुर्वतः कर्म सुमहासुखसाधनम् ।
दोषो न विद्यते कश्चित्सर्वं हि सुखकारणम् ।।४६।७७
५१०. सज्जनस्याग्रे नून शोक. प्रवर्द्धते ।।४६।११४
५११. परदाराभिलाषोऽयमयुक्तोऽतिभयङ्कर. ।
लज्जनीयो जुगुप्स्यश्च लोकद्वयनिषूदन. ।।४६।१२३
५१२. धिक्शब्द प्राप्यते योऽस्य सज्जनेभ्य समन्तत ।
सोऽस्य विदारणे शक्तो हृदयस्य सुचेतसाम् ।।४६।१२४
५१३. यो ना परकलत्राणि पापबुद्धिर्निषेवते ।
नरक स विशत्येष लोहपिण्डो यथा जलम् ।।४६।१२६
५१४. सर्वथा प्रातरुत्थाय पुरुषेण सुचेतसा ।
कुशलाकुशल स्वस्य चिन्तनीय विवेकत. ।।४६।१२०
५१५. चित्र हि स्मरचेष्टितम् ।।४६।१८६
५१६ मन्त्रणीय हि सम्बद्ध स्वामिने हितमिच्छता ।।४६।२११
५१७. उद्योगेन विमुक्ताना जनाना सुखिता कुत. ।।४७।११
५१८. नवोऽनुरागवन्द्यो हि चन्द्रो लोकस्य नान्यदा ।।४७।१२
५१९. मन्त्रदोषमसत्कार दान पुण्य स्वशूरताम् ।
दु.शीलत्व मनोदाह दुर्मित्रेभ्यो न वेदयेत् ।।४७।१५
५२० सद्भाव हि प्रपद्यन्ते तुल्यावस्था जना भुवि ।।४७।१७
५२१. अथवाश्रयसामर्थ्यात् पुसां किं नोपजायते ।।४७।२०
५२२. मद्यपस्यातिवृद्धस्य वेश्याव्यसनिन शिशोः ।
प्रमदानां च वाक्यानि जातु कार्याणि नो बुधैः ।।४७।६३
५२३. अत्यन्तदुर्लभा लोके गोत्रशुद्धि ।।४७।६४
५२४. समानेषु प्राय. प्रेमोपजायते ।।४७।९१
५२५. मानसानि मुनीना हि सुदिग्धान्यनुकम्पया ।।४८।४८
५२६. मोहो जयति पापिनाम् ।।४८।४५

५२७ शक्ति दधताऽपि परा प्राप्यापि पर प्रबोधमारम्भे ।
भवितव्य नयरतिना रविरिव काले स यात्युदयम् ।।४८।२५०

५२८ क्षुद्रशक्तिसमासक्ता मानुपास्तावदासताम् ।
न सुरैरपि कर्माणि शक्यन्ते कर्तुमन्यथा ।।४६।७

५२९ श्वपाकादपि पापीयान् लुब्धकादपि निर्घृण ।
असम्भाप्य सता नित्य योऽकृतज्ञो नराधम ।।४६।६४

५३०. दुर्लभ सङ्गमो भूय पूजित सर्ववस्तुषु ।
ततोऽपि दुर्लभो धर्मो जिनेन्द्रवदनोद्गत ।।४६।१०६

५३१. महात्मनामुन्नतगर्वशालिनो भवन्ति वश्या पुरुषा बलान्विता ।।५०।५४

५३२ अहो नो भवितव्यता ।।५१।२३

५३३ न मुनेर्वाक्य कदाचिज्जायतेऽनृतम् ।।५१।३३

५३४. गुणान्वितैर्भवति जनैरलङ्कृता समस्तभू शुभललितै सुसुन्दर ।
विना जन मनसि कृतास्पद सदा व्रजत्यसौ गहनवनेन तुल्यताम् ।।५१।५०

५३५ पुराकृतादतिनिचितात्समुकटाज्जन. परा रतिमनुयाति कर्मण ।
ततो जगत्सकलमिद स्वगोचरे प्रवर्तते विधिरविणा प्रकाशते ।।५१।५१

५३६ राज्यविधौ स्थिता ।
पित्रादीनपि निघ्नन्ति नरा. कर्मबलेरिता ।।५२।६४

५६७ अस्मिन् हि सकले लोके विहित भुज्यते ।।५२।६५

५३८. कृत्य प्रत्युपकारस्य बान्धवैरनुमोदितम् ।।५२।७५

५३९ चित्रमिद परमत्र नृलोके, यत्परिहाय भृश रसमेकम् ।
तत्क्षणमेव विशुद्धशरीर जन्तुरुपैति रसान्तरसङ्गम् ।।५२।८४

५४०. उचित किमिद कर्तुं यद्वास्यार्द्धपति स्वयम् ।
कुरुते क्षुद्रवत्कश्चिच्चोरण परयोषित ।।५३।४

५४२. मर्यादाना नृपो मूलमापगानां यथा नग ।
अनाचारे स्थिते तस्मिन् लोकस्तत्र प्रवर्तते ।।५३।५

५४२ विमल चरित लोके न केवलमिहेष्यते ।
किन्तु गीर्वाणलोकेऽपि रचिताञ्जलिभि सुरै ।।५३।६

५४३ परार्थ य पुरस्कृत्य पुन स्व विनिगूहति ।
सोऽगतिभीरुतयात्यन्त जायते निकृतो नर. ५३।३६

५४४ परमापदि सीदन्त जन सन्धारयन्ति ये ।
अनुकम्पनशीलाना तेषा जन्म सुनिर्मलम् ।।५३।४०

५४५. हानि· पुरुषकारस्य न चात्मनि निदर्शिते।
प्रकाश्ये गुरुता यालि जगति श्रीयंशस्विनी ।।५३।४१
५४६ विग्रहो नि प्रयोजनः ।।५३।८५
५४७. कार्यसिद्धिरिहाभीष्टा सर्वथा नयशालिभि. ।।५३।८५
५४८. शूरा सत्त्वयशोऽन्विता.।
गुणोत्कटा न शसन्ति धीरा· स्व स्वयमुत्तमाः ।।५३।६१
५४९ सुख प्रसादतो यस्य जीव्यते विभवान्वित ।
अकार्य वाञ्छतस्तस्य दीयते न मति कथम् ।।५३।१०१
५५०. आहारम् भोक्तुकामस्य विज्ञात विषमिश्रितम्।
मित्रस्य कृतकामस्य कथ न प्रतिषिध्यते ? ५३।१०२
५५१ रविरश्मिकृतोद्योत सुपवित्र मनोहरम्।
पुण्यवर्द्धनमारोग्य दिवाभुक्त प्रशस्यते ।।५३।१४१
५५२ सहायैर्मृगराजस्य कुर्वतो मृगशासनम्।
कियद्भिरपरैः कृत्य त्यक्त्वा सत्त्व सहोद्भवम् ।।५३।२००
५५३. चिह्नानि विटजातस्य सन्ति नाङ्गेषु कानिचित्।
अनार्यमाचरन् किञ्चिज्जायते नीचगोचर. ।।५३।२३६
५५४. मत्ता केसरिणोऽरण्ये शृगालानाश्रयन्ति किम् ?
नहि नीच समाश्रित्य जीवन्ति कुलजा नरा ।।५३।२४०
५५५. को जानाति विना पुण्यैर्निग्राह्य को विधेरिति ।।५३।२४२
५५६ या येन भाविता बुद्धि शुभाशुभगता दृढम्।
न सा शक्याऽन्यथाकर्तु पुरन्दरसमैरपि ।।५३।२४७
५५७. निरर्थक प्रियशतैर्दुर्मतौ दीयते मति ।।५३।२४२
५५८. विहितेन हतो हत ।।५३।२४८
५५९. प्राप्ते विनाशकालेऽपि बुद्धिर्जन्तोर्विनश्यति।
विधिना प्रेरितस्तेन कर्मपाक विचेष्टते ।।५३।२४९
५६०. इति सुविहितवृत्ता पूर्वजन्मन्युदारा·
सकलभुवनरोधिव्याप्यकीर्तिप्रधाना ।
अभिसरपरिमुक्ता कर्म तत्कर्त्तुमीशा
जनयति परम तद्विस्मय दुर्विचिन्त्यम् ।।५३।२७३
५६१. भजत सुकृतसङ्ग तेन निर्मुच्य सर्व
विरसफलविधायि क्षुद्रकर्म प्रयत्नात्।

भवत परमसौख्यास्वादलोभप्रसक्ता
परिजितरविभासो जन्तव कान्तलीला. ।।५३।२७४

५६२ यं य देशं विहितसुकृता प्राणभाज श्रयन्ते,
तस्मिंस्तस्मिन् विजितरिपवो भोगसङ्ग भजन्ते ।
न ह्यं तेषा परजनमतं किञ्चिदापद्युतानाम्
सर्वं तेषा भवति मनसि स्थापित हस्तसक्तम् ।।५४।७६

५६३. तस्माद् भोग भुवनविकटं भोक्तुकामेन कृत्य·,
श्लाध्यो धर्मो जिनवरमुखादुद्गत सर्वसार. ।
आस्ता तावत्क्षयपरिचितो भोगसङ्गोऽपि मोक्षम्
धर्मादस्माद् व्रजति रवितोऽप्युज्ज्वलं भव्यलोक ? ।।५४।८०

५६४ यदर्थे मत्तमातङ्गमहावृन्दान्धकारिणि ।
पतद्विविधशस्त्रौघे सङ्ग्रामेऽत्यन्तभीषणे ।।
हत्वा शत्रून् समुद्वृत्तास्तीक्ष्णया खड्गधारया ।
भुजेनोपार्ज्यते लक्ष्मी सुकृच्छ्राद् वीरसुन्दरी ।।
सुदुर्लभमिद प्राप्य तत्स्त्रीरत्नमनुत्तमम् ।
मूढवन्मुच्यते कस्मात् ? ५५।१७-१६

५६५ परस्पराभिघाताद्वा कलुषत्वमुपागतम् ।
प्रसाद पुनरप्येति कुलं जलमिव ध्रुवम् ।।५५।५३

५६६. द्रव्यादिलोभेन भ्रात्रादीनामपि स्फुटम् ।
ससारे जायते वैर यौनवन्धो न कारणम् ।।५५।६८

५६७. भ्राता ममायं सुहृदेप वश्यो
ममैव वन्धु सुखद. सदेति ।
संसारवैचित्र्यविदा नरेण
नैतन्मनीषारविणा विचिन्त्या ।।५५।६५

५६८ लोक स्वचरितरविरेव प्रेरयत्यात्मकार्ये ।।५६।३६

५६६ आभिमुख्यगतं मृत्यु वर प्राप्ता महाभटा· ।
पराङ्मुखा न जीवन्तो धिक्शब्दमलिनीकृता ।।५७।८

५७० नरास्ते (दयिते !) श्लाघ्या ये गता रणमस्तकम् ।
त्यजन्त्यभिमुखा जीव शत्रूणा लब्धकीर्त्तय. ।।५७।२१

५७१ उद्भिन्नदन्तिदन्ताग्रदोलादुर्लडित भटा ।
कुर्वन्ति न विना पुण्यै शत्रुभिर्घोषितस्तवा ।।५७।२२

५७२ गजदन्ताग्रभिन्नस्य कुम्भदारणकारिणः ।
यत्सुख नरसिंहस्य तत् क कथयितु क्षमः ? ५७।२३

५७३. दोषोऽपि हि गुणीभाव प्रस्तावे प्रतिपद्यते ।।५७।४४

५७४. प्राप्ते काले कर्मणामानुरूप्याद्
दातुं योग्य तत्फल निश्चयाप्यम् ।
शक्तो रोद्धु नैव शक्रोऽपि लोके
वार्तान्येषा कैव वाङ्मात्रभाजाम् ? ५७।७३

५७५ बिभर्ति तावद् दृढनिश्चय जन. प्रभोर्मुख पश्यति यावदुन्नतम् ।
गते विनाश स्वपतौ विशीर्यते, यथारचक्र परिशीर्णतुम्बकम् ।।५८।४७

५७६. मुनिश्चितानामपि सन्नराणा, विना प्रधानेन न कार्ययोगः ।
शिरस्यपेते हि शरीरबन्ध., प्रपद्यते सर्वत एव नाशम् ।।५८।४८

५७७ प्रधानसम्बन्धमिद हि सर्वं, जगद्यथेष्टं फलमभ्युपैति ।
राहूपसृष्टस्य रवेर्विनाशं, प्रयाति मन्दो निकरः कराणाम् ।।५८।४९

५७८ पूर्वकर्मानुभावेन स्थितिर्दु-ष्कृतिनामियम् ।
असौ मारयिता तस्य यो येन निहतः पुरा ।।५९।४
असौ मोचयिता तस्य बन्धनव्यसनादिषु ।
यो येन मोचिता पूर्वमनर्थे पातितो नर· ।।५९।५

५७९. हतवान् हन्यते पूर्वं पालकः पाल्यतेऽधुना ।
औदासीन्यमुदासीने जायते प्राणधारिणाम् ।।५९।२१

५८०. य वीक्ष्य जायते कोपो दृष्टकारणवर्जित ।
नि.सन्दिग्धं परिज्ञेय· स रिपुः पारलौकिकः ।।५९।२२

५८१. यं वीक्ष्य जायते चित्त प्रह्लादि सह चक्षुषा ।
असन्दिग्ध सुविज्ञेयो मित्रमन्यत्र जन्मनि ।।५९।२३

५८२. क्षुब्धोर्मिणि जले सिन्धोः शीर्णपोत झषादय. ।
स्थले म्लेच्छाश्च बाधन्ते यत्तद् दु कृतज फलम् ।।५९।२४

५८३. मत्तैर्गिरिनिभैर्नागैर्योधैर्बहुविधायुधैः ।
सुवेगैर्वाजिभिर्दृप्तैर्भृत्यैश्च कवचावृतैः ।।५९।२५

५८४. विग्रहेऽविग्रहे वापि नि प्रमादस्य सन्ततम् ।
जन्तोः स्वपुण्यहीनस्य रक्षा नैवोपजायते ।।५९।२६

५८५. निरस्तमपि निर्यन्त्र यत्र तत्र स्थित परम् ।
तपोदानानि रक्षन्ति न देवा न च बान्धवाः ।।५९।२७

५८६. दृश्यते बन्धुमध्यस्थ पित्राप्यालिङ्गितो वनी।
मिथ्रियमाणोऽतिशूरश्च कोऽन्य शक्तोऽभिरक्षितुम् ॥५६।१८

५८७ पात्रदानै व्रतै. शीलै. सम्यक्त्वपरितोषितै.।
विग्रहेऽविग्रहे वापि रक्ष्यते रक्षितैर्नर ॥५६।२६

५८८. दयादानादिना येन धर्मो नोपार्जित पुरा।
जीवित चेष्यते दीर्घं वाञ्छा तस्यातिनि फला ॥५६।३०

५८९. न विनश्यन्ति कर्माणि जनाना तपसा विना।
इति ज्ञात्वा क्षमा कार्या विपश्चिद्भिररिष्वपि ॥५६।३१

५९० एष ममोपकरोति सुचेता दुष्टतरोऽपकरोति ममायम्।
बुद्धिरियं निपुणा न जनाना कारणमत्र निजार्जितकर्म ॥५६।३५

५९१ इत्यधिगम्य विचक्षणमुख्यैर्बाह्यमुखासुखगौणनिमित्तै।
रागतर कलुष च निमित्त कृत्यमयोज्झितकुत्सित चेष्टै ॥५६।३३

५९२ भूविवरेषु निपातमुपैति ग्रावणि सज्जनि गच्छति सर्पम्।
सन्तमसा पिहिते पथि नेत्री नो रविणा जनितप्रकटत्वे ॥५६।३४

५९३ नखच्छेद्ये तृणे किं वा परशोरुचिता गति.? ६०।६८

५९४ विना हि प्रतिदानेन महती जायते त्रपा ॥६०।८७

५९५. पुण्यानुकूलितानां हि नैरन्तर्यं न जायते ॥६०।९०

५९६. धर्मस्यैतद्विधियुतकृतस्यानवद्यस्य धीरै-
र्ज्ञेय स्तुल्य फलमनुपम युक्तकालोपजातम्।
यत्सम्प्राप्य प्रमदकलिता दूरमुक्तोपसर्गा:
सञ्जायन्ते स्वपरकुशल कर्त्तुमुद्भूतवीर्या ॥६०।१४२

५९७ आस्तां तावन्मनुजजनिता. सम्पद: काक्षिताना
यच्छन्तीष्टादधिकमतुल वस्तु नाकश्रितोऽपि।
तस्मात्पुण्य कुरुत सतत हे जना सौख्यकाक्षा.।
येनानेक रविसमरुच. प्राप्नुताश्चर्ययोगम् ॥६०।१४३

५९८ इहैवलोके विकट पर यशो, मतिप्रगल्भत्वमुदारचेष्टितम्।
अवाप्यते पुण्यविधिश्च निर्मलो नरेण भक्त्यार्पितसाधुसेवया ॥६१।२०

५९९ तथा न माता न पिता न वा सुहृत् सहोदरो वा कुरुते नृणा प्रियम्।
प्रदाय धर्मे मतिमुत्तमा यथा हित पर साधुजनः शुभोदयाम् ॥२१।२१

६०० उपात्तपुण्यो जननान्तरे जन करोति योग परमैरिहोत्सवैः।
न केवल स्वस्य परस्य भूयसा रविर्यथा सर्वपदार्थदर्शनात् ॥६१।२४

६०१ मोहस्य दुस्तर किं वा वलिनो वलिनामपि ? ६२।२७

६०२. इति निजचरितस्यानेकरूपस्य हेतो-
व्यंतिगतभवजस्यावश्यलभ्योदयस्य ।
इह जनुषु विचित्र कर्मणो भावयन्ते
फलमविरतयोगाज्जन्तवो भूरिभावाः ॥६२।९९

६०३. व्रजति विधिनियोगात्कश्चिदेवेह नाशं
हतरिपुरपरश्च स्व पद याति धीर ।
विफलितपृथुशक्तिर्बन्धन सेवतेऽन्यो
रविरुचितपदार्थोद्भासने हि प्रवीण. ॥६२।१००

६०४ कामार्था सुलभा सर्वे पुरुषस्यागमास्तथा ।
विविधाश्चैव सम्बन्धा विष्टपेऽस्मिन् यथा तथा ॥१३।१३
पर्यट्य पृथिवी सर्वा स्थान पश्यामि तन्ननु ।
यस्मिन्नवाप्यते भ्राता जननी जनकोऽपि वा ॥६३।१४

६०५ उत्तमा उपकुर्वन्ति पूर्व पश्चात्तु मध्यमा ।
पश्चादपि न ये तेषामधमत्व हतात्मनाम् ॥६३।१८

६०६. भवन्तीह प्रतीकारा' प्रायो विपदमीयुषाम् ॥६३।२३

६०७ भवन्ति च प्रतीकाराश्चित्र हि जगतीहितम् ॥६४।१६

६०८ भवन्ति हि बलीयासो बलिनामपि विष्टपे ॥६४।१११

६०९ इति स्थितानामपि मृत्युमार्गे जनैरशेषैरपि निश्चितानाम् ।
महात्मना पुण्यफलोदयेन भवत्युपायो विदितोऽसुदाया ॥६४।११४

६१०. अहो महान्त. परमा जनास्ते येषा महापत्तिसमागतानाम् ।
जना वदत्युद्भवनाभ्युपाय रवे समस्तत्वनिवेदनेन ॥६४।११५

६११. नीतिज्ञै सतत भाव्यमप्रमत्तै सुपण्डितै ॥६५।१६

६१२. एतावतैव ससार सुसार प्रतिभाति मे ।
ईदृशानि प्रसाध्यन्ते यत्तपासीह जन्तुभि ॥६५।५१

६१३. प्राप्यते येन निर्वाण किमन्यन्तस्य दुष्करम् ॥६५।५५

६१४. इति विहितसुचेष्टा. पूर्वजन्मन्युदारा
परमपि परिजित्य प्राप्तमायुर्विनाशम् ।
द्रुतमुपगतचारुद्रव्यसम्बन्धभाजो
विधुरविगुणतुल्यां स्वामवस्था भजन्ते ॥६५।८१

६१५. परमार्थो हि निर्भीकैरुपदेशोऽनुजीविभि. ॥६६।३

६१६. प्रीत्यैव शोभना सिद्धिर्युद्धतस्तु जनक्षय. ।
असिद्धिश्च महान् दोष. सापवादाश्च सिद्धयः ॥६६।२४

६१७ ननु सिंहो गुहा प्राप्य महाद्रेर्जायते सुखी ।।६६।२६

६१८ नरेण सर्वथा स्वस्य कर्त्तव्य वुद्धिशालिना ।
रक्षण सतत यत्नाद्दारैरपि धनैरपि ।।६६।४०

६१९ नाखौ सक्षोभमायाति सिह प्रचलकेसर ।।६६।५३

६२० प्रतिशब्देषु क कोपः छायापुरुषकेऽपि वा ।
तिर्यक्षु वा शुकाद्येषु यन्त्रविम्वेषु वा सताम् ।।६६।५४

६२१ न पद्मवातेन सुमेरुरुह्यते न सागर शुष्यति सूर्यरश्मिभि. ।
गवेन्द्रश्रृङ्गैर्धरणी न कम्पते न साध्यते त्वत्सदृशैर्दशानन. ।।६६।८७

६२२ न जम्वुके कोपमुपैति सिंह ।
गजेन्द्र कुम्भस्थलदारणेन क्रीडां स मुक्तानिकरैः करोति ।।६६।८६

६२३ नरेश्वरा अर्जितशौर्यचेष्टा न भीतिभाजा प्रहरन्ति जातु ।
न व्राह्मण न श्रमण न शून्य स्त्रिय न वाल न पशु न दूतम् ।।६६।६०

६२४ वहु विदितमत सुशास्त्रजाल नयविपयेपु सुमन्त्रिणोऽभियुक्ता ।
अखिलमिदमुपैति मोहभाव पुरुषरवौ घनमोहमेघरुद्धे ।।६६।६५

६२५. धन्या सद्युति कारयन्ति परम लोके जिनानां गृहम् ।।६७।२७

६२६ वित्तस्य जातस्य फल विशालं वदन्ति सुज्ञा. सुकृतोपलम्यम् ।
धर्मश्च जैन. परमोऽखिलेऽस्मिञ्जगत्यभीप्टस्य रविप्रकाशे ।।६७।२८

६२७ समुचितविभवयुताना जिनेन्द्रचन्द्रान् सुभक्तिभारधराणाम् ।
पूजयता पुरुषाणा क. शक्तः पुण्यसञ्चयान् प्रचोदयितुम् ।।६८।२३

६२८ भुक्त्वा देवविभूति लब्ध्वा चक्राङ्कभोगसंयोगम् ।
रवितोऽपि तपस्तीव्रं कृत्वा जैन व्रजन्ति मुक्ति परमाम् ।।६८।२४

६२९ भीतादिष्वपि नो तावत् कर्तुं युक्त विहिंसनम् ।
किं पुनर्नियमावस्थे जने जिनगृहस्थिते ।।७०।६

६३० यो यस्य हरते द्रव्य प्रयत्नेन समर्जितम् ।
स तस्य हरते प्राणान् वाह्यमेतद्धि जीवितम् ।।७०।८३

६३१ तावद् भवति जनानामधिका प्रीति समाश्रयासन्ना ।
यावन्निर्दोपत्व रविमिच्छति क सहोत्पातम् ।।७०।१०१

६३२ प्रमादाद्विकृति प्राप्त मन समुपदेशत ।
प्राय पुण्यवता पुसा वशीभावेऽवतिप्ठते ।। ७२।६२

६३३. योद्धव्य करुणा चेति द्वयमेतद्विरुध्यते । ७२।६४

६३४ यत् किञ्चित्करणोन्मुक्त. सुख जीवति निर्घृण. ।
जीवत्यस्मद्विधो दु ख करुणामृदुमानस. ।। ७२।६६

६३५ क्षीणेष्वात्मीयपुण्येषु याति शक्रोऽपि विच्युतिम् ।
जनता कर्मतन्त्रेय गुणभूत हि पौरुषम् ।। ७२।८६

६३६. लभ्यते खलु लब्धव्य नात शक्य पलायितुम् ।
न काचिच्छूरता दैवे प्राणिना स्वकृताशिनाम् ।। ७२।८७

६३७. मरणात्परम दुःख न लोके विद्यते परम् । ७२।६०

६३८. निकाचित कर्म नरेण येन यत्तस्य भुक्ते स फल नियोगात् ।
कस्यान्यथा शास्त्ररवौ सुदीप्ते तमो भवेन्मानुषकौशिकस्य ।। ६२।६७

६३६ या काचिद्भविता बुद्धिर्नृणा कर्मानुवर्त्तिनाम् ।
अशक्या साऽन्यथाकर्त्तुं सेन्द्रै. सुरगणैरपि ।। ७३।२७

६४० अर्थसाराणि शास्त्राणि नयमौशनस परम् ।
जानन्नपि त्रिकूटेन्द्र पश्य मोहेन बाध्यते ।। ७३।२८

६४१. महापूरकृतोत्पीड पयोवाहसमागमे ।
दुष्करो हि नदो धर्तुं जीवो वा कर्मचोदित' ।। ७३।३०

६४२. अविरुद्ध स्वभावस्थ परिणामसुखावहम् ।
वचोऽप्रियमपि ग्राह्य सुहृदामौषध यथा ।। ७३।४८

६४३. कज्जलोपमकारीषु परनारीषु लोलुप ।
मेरुगौरवयुक्तोऽपि तृणलाघवमेति ना ।। ७३।५६

६४४. देवैरनुगृहीतोऽपि चक्रवर्त्तिसुतोऽपि वा ।
परस्त्रीसङ्गपङ्केन दिग्धोऽकीर्त्ति व्रजेत्पराम् ।। ७३।६०

६४५. योऽन्यप्रमदया साक कुरुते मूढको रतिम् ।
आशीविषभुजङ्गयाऽसौ रमते पापमानस. ।। ७३।६१

६४६. न कश्चित्स्वयमात्मान शसन्नाप्नोति गौरवम् ।
गुणा हि गुणता याति गुण्यमाना परानतै ।। ७३।७४

६४७ विषयाऽऽमिपसक्तात्मन् पापभाजन चञ्चल ।
धिगस्तु हृदयत्व ते हृदय क्षुद्रचेष्टिता ।। ७३।८४

६४८. अय पुमानिय स्त्रीति विकल्पोऽयममेधसाम् ।
सर्वतो वचन साधु समीहन्ते सुमेधस. ।। ७३।६१

६४६. किं भूरिजनहिसया ।। ७३।६४

६५०. तदेव वस्तु ससर्गाद्धत्ते परमचारुताम् । ७३।१३६

६५१. धर्मो रक्षति मर्माणि धर्मो जयति दुर्जयम् ।
धर्म. सञ्जायते पक्ष. धर्म. पश्यति सर्वत. ।। ७४।५६

६५२. न गजस्योचिता घण्टा सारमेयस्य शोभते ।। ७४।६३

६५३ कर्मण्युपेतेऽभ्युदय पुराणे सप्रेरके सत्यतिदारुणाङ्गे ।
तस्योचित प्राप्तफल मनुष्या. क्रियापवर्गप्रकृत भजन्ते ।। ७४।११५

६५४. उदारसरभवश प्रपन्ना: प्रारब्धकार्यार्थिनियुक्तचित्ता ।
नरा न तीव्र गणयन्ति शस्त्र न पावकं नैव रविं न वायुम् ।। ७४।११६

६५५ धिगिमा नृपतेर्लक्ष्मी कुलटासमचेष्टिताम् ।
भोक्तुमेकपदे पापान् त्यजन्ती चिरसस्तुतान् ।। ७६।१२

६५६. किम्पाकफलवद्भोगा विपाकविरसा भृशम् ।
अनन्तदु खसम्बन्धकारिण. साधुगर्हिता ।। ७६।१३

६५७ क्षुद्रजन्तूनां खलेनाऽपि महोत्सवम् ।। ७६।२६

६५८ धिगीदृशी श्रियमतिचञ्चलात्मिका विवर्जिता सुकृतसमागमाशया ।
इति स्फुट मनसि निवाय भो जनास्तपोधना भवत रवेर्जितौजस ।।७६।४३

६५९. योनिं यामश्नुते जन्तुस्तत्रैव रतिमेति स ।। ७७।६८

६६० ननु स्वकृतसम्प्राप्तिप्रवणा. सर्वदेहिन ।। ७७।६९

६६१. मरणान्तानि वैराणि जायन्ते हि विपश्चिताम् ।। ७८।१

६६२. पर कृतापकारोऽपि मानी निर्व्यूढभाषित ।
अत्युन्नतगुण. शत्रु श्लाघनीयो विपश्चिताम् ।। ७८।२९

६६३. अमूर्तत्व यथा व्योम्नश्चलत्वमनिलस्य च ।
महामुनेर्निसर्गेण लोकस्याह्लादन तथा । ७८।५७

६६४ पञ्चानामर्थयुक्तत्वमिन्द्रियाणा तदैव हि ।
यदाभीष्टसमायोगे जायते कृतनिर्वृति ।।८०।८०

६६५ विषय स्वर्गतुल्योऽपि विरहे नरकायते ।
स्वर्गायते महारण्यमपि प्रियसमागमे ।।८०।८२

६६६. एकेन व्रतरत्नेन पुरुषान्तरवर्जिना ।
स्वर्गारोहणसामर्थ्य योषितामपि विद्यते ।।८०।१४७

६६७ वीरुदश्वेभलोहानामुपलद्रुमवाससाम् ।
योषिता पुरुषाणा च विशेषोऽस्ति महान् नृप ! ।।८०।१५३

६६८ नहि चित्रभृत वल्ल्या वल्ल्या कूष्माण्डमेव वा ।
एव न सर्वनारीषु सद्वृत्त नृप विद्यते ।।८०।१५४

६६९ पूर्वभाग्योदयाद्राजन् ससारे चित्रकर्मणि ।
राज्य कश्चिदवाप्नोति प्राप्त नश्यति कस्यचित् ।।८०।२०३

६७० अप्येकस्माद् गुरो. प्राप्य जन्तूना धर्मसङ्गतिम् ।
निदाननिर्निदानाभ्या मरणाभ्यां पृथग्गतिः ।।८०।२०४

६७१. उत्तरन्त्युदधिं केचिद्रत्नपूर्णा सुखान्विताः।
मध्ये केचिद्विशीर्यन्ते तटे केचिद्धनाधिपाः ॥८०।२०५

६७२. पुण्यवान् स नरो लोके यो मातुर्विनये स्थित ।
कुरुते परिशुश्रूषा किंकरत्वमुपागत. ॥८१।०६

६७३. एकोऽपि कृतो नियमः प्राप्तोऽभ्युदय जनस्य सद्बुद्धेः।
कुरुते प्रकाशमुच्चै रविरिव तस्मादिम कुरुत ॥८२६६

६७४. कृतानि कर्माण्यशुभानि पूर्व सन्तापमुग्र जनयन्ति पश्चात्।
तस्माज्जना. कर्म शुभ कुरुध्व रवौ सति प्रस्खलन न युक्तम् ॥८३।१३४

६७५. चिर संसारकान्तारे भ्राम्यता पुण्यकर्मतः।
मानुष्यकमिद कृच्छ्रात् प्राप्यते प्राणधारिणा ॥८५।१०६

६७६. जानानः को जन. कूपे क्षिपति स्व महाशयः।
विष वा क पिबेत् को वा भृगौ निद्रा निषेवते ॥८५।१११

६७७. को वा रत्नेप्सया नागमस्तक पाणिना स्पृशेत्।
विनाशकेषु कामेषु धृतिर्जायेत कस्य वा ॥८५।१११

६७८. सुकृतासक्तिरेकैव श्लाध्या मुक्तिसुखावहा।
जनाना चञ्चलेऽत्यन्त जीविते निस्पृहात्मनाम् ॥८५।११२

६७९. ईदृशी कर्मणा शक्तिर्यज्जीवा सर्वयोनिषु।
वस्तुतो दु खयुक्तासु प्राप्नुवन्ति परा रतिम् ॥ ८५।१६५

६८०. कर्मारण्यमिद विहाय विषम धर्मे रमध्व बुधा ॥८५।१७४

६८१. समुद्गते भव्यजनस्य कस्य रवौ प्रकाशेन न युक्तिरस्ति ॥ ८६।२७

६८२ तस्यैकस्य मति शुद्धा तस्य जन्मार्थसगतम्।
विषान्नमिव यस्त्यक्त्वा राज्य प्राव्रज्यमास्थित ॥ ८८।१६

६८३. पूज्यता वर्ण्यता तस्य कथ परमयोगिन.।
देवेन्द्रा अपि नो शक्ता यस्य वक्तु गुणाकरम् ॥ ८८।१७

६८४ स्वेच्छाविधानमात्र हि ननु राज्यमुदाहृतम् ॥ ८८।२४

६८५. तावदेव प्रपद्यन्ते भङ्ग भीत्यानुगामिन. ।
यावत्स्वामिनमीक्षन्ते न पुरो विकचाननम् ॥ ८९।८५

६८६ प्रदीप्ते भवने कीदृक् तडागखननादर.।
को वा भुजङ्गदष्टस्य कालो मन्त्रस्य साधने ॥ ८९।१०२

६८७. नियताचारयुक्ताना प्रभवन्ति मनीषिणाम्।
भावा निरतिचाराणा श्लाघ्या पूर्वकपुण्यजा. ॥ ९०।१०

६८८ सुरासुरपिशाचाद्या विभ्यति व्रतचारिणाम् ।
तावद् यावन्न ते तीक्ष्ण निश्चयासि जहत्यहो ॥ ६०।१२

६८९. मद्यामिपनिवृत्तस्य तावद्‌ध्वस्तगतान्तरम् ।
लङ्घयन्ति न दु.सत्त्वा यावत् सालोऽस्य नैयम· ॥ ६०।१३

६९० प्रवीर कातरै. शूरसहस्रेण च पण्डित. ।
सेव्य किञ्चिद्भजेन्मूर्खमकृतज्ञं परित्यजेत् ॥ ६०।१६

६९१. स्वप्न इव भवति चारुसंयोग प्राणिनां यदा तनुकाल: ।
जनयति परम ताप निदाघरविरश्मिजनिताधिकम् ॥ ६०।२६

६९२. गृहस्थ शाखिनो वाऽपि यस्य च्छाया समाश्रयेत् ।
स्थीयते दिनमप्येक प्रीतिस्तत्रापि जायते ॥ ६१।४५

६९३ किं पुनर्यत्र भूयोऽपि जन्मभि: सगति कृता ।
संसारभावयुक्ताना जीवानामीदृशी गतिः ॥ ६१।४६

६९४ धर्मेण रहितैर्लभ्य न हि किञ्चित्सुखावहम् ॥६१।४८

६९५ अनेकमपि सञ्चित्य जन्तुर्दु.खमलक्षये ।
धर्मतीर्थे श्रुते (श्रयेत्) शुद्धि जलतीर्थमनर्थकम् ॥६१।४९

६९६. श्रुत्वा परमं धर्म न भवति येपा सदीहिते प्रीति. ।
शुभनेत्राणा तेपां रविरुदितोऽनर्थकीभवति ॥६१।५१

६९७ साधुरूप समालोक्य न मुञ्चत्यासन तु य. ।
दृष्ट्वाऽपमन्यते यश्च स मिथ्यादृष्टिरुच्यते ॥६२।३४

६९८ वीज शिलातले न्यस्त सिच्यमान सदापि हि ।
अनर्थक यथा दानं तया शीलेपु गेहिनाम् ॥६२।६६

६९९ साधुसमागमसक्ता पुरुपा. सर्वमनीपित सेवन्ते ॥६२।६२

७००. पूर्वं जनितपुण्याना प्राणिना शुभचेतसाम् ।
आरभ्य जन्मत सर्व जायते सुमनोहरम् ॥६४।३८

७०१ निर्मिताना स्वय शश्वत् कर्मणामुचित फलम् ।
ध्रुवं प्राणिभिराप्तव्य न तच्छक्यनिवारणम् ॥६६।५

७०२. अथवा वेत्ति नारीणा चेतस. को विचेष्टितम् ।
दोपाणां प्रभवो यासु साक्षाद्वसति मन्मथ ॥६६।६१

७०३. धिक् स्त्रिय सर्वदोपाणामाकर तापकारणम् ।
विशुद्धकुलजाताना पुसा पङ्कं सुदुस्त्यजम् ॥६६।६२

७०४ अभिहन्त्री समस्ताना वलाना रागसश्रयाम् ।
स्मृतीना परम भ्रंश सत्यस्खलनखातिकाम् ॥६६।६३

७०५. विघ्नं निर्वाणसौख्यस्य ज्ञानप्रभवसूदनीम् ।
भस्मच्छन्नाग्निसङ्काशा दर्भसूचीसमानिकाम् ॥६६।६४

७०६. अकीर्त्ति. परमल्पापि याति वृद्धिमुपेक्षिता ।
कीर्त्तिरल्पापि देवानामपि नाथैः प्रयुज्यते ॥६७।१६

७०७ पद्मयाम्भोजवनानन्दकारिणस्तिग्मतेजस. ।
अस्त यातस्य को रात्रौ सत्यामस्ति निवर्तक. ॥६७।१६

७०८. असत्त्व वक्तु दुर्लोक. प्राणिना शीलधारिणाम् ।
न हि तद्वचनात्तेषा परमार्थत्वमश्नुते ॥६७।२७

७०९ गृह्यमाणोऽतिकृष्णोऽपि विपदूपितलोचनै. ।
सितत्व परमार्थेन न विमुञ्चति चन्द्रमा ॥६७।२८

७१० आत्मा शीलसमृद्धस्य जन्तोर्व्रजति साक्षिताम् ।
परमार्थाय पर्याप्त वस्तुतत्त्व न बाह्यत. ॥६७।२६

७११. नो पृथग्जनवादेन सक्षोभ यान्ति कोविदा ।
न शुनो भपणाद्दन्ती वैलक्ष्य प्रतिपद्यते ॥६७।३०

७१२. शिलामुत्पाट्य शीताशु जिघासुर्मोहवत्सल ।
स्वयमेव नरो नाशमसन्दिग्ध प्रपद्यते ॥६७।३२

७१३. किमनर्थकृतार्थेन सविषेणौषधेन किम् ।
किं वीर्येण न रक्ष्यन्ते प्राणिनो येन भीगता ॥६७।३७

७१४. चारित्रेण न तेनार्थो येन नात्मा हितोद्भव ।
ज्ञानेन तेन किं येन ज्ञातो नाध्यात्मगोचर ॥६०।३८

७१५ प्रशस्तं जन्म नो तस्य यस्य कीर्त्तिवधू वराम् ।
वली हरति दुर्वादस्ततस्तु मरण वरम् ॥६७।३६

७१६. दर्शन चिरसौख्यदम् ॥६७।१२१

७१७. रत्न पाणितल प्राप्त परिभ्रष्ट महोदधौ ।
उपायेन पुन ,केन सङ्गतिं प्रतिपद्यते ॥६७।१२३

७१८. क्षिप्त्वामृतफल कूपे महाऽऽपत्तिभयङ्करे ।
पर प्रपद्यते दु ख पश्चात्तापहत शिशु ॥६७।१२४

७१९. यस्य यत्सदृश तस्य प्रवदत्वनिवारित ।
को ह्यस्य जगत. कर्त्तु शक्नोति मुखबन्धनम् ॥६७।१२५

७२०. धिग् भृत्यता जगन्निद्या यत्किञ्चनविधायिनीम् ।
परायत्तीकृतात्मान क्षुद्रमानवसेविताम् ॥६७।१४०

७२१ यन्त्रचेष्टिततुल्यस्य दु.खैकनिहितात्मन ।
भृत्यस्य जीविताद् दूर वर कुक्कुरजीवितम् ॥६७।१४१

७२२ नरेन्द्रशक्तिवश्य सन् निन्द्यनामा पिशाचवत् ।
विदधाति न कि भृत्य कि वा न परिभाषते ॥६७।१४२

७२३. चित्रचापसमानस्य नि कृत्यगुणधारिण ।
नित्यनम्रशरीरस्य निन्द्य भृत्यस्य जीवितम् ॥६७।१४३

७२४ सङ्कारकूटकस्येव पश्चान्निवृ त्तचेतस ।
निर्माल्यवाहिनो धिग्धिग्भृत्यनाम्नोऽसुधारणम् ॥६७।१४४

७२५. उन्नत्या त्रपया दीप्त्या वर्जितस्य निजेच्छया ।
मा स्म भूज्जन्म भृत्यस्य पुस्तकर्मसमात्मन. ॥६७।१४६

७२६. विमानस्यापि मुक्तस्य गत्या गुरुतया समम् ।
अधस्ताद् गच्छतो नित्य धिग्भृत्यस्यासुधारणम् ॥६७।१४७

७२७ नि सत्त्वस्य महामासविक्रय कुर्वत. सदा ।
निर्मदस्यास्वतन्त्रस्य धिग्भृत्यस्यासुधारणम् ॥६७।१४८

७२८. तिर्यगूर्ध्वमधस्ताद्वा स्थान तन्नास्ति विष्टपे ।
जीवेन यत्र न प्राप्ता जन्ममृत्युजरादय. ॥६८।८६

७२९ परिभ्रष्ट प्रमादेन महार्घगुणमुज्ज्वलम् ।
रत्न को न पुनर्विद्वानन्विष्यति महादर ॥६८।१००

७३० चरित सत्पुरुषस्य व्यपगतदोप परोपकारनिर्युक्तम् ।
क्षपयति कस्य न शोक जिनमतनिरतप्रगाढचेतस्य ॥६८।१०४

७३१. प्राप्तव्य येन यल्लोके दु ख कल्याणमेव वा ।
स त स्वयमवाप्नोति कुतश्चिद्व्यपदेशत ॥६९।८६

७३२. आकाशमपि नीत सन् वन वा श्वापदाकुलम् ।
मूर्धान वा महीध्रस्य पुण्येन स्वेन रक्ष्यते ॥६९।८७

७३३ भास्करेण विना का द्यौ का निशा शशिना विना ? ६९।९५

७३४ नोपाय पश्चात्तापो मनीषिते ॥६९।१०३

७३५. उपदेश ददत्पात्रे गुरुर्याति कृतार्थताम् ।
अनर्थक समुद्योतो रवे कौशिकगोचर ॥१००।५२

७३६. ईदृशेव हि धीराणा कुलशीलनिवेदनम् ।
शस्यते न तु भारत्या तद्धि सन्देहभाजनम् ॥१०१।६०

७३७ प्रणाममात्रत प्रीता जायन्ते मानशालिन ।
नोन्मूलयन्ति नद्योघा वेतसान् प्रणतात्मकान् ॥१०१।६५

७३८ रणे पृष्ठ न दीयते ॥१०३।२२

७३९. अनाथानामबन्धूना दरिद्राणा सुदु खिनम् ।
जिनशासनमेतद्धि शरण परम मतम् ॥१०४।७०

७४०. वर हि मरण श्लाघ्य न वियोग सुदु सह' ।
श्रुतिस्मृतिहरोऽसौ हि परम' कोऽपि निन्दित ॥१०५।११

७४१. यावज्जीव हि विरहस्ताप यच्छति चेतस. ।
मृतेति छिद्यते स्वैर कथाकाक्षा च तद्गता ॥१०५।१२

७४२. रसनस्पर्शनासक्ता जीवास्तत्कर्म कुर्वते ।
गरिष्ठा नरके येन पतन्त्यायसपिण्डवत् ॥१०५।११६

७४३. हिंसावितथचौर्यान्यस्त्रीसङ्गादनिवर्तना ।
नरकेषूपजायन्ते पापभारगुरूकृता. ॥१०५।११७

७४४. मनुष्यजन्म सम्प्राप्य सतत भोगसङ्गता ।
जना प्रचण्डकर्माणो गच्छन्ति नरकावनिम् ॥१०५।११८

७४५ विधाय कारयित्वा च पाप समनुमोद्य च ।
रौद्रार्त्तप्रवणा जीवा यान्ति नारकबीजताम् ॥१०५।११९

७४६. तस्मात्फलमधर्मस्य ज्ञात्वेदमतिदु सहम ।
प्रशान्तहृदया सन्त सेवध्व जिनशासनम् ॥१०५।१३९

७४७. यथा सुवर्णपिण्डस्य वेष्टितस्यायसा भृशम् ।
आत्मीया नश्यति च्छाया तथा जीवस्य कर्मण ॥१०५।१७८

७४८. मृत्युजन्मजराव्याधिसहस्रै सतत जना ।
मानसैश्च महादु खै पीड्यन्ते सुखमत्र किम् ॥१०५।१७९

७४९. असिधारामधुस्वादसम विषयज सुखम् ।
दग्धे चन्दनवद्दिव्य चक्रिणा सविषान्नवत् ॥१०५।१८०

७५०. ध्रुव परमनाबाधमुपमानविवर्जितम् ।
आत्मस्वाभाविक सौख्य सिद्धाना परिकीर्त्तितम् ॥१०५।१८१

७५१ सुप्त्या किं ध्वस्तनिद्राणा नीरोगाणा किमौषधै. ?
सर्वज्ञाना कृतार्थाना कि दीपतपनादिना ? १०५।१८२

७५२. आयुधै किमभीताना निर्मुक्तानामरातिभि. ।
पश्यता विपुल सर्वसिद्धार्थाना किमीहया ॥१०५।१८३

७५३. महात्मसुखतृप्ताना किं कृत्य भोजनादिना ।
देवेन्द्रा अपि यत्सौख्य वाञ्छन्ति सततोन्मुखा. ॥१०५।१८४

७५४. सुख नापरमुत्कृष्ट विद्यते सिद्धसौख्यत' ॥१०५।१९०

७५५ गत्यागतिविमुक्ताना प्रक्षीणक्लेशसम्पदाम् ।
लोकशेखरभूतानां सिद्धानामसम सुखम् ॥१०५।१९४

७५६ जिनेन्द्रशासनादन्यशासने रघुनन्दन ।
न सर्वयत्नयोगेऽपि विद्यते कर्मणा क्षय ॥१०५।२०४

७५७ भार्याविटीप्रविष्ट सन् मनुष्यो वनवारण ।
विषयामिषसक्तश्च मत्स्यो बन्ध समश्नुते ॥१०५।२५७

७५८ मोक्षो निगडवद्धस्य भवेदन्धाच्च कूपत. ।
निवद्ध स्नेहपाशैस्तु तत कृच्छ्रेण मुच्यते ॥१०५।२५९

७५९ वोधि मनुष्यलोकेऽपि जैनेन्द्री सुष्ठु दुर्लभाम् ।
प्राप्नुमर्हत्यभव्यस्तु नैव मार्ग जिनोदितम् ॥१०५।२६०

७६० घनकर्मकलङ्काक्ता अभव्या नित्यमेव हि ।
ससारचक्रमारूढा भ्राम्यन्ति क्लेशवाहिता ॥१०५।२६१

७६१ सन्धावतोऽस्य ससारे कर्मयोगेन देहिन ।
कृच्छ्रेण महता प्राप्तिर्मुक्तिमार्गस्य जायते ॥१०६।९४

७६२ सन्ध्याबुद्‌बुदफेनोर्मिविद्युदिन्द्रधनु सम ।
भङ्गुरत्वेन लोकोऽय न किञ्चिदिह सारकम् ॥१०६।९५

७६३ नरके दु खमेकान्तादेति तिर्यक्षु वाऽसुमान् ।
मनुष्यत्रिदशाना च सुखेनैवैष तृप्यति ॥ १०६।९६

७६४ माहेन्द्रभोगसम्पद्भिर्यो न तृप्तिमुपागत ।
स कथ क्षुद्रकैस्तृप्ति व्रजेन्मनुजभोगकै ॥ १०६।९७

७६५. कथञ्चिद् दुर्लभ लब्ध्वा निधानमधनो यथा ।
नरत्व मुह्यति व्यर्थ विषयास्वादलोभत ॥ १०६।९८

७६६. काग्ने. शुष्केन्धनैस्तृप्ति काम्बुधेरापगाजलै. ।
विषयास्वादसौख्यै का तृप्तिरस्य शरीरिण. ॥ १०६।९९

७६७. मज्जन्निव जले खिन्नो विषयामिषमोहित ।
दक्षोऽपि मन्दतामेति तमोऽन्धीकृतमानस ॥ १०६।१००

७६८. दिवा तपति तिग्माशुर्मदनस्तु दिवानिशम् ।
समस्ति वारण भानोर्मदनस्य न विद्यते ॥ १०६।१०१

७६९ जन्ममृत्युजरादु ख ससारे स्मृतिभीतिदम् ।
अरहट्टघटीयन्त्रसन्तत कर्मसम्भवम् ॥ १०६।१०२

७७० अजङ्गम यथाऽन्येन यन्त्र कृतपरिभ्रमम् ।
शरीरमध्रुव पूति तथा स्नेहोऽत्र मोहत ॥ १०६।१०३

७७१. जलबुद्बुदनि.सारं ज्ञात्वा मनुजसम्भवम् ।
निर्विण्णा कुलजा मार्गं प्रपद्यन्ते जिनोदितम् ।। १०६।१०४

७७२. उत्साहकवचच्छन्ना निश्चयाश्वस्थसादिनः ।
ध्यानखड्गधरा धीरा प्रस्थिता. सुगतिं प्रति ।। १०६।१०५

७७३. अन्यच्छरीरमन्योऽहमिति सञ्चिन्त्य निश्चिताः ।
त्यक्त्वा शरीरके स्नेहं धर्म कुरुत मानवा. ।। १०६।१०६

७७४. सुखदु खादयस्तुल्या स्वजनेतरयो समा ।
रागद्वेषविनिर्मुक्ता श्रमणाः पुरुषोत्तमा ।। १०६।१०७

७७५. भारत्यपि न वक्तव्या दुरितादानकारिणी ।। १०६।२२४

७७६ धारयन्ति न निर्यात वह्निज्वालाकुलालयात् ।
दयावन्तो यथा तद्वद् दु खतप्ताद् भवादपि ।। १०७।१०

७७७ कदाचिच्चलति प्रेम न्यस्त भर्त्तरि योषिताम् ।
स्वस्तन्यकृतपोषेषु जातेषु न तु जातुचित् ।। १०७।६२

७७८. एव विदित्वा सुलभौ नितान्त जीवस्य लोके पितरौ सदैव ।
कर्त्तव्यमेतद् विदुषा प्रयत्नाद्विमुच्यते येन शरीरदु खात् ।। १०८।५१

७७९. विमुच्य सर्वं भववृद्धिहेतु कर्मोरुदु.खप्रभव जुगुप्सम् ।
कृत्वा तपो जैनमतोपदिष्टं रविं तिरस्कृत्य शिव प्रयात ।। १०८।५२

७८०. ससारस्य स्वभावोऽयं रङ्गमध्ये यथा नरः ।
राजा भूत्वा भवेद्भृत्य प्रेष्यश्च प्रभुता व्रजेत् ।। १०९।६७

७८१. एव पिताऽपि तोकत्वमेति तोकश्च तातताम् ।
माता पत्नीत्वमायाति पत्नी चायाति मातृताम् ।। १०९।६८

७८२. उद्घाटनघटीयन्त्रसदृशेऽस्मिन् भवात्मनि ।
उपर्यधरता यान्ति जीवा कर्मवश गता ।। १०९।६९

७८३. साधून्वीक्ष्य जुगुप्सन्ते सद्योऽनर्थं प्रयान्ति ते ।
न पश्यन्त्यात्मनो दौष्ट्य दोष कुर्वन्ति साधुषु ।। १०९।११२

७८४ यथाऽऽदर्शतले कश्चिदात्मानमवलोकयन् ।
यादृश कुरुते वक्त्रं तादृश पश्यति ध्रुवम् ।।
तद्वत्साधु समालोक्य प्रस्थानादिक्रियोद्यत ।
यादृश कुरुते भाव तादृक्ष लभते फलम् ।। १०९।११३-११४

७८५. प्ररोदन प्रहासेन कलह परुषोक्तित ।
वधेन मरण प्रोक्त विद्वेषेण च पातकम् ।। १०९।११५

७८६ साधोर्नियुक्तेन परिनिन्द्येन वस्तुना ।
फलेन तादृशेनैव कर्त्ता योगमुपाश्नुते ॥ १०६।११६

७८६ (अ) को दोपोऽन्यप्रियारतौ ? १०६।१५३

७८७ ये पारदारिका दुष्टा निग्राह्यास्ते न सगय. ॥ १०६।१५४

७८८ दण्ड्या पञ्चकदण्डेन निर्वास्या पुरुपाधमा॰ ।
स्पृशन्तोऽप्यबलामन्या भापयन्तोऽपि दुर्मता ॥
सन्मूढा परदारेपु ये पापादनिर्वर्त्तिन ।
अव प्रपतन येपा ते पूज्या कथमीदृशा ॥ १०६।१५५-१५६

७८९ यथा राजा तथा प्रजा ॥ १०६।१५६

७९०. येन वीजा प्ररोहन्ति जगतो यच्च जीवनम् ।
जातस्ततो जलाद्वह्नि किमिहापरमुच्यताम् ॥ १०६।११६

७९१. भोगसवर्तनो (येन) कर्मणा नावमुच्यते ॥ १०६।१६३

७९२ सता हि साधुसम्बन्धाच्चित्तमानन्दमीयते ॥ ११०।२५

७९३. स्वभावाद्वनिता जिह्मा विगेपादन्यचेतस. ।
तत सुहृदयस्तासामर्थे को विकृर्ति भजेत् ॥ ११०।३१

७९४. अथवा विस्मय कोऽत्र किमपीद जगद्गतम् ।
कर्मवैचित्र्ययोगेन विचित्र यच्चराचरम् ॥ ११०।३६

७९५. प्रागेव यदवाप्तव्य येन यत्र यथा यत. ।
तत्परिप्राप्यतेऽवश्य तेन तत्र तथा तत ॥ ११०।४०

७९६. रम्भास्तम्भसमानाना नि साराणा हतात्मनाम् ।
कामाना वशगा शोकं ह्यस्य नो कर्त्तुमर्हथ ॥ ११०।४४

७९७ सर्वे शरीरिण॰ कर्मवशे वृत्तिमुपाश्रिता ।
न तत्कुरुथ किं येन तत्कर्म परिणश्यति ॥ ११०।४५

७९८. गहने भवकान्तारे प्रणष्टा प्राणधारिण. ।
ईदृ क्षि यान्ति दु खानि निरस्यत ततस्तकम् ॥ ११०।४६

७९९. भवाना किल सर्वेपा दुर्लभो मानुपो भव ।
प्राप्य त स्वहित यो न कुरुते स तु वञ्चित ॥ ११०।४६

८००. ऐश्वर्यं पात्रदानेन तपसा लभते दिवम् ।
ज्ञानेन च शिव जीवो दु.खदा गतिमहसा ॥ ११०।५०

८०१ विद्युदाकालिक ह्येतज्जगत्सारविवर्जितम् ॥ ११०।५५

८०२. नास्य माता पिता भ्राता वान्धवा सुहृदोऽपि वा ।
सहाया कर्मतन्त्रस्य परित्राण शरीरिण ॥ ११०।५८

८०३ अतृप्त एव भोगेषु जीवो दुर्मित्रविभ्रम ।
इम विमोक्ष्यते देह किं प्राप्त जायते तदा ॥ ११०।६१

८०४. मातर पितरोऽन्ये च ससारेऽनन्तशो गता. ।
स्नेहबन्धनमेतानामेतद्धि चारक गृहम् ॥ ११०।७२

८०५ पापस्य परमारम्भ नानादु खाभिवर्द्धनम् ।
गृहपञ्जरक मूढा. सेवन्ते न प्रबोधिन ॥ ११०।७३

८०६ शारीरं मानस दु ख मा भूद् भूयोऽपि नो यथा ।
तथा सुनिश्चिता कुर्म किं वय स्वस्य वैरिणः ॥ ११०।७४

८०७ निर्दोषोऽहं न मे पापमस्तीत्यपि विचिन्तयन् ।
मलिनत्व गृही याति शुक्लाशुकमिव स्थितम् ॥ ११०।७५

८०९. उत्थायोत्थाय यन्नृणा गृहाश्रमनिवासिनाम् ।
पापे रतिस्ततस्त्यक्तो गृहिधर्मो महात्मभिः ॥ ११०।७६

८१० पिबन्त मृगक यद्वद् व्याधो हन्ति तृषा जलम् ।
तथैव पुरुष मृत्युर्हन्ति भोगैरतृप्तकम् ॥ ११०।७८

८११. विषयप्राप्तिससक्तमस्वतन्त्रमिद जगत् ।
कामैराशीविषैः साक क्रीडत्यज्ञानमौषधम् ॥ ११०।७९

८१२. जगत्स्वकर्मणा वश्यम् ।११०।८१

८१३ ध्रुव यदा समासाद्यो विरहो बन्धुभि· समम् ।
असमञ्जसरूपेऽस्मिन्ससारे का रतिस्तदा ॥ ११०।८३

८१४. अय मे प्रिय इत्याऽऽस्था व्यामोहोपनिवन्धना ।
एक एव यतो जन्तुर्गत्यागमनदु खभाक् ॥ ११०।८४

८१५. नानायोनिषु सभ्रम्य कृच्छ्रात्प्राप्ता मनुष्यताम् ।
कुर्मस्तथा यथा भूयो मज्जामो नात्र सागरे ॥ ११०।८६

८१६. सर्वारम्भविरहिता विहरन्ति नित्य निरम्बरा विधियुक्तम् ।
क्षान्ता दान्ता मुक्ता निरपेक्षाः परमयोगिनो ध्यानरता· ॥ ११०।९३

८१७. तृष्णाविषादहन्तृणा क्षणमप्यस्ति नो शम ।
मूर्धोपकण्ठदत्ताङ्घ्रिर्मृत्यु कालमुदीक्षते ॥ १११।१४

८१८. अस्य दग्धशरीरस्य कृते क्षणविनाशिन ।
हताश· कुरुते किं न जीवो विषयदासक ॥ १११।१५

८१९. ज्ञात्वा जीवितमानाय्य त्यक्त्वा सर्वपरिग्रहम् ।
स्वहिते वर्त्तते यो न स नश्यत्यकृतार्थक ॥ १११।१६

८२० सहस्रेणापि शास्त्राणा किं येनात्मा न शाम्यति ।
तृप्तमेकपदेनापि येनात्मा शममश्नुते ॥१११।१७

८२१. कर्तुमिच्छति सद्धर्मं न करोति यथाप्ययम् ।
दिव यियासुर्विच्छिन्नपक्षकाक इव श्रमम् ॥१११।१८

८२२. विमुक्तो व्यवसायेन लभते चेत्समीहितम् ।
न लोके विरही कश्चिद्भवेदद्रविणोऽपि वा ॥१११।१९

८२३ अतिथिं द्वार्गत साधु गुरुवाक्यं प्रतिक्रियाम् ।
प्रतीक्ष्य सुकृतं चाशु नावसीदति मानव· ।१११।२०

८२४. नानाव्यापारशतैराकुलहृदयस्य दु·खिन प्रतिदिवसम् ।
रत्नमिव करतलस्थं भ्रश्यत्यायु प्रमादतः प्राणभृत ॥१११।२१

८२६ जिनचन्द्रार्चनन्यस्तविकासिनयना जनाः ।
नियमावहितात्मान शिव निदधते करे ॥११२।६३

८२६ न तेपा दुर्लभ किञ्चित् कल्याण शुद्धचेतसाम् ।
ये जिनेन्द्रार्चनासक्ता जना मगलदर्शना : ॥११२।६४

८२७ श्रावकान्वयसम्भूतिर्भक्तिर्जिनवरे दृढा ।
समाधिनावसान च पर्याप्ति जन्मन·फलम् ॥११२।६५

८२८. हा कष्ट संसारे नास्ति तत्पदम् ।
यत्र न क्रीडति स्वेच्छ मृत्युः सुरगणेष्वपि ॥११२।७७

८२९ तडिदुल्कातरङ्गातिभङ्गुर जन्म सर्वतः ।
देवानामपि यत्र स्यात् प्राणिनां तत्र का कथा ॥११२।७८

८३०. अनन्तशो न भुक्त यत्ससारे चेतनावता ।
न तदास्ति सुख नाम दु ख वा भुवनत्रये ॥११२।७९

८३१ अहो मोहस्य माहात्म्य परमेतद्बलान्वितम् ।
एतावन्त यत काल दु खपर्यटित भवेत् ॥११२।८०

८३२ उत्सर्पिण्यवसर्पिण्यौ भ्रान्त्वा कृच्छ्रात्सहस्रशः ।
अवाप्यते मनुष्यत्व कष्ट नष्टमनाप्तवत् ॥११२।८१

८३३ विनश्वरसुखासक्ता· सौहित्यपरिवर्जिता· ।
परिणाम प्रपद्यन्ते प्राणिनस्तापसङ्कटम् ॥१११।८२

८३४. चलान्युत्पथवृत्तानि दु·खदानि पराणि च ।
इन्द्रियाणि न शाम्यन्ति विना जिनपथाश्रयात् ॥११२।८३

८३५ आनायेन यथा दीना वध्यन्ते मृगपक्षिणः ।
तथा विषयजालेन वध्यन्ते मोहिनो जना· ॥११२।८४

८३६. आशीविषसमानैर्यो रमते विषयै. समम् ।
परिणामे स मूढात्मा दह्यते दु खवह्निना ॥११२।८५

८३७. को ह्येकदिवस राज्य वर्षमन्विष्य यातनाम् ।
प्रार्थयेत विमूढात्मा तद्वद्विषयसौख्यभाक् ॥११२।८६

८३८. कदाचिद् बुद्ध्यमानोऽपि मोहतस्करवञ्चित ।
न करोति जन. स्वार्थं किमत. कष्टमुत्तमम् ॥११२।८७

८३९ मुक्त्वा त्रिविष्टपे धर्मं मनुष्यभवसञ्चितम् ।
पश्चान्मुषितवद्दीनो दुःखी भवति चेतनः ॥११२।८८

८४० भुक्त्वापि त्रैदशान् भोगान् सुकृते क्षयमागते ।
शेषकर्मसहायः सन् चेतन क्वापि गच्छति ॥११२।८९

८४१. जन्तोर्निज कर्म बान्धवः शत्रुरेव वा ॥११२।९०

८४२ तदल निन्दितैरेभिर्भोगै परमदारुणै ।
विप्रयोग सहामीभिरवश्य येन जायते ॥११२।९१

८४३. श्रीमत्यो हरिणीनेत्रा योषिद्गुणसमन्विता ।
अत्यन्तदुस्त्यजा मुग्धा ॥११२।९३

८४४ दीर्घ काल रन्त्वा नाके गुणयुवतीभिः सुविभूतिभि. ।
मर्त्यक्षेत्रेऽप्यसम भूय. प्रमदवरललितवनिताजनै परिललितः ।
को वा यातस्तृप्ति जन्तुर्विविधविषयसुखरतिभिर्नदीभिरिवोदधि ।
नानाजन्मभ्रान्त श्रान्त व्रज हृदय ।
शममपि किमाकुलित भवेत् ॥११२।९५-९६

८४५ किं न श्रुता नरकभीमविरोध रौद्र-
स्तीव्रासिपत्रवनसङ्कटदुर्गमार्गा ॥११२।९७

८४६ उत्तरन्त भवाम्भोधि तत्रैव प्रक्षिपन्ति ये ।
हितास्ते कथमुच्यन्ते वैरिणः परमार्थत ॥११३।७

८४७ माता पिता सुहृद् भ्राता न तदागात्सहायताम् ।
यदा नरकवासेषु प्राप्त दु खमनुत्तमम् ॥११३।८

८४८ मानुष्यं दुर्लभ प्राप्य बोधिं च जिनशासने ।
प्रमादो नोचित कर्त्तुं निमेषमपि धीमतः ॥११३।९

८४९. देवासुरमनुष्येन्द्रा स्वकर्मवशवर्तिनः ।
कालदावानलालीढा के वा न प्रलय गताः ॥११३।११

८५०. गताऽऽगमविधेर्दातृ मत्तोऽपि सुमहाबलम् ।
अपरं नाम कर्मास्ति ॥११३।१३

८५१ महामहाजन प्रायो रतिवद्धिरतौ भृगम् ॥११३।४२

८५२ सन्तं सन्त्यज्य ये भोग प्रव्रजन्त्यायतेक्षणा.।
नून ग्रहगृहीतास्ते वायुना वा वशीकृता· ॥११४।२

८५३. भुज्यमानाऽल्पसौख्येन ससारपदमीयुषाम्।
प्रायो विस्मयते सौख्य श्रुतमप्यतिसंसृति ॥

८५४ सर्वेषां बन्धनानां तु स्नेहबन्धो महादृढः ॥११४।४६

८५५ हस्तपादागवद्धस्य मोक्ष स्यादसुधारिण ।
स्नेहबन्धनवद्धस्य कुतो मुक्तिर्विधीयते ॥११४।५०

८५६. योजनाना सहस्राणि निगडैः पूरितो व्रजेत्।
शक्तो नागुलमप्येक वद्ध. स्नेहेन मानवः ॥११४।५१

८५७ कर्मणामिदमीदृशमीहित वुद्धिमानपि यदेति विमूढताम्।
अन्यथा श्रुतसर्वनिजायति. कः करोति न हित सचेतन ॥११४।५४

८५८. कृत्यमत्र भवारिविनाशन यत्नमेत्य परम सुचेतसा ॥११४।५५

८५९ अप्रेक्ष्यकारिणां पापमानसाना हतात्मनाम्।
अनुष्ठित स्वय कर्म जायते तापकारणम् ॥११५।१७

८६० धिगसारं मनुष्यत्व नाऽतोऽस्त्यन्यन्महाधमम्।
मृत्युर्यच्छत्यवस्कन्दं यदज्ञातो निमेषत· ॥११५।५५

८६१. यो न निर्व्यूहितु शक्य. सुरविद्याधरैरपि।
नारायणोऽप्यसौ नीत· कालपाशेन वश्यताम् ॥११५।५६

८६२ आनाय्येन शरीरेण किमनेन धनेन च ? ११५।५७

८६३ कर्मनियोगेनैव प्राप्तेऽवस्थामशोभनामाप्तजने।
सशोक वैराग्य च प्रतिपद्यन्ते विचित्रचित्ता पुरुषा ॥११५।६३

८६४. काल प्राप्य जनाना किञ्चिच्च निमित्त मात्रक परभावम्।
सम्वोधरविरुदेति स्वकृतविपाकेऽन्तरगहेतौ जाते ॥११५।६४

८६५ न कृशानुर्दहत्येव नैव शोषयते विषम्।
उपमानविनिर्मुक्तं यथा भ्रातुः परायणम् ॥११६।१८

८६६. जातेनावश्यमर्त्तव्यमत्र ससारपञ्जरे।
प्रतिक्रियास्ति नो मृत्योरुपायैर्विविधैरपि ॥११७।८

८६७. आनाय्ये नियत देहे शोकस्यालम्वन मुधा।
उपायैर्हि प्रवर्त्तन्ते स्वार्थस्य कृतवुद्धय ॥११७।९

८६८ आक्रन्दितेन नो कश्चित्परलोकगतो गिरम्।
प्रयच्छति ॥११७।१०

८६९. नारीपुरुषसंयोगाच्छरीराणि शरीरिणाम् ।
उत्पद्यन्ते व्ययन्ते च प्राप्तसाम्यानि बुद्बुदैः ॥११७।११

८७०. लोकपालसमेतानामिन्द्राणामपि नाकतः ।
नष्टा योनिजदेहानां प्रच्युतिः पुण्यसंक्षये ॥११७।१२

८७१. गर्भाक्लिष्टे रुजाकीर्णे तृणबिन्दुचलाचले ।
क्लेदकैकससङ्घाते काऽऽस्था मर्त्यशरीरके ॥११७।१३

८७२. अजरामरणंमन्यः किं शोचति जनो मृतम् ।
मृत्युदंष्ट्रान्तरक्लिष्टमात्मानं किं न शोचति ॥ ११७।१४

८७३. यदैव हि जनो जातो मृत्युनाधिष्ठितस्तदा ।
तत्र साधारणे धर्मे ध्रुवे किमिति शोच्यते ॥ ११७।१६

८७४. समीष्टसङ्गमाकांक्षी मुधा शुष्यति शोकवान् ।
शबरार्त्त इवारण्ये चमरः केशलोभतः ॥ ११७।१७

८७५. लोकस्य साहसं पश्य निर्भीस्तिष्ठति यत्पुरः ।
मृत्योर्वज्राग्रदण्डस्य सिंहस्येव कुरङ्गकः ॥ ११७।१९

८७६. संसारमण्डलापन्नं दह्यमानं सुगन्विना ।
सदा च विन्ध्यदावाभं भुवनं किं न वीक्षसे ॥ ११७।२१

८७७. पर्यट्य भवकान्तारं प्राप्य कामभुजिष्यताम् ।
मत्तद्विपा इवाऽऽयान्ति कालपाशस्य बन्धताम् ॥ ११७।२२

८७८. धर्ममार्गं समासाद्य गतोऽपि त्रिदशालयम् ।
अगाढवततया नद्या पात्यते तटवृक्षवत् ॥ ११७।२३

८७९. सुरमानवनाथानां चयाः शतसहस्रशः ।
निधनं समुपनीताः कालमेघेन वह्नयः ॥ ११७।२४

८८०. दूरमम्बरमुल्लङ्घ्य समापत्य रसातलम् ।
स्थानं तन्न प्रपश्यामि यत्र मृत्योरगोचरः ॥ ११७।२५

८८१. षष्ठकालक्षये सर्वं क्षीयते भारतं जगत् ।
धराधरा विशीर्यन्ते मर्त्यकाये तु का कथा ॥

८८२. वज्रर्षभवपुर्बद्धा अप्यवध्याः सुरासुरैः ।
नन्वनित्यतया लब्धा रम्भागर्भोपमैस्तु किम् ॥ ११७।२७

८८३. जनन्यापि समाश्लिष्टं मृत्युर्हरति देहिनम् ।
पातालान्तर्गतं यद्वत् काद्रवेयं द्विजोत्तमः ॥ ११७।२८

८८४. हा भ्रातर्दयितं पुत्रेत्येवं क्रन्दन् सुदुःखितः ।
कालाहिना जगद्व्यङ्गो ग्रासतामुपनीयते ॥ ११७।३०

८८५ करोम्येतत्करिष्यामि वदत्येवमनिष्टधी ।
जनो विशति कालास्य भीम पोत इवार्णवम् ।। ११६।३०

८८६ जन भवान्तरं प्राप्तमनुगच्छेज्जनो यदि ।
द्विष्टैरिष्टैश्च नो जातु जायेत विरहस्तत ।। ११७।३१

८८७. परे स्वजनमानी य कुरुते स्नेहसम्मतिम् ।
विशति क्लेशवह्निं स मनुष्यकलभो ध्रुवम् ।। ११७।३२

८८८ स्वजनौघा परिप्राप्ता. संसारे येऽसुधारिणाम् ।
सिन्धुसैकतसङ्घाता अपि सन्ति न तत्समा ।। ११७।३३

८८९ य एव लालितोऽन्यत्र विविधप्रियकारिणा ।
स एव रिपुता प्राप्तो हन्यते तु महारुषा ।। ११७।३४

८९० पीतौ पयोधरौ यस्य जीवस्य जननान्तरे ।
त्रस्ताहतस्य तस्यैव खाद्यते मासमत्र धिक् ।। ११७।३५

८९१ स्वामीति पूजित. पूर्वं य शिरोनमनादिभि. ।
स एव दासता प्राप्तो हन्यते पादताडनै. ।। ११७।३६

८९२. विभो पश्यत मोहस्य शक्ति येन वशीकृत ।
जनोऽन्विष्यति सयोग हस्तेनेव महोरगम् ।। ११७।३७

८९३. प्रदेशस्तिलमात्रोऽपि विष्टपे न स विद्यते ।
यत्र जीव परिप्राप्तो न मृत्यु जन्म एव वा ।। ११७।३८

८९४ ताम्रादिकलिल पीत जीवेन नरकेषु यत् ।
स्वयम्भूरमणे तावत्सलिल नहि विद्यते ।। ११७।३९

८९५ वराहभवयुक्तेन यो नीहारोऽशनीकृत ।
मन्ये विन्ध्यसहस्रेभ्यो बहुशो-त्यन्तदूरत ।। ११७।४०

८९६ परस्परस्वनाशेन कृता या मूर्द्धसहति ।
ज्योतिषा मार्गमुल्लङ्घ्य यायात्सा यदि रुध्यते ।। ११७।४१

८९७ शर्कराधरणीयातैर्दु ख प्राप्तमनुत्तमम् ।
श्रुत्वा तत्कस्य रोचेत मोहेन सह मित्रता ।। ११७।४२

८९८ विरुद्धा अपि हसस्य खद्योता कि नु कुर्वते ?
यस्याभीषुसहस्राप्त परिजाज्वल्यते जगत् ।। ११८।५७

८९९ महान्न मरणेऽप्यस्ति गुणो जीवन् हि मानव. ।
कदाचिदेति कल्याण स्वकर्मपरिपाकत ।। ११८।५९

९००. परेत सिञ्चसे मूढ कस्मादेनमनोकहम् ?
कलेवरे हल ग्राव्णि बीज हारयसे कुत ? ११८।७८

९०१. नीरनिर्मथने लब्धिर्नवनीतस्य किं कृता ।
बालुकापीडनाद् बालस्नेह. सञ्जायतेऽथ किम् ।। ११८।७९

९०२. बालाग्रमात्रक दोष परस्य क्षिप्रमीक्षसे ।
मेरुकूटप्रमाणान् स्वान् कथ दोषान्न पश्यसि ।। ११८।८७

९०३. सदृश सदृशेष्वेव रज्यन्ति ।। ११८।८८

९०४. अहो तृणाग्रससक्तजलबिन्दुचलाचलम् ।
मनुष्यजीवित यद्वत्क्षणान्नाशमुपागतम् ।।११८।१०३

९०५. कस्येष्टानि कलत्राणि कस्यार्था कस्य बान्धवा· ।
संसारे सुलभ ह्येतद् बोधिरेका सुदुर्लभा ।।११८।१०५

९०६. तेषा सर्वसुखान्येव ये श्रामण्यमुपागता: ।।११८।११०

९०७. कामोपभोगेषु मनोहरेषु सुहृत्सु सम्बन्धिषु बान्धवेषु ।
वस्तुष्वभीष्टेषु च जीवितेषु कस्यास्ति तृप्तिर्नृ रवे भवेऽस्मिन् ।।११८।१२९

९०८. किमनेन समस्तेन विनाशित्वावसादिना ? ११९।२१

९०९. सनातननिराबाधपरातिशयसौख्यदम् ।
मनीषितं पर युक्तं जिनधर्म वगाहितुम् ।।११९।२२

९१०. जैने शक्त्या च भक्त्या च शासने सङ्गतत्परा ।
जना विभ्रति लभ्यार्थ जन्म मुक्तिपदान्तिकम् ।।११९।५६

९११. जिनाक्षरमहारत्ननिधान प्राप्य भो जना. ।
कुलिङ्गसमय सर्व परित्यजत दु.खदम् ।।११९।५७

९१२. कुग्रन्थैर्मोहितात्मान: सदम्भकलुषक्रिया: ।
जात्यन्धा इव गच्छन्ति त्यक्त्वा कल्याणमन्यत: ।।११९।५८

९१३. नानोपकरणं दृष्ट्वा साधन शक्तिवर्जिता. ।
निर्दोषमिति भाषित्वा गृह्णते मुखरा: परे ।।११९।५९

९१४ व्यर्थमेव कुलिङ्गास्ते मूढैरन्यै पुरस्कृता ।
प्रखिन्नतनवो भार वहन्ति मृतका इव ।।११९।५०

९१५. ऋषयस्ते खलु येषा परिग्रहे नास्ति याचने वा बुद्धि: ।।११९।५१

९१६ कर्मण पश्यताधान ही शुभाशुभयो· पृथक् ।
विचित्र जन्म लोकस्य ।।१२२।१७

९१७. कुर्वन्तु वाञ्छितं बाह्या. क्रियाजालमनेकधा ।
प्रच्यवन्ते न तु स्वार्थात्परमार्थविचक्षणा. ।।१२२।६३

९१८. किमनेनाभिमानेन परमानर्थहेतुना ।।१२३।१९

६१९ अदृष्टलोकपर्यन्ता हिंसानृतपरस्विन. ।
रौद्रध्यानपरा. प्राप्ता नरकस्थं प्रतिद्विष. ॥१२३।२८

६२०. भोगाधिकारसंसक्तास्तीव्रक्रोधादिरञ्जिता. ।
विकर्मनिरता नित्य सम्प्राप्ता दु.खमीदृशम् ॥ १२३।२९

६२१. अहो मोहस्य माहात्म्य यत्स्वार्थादपि हीयते ॥ १२३।३४

६२२ विषयामिषलुब्धानां प्राप्तानां नरकासुखम् ।
स्वकृतप्राप्तिवश्यानां किं करिष्यन्ति देवता. ॥ १२३।४०

६२३. एतत्स्वोपचित कर्म भोक्तव्यम् । १२३।४१

६२४. कर्मप्रमथन शुद्धं पवित्र परमार्थदम् ।
अप्राप्तपूर्वमाप्त वा दुर्गृहीत प्रमादिनाम् ॥ १२३।४४

६२५. दुर्विज्ञेयमभव्याना बृहद्भवभयानकम् ।
कल्याण दुर्लभ सुष्ठु सम्यग्दर्शनमूर्जितम् ॥ १२३।४५

६२६ अर्हद्भिर्गदिता भावा भगवद्भिर्महोत्तमै. ।
तथैवेति दृढ भक्त्या सम्यग्दर्शनमिष्यते ॥ १२३।४८

६२७. मुक्तिर्वैराग्यनिष्ठस्य रागिणो भवमज्जनम् ॥ १२३।७४

६२८ अवलम्ब्य शिला कण्ठे दोर्भ्यां तर्त्तु न शक्यते ।
नदी तद्वन्न रागाद्यैस्तरितुं संसृति. क्षमा ॥ १२३।७५

६२९ ज्ञानशीलगुणासङ्गैस्तीर्यते भवसागर. ।
ज्ञानानुगतचित्तेन गुरुवाक्यानुवर्त्तिना ॥ १२३।७६

६३०. आदिमध्यावसानेषु वेदितव्यमिद बुधै ।
सर्वेषां यन्महातेजा केवली ग्रसते गुणान् ॥ १२३।७७

६३१ पात्रभूतान्नदानाच्च शक्त्याढ्यास्तर्पयन्ति ये ।
ते भोगभूमिमासाद्य प्राप्नुवन्ति पर पदम् ॥ १२३।१०६

६३२ स्वर्गे भोग प्रभुञ्जन्ति भोगभूमेश्च्युता नराः ।
तत्रस्थाना स्वभावोऽय दानैर्भोगस्य सम्पदः ॥ १२३।१०७

६३३ दानतो सातप्राप्तिश्च स्वर्गमोक्षैककारणम् । १२३।१०८

६३४ अपि नाम शिव गुणानुबन्धि व्यसनस्फातिकर शिवेतरम् ।
तद्विपयस्पृहया तदेति मैत्रीमशिव तेन न शान्तये कदाचित् ॥ १२३।१७१

६३५ स्वकलत्रसुख हित रहित्वा परकान्ताभिरतिं करोति पापः ।
व्यसनार्णवमत्युदारमेप प्रविशत्येव विशुष्कदारुकल्पः ॥ १२३।१७४

६३६ सुकृतस्य फलेन जन्तुरुच्चैः पदमाप्नोति सुसम्पदां निधानम् ।
दुरितस्य फलेन तत्तु दुःख कुगतिस्थ समुपैत्यय स्वभाव ॥ १२३।१७६

परिशिष्ट—२

पद्मपुराण की प्रमुख वंशावलियाँ

राक्षस-वंश

पूजार्ह आदि १०८ पुत्र (बड़े पुत्र को राज्य देकर भीमप्रभ ने दीक्षा धारण करली।)

जिन भास्कर, सम्परिकीर्ति, सुग्रीव, हरिग्रीव, श्रीग्रीव, सुमुख, सुव्यक्त, अमृतवेग, भानुगति, चिन्तागति, इन्द्र, इन्द्रप्रभ, मेघ, मृगारिदमन, पवि, इन्द्रजित्, भानुवर्मा, भानु, भानुप्रभ, सुरारि, त्रिजट, भीम, मोहन, उद्धारक, रवि, चकार, वज्रमध्य, प्रमोद, सिंहविक्रम, चामुण्ड, मारण, भीष्म, द्वीपवाह, अरिमर्दन, निर्वाण-भक्ति, उग्रश्री, अर्हद्भक्ति, अनुत्तर, गतभ्रम, अनिल, चण्ड, लंकाशोक, मयूरवान् महाबाहु, मनोरम्य. भास्कराभ, बृहद्गति, बृहत्कान्त, अरिसन्त्रास, चन्द्रावर्त,

महारव, मेघध्वान, गृहक्षोभ, नक्षत्रदमन आदि करोडो विद्याधर इस वश मे हुए। चिरकाल बाद लकाधिपति घनप्रभ (जिसकी रानी पद्मा थी) इस वश मे हुआ जिसका पुत्र कीर्तिधवल हुआ (जिसकी रानी अतीन्द्र की सुता देवी थी।) भगवान् मुनि सुव्रत के तीर्थ मे इसी वश मे वानरवशी महोदधि का समकालीन राजा हुआ—

इक्ष्वाकु-वंश
(रामपर्यन्त)

(अगले पृष्ठ पर सम्बद्ध)

(अगले पृष्ठ पर सम्बद्ध)

वज्रकण्ठ+चारुणी
वज्रप्रभ
इन्द्रमत
मेरु
मन्दर
समीरणगति
रविप्रभ+गुणवती
कपिकेतु+श्रीप्रभा
प्रतिबल
गगनानन्द
खेचरानन्द
गिरिनन्दन
अनेक सख्यातीत राजा जिन्होने स्वर्ग और मोक्ष प्राप्त किया :
मुनि सुव्रत के तीर्थकाल मे
महोदधि+विद्युत्प्रकाशा
१०८ पुत्र जिनमे अन्यतम प्रतिचन्द्र
किष्कन्ध+श्रीमाला
अन्ध्रक (-रूढि)
सूर्यरजा+चन्द्रमालिनी
ऋक्षरजा+हरिकान्ता
सूर्यकमला+मृगारिदमन
(पुत्री) (मेरु-मघोनी-सुत)
नल
नील
बाली+ध्रुवा
सुग्रीव+सुतारा
श्रीप्रभा+रावण
(पुत्री)
अग
अगद

परिशिष्ट—३

संकेतित-ग्रन्थ-सूची

१. अकवरनामा अवुलफजल
२ अथर्ववेद
३ अध्यात्मरामायण : व्यास
४. अनर्घराघव · मुरारि
५. अनामक जातकम्
६ अमरुशतक · अमरुक
७. अष्टमहाश्रीचैत्यस्तोत्र हर्ष
८. आश्चर्यचूडामणि . शक्तिभद्र
९ आदिपुराण जिनसेन
१० उत्तरपुराण : जिनसेन
११ उत्तररामचरित भवभूति
१२ उदात्तराघव . मायुराज
१३ उदारराघव साकल्यमल्ल
१४ उन्मत्तराघव : भास्करभट्ट
१५. उल्लासराघव सोमेश्वर
१६ ऐहोल शिलालेख
१७ कथाकोषप्रकरण · जिनविजय
१८ कवितावली . तुलसी
१९ कल्याण (मानसांक)
२०. कहावली : भद्रेश्वर
२१ कात्यायनश्रौतसूत्र
२२. कादम्वरी : वाणभट्ट
२३ काव्यप्रकाश · मम्मट
२४. काव्यादर्श · दण्डी
२५ काव्यालंकार · रुद्रट
२६. काशिका
२७. किरातार्जुनीय · भारवि
२८. कुन्दमाला · दिङ्नाग
२९ कुवलयमाला : उद्योतनसूरि
३० कृष्णगीतावली . तुलसी
३१ कुमारसम्भव · कालिदास
३२. गीतावली : तुलसी
३३ चउपन्नमहापुरिसचरिय : शीलाचार्य
३४ चण्डीशतक : वाण
३५. चारित्तपाहुड : कुन्दकुन्द
३६ चित्रवन्धरामायण : वेंकटेश
३७. छक्कम्मोवएस : अमरकीर्ति
३८ छन्दमाला : कुलशेखर
३९ जानकीपरिणय · चक्रकवि
४०. जानकीहरण : कुमारदास
४१ जिनरामायण : चंद्रसागर वर्णी
४२. जीवनसम्वोधन वन्धुवर्मा
४३ जैनसाहित्य और इतिहास : नाथूराम प्रेमी
४४ डेवलपमेण्ट ऑफ ट्रेड एण्ड इण्डस्ट्री अण्डर दी मुगल्स · एस. एस. कुलश्रेष्ठ
४५ तत्त्वार्थसूत्र उमास्वाति
४६. तुलसी : डा० उदयभानुसिंह
४७ तुलसीदास डॉ० माताप्रसाद गुप्त
४८ तुलसीदास और उनका युग . डॉ० राजपति दीक्षित

४९. तुलसी और उनका काव्य : डॉ० रामनरेश त्रिपाठी
५०. तुलसी रसायन · डॉ० भगीरथ मिश्र
५१. तुलसी-ग्रन्थावली स० रामचन्द्र शुक्ल, भगवानदीन, ब्रजरत्नदास
५२. तिलोयपण्णत्ति : यतिवृषभ
५३. तिसठ्ठीमहापुरिसगुणालकारु . पुष्पदन्त
५४. त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित · हेमचद्र
५५. त्रिषष्टिशलाकापुरुषपुराण : चामुण्डराय
५६. दशकुमारचरित : दण्डी
५७. दी हिस्ट्री एण्ड कल्चर ऑफ दी इण्डियन पीपिल-दी क्लैसिकल एज : आर. सी. माजूमदार आदि ।
५८. दी कलेक्टेड वर्क्स ऑफ भन्डारकर, वाल्यूम-३
५९. दूतागद . सुभट्ट
६० दोहावली : तुलसी
६१. धर्मपरीक्षा
६२. धूर्तयानम् : हरिभद्र
६३. नीतिशतक : भर्तृहरि
६४. पम्परामायण : अभिनव पम्प
६५. पउमचरिउ . स्वयभू
६६. पउमचरिय : विमलसूरि
६७. पद्मचरित (पद्मपुराण) : रविषेण
६८. पचतत्र : विष्णु शर्मा
६९. पचसग्रह (सस्कृतानुवाद : अमितगतिसूरि
७०. पार्वतीमगल · तुलसी
७१. पुण्याश्रवकथाकोष · रामचन्द्र मुमुक्षु
७२ पुण्याश्रवकथासार नागराज
७३. पुराणविमर्श . बलदेव उपाध्याय
७४. पुराणविषयानुक्रमणी (राजनीतिक) . डा० राजबली पाण्डेय
७५. पुरुषसूक्त (ऋग्वेद)
७६. पृथ्वीराज रासो : चन्दबरदाई
७७. पचास्तिकाय कुन्दकुन्द
७८. प्रतिमानाटक : भास
७९ प्रवचनसार कुन्दकुन्द
८०. प्रसन्नराघव : जयदेव
८१. प्राचीन भारत का इतिहास : रमाशकर त्रिपाठी
८२. प्राचीन भारत का इतिहास : वी० डी० महाजन
८३. प्राचीन भारतीय साहित्य की सांस्कृतिक भूमिका : डा० रामजी उपाध्याय
८४. बरवै रामायण : तुलसी
८५. बालरामायण : राजशेखर
८६. भक्तामरस्तोत्र . मानतुग
८७. भगवती आराघना
८८. भारत का प्राचीन इतिहास : एन० एन० घोष
८९. भारतीय दर्शन : डॉ. राधाकृष्णन्
९०. भारतीय सस्कृति : डा० बलदेव-प्रसाद मिश्र

९१. भावसग्रह : देवसेन ९२. भावार्थरामायण · एकनाथ
९३ मध्ययुगीन वैष्णव सस्कृति और तुलसीदास . डा० रामरतन भटनागर
९४ मनुस्मृति ९५. महाभारत
९६ महावीरचरित भवभूति ९७ मानस का कथाशिल्प : श्रीधरसिंह
९८ मालतीमाधव . भवभूति ९९ मिडिल मिस्टीसिज्म ऑफ इण्डिया
१०० मिडीवल इण्डिया अण्डर मुहमडन रूल : डा० स्टेनली लेनपूल
१०१ मुगल्स एडमिनिस्ट्रेशन सर यदुनाथ सरकार
१०२ मेघदूत कालिदास १०३. मैथिलीकल्याण हस्तिमल्ल
१०४ याज्ञवल्क्यस्मृति १०५ रघुवंश : कालिदास
१०६ राघवनैषधीय हरदत्तसूरि १०७ राघवपाण्डवीय : धनजय
१०८ राघवपाण्डवीय माधवभट् १०९ रामकथा . कामिल बुल्के
११० रामकथावतार · देवचन्द्र १११ रामचरित : अभिनन्द
११२ रामचरित पद्मदेवविजयगणि ११३ रामचरित : सन्ध्याकरनन्दि
११४ रामचरित (रामपुराण) सोमसेन
११५ रामचरितमानस : तुलसी ११६. रामचरित रामायण : भूपति
११७ रामचरितमानस मे लोकवार्ता · चन्द्रभान
११८. रामदेवपुराण (रामायण) : जिनदास
११९. रामलक्खणचरिय . भुवनतुगसूरि
१२०. रामलला नहछू : तुलसी १२१ रामलीलामृत · कृष्णमोहन
१२२ रामविजय : देवप्प १२३. रामविवाह . भालण
१२४. रामायण . कुमुदेन्दु १२५. रामायण · कृत्तिवास
१२६ रामायणमजरी : क्षेमेन्द्र १२७ रामार्चनपद्धति . रामानन्द
१२८ रामाज्ञाप्रश्न . तुलसी १२९ रावणवध (भट्टिकाव्य) : भट्टि
१३०. लघुत्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित : सोमप्रभ
१३१. लघुत्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित · मेघविजय गणिवर
१३२ लोकविभाग . सर्वनन्दि १३३. वरागचरित · जटिलमुनि
१३४ वाल्मीकिरामायण वाल्मीकि
१३५ वासवदत्ता सुबन्धु १३६ विनयपत्रिका . तुलसी
१३७. विषापहारस्तोत्र . धनजय १३८. वैराग्यशतक : भर्तृहरि
१३९ शिशुपालवध माघ १४०. शृंगारशतक : भर्तृहरि
१४१ श्रीमद्भागवत · व्यास १४२ श्रीमद्भगवद्गीता : व्यास
१४३. समयसार : कुन्दकुन्द १४४. साकेत एक अध्ययन : डा० नगेन्द्र

१४५. साहित्यदर्पण : विश्वनाथ
१४६ साहित्य, शिक्षा और सस्कृति : डा० राजेन्द्र प्रसाद
१४७ सीयाचरिय : भुवनतुगसूरि
१४८. सूर्यशतक · बाणभट्ट
१४९. संस्कृत-कवि-दर्शन : डॉ० भोलाशंकर व्यास
१५०. सस्कृत साहित्य का इतिहास : कन्हैयालाल पोद्दार
१५१. सस्कृत साहित्य का इतिहास . वाचस्पति गैरोला
१५२ संस्कृत साहित्य की रूपरेखा : चन्द्रशेखर पाण्डेय
१५३ हर्षचरित . बाणभट्ट
१५४. हर्षचरित एक सांस्कृतिक अध्ययन : डा० वासुदेवशरण अग्रवाल
१५५ हरिवशपुराण : जिनसेन
१५६ हससन्देश (हसदूत) वेंकटेश
१५७ हिन्दी महाकाव्य का स्वरूप-विकास : डा० शम्भुनाथसिंह
१५८ हिन्दी साहित्य का इतिहास · आचार्य रामचन्द्र शुक्ल
१५९. हिन्दी-साहित्य-कोश, भाग १ · स० धीरेन्द्र वर्मा
१६० हिस्ट्री ऑफ इण्डिया एज टोल्ड बाइ इट्स ओन हिस्टोरियन्स . इलियट एण्ड डौसन
१६१. हिस्ट्री ऑफ संस्कृत लिटरेचर : ए. ए. मैक्डानल